View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Joshi, Himanshu H., 2010, *शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य का विचार-पक्ष*, thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/234

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

"शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य का विचार–पक्ष"

[सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध]

अनुसंधित्सु

प्रा. हिमांशु हर्षदराय जोशी

(एम.फिल., बी.एड्.)

व्याख्याता – हिन्दी विभाग (बी.एड्.),

टी.एन. राव कॉलेज,

राजकोट–३६० ००५

निर्देशक

डॉ. शैलेश के. मेहता

रीडर, हिन्दी भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट–३६० ००५

वर्ष : २०१०

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **हिमांशु हर्षदराय जोशी** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध **''शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य का विचार-पक्ष''** मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया है । इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथा-शक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण-विवेचन कर वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई भी अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

दिनांक : ___________

स्थल : ___________

निर्देशक

डॉ. शैलेश के. मेहता
रीडर, हिन्दी भवन,
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट

CERTIFICATE

I hereby declare -

1. That the work embodied in my this on - ''शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य का विचार–पक्ष'' *[''THEMETIC CONCERNS IN THE POETRY OF SHIVMANGAL SINH 'SUMAN' '']* prepared for the Ph.D. degree has not been submitted for any other degree of thesis or any other Uni. on any previous occasion.

That, to the best of my knowledge, no work has been reported on the above subject since I have discovered new relations of facts of the history of Hindi Literature. This work can be considered to be contributory to the advancement of study of literature.

That, all the work presented in the thesis is original and wherever references have been made to the work of others. It has been clearly indicated as such and the source of information included in the bibliography.

Countersigned by the Guiding Teacher.

Guide	Research Student
[Dr. Shailesh K. Mehta]	**[Himanshu H. Joshi]**

Date : _______________

Place : _______________

अनुक्रमणिका

शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
★ **प्राक्कथन**	**i-xviii**
प्रथम अध्याय विचार–पक्ष की अवधारणा	**1-55**
द्वितीय अध्याय शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक साहित्यिक व्यक्तित्व	**56-117**
तृतीय अध्याय शिवमंगल सिंह 'सुमन' : समकालीन परिवेश	**118-171**
चतुर्थ अध्याय 'सुमन' के काव्य का सामाजिक विचार–पक्ष	**172-291**
पंचम् अध्याय 'सुमन' के काव्य का राष्ट्रवादी विचार–पक्ष	**292-386**
षष्ठ अध्याय 'सुमन' के काव्य का प्रगतिवादी विचार–पक्ष	**387-494**
सप्तम् अध्याय शिवमंगलसिंह 'सुमन' का काव्य : विचार–पक्ष के विविध आयाम	**495-634**
★ **उपसंहार**	**635-643**
★ **परिशिष्ट** (१) आधार ग्रंथ (२) सहायक संदर्भ ग्रंथ (३) प्रकाशित, अप्रकाशित एवं पंजीकृत शोध–प्रबंध (४) पत्र–पत्रिकाएँ (५) शब्द कोश – साहित्य कोश (६) वेबसाईट	

❑ प्राक्कथन

'श्रीमद् भगवद्गीता' में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने ''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः, मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।'' - कह कर समग्र जीवसृष्टि में मनुष्य को सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा है । इसलिए यह सनातन सत्य है कि सृष्टि के समस्त प्राणियों में मनुष्य ईश्वर का श्रेष्ठत्तम सृजन है ठीक वैसे ही साहित्य भी मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वश्रेष्ठ सृजन है । संसार की सभी संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के विकास में साहित्य का बहुमूल्य योगदान रहा है । श्रेष्ठ संस्कृति एवं सभ्यता श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण करती है और ऐसे ही श्रेष्ठ मनुष्यों का समूह श्रेष्ठ एवं स्वस्थ समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । श्रेष्ठ आचार-प्रणाली, श्रेष्ठ विचार-प्रणाली और श्रेष्ठ जीवन- प्रणाली से समाज को श्रेष्ठता प्राप्त होती है और समाज को साहित्य के माध्यम से सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् की प्राप्ति होती है । इस दृष्टि से भी साहित्य और समाज का अभिन्न सम्बन्ध है । साहित्य समाज का दर्पण है । साहित्यकार साहित्य के माध्यम से समाज का चित्रण करता है । इसलिए यह यथार्थ ही है कि जो समाज की 'करनी' है वही साहित्य की 'कथनी' बन जाती है । साहित्य प्रकाश फैलाता है, अज्ञान और कलुषितता रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान एवं पवित्रता रूपी प्रकाश फैलाकर समाज का परिमार्जन करता है । इस दृष्टि से यह कथन उचित ही है कि -

''अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है और मूर्दा है
वह देश जहाँ साहित्य नहीं है ।''

साहित्य की अनेक विधाओं में काव्य का सदैव विशिष्ट महत्त्व रहा है । काव्य एक सुंदर साहित्यिक विधा है । काव्य हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति है । कवि के हृदय में उठनेवाली पवित्र एवं विधायक भावना का प्रगटीकरण काव्य को जन्म देता है । आदिकाल से लेकर आज तक इसी काव्य-विधा के अंतर्गत अधिक मात्रा में और श्रेष्ठरूप में साहित्य-लेखन हुआ है । कवि जब अपने हृदय की भावनाओं को पद्यमय शैली में व्यक्त करता है, तब उसके अपने विचार भी उसमें सम्मिलित रहते हैं । यह भाव और विचार समन्वित रूप से कल्पना का पुट पाकर सुंदर काव्य का रूप धारण कर लेते हैं । इसलिए काव्य रचनाकार की विचारधारा को भी व्यक्त करता है और विचार ही ऐसा तत्त्व है जो मनुष्य के जीवन, सभ्यता, संस्कृति एवं समाज के लिए एक अनिवार्य रूप से महत्त्वपूर्ण अंग है । इसीलिए तो यह यथार्थ ही कहा है कि -

"विचार से सृजन और प्रलय,
विचार ही सृजन और प्रलय,
मनुष्य का परिचालक यह तत्त्व,
समाज और संस्कृति का है सत्त्व ।"

हिन्दी साहित्य में आदि काल से लेकर आजतक अनेक कवि हो गए हैं । जैसे, सूर, तुलसी, कबीर, जायसी, मीरा आदि । आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य में भी प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, बच्चन जैसे श्रेष्ठतम कवि हुए हैं । छायावाद, हालावाद, प्रयोगवाद और प्रगतिवाद जैसी अनेक विचारधाराएँ काव्य के माध्यम से साहित्य में प्रवाहित हुई हैं, उनमें प्रगतिवादी विचारधारा समाज जीवन की यथार्थ भूमि से जूड़ी हुई है । स्वनामधन्य श्री शिवमंगल सिंह

'सुमन' एक प्रगतिवादी कवि के रूप में स्वीकृत हैं । 'सुमन' जी की कविताओं में समाज और मनुष्य जीवन के लिए सहायक विचारधारा व्यक्त हुई है । 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त विचार-पक्ष गहन, गंभीर, भावमूलक, यथार्थ, विविधतापूर्ण, नावीन्ययुक्त एवं प्रगतिशीलता के गुणों से सभर है । इसलिए उनकी कविताओं में व्यक्त विचार-पक्ष का अध्ययन महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है, क्योंकि इससे समाज को 'सुमन' काव्य में व्यक्त उत्तम विचार-रत्न प्राप्त होंगे । इसलिए मेरे मन में शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य के विचार-पक्ष विषय पर अनुसंधान-कार्य करने की इच्छा प्रकट हुई ।मैंने शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य तथा संदर्भ ग्रंथों की सहायता से, मौलिक ढंग से 'सुमन' जी के समग्र काव्यों में व्यक्त विचार-पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । यहाँ विचार-पक्ष से तात्त्पर्य है, काव्य में व्यक्त विचार, विचारधारा, वैचारिक भाव भूमि, अनुभूति-पक्ष या मूल-भाव, केन्द्रिय विचार तथा कथ्य । 'सुमन' जी के काव्यों में निरूपित विचारों को जानने से समाज एवं साहित्य को उनके उत्तम वैचारिक रत्न प्राप्त होंगे, जो विकास प्रक्रिया में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ऐसा शोधार्थी का विनम्र मत है । इसलिए ऐसे पवित्र उद्देश्य से किया गया यह अनुसंधान कार्य शोधार्थी का विनम्र प्रयास मात्र ही है । शोध-कार्य के दौरान मेरा प्रयास रहा है कि 'सुमन'जी की सम्पूर्ण कविताओं का गहनतापूर्वक अध्ययन कर उन्हें आत्मसात कर, उनमें से उत्तम विचार रत्नों की खोज करें । इस शोध-प्रबन्ध में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों यह संभव है, इसका सम्पूर्ण दायित्व केवल शोधार्थी पर है । जो कुछ भी उपलब्धियाँ है, वे उसके अभिभावकों, एवं गुरुजनों की है ।

❑ शोध-विषय की प्रेरक भाव-भूमि एवं विषय-चयन

जब कोई अध्येता विभिन्न साहित्य का अध्ययन करता है तो उसमें से कुछ ऐसे तत्त्व, ऐसे विचार उसे प्राप्त होते हैं, जिनसे वह बरबस ही प्रभावित हो जाता है । साहित्य के अध्ययन का प्रभाव अवश्य ही हम पर व्याप्त होता है । कुछ ऐसे कवि भी होते हैं, जो हमारे मन और हृदय पर छा जाते हैं और उनकी एक विशेष छवि उभर आती है, जिससे हम अनेक युगों तक उनसे प्रभावित होते हैं । कुछ ऐसे साहित्यचेता होते हैं, जो अपने क्रांतिकारी विचारों से समाज का ध्यान आकृष्ट करते हैं । उनकी कविताओं में व्यक्त विचारों से परिवर्तन एवं क्रांति की संभावना दृष्टिगत होती है ।

इस संदर्भ में विषय-चयन एवं प्रेरक भाव-भूमि के संबंध में चर्चा आवश्यक है, क्योंकि किसी भी कार्यारंभ के मूल में कोई-न-कोई प्रेरक भाव-भूमि अवश्य ही होती है । सबसे कठिन कार्य अनुसंधान के विषय-चयन की प्रक्रिया का होता है । मैंने स्नातक स्तर पर हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया और अनुस्नातक स्तर पर इसका और भी गहनता से अध्ययन हुआ । इस समय के दौरान हिन्दी में लिखित काव्यों से अधिक प्रभावित रहा । इन काव्यों में निरूपति छायावादी विचारधारा, प्रगतिवादी विचारधारा, आदर्शवादी विचारधारा, गांधीवादी विचारधारा एवं राष्ट्रवादी विचारधारा की कविताओं का सम्यक् अध्ययन किया । इनमें से मैं प्रगतिवादी एवं राष्ट्रवादी विचारधारा से अधिक प्रभावित रहा । मैंने स्नातक, अनुस्नातक एवं एम.फिल. के विद्याभ्यास के दौरान प्रगतिवादी एवं राष्ट्रवादी विचारधारा से सम्पन्न अनेक कवियों के

काव्य साहित्य का अध्ययन किया । इन सभी कवियों के साथ-साथ श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कविताओं के अध्ययन का भी सुअवसर प्राप्त हुआ । उनके प्रगतिवादी, क्रांतिकारी एवं राष्ट्रवादी विचारों से सम्पन्न कविताओं ने मुझे आकर्षित किया । 'सुमन' जी की 'विन्ध्य हिमालय', 'प्रलय-सृजन', 'जीवन के गान' इत्यादि काव्य-संग्रहों की कविताओं ने मुझे अधिक प्रभावित किया । उनकी 'पथ भूल न जाना पथिक कहीं', 'हमें न बाँधो प्राचिरों में' और 'वरदान माँगुंगा नहीं',जैसी कविताओं ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया । 'सुमन' जी की कविताओ पर शोध परक दृष्टिकोण से कुछ लिखने की तमन्ना जगी । 'सुमन'जी की कविताओं में व्यक्त विचारधारा एवं वैचारिक ऊँच्चता ने मुझे अधिक आकर्षित एवं प्रभावित किया । उसी समय मैंने 'सुमन'जी की कविताओं पर भविष्य में अनुसंधान-कार्य करने का निर्णय कर लिया था । मैंने बी.एड्. का विद्याभ्यास समाप्त कर हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के एम.फिल. के विद्याभ्यास का प्रारंभ किया । वर्ष के अंत में डॉ. शैलेश मेहता साहब से मेरी मुलाकात हुई । उनके समक्ष मैनें पीएच.डी. की उपाधि हेतु अनुसंधान कार्य करने की इच्छा प्रकट की । उन्होंने मुझे इस हेतु विशेष समय देकर बुलाया । लम्बे समय तक विचार-विमर्श एवं चिंतन-मनन होते रहे । मैनें डॉ. शैलेश जी के समक्ष 'सुमन'जी की कविताओं पर अनुसंधान-कार्य करने की इच्छा प्रकट की । उन्होंने मेरी ललक एवं योग्यता देखते हुए इस विषय पर अनुसंधान करने की अनुमति दे दी । पर्याप्त समय तक डॉ. एस.पी. शर्मा जी, डॉ. कलासवा जी, डॉ. गिरीश जी और मेरे निर्देशक डॉ. शैलेश जी से इस विषय पर चर्चा एवं विमर्श चलते रहे । डॉ. शैलेश जी एवं इन गुरुजनों से लम्बे विचार-विमर्श

के पश्चात् 'सुमन'जी के काव्य में व्यक्त विचार-पक्ष पर अनुसंधान-कार्य करने का निर्णय लिया गया । मेरे गुरुवर्य श्री डॉ. शैलेश मेहता जी ने मुझे पीएच.डी. की उपाधि के लिए शोध-कार्य हेतु शोध-प्रबंध का जो शीर्षक दिया वह है -

''शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य का विचार-पक्ष''

"THEMATIC CONCERNS IN THE POETRY OF SHIVMANGAL SINH 'SUMAN' "

इस प्रकार डॉ. शैलेश जी ने मेरे पीएच.डी. के शोध-प्रबंध के विषय-चयन एवं उनके शीर्षक से संबंधित मेरी समस्या का समाधान कर दिया । मैं भी एक विचारशील व्यक्ति हूँ, सद्‌विचारों एवं श्रेष्ठ विचारों का आराधक एवं पूजक हूँ । इसलिए यह शीर्षक मेरे शोध-प्रबन्ध का विषय या शीर्षक मात्र न होकर मेरे लिए आराधना के समान है और इस कार्य में मेरे मार्गदर्शक ऐसे डॉ. शैलेश जी दीपघर के समान हैं, इस बात से प्रसन्न एवं गौरवान्वित हूँ ।

❑ सामग्री-संकलन के सूत्र

अनुसंधान-कार्य को सफल बनाने के लिए और अन्वेषण-कार्य के निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुसंधान के विषय के सामग्री-संकलन का कार्य अत्यन्त कठिन होता है । अतः यह आवश्यक है कि सामग्री- संकलन सुचारू ढंग से किया जाय। डॉ. मेहता साहब ने मुझे 'सुमन' जी की कविताओं पर लिखित दो समीक्षात्मक संदर्भ ग्रंथ अध्ययन हेतु दिए । मैंने वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली का दूरभाष से संपर्क किया और मुझे 'सुमन' जी का समग्र काव्य-साहित्य 'सुमन समग्र' खण्ड एक से चार तक उपलब्ध हुआ । इसके अलावा राजकमल

प्रकाशन से संपर्क के कारण भी सहायक संदर्भ साहित्य प्राप्त हुआ । सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के केन्द्रिय ग्रंथालय, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के निजी ग्रंथालय और विभिन्न प्रकाशनों की मदद से मेरे अनुसंधान-कार्य के लिए अध्ययन सामग्री के संकलन की समस्या का समाधान भी हो गया । पारेख कॉलेज, महुवा के ग्रंथालय, डॉ. महेश व्यास जी, डॉ. पाल जी, डॉ. एन.एन. व्यास जी के निजी ग्रंथालयों का सहयोग भी प्राप्त हुआ है । शोधार्थी हृदयपूर्वक इनका ऋण स्वीकार करता है ।

अब मेरे पास मेरे अनुसंधान-कार्य के लिए संपूर्ण अध्ययन सामग्री थी । आधार-ग्रंथ, सहायक-ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ, मौखिक विचार-विमर्श और इन्टरनेट के रूप में 'याहू' और 'गुगल' की वेबसाईट के रूप में विस्तृत साहित्य उपलब्ध था । अब आवश्यकता थी इनके अध्ययन, उन पर तटस्थ मौलिक चिंतन तथा मेरी वैचारिक मौलिकता की । इन दोनों की मदद से आनुसंधित्सु ने अपने शोध-कार्य का प्रारम्भ किया । लंबे समय के पश्चात् मेरी मौलिक चेतना, ईश्वर द्वारा दी हुई वैचारिक शक्ति, गुरुजनों के आशीर्वाद, परिजनों का स्नेह और गुरुवर्य श्री डॉ. शैलेश मेहता साहब के मार्गदर्शन से आज मैं अनुसंधान-कार्य की सम्पन्नता की ओर गति कर पाया हूँ ।

❑ शोध-कार्य की परिसीमा

शोध-कार्य अनेक आयामों से गुज़रता है । शोध-कार्य के आयाम विस्तृत होते हुए भी उसकी कतिपय सीमाएँ होती हैं । अनुसंधान कार्य की परिसीमा निश्चित करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि इससे हमारे अनुसंधान-कार्य का मार्ग स्पष्ट हो जाएगा ।

इस शोध-प्रबंध की भी कतिपय परिसीमाएँ है । फिर भी मेरे अनुसंधान-कार्य का मार्ग स्पष्ट है । प्रस्तुत अनुसंधान कार्य शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी के काव्यों तक और 'सुमन' जी के काव्यों में समाहित विचार-पक्ष तक सीमित है । विषय के व्यवस्थित निरूपण हेतु इस शोध-प्रबंध में 'सुमन' जी के काव्यों के विचार-पक्ष को अनुसंधानात्मक रूप में तथा तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

मेरे गुरुवर्य श्री डॉ. मेहता साहब प्रस्तुत विषय के ज्ञाता हैं । उनके मार्गदर्शन एवं अपनी मौलिक चेतना की सहायता से प्रस्तुत विषय के तथ्यों को इस रूप में रख पाया हूँ । इस शोध-प्रबंध के प्रारूप को अधिक विस्तृत रूप में न रखकर उसके स्वाभाविक रूप में ही रखने का प्रयत्न किया है । शोधार्थी अपने इस प्रयत्न में कितना सफल रहा है, इसका निर्णय तो विद्वज्जन ही करेंगे ।

❑ पूर्ववर्ती शोध-कार्य

अनुसंधान-कार्य के लिए सर्वप्रथम प्रस्तुत विषय से संलग्न पूर्ववर्ती शोध-कार्य को जान लेना और उसकी सहायता लेना भी आवश्यक है, क्योंकि उसमें से हमें मार्गदर्शन प्राप्त होता है और हम पुनरावृत्ति-दोष से बच जाते हैं । जब मैंने इस विषय से संबंधित पूर्ववर्ती शोध-कार्य की तलाश की और उसका अध्ययन किया तब ज्ञात हुआ कि 'सुमन'जी की कविताओं पर अनुसंधान-कार्य के लिए काफी गुंजाईश है । उसमें भी उनकी कविताओं में व्यक्त विचार-पक्ष पर तो कार्य हुआ ही नही था । अत: हो सकता है कि मेरा यह शोध-प्रबंध 'सुमन' जी की कविताओं के विचार-पक्ष पर कार्य करनेवाला प्रथम प्रयास माना जाय । जहाँ तक शोधार्थी को ज्ञात है, अब तक शिवमंगल सिंह 'सुमन' और उनके साहित्य पर निम्नलिखित रूप में अनुसंधान कार्य हुआ है -

(१) ''शिवमंगल सिंह 'सुमन' : व्यक्तितत्त्व और कृतित्त्व'' – शीला जैन; पंजाब विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक (हरियाणा) सन् १९६८-६९ ई. ।

(२) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में संस्कृति का स्वरूप'' रामकृष्ण मिश्र; विक्रम विश्वविद्यालय – उज्जैन, (मध्यप्रदेश) सन् १९७० ई. ।

(३) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की काव्यधारा – एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण''– नारायण नम्पुतिरी पी. एम.; कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन (केरल), सन् १९७२ ई. ।

(४) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : व्यक्तितत्त्व एवं कृतित्त्व'' – श्रीमति रवीन्द्र कौर; गुजरात विश्वविद्यालय-अहमदाबाद (गुजरात). सन् १९९० ई. ।

(५) ''श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' के सर्जनात्मक कृतित्त्व का समीक्षात्मक अध्ययन (शैली विज्ञान के संदर्भ में)'' – श्री नटवरलाल मगनलाल उपाध्याय; सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर (गुजरात) में पंजीकृत ।

(६) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रगतिवाद के विशेष संदर्भ में)'' – श्री एन. एल. उपाध्याय; सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट (गुजरात) में पंजीकृत ।

उपरोक्त विषयों से ज्ञात होता है कि शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्यों के विचार-पक्ष पर अनुसंधान-कार्य नहीं हुआ है । अतः इस विषय पर अनुसंधान कार्य की पर्याप्त गुंजाईश है । अतः इस शोध-प्रबंध को 'सुमन'जी के काव्यों के विचार-पक्ष पर आधारित सर्वप्रथम शोध-कार्य माना जाय ।

❑ प्रबन्ध सारांश

मैंने इस शोध-प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया हैं । सात अध्यायों में तथ्यात्मक रूप से विवेचन एवं विश्लेषण कर शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य के विचार-पक्ष को यथार्थ रूप में रखने का प्रयत्न किया है । इस शोध-प्रबंध का सारांश इस प्रकार है -

(१) प्रथम अध्याय : ''विचार-पक्ष की अवधारणा''

इस अध्याय में विचार-पक्ष की अवधारणा को प्रस्तुत कर उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है । विचार-पक्ष की विशेषताएँ बताकर उसके महत्व को भी दर्शाया गया है

(२) द्वितीय अध्याय : ''शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक साहित्यिक व्यक्तितत्त्व''

इस अध्याय में शिवमंगल सिंह 'सुमन' के जीवन एवं कवन पर प्रकाश डाला गया है उसके आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तितत्व का परिचय देकर उनके साहित्यिक व्यक्तितत्त्व को बताते हुए उनके समग्र कृतित्त्व का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है ।

(३) तृतीय अध्याय : ''शिवमंगल सिंह 'सुमन' : समकालीन परिवेश''

इस अध्याय में 'सुमन' जी के समकालीन परिवेश को प्रस्तुत कर उनके समय की विभिन्न परिस्थितियों का आंकलन किया गया है । जिससे 'सुमन' जी के कालखण्ड़ एवं उनके साहित्य पर पड़े प्रभाव को सही रूप में पहचाना जा सके ।

(४) चतुर्थ अध्याय : ''सुमन' के काव्य का सामाजिक विचार-पक्ष''

इस अध्याय में 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त सामाजिक विचार-पक्ष पर प्रकाश डाला गया है । 'सुमन' जी के सामाजिक विचार-पक्ष को प्रस्तुत कर, उनकी सामाजिक चेतना का अध्ययन किया गया है । इस रूप में उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है ।

(५) पंचम् अध्याय :''सुमन' के काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष''

इस अध्याय में 'राष्ट्र', 'राष्ट्रवाद' के अर्थ, स्वरूप एवं विशेषताओं को दर्शाकर 'सुमन' जी के काव्यों में व्यक्त राष्ट्रवादी विचार-पक्ष को प्रस्तुत किया गया है । उनकी राष्ट्रीय-चेतना को उजागर कर प्रासंगिकता को भी प्रस्तुत किया गया है ।

(६) षष्ठ अध्याय : ''सुमन' के काव्य का प्रगतिवादी विचार-पक्ष''

इस अध्याय में प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि के साथ उनके स्वरूप, विकास क्रम को प्रस्तुत कर उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है । 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त प्रगतिवादी विचार-पक्ष को तथ्यानुरूप प्रस्तुत कर उनकी वर्तमान समय में प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है ।

(७) सप्तम् अध्याय : ''शिवमंगल सिंह 'सुमन' का काव्य : विचार-पक्ष के विविध आयाम''

इस अंतिम अध्याय में शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविताओं में व्यक्त विचार-पक्ष के विविध आयाम, जैसे जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक

चेतना, नारी चेतना, यौवन चेतना, वैयक्तिक चेतना, दलित चेतना, ग्रामीण चेतना, समसामयिक चेतना, प्रेम भावना, प्रकृति चित्रण, सौंदर्य-बोध', हालावादी, गांधीवादी, मानवतावादी, राजनैतिक, साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-पक्षों पर तथ्यानुरूप अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही 'सुमन' काव्य के विचार-पक्ष की प्रासंगिकता को भी प्रस्तुत किया गया है ।

❑ उपसंहार

प्रबंध के अंत में समग्र शोध-कार्य के सारांश को निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत कर समग्र प्रबंध के अर्क को प्रस्तुत किया है । समग्र प्रबंध को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत कर उसकी उपादेयता एवं उसकी उपयोगिता को दर्शाकर उसके महत्व को दर्शाया गया है ।

❑ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विशेषताएँ

प्रत्येक अनुसंधान-कार्य का अपना एक महत्त्व होता है, विशेषताएँ होती हैं । शोध-प्रबन्ध की ये विशेषताएँ ही उन्हें अलग पहचान प्रदान करती हैं । इस शोध-प्रबन्ध की भी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनको निम्नांकित रूप में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयत्न किया है । ये विशेषताएँ हैं -

- प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध शोधार्थी की जानकारी के अनुसार अनवनीतम एवं मौलिक है ।
- शिवमंगल सिंह 'सुमन' काव्यों के विचार-पक्ष की प्रासंगिकता को इस शोध-प्रबंध के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

- शिवमंगल सिंह 'सुमन' के युगीन परिवेश को मौलिक ढंग से युगीन परिस्थितियों का अध्ययन कर प्रस्तुत किया गया है ।
- इस शोध-प्रबंध में वैचारिक बिन्दुओं को तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है ।
- 'सुमन' जी के काव्य में विभिन्न विचार रत्न इस शोध-प्रबंध के माध्यम से प्रस्तुत हुए हैं ।
- शोधार्थी की जानकारी के अनुसार, शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्यों के विचार-पक्ष पर कदाचित प्रथमबार अनुसंधान कार्य हुआ है ।
- विविध प्रकार के विचार-पक्ष के आयामों पर अध्ययन कर वैचारिक बिंदुओं को रखने का प्रयत्न किया गया है ।
- विचार-पक्ष की अवधारणा कदाचित प्रथमबार इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से प्रस्तुत होगी ।

❑ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का महत्त्व

संसार की कोई भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, विचार और कार्य महत्त्वरहित नहीं हो सकते । इस दृष्टि से किसी विषय के अनुसंधानपरक अध्ययन का भी अपना महत्त्व होता है । इस शोध-प्रबन्ध का भी अपना एक विशेष महत्त्व है । इस शोध-प्रबन्ध के महत्त्व को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

- इस शोध-प्रबन्ध में विचार-पक्ष की अवधारणा प्रथम बार प्रस्तुत हुई है । अतः इस क्षेत्र में कार्य करनेवाले परवर्ती शोधार्थियों के लिए यह शोध-प्रबंध उपयोगी हो सकता है ।

- इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्यों में व्यक्त सामाजिक विचार-पक्ष, राष्ट्रवादी विचार-पक्ष, प्रगतिवादी विचार-पक्ष तथा विचार-पक्ष के विविध आयाम जैसे कि जीवन दर्शन, वैयक्तिक चेतना, साहित्यिक चेतना, दलित चेतना, नारी चेतना, ग्रामिण चेतना, धार्मिक-दार्शनिक विचार-पक्ष राजनैतिक विचार-पक्ष, प्राकृतिक चेतना, प्रेमभावना आदि पर 'सुमन' जी के विचार एवं चिंतन को प्रस्तुत किया गया है । अतः इससे 'सुमन'जी के वैचारिक दृष्टिकोण को अध्येता एवं साहित्य के अनुसंधित्सु अधिक गहराई से समझ पाएँगे । अतः यह शोध- प्रबंध अध्येताओं एवं अनुसंधित्सुओं तथा साहित्य रसिकों के लिए सहायक होगा ।

- इस शोध-प्रबन्ध में 'सुमन'जी के परिवेश को प्रस्तुत किया गया है । अतः उस समय की परिस्थितियों के बारे में अच्छी जानकारी मिलेगी । अतः इसके कारण 'सुमन'जी के विचारों और उनके काव्यों को समझने में सहायता मिलेगी ।

- इस शोध-प्रबन्ध से 'सुमन'जी के वैचारिक समृद्धि रूपी रत्न समाज को प्राप्त होंगे, जो सामाजिक परिवर्तन, क्रांति तथा नावीन्य लाने में सहायक सिद्ध होंगे ।

- 'सुमन'जी के काव्य का विचार-पक्ष कदाचित प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है । अतः विचार-पक्ष की दृष्टि से 'सुमन'जी की कविताओं

का मूल्यांकन करना एक नवीन और विशेष प्रयास माना जाएगा । अतः भविष्य में विचार-पक्ष के संदर्भ में अन्य साहित्यकारों पर भी अनुसंधान कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हो सकती है, इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है ।

- मेरा यह शोध-प्रबन्ध अनुसंधित्सुओं, साहित्यिकारों, अध्येताओं, साहित्य प्रेमियों तथा विचारकों को एक विशेष दृष्टि प्रदान करेगा या उन्हें इस कार्य के माध्यम से जरा-सी भी उपलब्धि प्राप्त होगी तो मैं अपने इस प्रयास को सार्थक समझूँगा ।

❑ कृतज्ञता-ज्ञापन

मनुष्य जीवसृष्टि एवं प्रकृति के सभी तत्वों एवं ईश्वर का ऋणी है । उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित करना उसका परम कर्तव्य होना चाहिए । अपने लिए उपकारक एवं सहायक सिद्ध होने वालों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित न की जाय, तो वह सबसे बड़ा पापकर्म कहलायेगा । वैसे कृतज्ञता-ज्ञापन अनुभूति का विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं; किन्तु वास्तव में अभिव्यक्ति ही अनुभूति को निरंतर चैतन्यमय रखती है । इसलिए कृतज्ञता-ज्ञापन आवश्यक है । कृतज्ञता-ज्ञापन वैसे तो एक औपचारिकता है, फिर भी उसकी अनिवार्यता को हम नज़रंदाज़ नहीं कर सकते । शोधार्थी की दृष्टि से कृतज्ञता-ज्ञापन एक परम कर्तव्य भी है ।

सर्वप्रथम मैं भगवान योगेश्वर श्री कृष्ण द्वारकाधीश जी, कुलदेवी तुलजा भवानी माताजी और कुल देवता गंगाजलिया दादा के प्रति उनके चरणों में

कृतज्ञता- ज्ञापित कर इस शोध प्रबंध को उन्हें अर्पित करता हूँ, क्योंकि उनकी कृपा के बिना यह कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था । मैं अपने जीवन के पथ-प्रदर्शक ऐसे विश्व के श्रेष्ठ तत्वज्ञानी एवं आधुनिक ऋषि परम पूज्य पांडुरंग शास्त्री आठवले (पू. दादा जी) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, क्योंकि उनके द्वारा प्राप्त वैचारिक दृष्टि एवं वैचारिक ऐश्वर्य इस शोध-कार्य में मुझे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विषय-चयन से लेकर साकार रूप देने की समग्र प्रक्रिया तक जिनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है और जिनके ज्ञान के प्रकाश एवं मार्गदर्शन के बिना यह अनुसंधान कार्य सम्पन्न कर पाना संभव ही न था, ऐसे एक आदर्श गुरु एवं अध्यापक मेरे गुरुवर्य श्री डॉ. शैलेश के. मेहता जी (रीडर, हिन्दी भवन, सौ.वि. वि., राजकोट) के प्रति हृदयपूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । आपकी प्रेरणा, मार्गदर्शन, आशीर्वाद सहयोग तथा दीर्घदृष्टि से ही यह कार्य मेरे लिए रूचिकर एवं सरल बन सका है । वे शोध-प्रबन्ध की लेखन-यात्रा के समय मेरे मन में उठनेवाले प्रश्नों और जिज्ञासाओं का विनयपूर्वक शमन कर सहायक हुए हैं । इसलिए मैं डॉ. शैलेश मेहता साहब के प्रति श्रद्धान्वित हूँ और कृतज्ञतारूपी भावपुष्प गुरुवर्यश्री के चरणों में अर्पित करता हूँ ।

मेरे इस अनुसंधान कार्य में मेरे गुरुवर्य सर्वश्री डॉ. बी. के. कलासवा जी (अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौ. वि.वि., राजकोट), डॉ. गामित जी (अध्यापक, हिन्दी भवन, सौ. वि.वि., राजकोट), डॉ. एस.पी. शर्मा जी (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौ.वि.वि., राजकोट), डॉ. जी.जे. त्रिवेदी जी (पूर्व रीडर, हिन्दी

भवन, सौ.वि.वि., राजकोट), डॉ. सुधाबहन पौराणा (वीरबाई माँ महिला कॉलेज, राजकोट), डॉ. कमलेश देसाई साहब, (योगी जी महाराज कॉलेज, राजकोट), डॉ. एच. टी. ठक्कर साहब (वीरबाई माँ महिला कॉलेज, राजकोट), डॉ. महेश व्यास साहब (प्राचार्यश्री, पारेख कॉलेज, महुवा), डॉ. एन.एन. व्यास साहब (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी अनुस्नातक केन्द्र पारेख कॉलेज, महुवा), डॉ. गुर्जर साहब (पारेख कॉलेज, महुवा), डॉ. पाल साहब (पारेख कॉलेज, महुवा), प्रा. गाहा साहब (पारेख कॉलेज, महुवा) श्री जनक पंड्या साहब (ए म.एन. हाई. महुवा), श्री जे. के. काकलोतर साहब (कोंजली प्रा. शाला), श्रीमति तोरल बहन और कांता बहन (जे.पी. पारेख हाई. महुवा) आदि सभी गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनका मार्गदर्शन मुझे समय-समय पर मिलता रहा है तथा डॉ. चन्द्रकान्त रामानुज साहब (शारदापीठ बी.एड्. कॉलेज, द्वारका) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना कैसे भूल सकता हूँ ? डॉ. शैलेन्द्र शर्मा जी (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, म.प्र.) के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्हों ने दूरभाष से संपर्क के समय मुझे आवश्यक मार्गदर्शन दिया । मेरे हर्षद पापा, मालती मम्मी, पुष्पा नानी जी, बहन नीलम, केतन कुमार, जश, अनुज गौरांग, प्रियंका और मेरी प्रिय जीवनसंगिनी गीता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके द्वारा इस कार्य हेतु मेरा उत्साहवर्धन होता रहा है । साथ ही मैं मेरे मित्र श्री विमल भट्ट जी (जी. एल. एस. हाई. सरधार) तथा प्रा. जतीन अटारा (टी.एन. राव कॉलेज, राजकोट), श्रीमति ममता चौहाण (दिल्ली पब्लिक स्कूल, राजकोट), डॉ. निलेश गोहेल (दिल्ली पब्लिक स्कूल, राजकोट), श्रीमति मालती बहन (एस. एन. के. स्कूल, राजकोट), छाया महेता

(जीनियस स्कूल, राजकोट), हिरल मोदी (एस. एन.के. स्कूल, राजकोट) श्री जाडेजा साहब (के.जी. महेता कन्या विद्या., महुवा) भावना सोनी (जसाणी स्कूल, राजकोट) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी सहायता और प्रेरणा मुझे मिलती रही है । मेरे इस शोध-प्रबन्ध का टंकण कार्य करनेवाले ऐसे सोनार कम्प्यूटर्स, राजकोट के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना कैसे भूल सकता हूँ ? तो सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के ग्रंथालय के ग्रंथपाल, पारेख कॉलेज-महुवा के ग्रंथपाल एवं विभिन्न प्रकाशनों के प्रकाशकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापित करता हूँ । अंत में स्वर्गीय **डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'जी** के प्रति आत्मा, हृदय और मन से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । अस्तु ।

दिनांक : ____________

स्थान : महुवा

विनीत,

हिमांशु हर्षदराय जोशी

प्रथम अध्याय
विचार-पक्ष की अवधारणा

१.१ भूमिका

१.२ विचार-पक्ष की अवधारणा

१.२.१ विचार-प्रक्रिया

१.२.२ भाव और विचार प्रक्रिया

१.२.३ विचार पक्ष का स्वरूप

१.२.४ विचार-पक्ष और विचारधारा

१.२.५ विभिन्न विद्वानों के मत

१.३ साहित्य और विचार-पक्ष

१.४ विचार-पक्ष की विशेषताएँ

१.५ विचार-पक्ष का महत्त्व

१.६ निष्कर्ष

★ संदर्भसूचि

१.१ भूमिका

पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर आज तक मनुष्यने उत्तरोतर प्रगति की है । मनुष्य आज के स्वरूप में पहले नहीं था । प्रारम्भ में मनुष्य आदिम अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहा था। न तो उसके पास कोई विचार-प्रणाली थी, न ही कोई आचार-प्रणाली । मनुष्य के पास किसी भी प्रकार की आदर्श जीवन प्रणाली का अभाव था । आज मनुष्य के पास एक आदर्श जीवन प्रणाली, आचार प्रणाली और विचार प्रणाली है, जिसके फलस्वरूप वह सभ्य, सुशिक्षित एवं एक आदर्श नागरिक बन सका है । आज मनुष्य एक आदर्श, सुसंस्कृत मानवीय जीवन का धनी हो गया है । मनुष्य जीवन आज सुखमय एवं संतोषप्रद है । मनुष्य तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास की सीढ़ियों को क्रमशः विकसित करता हुआ एक उच्चतम धरातल पर पहुँच सका है ।

पहले मनुष्य के पास केवल व्यक्तिगत जीवन के अलावा कुछ न था, वह अपने ही जीवन में जीता हुआ, एक स्ववृत्त में ही जीता हुआ पशुतुल्य जीव था । उनका आरम्भिक संघर्षमय जीवन जीवन था । धीरे धीरे उसके मस्तिष्क का विकास हुआ और वह प्रारम्भ में व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर पारिवारिक जीवन जीने लगा । उसके बाद वह सामाजिक जीवन के ढाँचे में बंध गया । सामाजिक बनने के बाद वह समूहजीवन जीता हुआ धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरातल तक पहुँचा । शिक्षा एवं तकनीकी वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ वह एक सुसंस्कृत आदर्श, सभ्य मनुष्य की कोटि में आया । इस तरह मनुष्य क्रमानुसार विकसित होकर आज की स्थिति तक पहुँचा ।

विचारणीय यह है कि मनुष्य की आज की प्रगति एवं विकास के मूल में क्या है कि, उन्होंने उसको एक आदर्श मानव बनाया ? सभ्य समाज के निर्माण

में क्या है कि उसको एक सामाजिक प्राणी बनाया ? इन सभी के मूल में है मनुष्य का मस्तिष्क, उसकी बुद्धि प्रतिभा । मनुष्य के मस्तिष्क के माध्यम से ही यह विकास सम्भव हो सका है । मनुष्य को उसकी बुद्धि प्रतिभा ने ही मनुष्य बनाया अन्यथा वह तो अन्य पशुओं की भाँति जीवन जी रहा था ।

अनेक धर्मों एवं संस्कृतियों का विकास हुआ उसके मूल में भी उसकी बुद्धि प्रतिभा है । आदर्श एवं सभ्य समाज के निर्माण में भी उसके मस्तिष्क का ही योगदान है । सबसे महत्वपूर्ण है उसका विचार । विचार-तत्त्व ही है जिसने मनुष्य को मनुष्य बनाया । धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का जन्म विचार में से ही हुआ है । विचार-तत्त्व के माध्यम से मनुष्य ने अनेक बाधाओं को पार किया है ।

धर्म के मूल में भी विचार-तत्त्व ही है । मनुष्य को धर्म ही जीवन जीने का तरीका बताता है । धर्म के द्वारा मनुष्य आदर्श आचार प्रणाली को अपनाता है । धर्म के मूल में विचार है । कोई भी धर्म आप ले लीजिए तो उसमें एक प्रकार की विचार प्रणाली निहित होगी । विचारों के माध्यम से वह धर्म के नीति-नियम बनाता है और एक धार्मिक समूह बनता है । कोई भी एक बड़ा धर्म-समूह एक प्रमुख विचार-समूह पर आधारित ही होता है और निर्भर भी होता है । हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म या बौद्ध धर्म या फिर विश्व का कोई भी धर्म ले लीजिए उसमें विचार प्रमुख होता है । उन्ही विचार के आधार पर धर्म-समूह विकसित एवं परिवर्तनशील होता है । आत्मोन्नति के लिए उसके धर्म में व्यक्त विचारधारा उसको बल प्रदान करती है । मनुष्य इसी विचार धारा के माध्यम से आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होकर आध्यात्मिक विकास करता है ।

धर्म में विचार-धारा प्रमुख होती है । हिन्दू धर्म का स्वरूप फ्लेक्सीबल है अतः वह परिवर्तनों को तुरंत स्वीकार कर लेता है । हिन्दू धर्म मुख्य रूप से बहुदेवतावाद में, पुनर्जन्म में विश्वास रखता है लेकिन उसमें लचीलापन भी है । उसमें निर्गुण वादी एवं सगुणवादी विचार धारा दोनों का समन्वय देखने को मिलता है । ईसाई धर्म में अहिंसा मानवता, स्वतंत्रता आदि की विचारधारा निहित है तो इस्लाम धर्म में केवल निर्गुण, निराकार की विचारधारा है बौद्ध धर्म में आत्मिक विकास, निर्गुणवादी विचारधारा है । इस प्रकार विश्व का कोई भी धर्म हो उसमे समाहित उसकी मुख्य विचारधारा से ही वह परिचालित होता है ।

धर्म की तरह समाज को भी कोई न कोई विचारधारा प्रभावित करती रहती है । आरम्भिक समाज-जीवन जड़, बंधनयुक्त, दकियानुसी था, राज्यचालित था अपितु आज का समाज जीवन परिवर्तनशील, स्वतंत्र, स्वयंचालित एवं नये परिवर्तनों को अपनाने वाला समाजजीवन है । विचारधारा के माध्यम से ही समाज राजाशाही से आज के लोकतंत्र तक विकास कर सका है । समाज में पूँजीवादी विचारधारा से प्रगति वादी विचारधारा प्रभावशाली है । उनके वैचारिक आंदोलन समाज में चलते रहते हैं । जैसे प्रगतिवादी, गांधीवादी, समाजवादी, नारीवादी और सांस्कृतिक । आज़ तक परिवर्तन के जो भी आन्दोलन चले हैं वे सब कहीं न कहीं एक विचार धारा पर टिके हैं, उसके मूल में कहीं न कहीं विचारधारा प्रभावी रही है ।

आज शिक्षा के क्षेत्रों में जो प्रगति एवं विकास दिखाई देता है वह मनुष्य के मन में उठने वाले सद्‌विचारों का ही परिणाम है । साहित्यिक क्षेत्र में तो विचार उसके प्राणों के समान है । साहित्यकार के मन में उठनेवाला विचार

उसके साहित्य के माध्यम से समाज के पास आता है और समाज में प्रभावी होता है । हिन्दी में चले प्रगतिवाद, छायावाद, हालावाद, दलितचेतना, नारीचेतना आदि विचार का ही परिणाम है । शिक्षाविदों एवं साहित्यकारों के मन में उठने वाले विचारों के फल स्वरूप परिवर्तन अमल में आता है । यहाँ पर भी विचार की ही प्रधानता है ।

विज्ञान एवं तकनीकी, क्षेत्र के विकास में विचार की अहम भूमिका है । वैज्ञानिकों एवं तकनिकों के मन में निरंतर विचार प्रक्रिया चलती रहती है और फल स्वरूप नए-नए अनुसंधान एवं शोध प्रयोग होते हैं और समाज के विकास में उसका सदुपयोग होता है । अग्नि की शोध से आरम्भ करके चक्र, ऊर्ज़ा, मशीन, खेती आदि सभी की शोध के मूल में मनुष्य को विचार हैं । अनेक वैज्ञानिको, तकनिकों, व्यापारियों आदि की तेज़ एवं प्रभावी विचार-प्रक्रिया के फल स्वरूप वैज्ञानिक, तकनीकी, व्यापारिक एवं औद्योगिक विकास हो सका है । भूमिगत, सामुद्रिक एवं अन्तरिक्षीय विकास पथ में मनुष्य की विचार प्रक्रिया ने अपनी अहम भूमिका निभाई है । मनोवैज्ञानिक, आरोग्य, जन-सुखाकारी आदि के मूल में भी मनुष्य के मस्तिष्क के विचारों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । आखिरकार विचाररहित कोई भी कार्य किया ही नहीं जा सकता ।

इस प्रकार उपर्युक्त चिंतन से हम इस तथ्य पर आ सकते हैं कि मनुष्य के विकास में उसके मन-मस्तिष्क में उठने वाले विचार अहम एवं महत्वपूर्ण हैं । विचार के बिना कोई भी कार्य संभव नहीं है । विचार रहितता जड़ता, पशुत्व है । विचार रहितता अप्रगतिशीलता की निशानी है । विचार के बिना किया हुआ कोई भी कार्य पागलपन है ।

आजतक वैज्ञानिक क्षेत्र में जो प्रगति एवंविकास हुआ है उसमें न्यूटन, आइन्स्टाईन, जेम्सवोट, होमीभाभा, विक्रम साराभाई, अब्दुल कलाम आज़ाद जैसे अनेक वैज्ञानिको का महत्वपूर्ण योगदान है उसके मूल में उसके मस्तिष्क में उठने वाली विचार प्रक्रिया है, सदविचार है । धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में इसामसीह, राम, कृष्ण, विवेकानन्द, अरविन्द, पांडुरंगशास्त्री आठवले, मुहम्मद पयगंबर, गुरूनानक, भगवान बुद्ध, ओशो, जैसे अनेक महानुभावों एव महामानवों का योगदान महत्वपूर्ण है, उसके मूल में भी विचार प्रमुख है । सामाजिक एवं राजकीय क्षेत्र में मार्क्स, लेनिन, सुकरात, प्लेटो, गांधीजी, अंबेडकर जैसे महानुभवों का महत्वपूर्ण योगदान उनके विचारों में ही निहित है तो साहित्यिक क्षेत्र में तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, जायसी, वाल्मिकी, होमर, शेक्सपीयर, व्यास, कालिदास, प्रेमचन्द, प्रसाद, महादेवी, पंत, निराला, रविन्द्रनाथ, भारतेन्दु आदि साहित्यिकों का योगदान महत्वपूर्ण है, उनके मूल में भी विचार तत्त्व ही है । आर्थिक क्षेत्र में धीरूभाई अम्बानी, जमशेदजी टाटा, बिरला, मित्तल, आर्सेलर, बिलगेट्स आदि की सफलता के पीछे उनका मस्तिष्क, बुद्धिप्रतिभा और विचार ही है ।

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि किसी भी प्रकार का विकास हो उसके मूल में विचार, विचार प्रक्रिया ही होती है, उसके बिना यह संभव नहीं है । बिना विचार के कुछ भी संभव नही है । अत: विचार प्रक्रिया, विचारधारा, विचार-पक्ष को अनदेखा नहीं किया जा सकता । हम यहाँ इस लिए ही विचार-पक्ष के संबंध में चिंतन करने का प्रयत्न कर रहे हैं । इस प्रथम अध्याय में साहित्यिक संदर्भ में विचार-पक्ष की अवधारणा के संबंध में विचार किया जाएगा । यहाँ पर विचार-पक्ष की अवधारणा को प्रस्तुत किया जाएगा ।

१.२ विचार-पक्ष की अवधारणा

विचार-पक्ष के संबंधमें चिन्तन आवश्यक है। जब साहित्य का मूल्यांकन होता है तब साहित्य में व्यक्त विचारधारा को ही देखा जाता है । वह विचारधारा समाजोपयोगी है या नहीं इसकी समीक्षा की जाती है । हम यहाँ पर विचार-पक्ष के संबंध में चर्चा करने जा रहे हैं ।

१.२.१ विचार प्रक्रिया

मानवीय मन और मस्तिष्क का सम्बन्ध अभिन्न है । मस्तिष्क में विचार प्रक्रिया चलती ही रहती है । आँख और कान तथा शरीर की अन्य स्पर्शेन्द्रियाँ एवं अन्य अनुभूतिजन्य इन्द्रियाँ जो भी अनुभव करती है उसका संपूर्ण चित्र मानवीय मस्तिष्क में जाता है और तभी वहाँ उस चित्र के संबंध में विचार प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है । विचार-प्रक्रिया मस्तिष्क में निरंतर चलती ही रहती है । हम उस पर अपनी समीक्षा और टिप्पणी देते है । किसी भी घटना पर विचार-प्रक्रिया चलती रहती है ।

यही विचार-प्रक्रिया धीरे-धीरे एक धारा-प्रवाह का रूप ले लेती है । समाज में घटित घटनाएँ, समाजिक, राजकीय, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के संबंध में हमारे मस्तिष्क में मन्थन चलता रहता है और हम उसके पक्ष या विपक्ष में अपना मत देने लगते है । यह विचार प्रक्रिया का ही परिणाम है । विचारों का जन्म मस्तिष्क में होता अवश्य है अपितु बाह्‍य जगत के प्रसंगो एवं घटित घटनाओं से प्रभावित होकर वही विचार विशिष्ट चिन्तन में परिवर्तित हो जाते हैं

ऐसे विचारों से जब एक बडे समूह के लोग एकत्रित होकर एकमत से उठ खड़े होते है तब आंदोलन का रूप धारण कर लेते हैं और फिर उसके पक्ष एवं विपक्ष में सृजन-लेखन शुरू हो जाता है तब विचारधारा का जन्म होता है । विचारधारा विचारों में से ही, उत्पन्न होकर एक परिष्कृत रूप धारण कर लेती है ।

मानवीय शरीर भावना प्रधान होता है । भाव और विचार एक सिक्के के दो पहलू हैं । भाव और विचार को कभी-कभी एक मानकर भी देखा जाता है परंतु वे वास्तव में एक हैं नहीं । भावनाएँ उमडती है और बाद में वे एक विचार के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं । भावनाएँ हृदय में जन्म लेती है तो विचार उस भावना के माध्यम से परिष्कृत होकर विचार में परिवर्तित हो जाती है, और ऐसे विचार प्रक्रिया का प्रारंभ होता है ।

१.२.२ भाव और विचार प्रक्रिया

मानवीय जीवन में भावनाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करती है । हमारा संपूर्ण जीवन भावनाओं पर आधारित अधिक रहता है । कोई भी रचनाकार या अन्य मनुष्य भावनाओं से परिचालित होता है । यही भावनाएँ साहित्यकार या रचनाकार के लेखन का आधार बनकर एक विचार पक्ष का या विचार धारा का निर्माण करते है । नरेश चन्द्रकर जी का मत है कि - ''रचनाकार का बाहर के प्रत्येक स्पन्दन से संबंध है । यह संबंध जितना विचारधारात्मक, भावनात्मक माना जाता है, उतना ही जैविक आधार वाला भी माना जाना चाहिए ।''[०१]

संसार की किसी भी भाषा की रचना हो उसका लेखक कहीं न कही एक विचार प्रक्रिया का प्रवासी अवश्य होता है और उसी विचार प्रक्रिया पर वह निर्भर रहकर निर्माण करता है । नरेश चन्द्रकर जी इस विचार प्रक्रिया के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार रखते हैं - ''समष्टि की अपार शक्ति के द्वारा ही पुराण (मिथ) और महाकाव्य के अनुपम औ गम्भीर सौन्दर्य का जो विचार और रूप के पूर्ण सामंजस्य पर आधारित है, रहस्य समझा जा सकता है । यह सामंजस्य उस सामूहिक मनोवृत्ति की सम्पूर्णता ने पैदा किया था, जिसकी विचार प्रक्रियाओंने बाह्य रूप को एक महान (एपिक) विचार का अभिन्न अंग बना दिया, फलतः उनके बोल-चाल का हर शब्द एक प्रतीक होता था । दूसरे शब्दों में, बोलने की क्रिया लोगों की कल्पना में ऐसे जीवन्त बिम्बों परिकल्पनाओं की सरणि जगा देती थी, जिनमें वे अपने विचारों को समाविष्ट करते थे ।''[०२] इस प्रकार विचार प्रक्रिया के द्वार किसी भी प्रकार की रचना प्रक्रिया का प्रारम्भ माना जाना चाहिए ।

भाव व्यक्ति जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं । मानवीय जीवन भावनाओं से भरा पड़ा है । यह भाव क्या है ? यह जानना अति आवश्यक है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भाव के सम्बन्ध में लिखते हैं कि ''नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न-भिन्न योग संघटित होते है जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं ।''[०३] संपूर्ण मानवीय जीवन भावों और मनोविकारों के आधिन ही होता है । अतः भाव या मनोविकार जिसमें विचार भी समाहित हो जाता है वह

मानवीय जीवन के परिचालक एवं प्रवर्त्तक हैं ऐसा हम मान सकते हैं । राजनीति, समाज व्यवस्था, धर्म, अर्थ सब कुछ इन्हीं भाव या मनोविकार से ही परिचालित है । मनुष्य के भाव या मनोविकार कहीं न कहीं उपयोग में लिए जाते हैं । पूरे व्यवस्थातंत्र को संचालित यही मनुष्य के भाव या मनोविकार करते है । आ. रामचन्द्र शुक्त जी का मत है कि ''समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते है । मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाए जाते हैं । शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संगठन में ही समझना चाहिए । लोकरक्षा और लोक-रंजन, की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है। धर्म-शासन, राज-शासन, मत-शासन - सब में इनसे पूरा काम लिया गया है । इसका सदुपयोग भी हुआ है और दुरूपयोग भी । जिस प्रकार लोक-कल्याण के व्यापक उद्‌देश्य की सिद्धि के लिए मनुष्य के मनोविकार काम में लाए गए हैं, उसी प्रकार किसी संप्रदाय या संस्था के संकुचित और परिमित विधान की सफलता के लिए भी ।''[०४]

मनुष्य हमेशा जीवन में एक-दूसरे पर निर्भर रहता है । और इसी कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच वैचारिक, व्यवहारिक, सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक आदान-प्रदान होता रहता है । इस लिए इसको ही जीवन जीने की संज्ञा दी गई है। व्यक्ति कभी किसी से सहमत होता है तो कभी असहमत होता है, यह उनके भाव या मनोविकार या विचारों पर ही निर्भर होता है कि वह कब असहमति प्रकट करता है और कब सहमति प्रकट करता है । आ.

रामचन्द्र शुक्ल लिखते है कि - ''मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों के लिए दुसरों के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलता है कहीं लड़ता हुआ अंत तक चला चलता है और इसी को जीना कहता हैं ।''[०५] मनुष्य के कर्म उनके विचारों एवं भावों द्वारा परिचालित होते हैं । मनुष्य अपनी भावनाओं एवं विचारों के बंधनों से उनसे प्रभावित होकर कोई न कोई कर्म करता रहता है । उनकी भावनाएँ और विचार प्रक्रिया निरंतर उसको कर्म करने पर बाध्य कर देती है और अतः विचार और भाव ही मनुष्य के समस्त कर्मो के प्रेरक एवं चालक हैं । आ. रामचन्द्र शुक्ल इस संबंध में कविता की व्युत्पत्ति के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए इस बात को इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते है कि - ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं । इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञान योग को समकक्ष मानते है ।''[०६] इस प्रकार भाव या मनोविकार मनुष्य को कर्मयोगी बनाता है और यही भाव या मनोविकार विचार-प्रक्रिया का रूप ले लेते हैं और फिर उसी के प्रभाव स्वरूप मनुष्य कर्मप्रवृत्त बनता है । साहित्यकार भी इसी फलस्वरूप साहित्यसृजन के लिए प्रवृत्त बनता हैं अतः आ. रामचन्द्र शुक्ल का यह मत यथार्थ ही है कि - ''मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करने वाली मूल वृत्ति भावात्मिका है ।''[०७]

रचनाकार की रचनाएँ चाहे वह कविता हो, उपन्यास हो, नाटक हो, कहानी हो या चाहे अन्य कोई भी साहित्यिक विधा हो उसके मूल

में, उसकी रचना प्रक्रिया के मूल में उस रचनाकार की विचार प्रक्रिया, भाव प्रक्रिया ही होती है । कवि या लेखक के मन में चल रहे भावयुद्ध या विचार युद्ध के परिणाम स्वरूप एक नई रचना का सृजन होता है ।अतः निर्माण और विनाश दोनों को भाव या मनोविकार और विचार प्रक्रिया परिचालित एवं नियंत्रित करते रहते हैं ।

रचनाकार की रचनाओं में चाहे वह काव्य हो या गद्य रचना उसमें विचार और भाव प्रमुख है । भावों के बिना रचना निर्माण असंभव है । अतः भाव यहाँ महत्त्वपूर्ण बन जाते है । भाव का मतलब है - ''भवति भवतः इति भावः'' संसार में जो कुछ घटित हो रहा है, वही भाव कहलाता है ।''[०८] यही भाव विचार प्रक्रिया का एक अंग बनकर रचना का मुख्य विचार-पक्ष बन जाते हैं । साहित्य कार भावों के माध्यम से मौलिक रचना का निर्माण करता है । वह उन भावों के साथ अपने मौलिक विचारों का मिश्रण कर रचना निर्माण करता है । भाव के संबंध में और कलाकार की वैचारिक मौलिकता के संबंध में जुगलकिशोर पटैरिया का मत है कि - ''भाव शब्द भव धातु से निर्मित हुआ है । 'भव' का अर्थ है होना । अतएव भावों का उद्‌गम प्रकृति के नाना चलचित्रों से हुआ है । मानव उन्हें पकड़ने की चेष्टा भी करता है एवं कुछ भावों को पकड़ भी लेता है । कुछ को क्या ? अधिकांश को जिन भावों को वह प्रकृति से ग्रहण करता है उनमें वह अपनी मौलिकता की छाप लगाने के लिये नाना प्रकार की कल्पनाओं का भी सहारा लेता है ।''[०९]

रचनाकार के मन में उठे भाव उनकी मौलिक विचारधारा से जुड़कर एक विचार-पक्ष का रूप ले लेते हैं, यह विचारपक्ष उनकी

रचना के मूल उद्देश्य के साथ जुड़ हुआ होता है । वह विचार-पक्ष पूर्व से चली आ रही विचारधाराओं का ही एक अंग होता है । विचार-पक्ष और विचारधारा वस्तुतः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । विचार-पक्ष रचना के अंतर्गत समाया हुआ रचनाकार के मूल उद्देश्य सम एक तत्त्व है जो रचनाकार की रचना प्रक्रिया का ध्येय है । जो रचनाकार देना चाहता हैं समाज को वही वह अपने विचारों को, अपनी बात को भावों में पिरोकर अपने साहित्य के सृजन के रूप में समाज को समर्पित करता है । वही उनका, उनके साहित्य का विचार पक्ष है । अतः भावनाएँ, विचार, विचार प्रक्रिया और विचार-पक्ष में गहरा संबंध है । उन सभी के बीच सूक्ष्म भेद है । किन्तु वस्तुतः वे सब एक सिक्के के दो पहलुओं के समान ही है ।

१.२.३ विचारपक्ष का स्वरूप :

विचार-पक्ष के स्वरूप को व्याख्यायित करना कठिन है । विचार-पक्ष की अवधारणा भी जटिल और कठिन है । विचार ही स्वयमेव एक जटिल तत्त्व हैं । यहाँ विचार-पक्ष का संबंध साहित्यिक हैं । विचार किसी भी व्यक्ति या समाज या साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण हैं । विचार मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं । बिना विचार कोई भी कार्य संभव नहीं हैं । विचार एक ऐसा तत्त्व है जो मानवीय मन में उत्पन्न होता है जिसका आधार अनुभव चाहे वह बाहरी हो या आन्तरिक बौद्धिकता के साथ जुड़ा हुआ है ।

केवल विचार साहित्य में महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । वह विचार अगर भावसंयुक्त हो, बुद्धिजन्य और बुद्धितत्त्व से युक्त हो यह

आवश्यक है । रचनाकार के मन में उत्पन्न कोई भी सद्विचार एवं हितकर विचार एक वैचारिक वृत्त को रूप धारण कर रचना की समग्रता में व्याप्त हो जाते हैं और यह उसकी व्यापकता उस रचना का समग्र उद्देश्य बन जाता है । इस विचार में लोकहित, समाजहित, एवं सांस्कृतिक हित समाहित हो जाता है । यह जो रचना का मूल उद्देश्यपूर्ण कथ्य जो है, जिसका जन्म रचनाकार के मस्तिष्क में बाहरी एवं आंतरिक अनुभूति से संयुक्त होकर हुआ है वह विचार-पक्ष है । रचना में छन्द-विधान, अलंकार विधान, रस, भाषा आदि अनेक कलापक्षीय अंग होते है परंतु रचना का जो भावपक्ष है उस में रचनाकार के विचार-बिंदु समाहित होते हैं, उसमें रचनाकर का मूल कथ्य समाहित होता है जिसको लेकर रचनाकार ने रचना का निर्माण किया होता है । यही भावपक्ष, यही कथ्य रचना का और रचनाकार का उद्देश्य भी होता है । अतः विचार-पक्ष रचना के अंदर समाहित रचनाकार के विचार बिन्दु ही है। रचना के आंतरिक पक्ष को भी हम विचार पक्ष कहें तो गलत नहीं होगा ।

कोई भी रचना में उनके साहित्यिक उद्देश्य समाहित होते हैं जो समाजोपयोगी और सामाजिक परिवर्तन के लिए होते हैं, वह भी रचना का एक विचार-पक्ष ही है । इसी विचार-पक्ष से रचनाकार पूरी रचना को सृजनशीलता के ऊच्चतम आयामों तक पहुँचा जाता है । रचनाकार को उसकी रचना में समाहित विचार-पक्ष से ही पहचाना एवं माना जाता है । प्रेमचन्द के साहित्य में समाहित सामाजिक परिवर्तन संबंधी विचारों के कारण ही उसकी प्रतिष्ठ है । उनके विचारों ने सामाजिक

परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' का राष्ट्रीय भावना संबंधी या राष्ट्रवादी विचार पक्ष ही उनको महानता की कोटि में रखता है । तुलसी, सूर, मीरा, कबीर आदि की रचनाओं का भक्ति एवं दर्शन तथा मानव एवं समाज कल्याण के विचारों के कारण ही उनको साहित्य और समाज में पूजनीय माना जाता है । मार्क्स, लेनिन आदि के क्रांतिकारी विचार-पक्ष का ही परिणाम है कि पूँजीवादी सभ्यता को अपने घूँटने टेकने पर मजबूर होना पड़ा था । इस तरह महात्मा गांधी के प्रभावी विचारों ने ही देश में गुलामी वृत्ति एवं मानसिकता के विरूद्ध एक क्रांतिकारी लहर उत्पन्न करी दी थी । अरविंद, रूसो, गाँधीजी, विवेकानन्द, पांडुरंगशास्त्री आठवले, ओशो आदि के प्रभावशाली विचार-पक्ष ने ही परिवर्तन की लहर उत्पन्न कर मानवीय जीवन को एक नया दृष्टिकोण, नया मार्ग दिखलाया था । आखिरकार व्यक्ति की महानता एवं निम्नता की परख उनके विचारों से ही तो की जाती है । विचार-पक्ष यहाँ महत्वपूर्ण है जो रचनाकार को महानता या निम्नता की कोटि में रखता है । रचनाकार समाजोपयोगी, जनोपयोगी, और जीवोपयोगी अपने विचारों को भावमय बनाकर कविता, निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक या अन्य साहित्यिक विधाओं के माध्यम से व्यक्त करता है, यही उसका और उसकी रचना का विचार-पक्ष है ।

समाज में अलग-अलग विचारों और मतों का प्रसार-प्रचार होता है और धीरे-धीरे उसमें से प्रभावी एवं क्रांतिकारी विचार प्रभावी रूप में समाज के सामने साहित्य के माध्यम से आते रहते है । उस प्रभावी

विचार को उस रचनाकार के बाद आगे ले जाने के लिए उसके समर्थक ऐसे सैंकडो साहित्यकार या विचारवाहक उत्पन्न हो जाते है, उसका एक आंदोलन चलता है और वह धीरे-धीरे विचार-धारा बन जाता है । जैसे मार्कस - लेनिन के विचार को प्रगतिवादी विचारधारा के रूप में हम देख सकते हैं, वैसे ही गांधीवादी विचारधारा, राष्ट्रवादी विचारधारा सांस्कृतिक विचार धारा, समाजवादी विचारधारा आदि इस विचारधारा के मूल में रचनाकार और रचना का विचार-पक्ष होता है ।

विचार मस्तिष्क की, मानव मन की एक परिवर्तन एवं सृजनशील प्रक्रिया है, जो रचनाकार की रचना के विचार-पक्ष का एक अंग बन जाती है, विचार अंतर्निहित होते हैं । नरेश चन्द्रकर का मत है कि - ''विचार मनुष्य की चेतना से संबंधित गुणधर्म होने के नाते रचना प्रक्रिया में अनिवार्य व ठोस भुमिका के साथ हर स्तर पर प्रकट रूप में और कभी अन्त: सलिला सरस्वती बनकर अंतर्निहित होते हैं ।''[१०] कभी भी विचार, भाव, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि एवं राग के बीच प्रतिद्वंद्व या विरोध नही हैं इस संबंध में नरेश चन्द्रकरजी का मत है कि - ''विचार और भाव, हृदय और मस्तिष्क, बुद्धि और राग के बीच प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति की भ्रामक कल्पना कर ली गई है ।''[११] कोई भी रचना चाहे वह काव्य हो या गद्यमय उसमें विचार प्रभावी रूप में प्रस्तुत होते है । कविताओं में विचारों को प्रभावी रूप में प्रतिबिंबित किया जाता रहा है । मैथिली के वरिष्ठ आलोचक कुलानन्द मिश्रजी का

इस संबंध में मत है कि - ''कविता जब कभी जीवन के समीप होती है, उसकी प्रकृति एक भाव से अधिक विचारक की ही जाती है । संघर्ष की अनिवार्यता की अनुभूति के साथ पैदा होने वाली कविता विचार प्रधान होती है ।[१२] ऐसी कविता में विचारो की भूमिका प्रमुख होती है।

विचार को परिभाषित करके उनको एक स्वरूप में बांधना कठिन है । क्योंकि वह एक आंतरिक तत्त्व है, आंतरिक गुणधर्म है । इस संबंध में नरेश चन्द्रकर जी का मत है कि - ''विचार मनुष्य की चेतना से संबंधित एक गुणधर्म है । विचार को परिभाषित करना कठिन है, किन्तु इसका वर्णन किया जा सकता है । भौतिक और इन्द्रियों द्वारा बोधगम्य जगत एक मात्र वास्तविकता होने के नाते विचार की क्रिया कितनी भी अतीन्द्रिय क्यों न प्रतीत होती हो मानव शरीर के ही एक भौतिक अवयव, मस्तिष्क की उपज है । विचार की क्रिया का निर्धारण एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य के श्रम से संबद्ध है ।''[१३]

विचार की परिभाषा नहीं दी जा सकती, उसकी प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित किया जा सकता है जैसे -

- विचारतत्त्व परीक्षा है ।
- चुनाव, विज्ञता, अभियोग आदि का निर्णय विचार है ।
- विचार किसी वस्तु या विषय के संबंध में निर्धारित किया गया लक्ष्य है ।
- यह वस्तु विषय के संदर्भ में व्यक्ति के उपागम में लक्षित होता है ।

- विचार में अनुभव और व्यापार आते हैं, जिनका व्यक्ति को पूर्ण ज्ञान है ।
- व्यक्ति का विचार-पक्ष उसके सामान्य व्यवहार में व्यक्त होता है ।
- विचार तत्त्व निर्णय से संबंध रखता है ।
- विचार विषय या तत्त्व के संबंध में लिया गया निर्णय है ।
- विचार का प्रभाव व्यक्ति के अनुभव वैचित्र्य से प्रमाणित होता है ।
- विषय या तत्त्व के साथ व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से विचार की अविछिन्न एकता बनी रहती है ।
- विचार की अविछिन्न व गतिशील परिवर्तनशीलता, वस्तु या विषय के मानसिक साहचर्य से संभव है ।
- व्यक्ति की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं में साहचर्य के द्वारा वस्तु या विषय से, व्यक्ति का इतना घन्निष्ठ संबंध हो जाता है कि वे मिलकर एक ही विचार का अंग बन जाती है ।
- तनावपूर्ण मानसिक संघर्ष, अत्यधिक दमन और भावात्मक आघातों से वस्तु-तत्त्व के साथ व्यक्ति के मानसिक साहचर्य नष्ट हो जाते हैं और विचार भी बिखरे-बिखरे से हो जाते हैं और व्यक्ति का व्यक्तित्व खंडित हो जाता है ।
- विचार से वस्तु-तत्व के साहचर्य के नष्ट होने की अनेक मात्राएं हो सकती है ।

विचार पक्ष मूलतः रचना के अंतर्गत आती हुई मूल धारा से जुड़ा हुआ है । इसे हम अन्तर्वस्तु भी कह सकते हैं । इस अन्तर्वस्तु का प्रणयन मूलतः अनुभूतिपरक एवं अनुभूतिजन्य होता है । वह अनुभूति रचनात्मक हो तो नवसर्जन हो सकता है । नवीन सृजन में अनुभूति महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है । नरेश चन्द्रकर जी अनुभूति के संबंध में लिखते है कि - 'अनुभूति' शब्द की मनोविज्ञान और साहित्य व कला के क्षेत्र में अलग-अलग ढंग से व्याख्या की गई है । इसे चेतना या ''कॉन्शियसनेस'', अनुभव या ''फिलिंग'' के अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है । मनोविज्ञान में अनुभूति को अनुभव अथवा मानस - अनुभव अथवा ''मेन्टल एक्सपीरियन्स'' के रूप में स्वीकार किया गया है ।''[१४] यही अनुभव विचार-पक्ष का और यही विचार-पक्ष रचना का बीज बन जाते है । रचनाकार को अभिप्रेरणा संसार से मिलती है । साहित्यकार या रचनाकार को मिलने वाली प्रेरणा का यह तत्त्व उन्हें सृजनशीलता तक ले जाता है और यहाँ से सृजनयात्रा का प्रारंभ होता है । यह प्रेरणा मूलवृत्तिजन्य, भावात्मक एव मनोवैज्ञानिक हो सकती है । इस संबंध में नरेश चन्द्रकर लिखते हैं कि - ''विषय के मूलवृत्तिजन्य व्यवहार मनुष्य को पशु के बराबर खड़ा करते हैं वही दूसरी ओर उस विषय के रचनात्मक भावाभिप्रेरण में मानवीय सरोकारों का संचार होता है । मानवीय व्यवहार में भावबोध और भावाभिप्रेरण की आधारभूत भूमिका रहती है ।''[१५]

रचनाकार को जब प्रेरणा मिलती है तब वह सही तरीके से उस रचनाप्रक्रिया के संसार में पहुँच जाता है जो उसका ध्येय है, रचनाकार

प्रेरणा के बल पर ही रचना की वास्तविक भूमि पर पहुँच सकता है । अभिप्रेरण अलग-अलग प्रकार का हो सकता है इसी अभिप्रेरण के अंतर्गत रचनाकार भावों या विचारों से रचनाप्रक्रिया में प्रविष्ट होता है तो उनकी रचित वह रचना यथार्थ का धरातल प्राप्त कर लेती है । नरेश चन्द्रकर लिखते हैं कि - ''रचना में अभिप्रेरण की प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकार की होना संभव है । किसी विषय से अभिप्रेरित होकर रचनाकार यदि आंतरिक वृत्तियों, भावों एवं विचारों से विवश होकर रचना प्रक्रिया में प्रवेश करता है तब तो अभिप्रेरण स्पष्ट व वास्तविक रूप में प्रस्तुत होते हैं और रचनाकार की इसी लेखकीय ईमानदारी के कारण कृति का सृजन भी भावपूर्ण व प्रभावकारी हो उठता है ।''[१६] हम जानते ही हैं कि व्यक्ति के हर क्रियाकलाप एवं कार्य के मूल में विचारों की भूमिका महत्वपूर्ण है । विचार को कभी रचना से पृथक करके नहीं रखा जा सकता या उसकी हम उपेक्षा भी नहीं कर सकते । बिना विचार रचना में सृजनशीलता नही आ सकती । स्पष्टत: विचार रचना निर्माण में महत्वपूर्ण है इस लिए किसी भी साहित्यिक रचना के विचार-पक्ष की भी भूमिका उस रचना में महत्वपूर्ण होती है । इस लिए हम विचार पक्ष की उपेक्षा नहीं कर सकते । नरेश चन्द्रकर लिखते है कि ''रचना के सृजन के संबंध मेंभी विचार अपनी भूमिका निभाते हैं । रचना का सृजन विषय के बोध, अभिप्रेरण और अनुभूति के आधार पर होना संभव नहीं है, उनमें रचनाकार का विचार भी सन्निहित होता है । विचार मनुष्य की चेतना का गुणधर्म होने के नाते इसे रचना प्रक्रिया से निरपेक्ष नहीं रखा जा सकता है । वस्तु-विषय के संदर्भ में चूंकि

व्यक्ति के आचरण में विचार के प्रभाव लक्षित होते हैं अतः इनमें वे अनुभव और व्यापार आते हैं, जिनका व्यक्ति को पूर्ण ज्ञान है । व्यक्ति का विचार-पक्ष जब उसके सामान्य व्यवहार में व्यक्त होता है, तो साहित्य से इसे अलग नहीं रखा जा सकता है । मनुष्य का जीवन व्यवहार ही विचार-प्रदत्त है, चाहे वह निष्कष्टतम व्यवहार हो अथवा सुसभ्य आदर्श व्यवहार हो ।"[१९]

साहित्यसृजन जितना भी होता है वह साहित्यकार के अंतरबाह्य अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होता है । इन्ही अनुभूतियों को वैचारिक एवं रागात्मक रूप मिलता है । कविता को ले लिजिए कविता में अनुभूति जन्य भाव महत्वपूर्ण होते हैं अनुभूति के साथ जिस कविता का प्रादुर्भाव होता है वह विचार-प्रधान और रागात्मक अधिक बन जाती है । रचना में भावों को अधिक महत्त्व देना और उसमें समाहित विचारों को नगण्य समझना अतार्किक एवं अवैज्ञानिक है । क्योंकि कविता के लिए जितने भाव आवश्यक हैं उतने ही विचार भी, आवश्यक है । इस संबंध में नरेश चन्द्रकर का मत है कि -"रचना में भाव को अधिक महत्व देना, विचार को गौण समझना और इन दोनों तत्त्वों को परस्पर विरोधी मानना रचना संसार के बाहरी आग्रह है । इस आग्रह का भी वैचारिक आधार है । रचना प्रक्रिया की दृष्टि से रचना को विचारहीन मानने का पूर्वाग्रह रखना इन्द्रियबोध और मनुष्य की चेतना के निर्माण, संबंधी वैज्ञानिक तथ्यों को विकृत कर डालना है । हमेशा कविता को हृदय से जोड़कर रखना और विचारों से उसकी शत्रुता को मानना रचना के सृजन संबंधी इतनी मनगढ़न्त व्याख्या है जितनी कि

बूनो और गेलिलियो द्वारा दी गई इस वैज्ञानिक मान्यता को नहीं मानना है कि सूर्य सौरमण्डल का केन्द्र है और पृथ्वी उसके चारों ओर धूमती है ।''[१८] किसी विषय, घटना, स्थिति, वस्तु को देखकर किस तरह का विषयबोध तथा अनुभूति होगी, कहना कठिन है किन्तु विचार के साथ इतनी आकस्मिकता नहीं जुड़ी हुई है । यह एक सतत, जागरूक, बौद्धिक अध्ययन - प्रक्रिया तथा सामाजिक व्यवहारों के मानसिक साहचर्य से प्राप्त होनेवाली प्रक्रिया है । विचार-ग्रहण की निरंतर विकासमान गतिशील प्रक्रिया मस्तिष्क में बनी रह सकती है । विषय की किसी भी रचनात्मक अनुभूति को विचारों के साहचर्य से रचना का रूप दिया जा सकता है । रचना का संभावित रूप, उसको सर्वग्राह्यता का अथवा सामान्यीकृत रूप देना विचारों पर निर्भर है । कमजोर, अधूरे अथवा रूग्ण विचारों के माध्यम से किसी विषय की रचनात्मक अनुभूति को ऐसी रचना के रूप में नहीं ढाला जा सकता जो समाज की कृति बन सके ।

रचनाकार अपनी रचना में अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर और अनुभूत होकर उनके विचार अपनी रचना में ढालता है । अपने क्षेत्र की समस्याओं को रचना में स्थान देकर उसको वैचारिक बल प्रदान करता है । वह अपने प्रभावी विचार रचना में उस समस्याओं के उपव्य के संबंध में डालता है । इस तरह विचार उसको यहाँ पर मददगार साबित होते है । उसकी रचना में छिपा हुआ यह विचार-पक्ष किसी न किसी व्यक्ति को, समाज को, पाठक को वैचारिक बल प्रदान करता है और उसमें से ही पाठक को जीवन संदेश मिलता

है । विचारों की भूमिका के संबंध में नरेश चन्द्रकर लिखते है कि - "रचना में विचारों की भूमिका इस तरह दोहरी हो जाती है । एक ओर अपने स्वयं जीवन को समझना, परिष्कृत करना तथा स्वयं को आसन्न चुनौतियों, समस्याओं के प्रति तैयार करना तथा दूसरी ओर यही कार्य समाज के अनेकानेक लोगों के लिए करने की इच्छा से भर उठना भी विचार की भूमिका है ।"[१९]

व्यक्ति का ज्ञान, उसकी चयन करने की क्षमता अर्थात निर्णय शक्ति, और कार्यकुशलता आदि सभी विचार की शक्ति से ही संभव है । व्यक्ति के पास सब कुछ है, आवश्यकता है प्रभावी विचारों की प्रभावी विचारधारा की जिसके सहारे वह अपने जीवन के निर्णय स्वतंत्रता से लेकर सुखी जीवन-चयन कर सके । नरेश चन्द्रकर मानते हैं कि - "चयन, विज्ञता और अभियोग आदि निर्णय भी विचार से ही संभव हो पाते हैं ।"[२०] वस्तु विषय के संदर्भ विचार व्यक्ति के उपागम में लक्षित होते हैं । रचनाकार अनुभूति को रचनात्मक बनाने के क्रम में सामाजिक दृष्टि तथा अपने अध्ययन से अर्जित विचार, जीवन मूल्य तथा आदर्श इत्यादि का ध्यान रखता है, इसके उपरान्त भी विचार रचना कार के व्यक्तितत्व के चेतन व अवचेतन मन की रचना होते हैं । स्पष्टतः -

- विचार-पक्ष साहित्य का अन्तर्निहित एक महत्वपूर्ण भाग है ।
- विचार-पक्ष किसी भी रचना का प्राणतत्त्व है ।
- विचार-पक्ष से तात्पर्य रचनाकार के विचार उसकी रचना में व्यक्त मुख्य चिंतन हैं ।

- विचार-पक्ष और विचार-धारा में सूक्ष्म अंतर होने के बावजूद भी साम्य है ।
- विचार-पक्ष रचना का स्थिर एवं सूक्ष्म भाग है जब कि विचार-धारा परिवर्तनशील और प्रत्यक्ष भाग है ।
- विचारों में से ही विचार-पक्ष की निर्मिति होती है ।
- रचनाकार की रचना में व्यक्ति उनके विचार-पक्ष को जानने का मतलब है उस रचना में व्यक्त रचनाकार के मंतव्य, चिंतन, विचार-धारा को जानना ।
- रचना के विचार-पक्ष से तात्पर्य है उस रचना में व्यक्त साहित्यकार का कथ्य शिल्प ।
- विचार-पक्ष में रचनाकार का व्यक्तितत्व भी सूक्ष्म रूप से दिखाई देता है ।
- विचार-पक्ष रचनाकार की चिंतन-धारा को प्रदर्शित करता है ।
- विचार-पक्ष रचनाकार के विचारों, मान्यताओं का भाग है ।
- विचार-पक्ष से तात्पर्य है रचना का आंतरिक-पक्ष अर्थात भाव पक्ष ।
- विचार-पक्ष से तात्पर्य है रचना का अनुभूति-पक्ष जिससे प्रेरित और प्रभावी होकर रचनाकार अपनी मूक वाणी को विचार एवं भाव के रूप में अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है ।
- विचार-पक्ष में रचना में व्यक्त समस्याओं, चिंतनधाराओं का उपाय निहित होता है ।

- ❑ विचार-पक्ष साहित्यकार के वैचारिक व्यक्तितत्व का परिचालक होता है ।
- ❑ विचार-पक्ष में सम-सामयिकता का पुट एवं प्रतिबिंब दिखाई देता है ।
- ❑ विचार-पक्ष रचना का विधायक, विकासात्मक एवं परिवर्तनशील आंतरिक चिंतन एवं वैचारिक पक्ष है ।
- ❑ विचार-पक्ष रचनाकार की वाणी की अभिव्यक्ति है ।
- ❑ भावनाओं एवं अनुभूतियों का वृत्त विचार-पक्ष है ।
- ❑ विचार-पक्ष से ही रचनाकार के अनुभूत सत्य को सच्ची अभिव्यक्ति मिलती है ।
- ❑ विचार-पक्ष वास्तविकता, यथार्थता और वैज्ञानिकता में विश्वास रखता है ।
- ❑ विचार-पक्ष रचना की आत्मा है ।
- ❑ विचार-पक्ष को कल्पना, अवास्तविकता और अयथार्थता से कोई सरोकार नहीं है ।
- ❑ विचार-पक्ष रचना का बौद्धिकतायुक्त आन्तरिक भाग है ।
- ❑ विचार-पक्ष में रचना में व्यक्त संसार के सभी भाग समाविष्ट हो सकते है ।
- ❑ विचार-पक्ष में रचनाकार के सद्विचारों का प्रतिबिंब होता है ।
- ❑ विचार-पक्ष को वायवीय जगत एवं खोखली बातों से कोई सरोकार नहीं है ।

- विचार-पक्ष हमेशा तथ्यात्मक और वास्तविक होता है ।
- कलापक्ष यदि रचना का शरीर है तो विचार-पक्ष रचना का हृदय है । कलापक्ष यदि शरीर है तो विचार-पक्ष आत्मा एवं मन है ।
- विचार-पक्ष का संबंध मन, आत्मा, बुद्धि और हृदय से है तो कला-पक्ष का संबंध केवल सशरीर और बाहरी कलेवर से है ।
- 'रामचरितमानस' में व्यक्त समाजजीवन, राजकीय क्षेत्र, सांस्कृतिक क्षेत्र, अध्यात्मिक क्षेत्र एवं धार्मिक क्षेत्र आदि के संबंध में और समसामयिकता के संदर्भ में अभिव्यक्त रूप तुलसी का चिन्तन ए वं विचार ही विचार-पक्ष हैं ।
- इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों एवं कथासाहित्य में व्यक्त सामाजिक आर्थिक, नारी संबंधी, अंध विश्वास की, राजकीय, भ्रष्टाचार की, अनमेल विवाह, आदि के संबंध में व्यक्त समस्याओं का चित्रण और उस संबंध में उन रचनाओं में व्यक्त प्रेमचन्दजी के विचार ही उन रचनाओं का विचार-पक्ष कहा जा सकता हैं ।

इस प्रकार विचार-पक्ष रचना का एक आंतरिक भाग है, उसको हम भावपक्ष, अनुभूति पक्ष भी कह सकते हैं । संक्षेप में रचनाकार ने अपनी रचना में समाज के बारे में, शिक्षा के बारे में, संस्कृति धर्म, अध्यात्म के बारे में, प्रेम-अहिंसा जैसे सदगुणों के बारे में, अर्थ, काम एवं मोक्ष के बारे में नारी समाज, देश, प्रगतिशीलता, विकास आदि सभी के बारे में कौन-सा चिंतन अपनी रचना में व्यक्त किया है ? कौन-कौन से किस प्रकार के विचार उनकी रचना में व्यक्त हुए हैं ?

उनकी विचार धारा क्या है, उनके विचार और चिंतन क्या है ? उसको देखना, अध्ययन करना ही विचार-पक्ष को देखता एवं अध्ययन करना है ।

१.२.४ विचार-पक्ष और विचारधारा :

संसार का कोई भी साहित्य कहीं न कहीं किसी न किसी विचार-धारा से प्रभावित होता है । समसामयिक विचारधाराओं का प्रभाव उस समय के साहित्य पर अवश्य पड़ता है । विचार - पक्ष विचार धारा का ही एक भाग है । विचार-पक्ष और विचारधारा में तात्विक अंतर नहीं है, क्योंकि साहित्य में व्यक्त विचार ही आगे जाकर विचारधारा का रूप ग्रहण करे लेते है । कोई भी साहित्यकार अपनी रचनाओं में अपने विचार व्यक्त कर सकता है । उसमें व्यक्तिगत जीवन और बाह्य जीवन के संबंध में, सामाजिकता, सांस्कृतिकता, धार्मिकता, सर्जनैतिकता आदि के संबंध में उसके विचार कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं के माध्यम से व्यक्त होते हैं । एक साहित्यकार जिस विचार को अपनी रचना में प्रकाशित करता है, वह विचार आगे जाकर एक विचारधारा का रूप धारण कर लेता है । उदाहरण के रूप में समाज में व्यक्त कूरीतियों और अव्यवस्था को देखकर प्रेमचन्द का मन दु:खी हो उठा और वह भावनाएँ उनके साहित्य में कहानी एवं उपन्यास के माध्यम से चित्रित हुई । वे मार्क्स एवं लेनिन की साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हुए थे । समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे । इससे पहले मार्क्स ने पूँजीवादी साम्राज्य के अत्याचारों को देख उनके विरूद्ध एक मुहीम का आरम्भ किया और वे मजदूरों, दलितों एवं किसानों के मसीहा बनकर समाज के सामने आए । उसको राजकीय

बल मिला और दुनिया में उनके विचारों को अपनाया जाने लगा । विश्वसाहित्य भी इससे प्रभावित हुआ और रशीयन, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीस आदि भाषाओं के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में उनके विचारो को स्थान दिया । वहाँ से भारत में वही विचार प्रगतिवाद के रूप में आए और प्रगतिशील चेतना से युक्त साहित्य का निर्माण होने लगा और उसको व्यापक जन समर्थन भी मिलने लगा । इस प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित होकर सन् १९३५ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और जिसके अध्यक्ष बने प्रेमचन्द । प्रेमचन्द ने इन प्रगतिशील विचारो को अपने साहित्य में स्थान दिया और आगे जाकर अनेक साहित्यकार प्रेमचन्द के अनुगामी बने और इस प्रकार प्रगतिवादी विचारधारा का युग प्रारम्भ हुआ । यह विचार धारा मूलतः मार्क्स के विचारों का परिणाम है जो आगे जाकर एक विचारधारा बन गई । इस प्रकार पहले किसी विचारक या चिन्तक द्वारा प्रभावी विचारों को प्रस्थापित किया जाता है और बाद में उस पर चिन्तन, मनन एवं मंथन होता है और व्यापक जनसमर्थन के बाद जब साहित्यकारों एवं विचारकों एवं चिंतकों का बड़ा समुदाय इन्हें ग्रहण करके अपनी रचनाओं के माध्यम से उसी राह पर चलता है तब एक वह विचारधारा बन जाती है ।

इस प्रकार विचार-पक्ष व्यक्ति के विचारों में निहित है और वही विचार विचार-पक्ष का रूप धारण करके आगे जाकर, एक प्रभावशाली विचारधारा में परिवर्तित होकर समाज एवं साहित्य का मार्गदर्शन करते हैं । छायावादी विचारधारा, प्रयोगवादी विचारधारा, नई कविता की

विचारधारा एवं समसामयिक विचारधारा पूर्व में उत्पन्न प्रभावी विचारों का ही परिणाम है, साहित्यकारों के विचार पक्ष का ही परिणाम है । अत: विचार-पक्ष एवं विचार धारा को पृथक न मानकर एक सिक्के के दो पहलु मानकर चले तो उसमें कोई गलती नहीं होगी ।

१.२.५ विभिन्न विद्वानों के मत :

अनेक चिन्तको एवं विचारकों ने और समीक्षकों ने विचारों को महत्वपूर्ण माना है और आवश्यक भी माना है । यहाँ पर विचार-पक्ष के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत क्या है ? उसको देखने का हम प्रयत्न करेंगे ।

(१) कार्ल मार्क्स :

कार्ल मार्क्स साम्यवादी विचारधारा के प्रेणता और विचारक थे । वे मानते थे कि कोई भी साहित्य विचारधारा का अंग होता है । संसार की किसी भी वस्तु एवं व्यक्ति को वैचारिक स्तर पर देखा और परखा जाना चाहिए ।

मार्क्स मानते है कि कला का संबंध विचारो के साथ है । विचारो की व्यंजना भाषा के माध्यम से होती है । विचारधारा मात्र विचार नहीं है अपितु भाव और इन्द्रियबोध भी है ।

(२) डॉ. रामविलास शर्मा :

विचारधारा विचार का ही एक अंग है । विचारों में से विचारधारा का जन्म होता है अत: साहित्यकार की रचना में व्यक्त विचार-पक्ष महत्वपूर्ण है ।

(३) डॉ. अरूणप्रकाश मिश्र :

मिश्र जी विचारधारा के साथ-साथ भावों और सौंदर्यबोध को भी महत्वपूर्ण मानते हैं और विचारों को साहित्य के लिए अनिवार्य मानते हैं । वे लिखते हैं कि - "विचारधारा चेतना के समस्त स्वरूपों से सम्बन्ध रखती है । यह एक संपूर्ण चिन्तन-प्रक्रिया है, जिसमें हम मानव के बारे में सोचते हैं और चूँकि मानव प्रकृति से जुड़ा हुआ है इस लिए प्रकृति के बारे में सोचते हैं । कहने का तात्पर्य सारी विचारधाराओं के मूल में मानव है और चूँकि मानव प्रकृति का एक अंग है, अतः मानव पर चिन्तन करते समय हमें प्रकृति के सभी अंगो पर सोचना पड़ता है । क्योंकि कहीं-न-कहीं वे सब मानव से सम्बन्धित हैं । इसी लिए, विचार के साथ-साथ भाव बोध और सौन्दर्यबोध भी विचारधारा का अविभाज्य अंग है ।"[२१]

(४) अल्तूसेर :

"विचारधारा के सामान्य ढाँचे में कला की एक विशेषता होती है । कला विचारधारा से ही उत्पन्न होती है । उसमें वह स्नान करती है और उसी में स्वयं को अलग भी कर लेती है और अन्त में इसी की ओर संकेत भी करती है ।"[२२]

वे आगे ऐसा भी मानते है कि साहित्य या कला विचारधारा से जन्म लेती है । विचारधारा लेखक को सृजन के लिए प्रेरित करती है । सृजन प्रक्रिया के दौरान, लेखक विचारधारा से

प्रभावित रहता है ।साहित्य विचार धारा से सम्बन्धित है अतः रचना के विचार-पक्ष को अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

इस प्रकार विचार या विचार-पक्ष विचारधारा का ही मूल अंग है और रचना का विचार-पक्ष इस लिए महत्वपूर्ण है । डॉ. अरूण प्रकाश जी कहते है कि ''विचारधारा से तात्पर्य चेतना के सभी स्वप्नों से लिया जाता है ।''[२३] 'विचारधारा' शब्द से मार्क्स या एंगेल्स का तातर्य कोरे, बौद्धिक विचार से नहीं रहा है । उनके अनेक ऐसे कथन हैं कि जहाँ उन्होंने इन्द्रिय बोध और भावों के सानिध्य में विचार के वस्तुगत अस्तित्व को माना है । साहित्य और कला के सन्दर्भ में मार्क्स के लिए 'विचारधारा' शब्द अपने सतही अर्थ बोध से कहीं अधिक दोनों की ही स्थिति है । ऐसी स्थिति में मार्क्स द्वारा साहित्य या कला को विचारधारा का ही रूप मानना संगत है, उनका वास्तविक अभिप्राय यही हैं कि साहित्य और कला के अन्तर्गत इन्द्रिय-बोध, भाव और विचार, तीनों की स्थिति रहती है । मार्क्स मूलतः विचार या विचारधारा को विषय, सन्देश कथ्य या अर्थ के रूप में मानते है, और यही रचना की अन्तर्वस्तु हैं । अन्तर्वस्तु अर्थात् विषय, संदेश, कथ्य, और अर्थ है । और वही विचार-पक्ष भी है ।

१.३ साहित्य और विचार-पक्ष :

साहित्य और विचार-पक्ष दोनों में से किसी एक की गैरहाज़िरी में उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता । 'सहितस्य भावः साहित्य' साहित्य का उद्देश्य

हैं समाज का हित करना, जन हित या लोक कल्याण । साहित्य में व्यक्त विधायक एवं लोकहित संभव है क्योंकि साहित्यकार समाज में चल रहे अन्याय एवं अत्याचार को देख उसके विरूद्ध तेजस्वी विचारों के आलोक में अपनी साहित्यकृति में अभिव्यक्ति करता है और उसकी उस कृति के वैचारिक वैभव के फल स्वरूप ही समाज में व्यक्त समस्याओं के प्रति चर्चा छिड़ जाती है और उन समस्याओं के विरूद्ध और लोकहित में जनता में एक जनमत तैयार होता है और इस तरह सरकार को इसके लिए कार्यवाही करने पर बाध्य होना पडता है । आखिरकार साहित्य समाज का दर्पण है और मानव-मन की अभिव्यक्ति है । ''जिन बातों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव और मनुष्य के जीवन पर पड़ता है, उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है ।''[२४] इसी कारण साहित्य में व्यक्त विचारधारा समाज के लिए आवश्यक एवं उपयोगी है ।

किसी न किसी साहित्यिक रचना में साहित्यकार की विचारधारा के दर्शन होते हैं । साहित्यकार अपनी विचार प्रक्रिया को समाज में अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्थापित भी करता है । ऐसे अलग-अलग मत वाले विचार अलग अलग साहित्य द्वारा समाज में प्रस्थापित होते हैं तब उस पर भी बहस छिड़ जाती है और इस संबंध में जन समुदाय में आपस में विचारों का आदान-प्रदान चलता हैं । विषमता की स्थितियों को बदलने के लिए, परिवर्तित रूप उसको प्रदान करने के लिए कौन-से विचारों को, क़िस विचारधारा को अपनाया जाए ? इस संबंध में भी चर्चा चलती है और साहित्य के इसी विचार पक्ष की मदद से उस विषम परिस्थितियों को बदलने का प्रयत्न भी होता है, इन विचारों का प्रभाव जनमानस पर अधिक पडता है । डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल लिखते है कि - ''जिस समय हमारे मस्तिष्क में एक साथ दो या कई विरोधी विचार आपस

में संघर्ष करने लगते हैं, उस समय हमारी मन:स्थिति अंतर्द्वन्द्व की संज्ञा पाती है । अंतर्द्वन्द्व मानव-मन, की स्वाभाविक स्थिति का परिचायक है । जब हम विषम परिस्थितियों में पड़ ज़ाते हैं, तब स्वभावत: हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचार उठने लगते हैं और हम आसन्न विषमता को सुलझाने के लिए विभिन्न रूपों में सोचते हैं ।[२५]

भक्तिकाल में अनेक भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनजागृति का कार्य किया । तुलसीदास द्वारा 'उत्तरकाण्ड-रामचरित मानस' में जिस कलियुग का वर्णन किया गया है वह हु-ब-हू आधुनिक विषमतायुक्त समाज का ही वर्णन है । उन्होंने 'मानस' के माध्यम से आदर्शसमाज, आदर्श परिवार, आदर्श मनुष्य, आदर्श भाई, आदर्श राजा, आदर्श समाजजीवन, आदर्श शिक्षण व्यवस्था, आदर्श राज्य व्यवस्था आदि के संबंध में अनेक विचार समाज के समक्ष रखे और उसके प्रभाव के कारण ही 'मानस' इतना लोकप्रिय रहा । उसका समृद्ध भावपक्ष या विचार-पक्ष के अंतर्गत निहित महान विचारधारा से ही जनसमाज प्रभावित हुआ और समाज में परिवर्तन आया रामकथा मंगलमय एवं लोककल्याणकारी हैं, ऐसा स्वयं तुलसी 'मानस' के बालकाण्ड में कहते हैं -

> ''मंगल करनि कलिमल हरनि
> तुलसी कथा रघुनाथ की '' ।। १ ।। [२६]

तुलसी की तरह कबीर की विचारधारा ने भी उस समय समाज को प्रभावित किया था। तुलसी और कबीर के साहित्य के अंतर्गत व्यक्त महान विचार आज भी उतने ही प्रस्तुत हैं जितने तब थे । कबीर ने हिन्दु और इस्लाम धर्म में व्याप्त बाह्याचार के पाखंड को देख उसके विरूद्ध एक आंदोलन चलाया

और समाज को परिवर्तनकारी विचार दिए । उनके 'साखी', 'शब्द' और 'रमैनी' में व्यक्त विचार आज भी समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं । बाह्याचार, पाखंड और अंधविश्वास के खिलाफ, जो कि हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों में था कबीर के विचार कड़े और कठोर रहे हैं । आ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी उस संबंध में लिखते हैं कि - ''वेदपाठ, तीर्थ स्थान, व्रतोद्यापन, छुआछूत, अवतारोपासना, कर्मकांड इत्यादि सबके विरूद्ध कबीरदास ने लिखा है ।'' [२७] हिन्दू धर्म के अंदर छिपे बाह्याडंबर, पाखण्ड और अंधानुकरण के संबंध में खुद कबीर के क्रांतिकारी विचार इस प्रकार थे -

''ऐसा लोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गाफिलाई ।
महादेव को पंथ चलावै, ऐसो बड़ महंत कहावै ।
हाट-बजार लावैं तारी कच्चे सिद्ध न माया प्यारी ।
कब दत्ते मावासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी ।
नारद कब बंदूक चलाया, व्यासदेव कब बंब बजाया ।
करहि लराई मतिकै मंदा, ई अतीत की तरकस वंदा ।
भये बिरक्त लोभ मन ठाना, सोना पीहरीलजावै वाना ।
धोरा-धोरं किन्ह बहोरा, गाँव पाय जस चतै ककोरा ।
साखी-(तिय) सुंदरि ना सोहई, सनकादिक के साथ ।
कब हुँक दाग लगवई, कारी हाँडी हाथ ।।''

'बीजक', ६९ वीं रमैनी) [२८]

इस्लाम में व्याप्त मिथ्याचार, हिंसाचार, बाह्याचार आदि को भी कबीर ने फटकारा और उन सबका भी विरोध किया हैं । जैसे -

''काजी कौन कतेब बखाने ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकै नहि जानै ।
संकित से नेह पकरि करि सुनति यह न बदूं रे भाई ।
जोर खुदाई तुरक मोहिं करता तौ आपै कटि किन जाई ।
हौं त्रो तुरक यिा करि सुन्नति और तिसौ का कहिए ।
अधर सरीरा नारि न छूटे आधा हिन्दू रहिए ।
छाँडि कतेब राम कहि काजी खून करत हौ भारी ।
पकरी टेक कबीर भगति की काजी रहे झख मारी ।।''
(कबीर ग्रंथावली, पद ५९) [२९]

बाह्याचार और आडंबर के विरूद्ध यह विचार परिवर्तन का और क्रांति का माध्यम बन गए तो कबीर के एकेश्वरवाद के विचार, हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य के विचार आज कितने प्रासंगिक है । आज के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बनी खाई को मिटाने के लिए कबीर के विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जैसे -

''हमरे राम रहीम करीमा,
कैसो अलह राम सति सोई ।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै,
और न दूजा कोई ।'' [३०]

आधुनिक काल में अंग्रेजी अमानुषी एवं मानवताहीन साम्राज्यवादी, गुलामी विचारधारा के विरूद्ध भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और समकालीन साहित्यकारों के साहित्य के विचारों ने स्वतन्त्रता आंदोलन और जनसमाज में जागृति का महत्वपूर्ण कार्य किया था तो आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास के और कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द की विचारधारा के कारण सतीप्रथा, बाल विवाह,

विधवा, नारी, अंधविश्वास, जमीदारी प्रथा, महाजनी प्रथा, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं के संबंध में जो चित्रण मिलता है और जो विचार उनके उपन्यासों में और कथा साहित्य में व्यक्त हुए हैं, उनके कारण सामाजिक जागृति एवं परिवर्तन आया ।आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों ने परिवर्तन, देशप्रेम, क्रांतिकारी विचारधारा, दलितचेतना, नारी चेतना, सामान्य जन को महत्त्व आदि विषयों के संबंध में अपने साहित्य में विचार व्यक्त किए जिसके कारण ऐसी समस्याओं एवं विचारों पर समाज का ध्यान आकृष्ट किया । आज शिक्षा और विज्ञान एवं तकनीकी के कारण सामाजिक परिवर्तन संभव हो सका है, इनमें साहित्य का बहुमूल्य योगदान है । साहित्य में व्यक्त विचार पक्ष के माध्यम से इस परिवर्तनशीलता को बल मिला और समाज उस ओर सोचने पर बाध्य हुआ ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि साहित्य और विचार पक्ष अभिन्न अंग है । साहित्य में निहित विचारों से समाज में जागृति आती है । अतः साहित्य के विचार-पक्ष का अपने-आप में बड़ा ही बहुमूल्य महत्व है । इस लिए साहित्य और उनका विचार-पक्ष एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी है ।

१.४ विचार-पक्ष की विशेषताएँ

कोई भी साहित्यक रचना का अपना एक विचार-पक्ष होता है, जिस पर पूरी रचना का आधार होता है । रचनाकार अपने इस विचारपक्ष के माधयम से संपूर्ण रचना में आदि से लेकर अंत तक छाया रहता है । उस रचना में व्याप्त समग्र विचार-पक्ष के आधार पर ही रचनाकार का दृष्टिकोण और रचनाकार एवं रचना के स्तर का पता चलता है । यहाँ तक हमने विचार-पक्ष की

अवधारणा को देखा है यहाँ तक की संपूर्ण चर्चा के उपरान्त विचारपक्ष की विशेषताएँ अर्थात् उसका परिचय संक्षिप्त मुद्दो के आधार पर हम देखेंगे । विचार–पक्ष की निम्न लिखित विशेषताएँ हो सकती है । –

(१) विचार–पक्ष अर्थात् रचना का भावपक्ष एवं भावसौंदर्य ।

(२) विचार–पक्ष को रचना की अंतर्वस्तु भी कहा जाता है, जिसमें रचना का संपूर्ण कथ्य विषयवस्तु आ जाता है ।

(३) विचार–पक्ष में रचनाकर की विचारधारा समाहित होती है ।

(४) विचार–पक्ष रचना का आधारस्तंभ है ।

(५) विचार–पक्ष गतिमान एवम् विधायक होता है ।

(६) विचार–पक्ष में समसामयिकता के भी दर्शन होते है ।

(७) विचार–पक्ष रचनाकार के वैचारिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है ।

(८) विचार–पक्ष का संबंध भाव और हृदयपक्ष से है ।

(९) विचार–पक्ष हृदय के अलावा बुद्धि एवं ज्ञान तत्त्व से भी संबंधित है ।

(१०) विचार–पक्ष एक विचार प्रक्रिया के तहत व्यक्त होता है ।

(११) विचारों और भावों का महत्तम संबंध होता है ।

(१२) विचार–पक्ष अनुभूतिजन्य और अनुभूतिपरक होता है ।

(१३) विचार–पक्ष में सौंदर्यात्मक अनुभूति को भी शामिल किया जा सकता है ।

(१४) विचार–पक्ष में वैयक्तिकता को भी स्थान मिलता है ।

(१५) विचार-पक्ष मन में उत्पन्न विधायक एवं नकारात्मक विचारों का प्रतिबिंब है जो रचना के अंतर्गत समाहित होता है ।

(१६) विचार-पक्ष आंतरिकपक्ष को उजागर करता हैं कलापक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष का उससे कोई संबंध नहीं है ।

(१७) विचार-पक्ष अर्थात रचनाका भावजगत ।

(१८) विचार-पक्ष सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक-आध्यात्मिक, राजकीय एवं साहित्यिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण को सहजता से रचना में व्यक्त करता है ।

(१९) रचनाकार के विचार, विचार-पक्ष का रूप ग्रहण करके आगे जाकर एक निश्चित विचारधारा का रूप ग्रहण कर लेते हैं ।

(२०) विचार-पक्ष और विचारधारा एक सिक्के के दो पहलू हैं ।

(२१) विचार-पक्ष रचना के माध्यम से समाजव्यवस्था का माध्यम बन जाता है ।

(२२) विचार-पक्ष में विभिन्न समस्याओं का विभिन्न वैचारिक तथ्यों एवं बिंदुओं का, समावेश होता है ।

(२३) कोई भी रचना विचार-पक्ष के बिना संभव नहीं ।

(२४) हर साहित्यिक रचना का अपना एक विचार-पक्ष होता है ।

(२५) साहित्यिक रचना के विचार-पक्ष से तात्पर्य है उस रचना का वैचारिक भाग उस रचना का तात्पर्य, उस रचना का भावपक्ष ।

(२६) विचार-पक्ष में से उत्पन्न वैचारिक बिंदु मार्गदर्शक रूप सामाजिक एवं जीवनदर्शन के संदेश के रूप को धारण करके समाज का मार्गदर्शन करते है ।

(२७) विचार-पक्ष परिवर्तशील, मार्गदर्शक, विधायक और सौंदर्यात्मक होता है ।

(२८) विचार-पक्ष क्रांतिकारिता की भावना को उजागर करने में सहायता प्रदान करता है ।

(२९) विचार-पक्ष सामुहिक भावनाओं को और व्यक्तिगत भावनाओं को सम्मिलित रूप में साथ रखकर चलता है ।

(३०) विचार-पक्ष में तत्त्वज्ञान, दर्शन, सौंदर्य, अनुभूति, दृष्टिकोण, समस्याओं का चित्रण एवं उपाय सन्निहित होता है ।

(३१) विचार-पक्ष का आधार रचनाकर की विचार प्रक्रिया, विचार धारा, विचार समूह, दृष्टिकोण, वैचारिकता और रचनाकार की मान्यता होता है ।

(३२) विभिन्न महापुरूषों के मत-मतांतर, ज्ञान, उपदेश, विचारधारा, मान्यताएँ, विचार गुण आदि से विचार-पक्ष की भूमिका एवं उसका स्वरूप निर्धारित होता है, साथ ही रचनाकार की वैयक्तिक भावनाएँ भी इसमें सहायक होती है ।

(३३) विचार-पक्ष को विभिन्न महान ग्रंथ भी अपने विचारों से गढ़ते है ।

(३४) विचार-पक्ष स्वीकारणीय और अस्वीकारणीय भी हो सकता है ।

(३५) विचार-पक्ष में आगे जाकर परिवर्तन की गुँजाइश भी रहती है ।

(३६) विचार-पक्ष जनसमुदाय और लोकमानस को स्पर्श करता है ।

(३७) विचार-पक्ष जितना गहन गंभीर एवं समृद्ध होगा रचना उतनी ही श्रेष्ठ सिद्ध होगी ।

(३८) विचार-पक्ष के अनेक अलग-अलग पहलू भी होते है ।

(३९) संसार के जितने विषय हो उतने साहित्यिक रचना के विचारपक्ष बन सकते हैं ।

(४०) विचार-पक्ष में अनेक विभिन्न विषयों का समावेश होता है ।

इस प्रकार विचार-पक्ष की उपरोक्त विशेषताएँ हैं जिसके माध्यम से विचार-पक्ष के संबंध में हमारा दृष्टिकोण साफ़ हो जाएगा, उसका परिचय समग्र रूप में हमें इन विशेषताओं के माध्यम से प्राप्त होगा । किसी भी रचना के विचार-पक्ष को जानना नितांत आवश्यक एवं अनिवार्य हैं क्योंकि उसी में ही भविष्य और वर्तमान विचारधारा के बीज समाहित हो सकते हैं जो समाज परिवर्तन में सहायक सिद्ध हो सकते हैं । इस लिए उसका महत्व एवं आवश्यकता को हम नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते ।

१.५ विचारपक्ष का महत्व

साहित्य समाज के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करता है । समाज में आने वाले परिवर्तनों के पीछे साहित्य महत्वपूर्ण कार्य करता है । समाज में घटित होने वाली घटनाओं के पीछे साहित्य कहीं न कहीं अपना प्रभाव डालता है । साहित्य की हर विधा में चाहे व कविता हो, उपन्यास हो, कथा साहित्य हो, निबंध हो या नाटक उसमें साहित्यकार के विचारों का प्रतिबिंब दिखाई देता है । अतः रचना का विचार-पक्ष महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । विचार-पक्ष का अपना एक महत्त्व साहित्य क्षेत्र में है । बिना विचार-पक्ष के रचना नहीं हो सकती । उनकी आवश्यकता जितनी साहित्य में है उतनी ही समाज के लिए भी है ।

आदिकाल से लेकर आज तक साहित्य में व्यक्त विचार संपदा समाज के लिए उपयोगी एवं आवश्यक सिद्ध होती रही है । आदिकाल में रासो साहित्य लिखा जाता था, वह युद्धो का काल था । समय-समय पर रजवाडो के बिच युद्ध होते रहते थे । एसे समय में साहित्यकारो के पास वीरकथाएँ एक माध्यम थी, इन्ही वीरगाथाओं के माध्यम से कवि अपनी विचारधारा अपनी रचनाओं के माध्यम से रखते थे । उस समय पराक्रम, पौरूष, वीरता आदि गुणो की आवश्यकता को महसूस करते हुए कवियों ने अपनी रचनाओं में क्रांतिकारी विचारों को स्थान दिया । देशप्रेम और वीरता के गुणों से संबंद्ध विचार अपनी रचनाओं में रखे । 'चंदबरदाई' ने 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से यह कार्य किया था । अन्य रासो ग्रंथो में भी ऐसी क्रांतिकारी विचारधारा का प्रतिबिंब दिखाई देता है । अत: उस समय भी रचनाएँ विचार पक्ष के ऐश्वर्य से समृद्ध थी । ऐसे समय में भी अमीर खुसरों जैसे भी कवि थे जो इस समाज की साहित्यकारों की परिपाटी से अलग हटकर, प्रेम, शांति, मानवता एवं शुद्ध मनोरंजन को अपने साहित्य में स्थान देते रहे । उस समय की साहित्य एवं समाज की आवश्यकतानुसार तत्कालीन कवियों ने समसामयिक विचार पक्ष को अपनी रचनाओं में स्थान दिया ।

मध्यकाल में यह विचार-पक्ष परिवर्तित हो गया । भारत पर विदेशीयों के आक्रमण के फलस्वरूप प्रजा त्रस्त थी और प्रजा को आश्वासन एवं संबंल की आवश्यकता थी । निरंतर युद्धग्रस्त वातारवण के कारण समाज में अशांति थी अत: ऐसे भक्त कवि समाज के सामने अपना साहित्य लेकर आए जो समाज में शांति और सौहार्द चाहते थे । समाज में मध्यकाल में अंधविश्वास, रूढिवादिता, रूप परंपराएँ, भ्रष्टाचार, अनीति, फ़रेब, हिन्दु-मुस्लिम विद्वेष,

धार्मिक विद्वेष आदि का साम्राज्य था अतः भक्त कवि समाज को इन कलंको से बचाने के लिए राम और कृष्ण के आदर्श एवं महान् चरित्रो को लेकर आए । तुलसी एवं सूर तथा जायसी ने भक्ति के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन ही नहीं किया, अपितु समाज को संबंल एवं विश्वास एवं उत्साह प्रदान किया । तुलसी के 'रामचरितमानस', सूर के 'सूरसागर', 'मीरा के पद' जायसी के 'पद्मावत्' और कबीर के पद, 'साखी, सबद, रमैनी ने समाज का मार्गदर्शन किया । इन कवियों ने श्रेष्ठ एवं उत्तम विचारों को जो समाज में मनुष्य को अपना स्थान दिला सकके और उसको जीवन पद्धति सीखा सके इस हेतु ऐसे महान और उत्कृष्ट विचार अपनी इन रचनाओं के माध्यम से रखे । उस समय की रचनाओं का विचार पक्ष समृद्ध रहा है । प्रेम, आदर्श, विश्वास, उत्साह, वैचारिक समृद्धि एवं सामर्थ्य, आदर्श समाज एवं राज्य व्यवस्था संबंधी विचारों को चरित्रो के माध्यम से रखा । कुछ कबीर जैसे ऐसे भी साहित्यकार थे जिन्होने समाज में व्याप्त और मनुष्य जीवन में व्याप्त कलुषितता और अव्यवस्था को कडी निंदा करके कड़वी वाणी में समाज को उपदेश दिया । अंधविश्वास, आडंबर और दकीयानुसी विचारों का विरोध किया समाज में समानता प्रेम, बंधुत्व की भावना प्रबल हो ऐसे विचार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को दिए । प्रेम और भक्ति के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन किया । इसलिए ही इस युग को भक्तिकाल कहा जाता है और भक्तिकालीन साहित्य को हिन्दी का समृद्ध एवं सुवर्ण युग कहा जाता है । इस युग में आध्यात्मिक एवं धार्मिक विचारधारा का प्राबल्य रहा । निर्गुणवादी एवं सगुणवादी विचारधारा के माध्यम से समाज में नई चेतना का संचार हुआ । इस समय के साहित्य का विचार पक्ष गहन एवं समृद्ध था जिसके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं

जितने तब थे । कबीर और तुलसी जैसे दीर्घदृष्टा भक्तकवियों की विचारधारा आज भी विद्यमान है ।

मध्यकाल के भक्तियुग के बाद रीतिकाल आता है । रीतिकालिन कवियों ने केवल शृंगार भाव को ही अपने साहित्य का विषय बनाया । समाज में शांति थी अत: राजदबारों में आश्रित होने के कारण शृंगार रचनाएँ अधिक लिखी गई । केशवदास, देव, घनानद, मतिराम, बिहारी, भूषण जैसे कवियों ने रीति संबंधी साहित्य लिखा । बिहारी एवं मतिराम जैसे कवियों ने नीति संबंधी उपदेशात्मक रचनाएँ लिखी जिसके अंदर छिपे नीति एवं बोध संबंधी महान विचार प्रभावशाली हैं, तो भूषण जैसे महान रचनाकार ने राष्ट्रीयता को स्थान देकर राष्ट्रीय चेतना को जगाने का कार्य किया । इस समय शृंगार के अलावा राष्ट्रीय चेतना एव नीति-रीति विषयक विचारों का साहित्य में प्राबल्य रहा ।

आधुनिककाल में साहित्य एवं समाज में आमूल परिवर्तन हुआ । जागरण काल एवं नवजागरणकाल, छायावादीयुग, प्रगतिवादीयुग प्रयोगवादी काल, नई कविता आदि कालखण्डो में साहित्यकारों ने उत्तम विचारों को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने रखा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालिन साहित्यकारों ने समाज में देशप्रेम, नीति, मानवता, अहिंसा, शांति के विचारों को अपनी रचनाओं में प्रधानता दी और हिन्दी को समृद्ध किया । महावीरप्रसाद द्विवेदी जी और उनकी शिष्य परंपरा में आते साहित्यकारों ने उपन्यास कहानी, कविता, नाटक, निबंध के माध्यम से समाज सुधारक विचार प्रदान किए। छायावादी कवियों निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी आदि ने समृद्ध विचार प्रदान किए तो प्रगतिवादी कवियों और लेखकों ने समाज में परिवर्तन एवं क्रांति की नई लहर जगाई । प्रेमचन्द के उपन्यास एवं कथा साहित्य ने

समाज में, व्याप्त अन्धानुकरण, अंध विश्वास, रूढ मान्यता एवं परंपरा मूडीवादी सभ्यता आदि का विरोध करके समाज में परिवर्तन का आह्वान किया । प्रेमचन्द की वज़ह से ही जमींदारी प्रथा, सामन्तवादी विचारधारा और दकीयानुसी विचारधारा का निर्मूलन हो सका । उसकी रचनाओं में व्यक्त जातिवाद एवं नारीशोषण विरोधी विचारों के माध्यम से ही पिछड़ी और दलित जातियों के लोगों को आज उचित स्थान मिला है । नारियों का शोषण समाप्त हो रहा है । नारी चेतना जागृत हुई है । प्रेमचंद की इस प्रगतिवादी विचारधारा से युक्त साहित्यिक रचनाओं ने समाज में नई आशा एवं चेतना का संचार किया । आधुनिक उपन्यास, निबंध, नाटक कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक विचारधारायुक्त साहित्य रचनाओं ने वर्तमान समय में नई आशा व चेतना का संचार किया । वर्तमान समय में आधुनिक उपन्यास, निबंध, नाटक एवं कथा साहित्य मनोवैज्ञानिक विचारधारा युक्त साहित्य सर्जन हो रहा है । आज के यांत्रिक, भोगवादी, नीरे वास्तववादी समय में मनुष्य अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं से त्रस्त है, जूझ रहा है तब राजेन्द्र यादव, जैनेन्द्र, अमृता प्रीतम, मालती जोशी, कमलेश्वर आदि अनेक साहित्यकार आज के आधुनिक जीवन की समस्याएँ जैसे पारिवारिक, रोजगारलक्षी, अध:पतन और मनोविज्ञान की समस्याओं से व्यक्त विचार-पक्ष वाली रचनाओं का निर्माण करके समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं । सचमुच आज का साहित्य विचार पक्ष की दृष्टि से समृद्ध साहित्य कहा जा सकता है ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हर युग में उस समय के साहित्य में व्यक्त महान विचारों ने तत्कालिन समय में मानवसमाज का पथप्रदर्शन किया है और सामाजिक परिवर्तन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इसलिए यह निर्विवाद ही है कि विचार-पक्ष का अपना एक महत्त्व है, समाज का पथप्रदर्शन

करने के लिए और समाज को नई दिशा देने के लिए रचना के विचारपक्ष का अपना एक महत्त्व है । साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन करके उसमें से हम अपनी समस्याओं को ढूँढ सकते हैं । जो व्यक्ति साहित्य का अध्येता नहीं है वह व्यक्ति वैचारिक एवं मानसिक दृष्टि से पंगु है । वह आसुरी शक्ति - का पर्याय बन जाता है । व्यक्ति के पास विचार समृद्धि होगी तो, उसको उसकी विचार समृद्धि ही मुसीबतों एवं संघर्षो में बचाएगी । अध्ययन एवं अभ्यासरत मनुष्य अपनी विचार संपदा से दिव्यता को प्राप्त कर सकता है 'श्रीमद्‌भगवद् गीता' में श्री कृष्ण ने भी कहा है कि -

"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना,
परंम पुरूषं दिव्यं याति पर्थानुचिन्तयन् ।।०८ ।।"

(अध्याय-०८, अक्षरब्रह्म योग श्रीमद् भगवद् गीता [३१]

अर्थात् अभ्यासयोग से युक्त और अन्यत्र नहीं जानेवाला चित्र से चिंतन करता (मनुष्य) परम दिव्य पुरूष ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

जो व्यक्ति समाज को अन्न, जल, वस्त्र, सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्रदान करता है वह व्यक्ति इश्वर को भी प्रिय होता है । ऐसा व्यक्ति समाज को और जनमानस को प्रिय होता है । श्रेष्ठ और उदात्त विचार जो व्यक्ति समाज को प्रदान करता है वह ईश्वर को अधिक प्रिय है । समाज में भी ऐसा व्यक्ति सम्मानीय और प्रतिष्ठायुक्त होता है । 'श्रीमद्‌भगवद् गीता' में श्री कृष्ण ने कहा है कि -

"पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति ।
तद्‌हं भकत्युपत्दृतमश्नामि प्रयमात्मनः ।। २६ ॥"

(श्रीमद् भगवद् गीता, अध्याय-९, राजविद्याराजगृह्य योग पृ. १४५) [३२]

(अर्थात्, जो मुझे, पत्र, पुष्प, फल और जल भक्ति से अर्पण करता है, वह शुद्ध चित्त वाले का मैं भक्तिपूर्ण रूप से ग्रहण करता हूँ। यहाँ 'पत्र' शब्द से तात्पर्य श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ साहित्य, उदात्त विचार आदि से है)

इस प्रकार श्रेष्ठ एवं उदात्त विचार युक्त साहित्य हर हमेश सम्मानीय एवं पूजनीय बनता है । अतः साहित्य में ऐसे ही उदात्त विचार व्यक्त होते हैं । इस लिए ऐसे विचार-पक्ष से समृद्ध साहित्य का बहुमूल्य महत्त्व है और आवश्यकता भी है अतः विचार पक्ष का महत्त्व यहाँ पर स्वयं सिद्ध ही हो जाता है । विचार-पक्ष का इसलिए महत्त्व अधिक है और आवश्यकता भी अधिक है । श्रेष्ठ और विकासात्मक उत्तम स्थान प्राप्ति का एक ही सरल और श्रेष्ठतम तरीका हो सकता है कि हम जो भी देखें, सोचे, विचारे, निर्णय करें वह सत्य के मार्ग वाला हो, जिसको सत्य का आधार हो । सच्चा दृष्टिकोण, सच्चे और श्रेष्ठ एवं उदात्त विचार, सच्ची वाणी, सच्चा और आदर्श व्यवहार सच्ची और श्रेष्ठ जीवनप्रणाली ही स्वस्थ एवं उत्साही मन एवं मस्तिष्क को जन्म दे सकती है और यही जीवन को, समाज को सुखी, समृद्ध एवं आदर्श बनाने का सही मार्ग हो सकता है । अतः श्रेष्ठ एवं उदात्त विचार ही सही अर्थों में परिवर्तन ला सकते है, विकास कर सकते हैं । भगवान बुद्ध की इस सबंध में पुष्टि देखिए - "The stages of the noble path are right view, right thought, right speech, right behaviour, right Livelihood, right effort, right mindfulness, and right concentration."[३३]

इस प्रकार साहित्य में व्यक्त उदात्त एवं श्रेष्ठ विचार समाज के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं । विचार पक्ष के माध्यम से हम इतिहास का अध्ययन कर उसकी गलतियों पर सोच सकते है और गलतियाँ न दोहराने का संकल्प

भी कर सकतें है, तो इतिहास की श्रेष्ठ बातों से मार्गदर्शन पा सकते हैं । तो वर्तमान समय की हमारी व्यवस्था के संदर्भ में सोचकर उसको श्रेष्ठता तक ले जाने का प्रयत्न कर सकते हैं । वर्तमान समय की घटित घटनाएँ और वर्तमान विचारो के ऊपर सोच कर, चिंतन करके हम गलतियों को सुधारने का ही नहीं परंतु कार्य एवं व्यवस्था को ओर भी सुदृढ बनाने की ओर अग्रसर हो सकते हैं । भविष्य की चुनौतियों के संबंध में दीर्घदृष्टात्मक रूप से सोचकर आनेवाले संघर्षो के सामने लड़ने की शक्ति प्राप्त कर सकते है । जिससे हम ओर भी श्रेष्ठ, आदर्श एवं व्यवस्थित बन सके एवं बना सके । इस लिए यह सब तभी संभव है जब साहित्य में व्यक्त विचार-पक्ष के विचार बिंदुओं का अध्ययन हो, पठन-पाठन हो, चिन्तन हो । इस लिए विचार पक्ष की आवश्यकता है, इस लिए विचार-पक्ष का एक अपना महत्त्व है । समाज में संतुलन बना रहे, समानता ए वं संतुलितता बनी रहे तो समाज में हर समय शांति ही शांति बनी रहेगी। और बिना शांति के सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य संभव नहीं और यह सब हम साहित्याध्ययन करके उसमें व्यक्त विचार पक्ष का चिंतन एवं अनुदर्शन करके ही कर सकते है । विचार पक्ष की आवश्यकता एवं महत्त्व निम्नलिखित यजुर्वेदीय श्लोक से सिद्ध हो जाएगा ।

"द्यौः शांतिरन्तरिक्षं शांतिः पृथ्वी शांति रापः शांति रोषधयः शांति।
वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शांति;
सर्वशांति, शांति देव शांतिः सामा शांतिरेधि ।।"[३४]

(अर्थात, द्युलोक अर्थात् अदृश्य आकाश से पृथ्वी पर्यंत सभी जैविक व अजैविक घटक संतुलित रहकर ही शांति की स्थिति में रह सकते है । यदि वनस्पतियाँ, देव अर्थात् संपूर्ण संसाधन ज्ञान आदि में संतुलन बना रहे तो शांति की अवस्था विद्यमान रहेगी ।)

विचार पक्ष इस लिए आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है निम्नलिखित संक्षिप्त मुद्दो के आधार पर हम इसके महत्त्व एवं आवश्यकता को देखेंगे; विचार-पक्ष की आवश्यकता एवं महत्त्व है -

- साहित्य एवं साहित्यिक रचना के मर्म को जानने के लिए ।
- साहित्य एवं साहित्यिक रचना की भाव समृद्धि को पहचानने के लिए ।
- साहित्यकार की मान्यताएँ एवं विचार जानने के लिए ।
- अपना अक्स देखने के लिए ।
- चिन्तन, मनन, चर्चा-विचारणा एवं अनुकार्य तथा अनुदर्शन के लिए ।
- समसामयिकता, भूतकाल और भविष्यकाल तीनों में सम्यक सोच एवं विचार के लिए ।
- सामाजिक परिवर्तन एवं जागृति के लिए ।
- अध्येता एवं साहित्यिक अध्येता की विचार समृद्धि बढाने के लिए ।
- विकास, प्रगति, सुख-समृद्धि एवं शांति की प्राप्ति के लिए ।
- वैचारिक एवं साहित्यिक परंपराओं को जानने के लिए एवं अध्ययन के लिए ।
- सामाजिक कलुषितता, अत्याचार, अन्याय, अंधविश्वास, आडंबर जैसे दुर्गुणों को दूर करने के लिए ।
- क्रांति एवं परिवर्तन तथा जागृति के लिए ।

वास्तव में साहित्य के अंतर्गत विचार-पक्ष की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । जो हितकर भावनाओं से जुड़ा है । विचार-पक्ष की भी देन साहित्य में सहित की भावना के साथ है । बासुदेव जी का कथन है कि - ''सहितस्य भावः साहित्यं - सहित होने के भाव को साहित्य कहते है । कहने का मतलब यह है कि ''जो हमारे भावों और विचारों को इकट्‌ठा करके या मानव जाति में एक सूत्रता उत्पन्न करके अथवा जो काव्य के शरीर स्वरूप शब्द और अर्थ को परंपरा के अनुकूल सप्राण बनाकर मानव जाति का हित करें वही साहित्य है ।''[३५] विचार पक्ष में भी इन्हीं बातों का समावेश हो ही जाता है ।

१.६ निष्कर्ष :

मनुष्य बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक अनेक उतार-चढ़ाव के बीच जीवन जीता है । जीवन में उसे उनके संघर्षो का सामना करता पड़ता है । मनुष्य के जीवन के दौरान उसे अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों से संपर्क एवं व्यवहार करना पड़ता है, तो साथ ही साथ उसे अनेक मान्यताओं, मतों, चिंतन धाराओं और अनेक विचारधाराओ से पाला पड़ता है । मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है अतः वह अपने निर्णय से पूर्व अनेकबार सोच-विचार करता है और स्वाभाविक भी है कि वह निर्णय के फलस्वरूप अपनी सफलता असफलताओं के बारे में भी सोच - विचार करें । ऐसी ही आपा-धापी में उसे यांत्रिकता और भोगवादिता का शिकार होना पड़ता है । इस लिए धीरे-धीरे मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण का शिकार होकर उन्हीं परिस्थितियों एवं परिवेश का दास बनकर रह जाता है । ऐसे आज के आधुनिक समय में मनुष्य हतोत्साह एवं निरूत्साह बन जाता है । आधुनिक यांत्रिक एवं भोगवादी जीवन प्रणाली जो कि मनोउत्पीडन का मुख्य कारण बन गई है । आज की द्रुतगति युक्त जीवन

प्रणाली एवं पद्धति का शिकार मनुष्य बनता है तब पीड़ा, संत्रास, मानसिक समस्याओं का शिकार वह बन जाता है । ऐसे समय में उसे चारों दिशाओं से हर ओर से केवल और केवल निराशा ही हाथ लगती है तब उसे अच्छे, उत्कृष्ट, उदात्त, उत्साहवर्धक, जीवन दर्शक, जीवन के मार्गदर्शक ऐसे उत्तम विचारों की, विचारों के पियुष की आवश्यकता होती है । और ऐसा विचार पियुष केवल साहित्य ही उसे प्रदान कर सकता है, क्योंकि साहित्यिक रचनाओं में अनेक ऐसे महान विचार एवं विचारधाराएँ सन्निहित होती हैं जिसका अध्ययन करके उसमें से वह अपनी समस्याओं का हल ढूँढ सकता है । इस दृष्टि से देखा जाए तो विचार-पक्ष साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाना चाहिए ।

विचार मानव-मन में उठते हैं और उन्ही विचारों पर उसकी बुद्धि विश्लेषण करती है । वहाँ वह बुद्धि के माध्यम से चिंतन और मनन करके अपने विचारों को बुद्धि की कसौटी पर कसता है । इस परीक्षण के बाद ही वह उन्हें अपनाता है । क्योंकि उससे ही उसकी सफलता - असफलता का आधार बनता है । समाज में घटित होने वाली घटनाओं पर विचार को, विद्वज्जनों, साहित्यकारों की समीक्षा चलती है और फिर उस पर चर्चा-विचारणा के पश्चात् कोई ठोस निर्णय लिया जाता है ।

समाज में व्याप्त और घटित वैचारिक और अन्य सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अन्य आंदोलनों का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है और वह उस आंदोलन के विचारों को अपनाता है या अस्वीकार करता है । जब उनका स्वीकार हो जाता है तो वह वैयक्तिकता से उपर उठकर सामुहिक धरातल पर आकर एक वैश्विक रूप धारण कर लेता है और ऐसे ही एक

वैचारिक आंदोलन का जन्म होता है और फिर उसमें से ही परिवर्तन की लहर उठती है । जागृति का शंखनाद होता है ।उदाहरणार्थ प्रगतिवादी विचारधारा के आंदोलन को ले सकते हैं । साहित्यकार ऐसे विचार और विचारधाराओं को अपनी रचनाओं में स्थान देते है । वह सामाजिक परिवर्तन, उत्थान, लोककल्याण हेतु उन विचारों एवं विचारधाराओं को अपनी साहित्यिक रचनाओं में स्थान देते हैं और उन रचनाओं में उस विषय या विचार के संबंध में अपनी विचारधारा या मत को भी अभिव्यक्ति देते हैं । साहित्यकार के मत, विचार मान्यताएँ आदि उनकी रचनाओं के माध्यम से वह अभिव्यक्त करता है ।

रचना के अंदर का भावपक्ष, मुख्य विषयवस्तु जिन्हें विद्वज्जन अन्तर्वस्तु भी कहते हैं, जिसको अनुभूति पक्ष भी कहा जाता है । वही रचना का विचार पक्ष है । यही रचना के विचार पक्ष के अंतर्गत विभिन्न विचार बिंदु जो साहित्यकार के होते हैं वह उपयोगी सिद्ध होते हैं और सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवर्तन का आधार बनते हैं । अतः रचना का विचार पक्ष अति महत्वपूर्ण भाग कहा जा सकता है । विचार पक्ष का संबंध साहित्य के साथ गहरा है । साहित्यिक रचना विचार-पक्ष रहित नही हो सकती । विचार पक्ष और विचारधारा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । कभी-कभी साहित्य में व्यक्त विचारधारा साहित्य का विचार पक्ष बन जाती है तो विचारधारा में से साहित्कार प्रेरणा पाकर उसको साहित्य में स्थान देता है । विचार पक्ष और विचार धारा इस प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं ।

विभिन्न सामाजिक, राजकीय, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिवर्तनों के मूल में विचारधाराएँ ही हैं । साहित्यकार समय-असमय पर आने वाले नए विचार एवं विचारधाराओं को अपनाकर अपनी रचनाओं में

उसे स्थान देते हैं और फिर उसी रास्ते पर अन्य साहित्यकार भी चलते है । साहित्यकार की वैयक्तिक भावनाएँ, अनुभूति विचार आदि का प्रतिबिंब उसकी रचना के विचार पक्ष में दिखाई देता है । रचना के अंतर्गत वह समसामयिकता का भी ध्यान रखता है । समसामयिकता भी उसकी रचना के विचार पक्ष का बीज बन जाती है । विचार-पक्ष से तात्पर्य है रचना का भावपक्ष, अनुभूति पक्ष, वैचारिक पक्ष, आंतरिक पक्ष, मूल भाव, कथ्य, मुख्य विषयवस्तु, विषय नीज, विचार बिन्दु, विचारधारा, विचार संपदा आदि ।

विचार-पक्ष का अपना एक महत्त्व है । उसकी आवश्यकता एवं महत्त्व साहित्य के लिए अति महत्वपूर्ण है । विचार-पक्ष रहित रचना नही हो सकती यह तो हम जानते ही है अतः रचना के अध्ययन के पश्चात् पाठक उसके अंतर्गत आए हुए विचार पक्ष का अध्ययन करके उसके अंतर्गत समाहित विचार बिदुओं को उपदेशात्मक एवं मार्गदर्शक रूप में ग्रहण करके अपनी समस्याओं का हल ढूँढ सकता है । साहित्यिक रचना के विचार पक्ष के माध्यम से हम रचनाकार की विचारधारा एवं विचारों को जान सकते हैं । समाज उसे ग्रहण करके अपनी समस्याओं का हल उसमें से ढूँढ सकता है ।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि विचार पक्ष साहित्यिक रचना का एक आंतरिक भाग है, वह अनुभूति पक्ष या भावपक्ष का ही पर्याय है उसमें साहित्कार की विचारधारा, मान्यताएँ, मत, विचार आदि का प्रतिबिंब पड़ता है । और विचार पक्ष समाज, साहित्य, राजकीय व्यवस्था, संस्कृति, धर्म, मानवजीवन, व्यवस्थातंत्र आदि के लिए भी महत्वपूर्ण है । साहित्यिक रचनाओं में व्यक्त विचारपक्ष के वैचारिक ऐश्वर्य से पाठक उसमें से उदात्त विचारों को अपना सकता है उसमें से श्रेष्ठ विचार ग्रहण करके अपना जीवन पथ अच्छी

तरह से सजा सकता है । विचार-पक्ष का वैचारिक वैभव एवं पियुष समाज एवं मनुष्य का मार्गदर्शक बन सकता है अतः विचार-पक्ष महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है । अंत में निष्कर्ष स्वरूप हम दो विद्वानो के संदर्भो के साथ इसका विचार विश्वसनीय बनाना चाहते है । विचार पक्ष में समाविष्ट विचार धारा के संबंध में विचार संवाद होना चाहिए और भविष्य के लिए भी यह अंत तक चलता रहना चाहिए । पुरूषोत्तम अग्रवालजी का मत है कि - ''व्यक्तियों और संस्कृतियों के बीच आत्मविश्वास संपन्न, तेजस्वी संवादे की संभावनाओं का अंत कम-से-कम तब तक तो नहीं हो सकता जब तक कि मनुष्य के पास भाषा मौजुद है । विचार अब तक यदि आख्यानों के आरोपण का माध्यम था, तो अब संभावना है कि वह संवाद का सेतु बने ।''[३६] चित्त-मन- बुद्धि, विचार के भेदों को खुलना चाहिए , विचार पक्ष के माध्यम से साहित्य समाज के मनुष्यों के लिए यह कार्य करता है इस लिए अंत में विचार पक्ष सामाजिक विकास की सिढ़ी है ऐसा हम कह सकते हैं । अंत में यह संस्कृत श्लोक दृष्टव्य है कि -

> ''चित्तमिन्द्रियसंघातात्परं तस्मात्परं मन ।
> मनसस्तु परा बुद्धिः क्षेत्रज्ञो बुद्धितः परः ।। १६ ।।
> पूर्वे चेतयते जन्तुरिन्द्रियैर्विषयान्पृथक् ।
> विचार्यमनसा पश्चादथ बुद्धया व्यवस्यति ।।'' १७ ।।[३७]

हम इस अध्याय में सन्निहित विचार-पक्ष की अवधारणा के आधार पर इस शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुत विषय को अधिक गहनता से अनुसंधित कर सकेंगे । विचार-पक्ष की यह अवधारणा निश्चित ही इस अनुसंधान कार्य में सहायक सिद्ध होगी ।

संदर्भसूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया	नरेश चन्द्रकर	०४
२.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया	नरेश चन्द्रकर	२५
३.	'चिन्तामणि (भाव या मनोविकार)	आ. रामचन्द्र शुक्ल	०९
४.	'चिन्तामणि (भाव या मनोविकार)	आ. रामचन्द्र शुक्ल	११
५.	'चिन्तामणि (कविता क्या है ?)	आ. रामचन्द्र शुक्ल	१०७
६.	'चिन्तामणि (कविता क्या है ?)	आ. रामचन्द्र शुक्ल	१०७
७.	'चिन्तामणि (कविता क्या है ?)	आ. रामचन्द्र शुक्ल	११८
८.	'साहित्य में मानदण्ड'	जुगल किशोर पटैरिया	४१
९.	'साहित्य में मानदण्ड'	जुगल किशोर पटैरिया	४१
१०.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१२३
११.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१२२
१२.	'कथ्य रूप (पत्रिका) अंक-११ जून-१९९३	परिसंवाद	१०
१३.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१२०
१४.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१०६
१५.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	६६
१६.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	८३
१७.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१२१
१८.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१२२
१९.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१२६
२०.	'साहित्य की रचना-प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर	१३०
२१.	'साहित्य सिद्धान्त और अवधरणाएँ'	डॉ. अरूणप्रकाश मिश्र	१६

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
२२.	'आर्ट एण्ड लिटरेचर'	मार्क्स एण्ड एंगिल्स	४१
२३.	'साहित्य सिद्धान्त और अवधरणाएँ'	डॉ. अरूणप्रकाश मिश्र	४८
२४.	'आधुनिक हिंदी कविता में मनोविज्ञान'	डॉ. उर्वशी ज. सूरती	४७
२५.	'युग चेतक' अंडप्रसाद विशेषांक		जुलाई-१९७०
२६.	'रामचरित मानस' (बालकाण्ड) शंद-०९	तुलसीदास	४१
२७.	'कबीर'	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	१०७
२८.	'कबीर'	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	१०६
२९.	'कबीर'	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	१११
३०.	'कबीर'	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	११२
३१.	'श्रीमद् भगवद्गीता', अ. ०८	अक्षरब्रह्मयोग प्र. सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय मुंबई, अहमदाबाद	१३१
३२.	'श्रीमद् भगवद्गीता', अ. ०९	राजविद्या राजगृह्ययोग प्र. सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय मुंबई, अहमदाबाद	१४५
३३.	"The times of India" Ahmedabad	Friday, July-17, 2009	12
३४.	'यजुर्वेद'	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	३६, १७
३५.	'विचार और निष्कर्ष'	वासुदेव	०३
३६.	'विचार का अनंत'	पुरूषोतम अग्रवाल	२०
३७.	'विचार-विमर्श'	चन्द्रबलि पाण्डेय	१६८

द्वितीय अध्याय
'शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक साहित्यिक व्यक्तित्व

२.१ भूमिका

२.२ 'सुमन' की जीवन ज्योत

२.२.१ 'सुमन' का जन्म

२.२.२ 'सुमन' का परिवार

२.२.३ 'सुमन' की शिक्षा

२.२.४ 'सुमन' का कार्यक्षेत्र

२.२.५ 'सुमन' – उपनाम

२.२.६ 'सुमन' के सम्मान एवं पुरस्कार

२.२.७ 'सुमन' की अध्यक्षता एवं सदस्यता

२.२.८ 'सुमन' की यात्राएँ

२.३ 'सुमन' का व्यक्तित्व

२.३.१ बाह्य व्यक्तित्व

२.३.२ आंतरिक व्यक्तित्व

२.३.३ 'सुमन' का स्वभाव

२.३.४ 'सुमन' की रूचि एवं संस्कारिता

२.३.५ 'सुमन' एक कुशल वक्ता

२.३.६ एक आदर्श अध्यापक एव गुरू सुमन

२.३.७ 'सुमन' : कुशल प्रशासक

२.४ 'सुमन' के जीवन का मानवीय पक्ष

२.५ 'शिव' शिवत्व में विलीन

२.६ शिवमंगल सिंह 'सुमन' का कृतित्व

२.६.१ काव्यसंग्रह

२.६.१ नाटक

२.६.१ गद्यग्रंथ - आलोचना

२.६.१ डि.लिट्. पदवी हेतु शोध-प्रबंध

२.६.१ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंध एवं संस्मरण

२.६.१ अन्य रचनाएँ

२.७ 'सुमन' की कृतियों का संक्षिप्त परिचय

(अ) काव्यसंग्रह

(ब) 'सुमन' की गद्य कृतियाँ

२.८ निष्कर्ष

★ संदर्भसूचि

२.१ भूमिका :

काव्य जीवन का दर्पण भी होता है और उसमें सामाजिक विचारधारा का प्रस्फुटन भी सहज रूप में होता है । कवि की विचारधारा को उनके काव्य ही यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं । जब कभी कवि किसी भी भावभूमि पर स्थित होता है, तब वह एक विचार बिन्दु का रूप धारण कर लेता है, और वही अनुभूति भाषा के द्वारा अभिव्यक्त पाती है । कवि एक सामाजिक प्राणी होने के नाते और उसमें मानवीय चेतना होने के कारण वह विभिन्न अनुभूतियों को आत्मसात करता है और वही भावनाएँ ह्दय के अन्त: स्तंभ से निकलकर मुखर बन जाती है, और काव्य के रूप में अभिव्यक्ति पाती है । कवि के दर्शन, उनकी विचारधारा को जानना अत्यंत आवश्यक बन जाता है, क्योंकि जब एक साहित्य के अध्येता के रूप में हम कार्यरत है तब कवि की विचारधारा को अवश्य जानना चाहिए उसको जानने के लिए आवश्यक है कि हम प्रथम उनके व्यक्तित्व को जाने । उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित हों । किसी भी कवि के जीवन का प्रतिबिंब उनके काव्य में स्पष्टत: दिखाई देता है । अत: कवि के काव्य का अध्ययन करने से पूर्व हमें उसके व्यक्तित्व को जान लेना अधिक आवश्यक बन जाता है ।

कवि का जीवन-दर्शन उसकी विचारधारा, उसकी मानसिकता, उसकी भावनाएँ आदि को यथार्थ रूप में उसके व्यक्तित्व को जानकर ही उसे सही रूप में न्याय दे सकते हैं । कवि का आन्तरिक एवं बाह्‌य दोनो व्यक्तित्वों का उनके काव्य पर प्रभाव रहता ही है । किसी भी साहित्य से यथार्थ रूप में यदि परिचित होना हो तो उसके व्यक्तित्व से सर्वप्रथम हमें परिचित होना पडेगा । हम उससे परिचित हुए बिना उसके साहित्य का सही मूल्यांकन नही कर पाएँगे । इस

अध्याय में शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी के जीवन का परिचय दिया जा रहा है, साथ ही साथ उनके जीवन और उनके कृतित्व का भी आंशिक परिचय दिया जा रहा है । उनके साहित्यिक व्यक्तितत्व को सही रूप में परखने का, जानने का एक मात्र प्रयास है । 'सुमन' जी की विचारधारा के उनके काव्यों के माध्यम से जानकर हमें नित नवीन विचारबिन्दु प्राप्त होंगे जो जीवन मार्ग के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते है, परंतु उसके साहित्य के विचार-पक्ष को जानने से पूर्व उनके व्यक्तितत्व का अध्ययन कर लेना अधिक उचित होगा, उनके जीवन से परिचित होने के बाद ही हम उनके काव्यों के विचार-पक्ष के संबंध में सही मूल्यांकन कर सकेंगे ।

२.२ 'सुमन' जी की जीवन ज्योत :

जीवन एक यात्रा है, इस यात्रा में कइ मुकाम आते हैं । ऐसे मोड़ जीवन में आते है जो जीवन की दिशा ही बदल देते हैं । हिन्दी साहित्य में अनेक कवि हो गए हैं, उन सभी के जीवन का परिचय प्राप्त करेंगे तो ज्ञात होता हैं कि उनके जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई जिन्होंने उनके जीवन का मार्ग ही बदल दिया । 'सुमन' जी उन कवियों में से एक ऐसे सितारे हैं जिनका जीवन भी विविधताओं से भरा है । बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक, जीवन के प्रारंभ, बिंदु से अंतिम बिंदु तक उनके जीवन में अनेक मोड़ आए जिसने सुमन के व्यक्तितत्व पर प्रभाव डाला है ।

२.२.१ 'सुमन' जी का जन्म :

स्वतंत्र विचारधारा के परिवर्तनशील छायावादोत्तर कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म ५ अगस्त, सन् १९१५ ई. (संवत् १९७२, श्रावण मास, शुक्ल

पक्ष, नागपंचमी) के दिन उत्तर प्रदेश के अन्माव जिले के झगरपुर ग्राम मे हुआ था ।

२.२.२ 'सुमन' जी का परिवार :

'सुमन' जी के पिता का नाम ठाकुर साहब बखश सिंह था, परिहार वंश में वे पैदा हुए थे । सुमन का पालन गहरवाड़ वंशीय माता के दूध से हुआ था । उनके पितामह ठाकुर बलराज सिंह स्वयं रीवां सेना में कर्नल थे, और प्रपतिमाह ठाकुर चन्द्रिकासिंह को सन् १८५७ ई. की क्रांति में सक्रिय भाग लेने और वीरगति प्राप्त करने का गौरव प्राप्त था । 'सुमन' जी को काव्य विरासत में अपनी बड़ी बहन कीर्तिकुमारी से मिला है । उनके बड़े भाई भी कवि थे । इस तरह उनका परिवार उनके व्यक्तितत्व एवं कृतित्व के अनुकूल था, ऐसा कहा जा सकता है ।

२.२.३ 'सुमन' जी की शिक्षा :

'सुमन' जी जब दसवीं कक्षा में अभ्यासरत थे तभी उनका कण्ठ फूट पड़ा था, जब उन्होंने अपने स्कूल के हेडमास्टर श्री दानी को लेकर समस्यापूर्ति ('छतियाँ घड़के') के रूप में एक कविता रच डाली तब 'सुमन' जी ने मंच से श्रोताओं के बीच उसे सुना भी दिया । उनकी वह कविता की पंक्तियाँ प्रसिद्धनारायण चौबे जी ने उन्हें उज्जैन में ८ एवं ९ मई, सन् १९८० में सुनाई थी, उनके शब्द थे –

''जब घंटी बजे हाईस्कूल की
जियरा हुलसै, अखियाँ फरके
कहु दानी साहब जो मिल जाएँ
तो लरिकन की छतियाँ घड़कैं ।''[०१]

उसकी शिक्षा का प्रारंभ मार्तण्ड मिडिल स्कूल रीवां (चौथी कक्षा तक) मे हुआ । दरबार हाईस्कूल, रीवाँ में वे छट्ठी कक्षा तक पढ़े । विक्टोरिया कालिजिएट हाईस्कूल में उन्होंने मैट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त की । सन् १९३२ में उन्होंने विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर में इन्टर से बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की । सन् १९३४ में इन्टरमीडिएट किया । इस प्रकार उन्होंने अधिकांश रूप से रीवां, ग्वालियर आदि स्थानों में रहकर आरंभिक शिक्षा से लेकर कॉलेज तक की शिक्षा प्राप्त की । इसके पश्चात् सन् १९४० ई. में काशी हिन्दु विश्व विद्यालय से एम.ए. (हिन्दी) की उपाधि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । सन् १९५० ई. में डि.लिट्. की पदवी बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय से प्राप्त की ।

'सुमन' जी जब सन् १९३०-३१ ई. में नौंवी कक्षा के छात्र थे तभी से वे गांधीजी से प्रभावित हुए । खादी तकली और आन्दोलन उनके प्राणों से स्पन्दित होने लगे । मैट्रिक करते - करते 'सुमन' जी का सम्पर्क क्रान्तिकारियों से भी स्थापित हो गया। वे चन्द्रशेखर आज़ाद के दल के सदस्यों को पिस्तौल, कारतूस आदि असला पहुँचाने के कार्यमें भी लगे हुए थे ।

२.२.४ सुमन का कार्यक्षेत्र :

'सुमन' जी का कार्यक्षेत्र विशाल रहा है । उन्होंने अनेक संस्थाओं में अपनी बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान की है । वे सन् १९४२ ई. में विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर में हिन्दी प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए । सन् १९५० में उन्हे काशी हिन्दु विश्ववविद्यालय ने डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की । विषय उनका था "गीतिकाव्य का उद्भव, विकास और हिन्दी साहित्य में उसकी परम्परा"। सन् १९५२-१९५४ ई. तक वे माधव कॉलेज, उज्जैन में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर रहे । सन् १९५४-१९५६ ई. तक होलकर कॉलेज, इन्दौर, में हिन्दी

विभागाध्यक्ष के पद पर अपनी सेवा प्रदान की । सन् १९५४-६१ ई. तक उन्हें नेपाल स्थित भारतीय राजदूतावास में सांस्कृतिक और सूचना सचिव का कार्य सौंपा गया । सन् १९६१-६८ ई. तक माधव कॉलेज उज्जैन में प्राचार्य के पद पर कार्य करते रहे ।सन् १९६८ ई. में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, के उपकुलपति नियुक्त हुए । सन् १९७३ ई. में भी वे विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, के उपकुलपति पद पर दूसरी बार नियुक्त हुए । सन् १९७८ ई. में विश्व हिन्दी परिषद न्यास के सदस्य एवं 'विश्व हिन्दी दर्शन' अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका के संपादक मंडल के सदस्य नियुक्त हुए । सन् १९७७-७८ ई. में कुलपति-संघ (एसोसिएशन ऑफ इंडियन युनिवर्सिटीज़) के अध्यक्ष बने । वे सम्प्रति कामनवेल्थ कॉन्फरेंस कुलपति एसोसिएशन के कार्यकारिणी के सदस्य भी रहे । 'सुमन' जी सन् १९६४ में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में कलापसंकाय के डीन तथा व्यावसायिक संगठन, शैक्षणिक समिति एवं प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य भी रहे थे । सन् १९६८-७८ ई. तक 'सुमन' जी ने विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में कुलपति के पद के गौरवान्वित रूप में सुशोभित किया ।

इस प्रकार 'सुमन' जी का कार्यक्षेत्र बहुत ही विशाल एवं व्यापक रहा है । वह अध्यापकीय क्षेत्र हो, कुलपति के पद पर हों या विभिन्न कला संस्थाओं के सदस्य हो सभी में कुशलतापूर्वक कार्य किया है ।

२.२.५ 'सुमन' - उपनाम :

साहित्यकार प्रायः अधिकतर अपनी विशेषताओं को लेकर अपने मूल नाम के पीछे एक उपनाम या तख़्ल्लुस जोड़ देते हैं । तख़्ल्लुस उनकी अलग पहचान को दर्शाता है । सुमन उपनाम शिवमंगल सिंह ने कैसे रखा और उसके संबंध में कौन से तथ्य रहे हैं ? यह भी रोचक हैं । जब 'सुमन' जी

विटोरिया कॉलेज, ग्वालियर में इण्टरमिडिएट प्रथम वर्ष के विद्यार्थी थे तब उन्होंने एक कविता लिखी थी जिसके शब्द है –

''उपवन की वह हरियाली पावन समीर का चलना ।
विकसित कुसुमों की लाली, डाली–डाली का हिलना ।
ऊषा के इस नीवर में सरिता का कल–कल करनार ।
बस हृदय हिला देता था अधखिली कली का खिलना ।'' (२)

यह बात खुद सुमनजी ने प्रसिद्ध नारायण चौबे जी से व्यक्तिगत भेंट वार्ता में ८ एवं ७ मई सन् १९८० ई. उज्जैन में कही थी ।

गम्भीर रूप में लिखी गई यह उनकी प्रथम कविता थी । श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द और हरिकृष्ण प्रेमी ने इसे खुब सराहा था । प्रॉ. बद्रीनारायण अग्रवाल जी ने तो उनके इस प्रारभ्मिक प्रयास को इतना उत्साहित किया कि कॉलेज पत्रिका के मुखपृष्ट पर इसे छपवा दिया । जब 'सुमन' जी बी.ए. प्रथम वर्ष के विद्यार्थी थे तो काव्य रचना का पहला ब़ीज फूटा और फिर प्रत्येक सभा में, कार्यक्रम में गोष्ठियो में वे कविताएँ लिखकर सुनाते रहते थे । इस समय स्थानीय 'हिन्दी साहित्य सभा' के कुल साहित्यिक मित्रों ने उनके 'शिव' से 'सु' 'मंगल' से 'म' तथा 'सिंह' से अनुस्वार 'न' लेकर 'सुमन' उपनाम दे डाला । उन दिनो उपनाम की प्रथा सी चल पड़ी थी । 'बृजेश', 'करूणेश', 'मिलिन्द', 'प्रेमी', 'उपासक', 'सनेही', 'हितैशी' आदि । शिवमंगल सिंह के साथ सुमन उपनाम जुड़ जाने के बाद उन्हें पता चला कि यह उपनाम तो एक ओर साहित्यकार का है । उन्होंने सहजता और सरलता से उन्हे स्वीकार करते हुए प्रसिंहनारायण चौबे जी से सन् १९८० ई. एवं ९ मई की व्यक्तिगत भेंट वार्ता

के अवसर पर कहा था कि ''तब मुझे पता नहीं था कि प्रयाग के प्रतिष्ठित साहित्यकार रामनाथ जी गुप्त का भी उपनाम 'सुमन' जी है, अन्यथा ऐसी धृष्टता न करता ।''[०३]

इस प्रकार 'सुमन' उपनाम शिवमंगल सिंह के नाम के साथ अन्य लोगों द्वारा अनायास ही जुड़ गया और 'सुमन' जी ने उसे अपना लिया । यह उनकी सरलता ही है कि उन्होंने खुद स्वीकार किया कि उनको अगर मालुम होता कि यह उपनाम अन्य किसी साहित्यकार का भी है तो वे कभी उसे न अपनाते । 'सुमन' जी एक सरल हृदयी इन्सान थे यह बात हमें इस घटना से भी पता चलती हैं ।

२.२.६ 'सुमन' जी के सम्मान एवं पुरस्कार

हर व्यक्ति को पुरस्कार एवं सम्मान की इच्छा होती है । जिस क्षेत्र में वह कार्य करता हैं उसकी फलश्रुति स्वरूप वह सम्मान एवं पुरस्कार की अपेक्षा रखता ही है । व्यक्ति के विकास में सम्मान एवं पुरस्कार उसके विकास में सहायक सिद्ध होते हैं । पुरस्कार पाने के लिए न जाने कितने – कितने उल्टे सीधे कार्य भी लोग करते हैं । व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन उसको मिलने वाली प्रतिष्ठा, पुरस्कार और सम्मान से ही किया जाता है ।

सम्मान और पुरस्कार के लिए व्यक्ति अथक परिश्रम करता है और उसके कार्यसिद्धि के बदले में उसे पुरस्कार मिलता है । साहित्यिक क्षेत्र में पुरस्कार और सम्मान का बड़ा महत्त्व है । पुरस्कार से साहित्यकार का हौसला बढ़ता है । कुछ साहित्यकार ऐसे भी हैं जो केवल सम्मान के लिए ही साहित्य सृजन करते हैं, अपितु कुछ ऐसे साहित्यकार होते हैं जो न तो सम्मान के लिए

साहित्य सृजन करते हैं और न प्रतिष्ठा के लिए । सम्मान और पुरस्कार उनके पीछे-पीछे दौड़े चले आते हैं । ऐसे साहित्यकार केवल समाज कें लिए, जन सामान्य के लिए ही साहित्य की सर्जना करते हैं । ऐसे साहित्यकारों का सम्मान ही उसे उचित प्रतिष्ठा दिलाता है । समाज एवं देश का और जनता का यह कर्तव्य भी है कि ऐसे सच्चे साहित्यकारों का उचित सम्मान करें । जिस देश में साहित्य एवं साहित्यकारों का सम्मान नही होता उस देश का भविष्य धुँधला है ।

'सुमन' जी ऐसे साहित्यकार है, कि जिन्होंने कभी भी सम्मान एवं पुरस्कार की लालच नहीं रखी या कभी भी उसके लिए कार्य नहीं किया । सम्मान एवं पुरस्कार उनके पीछे-पीछे दौड़े चले आए हैं । जीवन में 'सुमन' जी ने अनेक सम्मान एव पुरस्कार प्राप्त कर ख्याति अर्जित की हैं । समाज एवं देश ने उनके सृजन का उचित सम्मान करके अपने कर्तव्य का निर्वाह किया हैं । यहाँ पर 'सुमन' जी को जीवन में मिले सम्मान, प्रतिष्ठा और पुरस्कार के संबंध में हम जानकारी प्राप्त करेंगे ।

'सुमन' जी को सन् १९५८ ई. में मध्यप्रदेश सरकार ने उनके काव्यसंग्रह 'विश्वास बढ़ता ही गया' पर 'देव पुरस्कार' से सम्मानित किया । सन् १९६४ ई. में उत्तर प्रदेश सरकार ने 'पर आँखे नहीं भरी' काव्य संग्रह पर 'नवीन' पुरस्कार से विभुषित किया ।

'सुमन' जी को सन् १९७३ ई. के मध्यप्रदेश के राजकीय उत्सव में सम्मानित किया गया था। जनवरी सन् १९७४ ई. में भारत सरकार ने उन्हें 'पदमश्री' की उपाधि से विभुषित किया । भागलपुर विश्व विद्यालय बिहार द्वारा २० मई सन् १९७३ ई. को डी.लिट्. की मानद उपाधि द्वारा सम्मानित

किया गया । नवम्बर सन् १९७४ ई. को उन्हें 'सोवियत-भूमि नहेरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया । २६ जनवरी सन् १९७५ ई. को 'मिट्टी की बारात' नामक काव्यसंग्रह पर 'सुमन' जी को 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी ने अक्टूबर सन् १९७४ ई. को नागपुर विश्वविद्यालय महाराष्ट्र में दीक्षांत भाषण दिया । पुनः २४ अप्रैल सन् १९७७ ई. को राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में पंचम 'दिनकर' स्मृति व्याख्यान माला के अन्तर्गत भाषण के लिए उन्हे ससम्मान आंमत्रित किया गया ।

सन् १९७३ ई. में राष्ट्रकुल विश्वविद्यालय परिषद के लंदन विश्वविद्यालय स्थित मुख्यालय में कार्यकारिणी परिषद के सदस्य के रूप में उनकी नियुक्ति की गई । १७-१८ जनवरी सन् १९७७ ई. को भारतीय विश्वविद्यालय परिषद के कोयम्बतुर (तमिलनाडु) में हुए बावन वें वार्षिक अधिवेशन की उन्होंने अध्यक्षता की । पुनः १५-१६ जनवरी सन् १९७८ ई. को सौराष्ट्र विश्व्वविद्यालय, राजकोट (गुजरात) में हुए 'भारतीय विश्वविद्यालय परिषद' के ५३ वें अधिवेश की उन्होंने अध्यक्षता की ।

इस प्रकार 'सुमन' जी जीवनभर जो साहित्य सेवा और जन सेवा करते रहे उसकी फलश्रुति के स्वरूप उन्हें अनेक राजकीय, साहित्यिक एवं सामाजिक मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, पुरस्कार और उच्च स्थान प्राप्त हुआ । इस से ही उनके जीवन की सार्थकता सिद्ध होती है ।

२.२.७ सुमन की अध्यक्षता एवं सदस्यता

कोई भी साहित्यकार जब उत्तरोत्तर विकास करने लगता है और उसकी ख्याति दूर-सुदूर फैलती जाती है तब समाज में से उन्हें उनके कार्यो की

जिम्मेदारियों के हेतु आमंत्रण मिलने लगते हैं । वे फिर उनके शिक्षण संस्थाओं, सामाजिक संस्थाओं, राजकीय संस्थाओ, सांस्कृतिक संस्थाओं के अध्यक्ष या सदस्य के रूप में नियुक्त होकर अपने सेवाएँ प्रदान करने लगते है । वैसे भी ऐसी प्रतिभाओं का यह कर्तव्य भी बन जाता हैं कि वे अपनी सेवाओं का लाभ समाज को दें ।

'सुमन' जी ने इस लिए ही अनेक संस्थाओं में अपने कर्तव्य के निर्वाह हेतु अनेक बार अध्यक्षता एवं सदस्यता स्वीकार करके अपनी सेवाएँ प्रदान की है । उस संदर्भ में जिन संस्थाओं की सदस्यता या अध्यक्षता को उन्होंने स्वीकारा, उसकी सूची इस प्रकार है –

(१) मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर ।

(२) भारत सोवियत सांस्कृतिक सभा ।

(३) अखिल भारतीय 'इसकस' के उपाध्यक्ष ।

(४) मानस भवन, उज्जैन ।

(५) श्री पांजली न्यास उज्जैन के सदस्य एवं न्यासधारी ।

(६) विश्व हिन्दी प्रतिष्ठान, नई दिल्ली के संस्थापक सदस्य एवं न्यासधारी ।

(७) विश्व के प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दु मुख-पत्र विश्व हिन्दी प्रदर्शन के सम्पादक मण्डल के सदस्य ।

(८) राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार सभा मध्यप्रदेश भोपाल के उपाध्यक्ष ।

(९) सदस्य-कार्यकारिणी विश्व हिन्दी सम्मेलन, नई दिल्ली ।

(१०) दो बार विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति पद पर आसीन ।

(११) कालिदास अकादमी उज्जैन के उपाध्यक्ष ।

(१२) भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय ने अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्व विद्यालय की स्थापना हेतु सन् १९९२ ई. में एक समिति गठित की थी उसके अध्यक्ष ।

(१३) माधव कॉलेज, उज्जैन के प्राचार्य ।

(१४) सन् १९७९ ई. से १९८० ई. तक सरदार पटेल विश्वविद्यालय वल्लभ विद्यानगर, गुजरात में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर कार्य किया ।

(१५) सन् १९८२ ई. से १९८५ ई. तक उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ में उपाध्यक्ष ।

इस तरह 'सुमन' जी अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्य के पद पर नियुक्त हुए थे और सफलतापूर्वक अपने कार्य का निर्वाह किया था ।

२.२.८ 'सुमन' जी की यात्राएँ

व्यक्ति अपने जीवन में अनुभव से ही कुछ सीखता है और उससे ही अध्ययन के फलस्वरूप अनेक अनुभव अर्जित करके विकास करता है । एक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अधिक से अधिक जन-जवीन से, समाज से और देश-दुनिया से परिचित हो, जिससे वह अपने साहित्य में उसके अनुभवों को संचित करके उसको मुखरता प्रदान कर सके । इसके लिए आवश्यक हैं कि वह अधिक से अधिक प्रवासी, पर्यटक बनकर घुम्क्कड़ी करता रहे । एक यात्री के रूप में देश-दूनिया को जानकर, समझकर ही समाज को कुछ प्रदान कर सकता है ।

'सुमन' जी केवल घर में बैठकर कोरे और ओथे साहित्यसर्जन करने वाले व्यक्ति नहीं थे वह एक सच्चे अर्थ में जन सामान्य के कवि एवं साहित्यकार

थे । 'सुमन जी ने जीवन भर अनेक यात्राएँ करके अपने घुमक्कड़ धर्म का निर्वाह करके अधिक से अधिक अध्ययन करने का प्रयास किया था । यही अनुभव उनके साहित्य में काम आया । उनकी यात्राओं के संबंध में जानकारी निम्नलिखित रूप में दी जा रही है ।

'सुमन' जी ने सन् १९६९ ई. से पूर्व दो बार मॉरीशीयस की यात्रा की । प्रथम यात्रा आफ्रीका की भी की थी । सन् १९६९ ई. में इस्कस के निमंत्रण पर 'सुमन' जी ने रूस की यात्रा की थी । सन् १९७१ ई. में भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में मॉस्को, लेनिनग्राड़, ताशकंद, समरकंद, की हव मंगोलिया, अल्माना (ज़ाकिस्तान) आदि की यात्राएँ की ।

सन् १९७३ ई. में 'सुमन' जी भारत की ओर से शान्ति परिषद मॉस्को में गए थे । सन् १९७४ ई. में सोवियत लेण्ड नहेरू पुरस्कार के संदर्भ में १५ दिन की रूस यात्रा की थी । सन् १९७५ ई. में 'सुमन' जी ग्रीष्मावकाश में प्रतिनिधि मण्डल में रूस यात्रा पर गए थे । सन् १९७६ ई. में कॉमनवेल्थ कॉन्फरेन्स में सम्मिलित होने पर स्कॉयलैण्ड एडिनबरा, फ्रांस, रोम, इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड की यात्रा पर गए थे ।

'सुमन' जी ने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में सन् १९६७ ई. में केन्या की राजधानी नैरोबी की यात्रा की तो सन् १९६८ ई. में नेपाल अकादमी के अतिथि के रूप में नेपाल की यात्रा की । सन् १९७१ ई. में हिन्दी की साहित्यिक संस्था 'हिन्दी मंच' के निमन्त्रण पर मॉरिशीयस की दूसरी बार यात्रा की । ९ अगस्त सन् १९७१ ई. को मंगोलिया की यात्रा की । ५ फरवरी सन् १९७६ ई. को राष्ट्रकूल विश्वविद्यालय के सम्मेलन में न्युज़ीलण्ड जाते समय सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया (सिडनी) और न्युज़ीलैण्ड की यात्रा की ।

२७ अगस्त से ३ सितम्बर सन् १९७६ ई. तक होने वाले विश्व हिन्दी परिषद सम्मेलन में भाग लेने हेतु मॉरिशीयस की तीसरी बार यात्रा की । सरदार पटेल विश्वविद्यालय वल्लभ विद्यानगर, गुजरात में फरवरी सन् १९७९ ई. से फरवरी सन् १९८० ई. तक विश्वविद्यालय के प्राध्यापक के रूप में मुलाकात की । १६ फरवरी सन् १९८५ ई. को अवध विश्वविद्यालय के छट्टें दीक्षांत समारोह में दीक्षांत भाषण दिया । इस प्रकार 'सुमन' जी एक सच्चे यात्री के रूप में जीवनभर घूमते रहे और विश्व की ज्ञान-निधियों को संचित करके उसका पीयुष भारत को प्राप्त करवाते रहे ।

२.३ सुमन का व्यक्तितत्व

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तितत्व उनके कार्यों, कार्यपद्धतियों और स्वभाव से ही परिलक्षित होता है । उसके आंतरिक एवं बाह्य गुण उनके व्यक्तितत्व को बनाते हैं । साहित्यकार के साहित्य को समझने के लिए उनके व्यक्तितत्व को जानना आवश्यक बन जाता है । यहॉ पर 'सुमन' जी के व्यक्तितत्व पर हम प्रकाश डालेंगें ।

२.३.१ बाह्य व्यक्तितत्व

'सुमन' जी महज़ एक साहित्यकर ही नहीं अपितु एक अच्छे व्यक्तितत्व के धनी थे । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र उनके व्यक्तितत्व के संबंध में लिखते हैं कि - "डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' का व्यक्तितत्व अत्यंत आकर्षक है । उनका रंग गोरा लम्बाई लगभग ६ फिट, भारी भरकम शरीर, बड़ी-बड़ी ऑंखे (जो रचना के दिनो में चिन्तन विलक्षण लगती है, पर बात के समय या कवितापाठ करते समय प्रदीप्त हो उठती है) मधुर आवाज और क्षिप्त बुद्धि ।"[४]

२.३.२ आन्तरिक व्यक्तित्व

'सुमन' जी का आन्तरिक व्यक्तित्व भी आकर्षक हैं । वे अच्छे स्वभाव वाले थे उनमे आदर्श व्यक्तित्व के गुण थे । वे एक विनयशील, विवेकी और मिलनसार स्वभाव वाले व्यक्ति थे । इस संबंध में डॉ. रविन्द्रनाथ मिश्रजी लिखते हैं कि - ''सुमनजी सहज रूप में अत्यन्त विनयशील हैं । आपका जीवन अत्यन्त व्यस्त है, परन्तु इतनी व्यस्तता के बावजूद भी आप पत्रों का जवाब शीघ्र दे देते हैं । हिन्दी साहित्य के महान कवि होते हुए भी मान्य व्यक्तियों के ही नहीं, अपितु अपने समीक्षकों का भी आदर करते हैं । कोई भी काम या समस्या, चाहे वह कितनी ही अल्प हो, उसे आप उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते । कवि सम्मेलनों मे आपका कविता पाठ बहुत ही आकर्षक और मधुर होता है । इसी गुण के कारण सामान्य जनता के बीच भी कविता अत्यधिक प्रसार पा सकती है ।[५]

'सुमन' जी एक आदर्श सामाजिक व्यक्ति थे । वे अपने आस-पास मित्रों की मण्डली से हमेशा घिरे रहते थे । उनके साहित्यक और अन्य मित्रों की संख्या अधिक थी । उनके मित्र उनकी प्रशंसा करते हुए थकते ही नहीं थे । उनके इस तरह के स्वभाव एवं व्यक्तित्व के संबंध में डॉ. शेषारत्नम् लिखते हैं कि - 'सुमन' जी एक आदर्श मित्र के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । उनकी मित्रता की विशेषता यह है कि जीवन के सभी स्तरों के लोग उनकी मित्र-मण्डली में है ।'[६]

'सुमन' जी के व्यक्तित्व का एक गुण यह हैं कि वे जनसामान्य से जुड़े रहते थे, उनमें भी पीडितों एवं दलितों के प्रति उनकी सहृदयता

अधिक थी । जिनका कोई सहारा नहीं देता और जो निराधार हैं उनके प्रति उनकी सहानुभूति और अपनत्व का भाव रखते थे । उनके लिए वे कुछ भी करने के लिए उतारू हो जाते थे । वे उनके लिए मर मिटने के लिए भी तैयार हो जाते थे । उनका यह गुण उनके ही शब्दों में देखिए

''सत्वर समाधि की शय्या पर,
अपना चिर-मिलन मना लूँगा ।
जिनका कोई भी आज नहीं,
मिटकर उनको अपना लूँगा ।''[७]

'सुमन' जी का स्नेह पाकर शोषित एवं दु:खी व्यक्ति गदगदित हो जाते थे । 'सुमन' जी की स्नेहशीलता में, उनके प्रेमपूर्ण स्वभाव में भारत के ग्रामीण जीवन की मस्ती भरी हुई है । वे एक मनुष्य को मनुष्य के रूप में ही देखने वाले व्यक्ति थे । वे कभी भी मनुष्य को उनके यहा प्रतिष्ठा या धन की हैसियत से नहीं देखते थे, यह उनके व्यक्तित्व का एक महान आंतरिक पक्ष है । डॉ. श्रोत्रिय का इस संबंध में मत है कि - ''किसी ऐसे गुलाब को जिसमें रंग-बिरंगी पंखुरिया हो या अलग-अलग टचेज हों, देखकर भी हम कह सकते है - ''यह गुलाब है ।'' विविधता के बावजूद भी कोई सामान्य बात है, जो रंगो को पारकर इसके मूल गुणधर्म की पहचान कराती है । इस बात को जो समझ सकता है - वह 'सुमन' को समझ सकती है ।''[८]

२.३.३ सुमन का स्वभाव

किसी भी व्यक्ति का स्वभाव ही उसको सामाजिक मान्यता प्रदान करता है । अच्छे स्वभाव वाले व्यक्ति सहज रूप में समाज में

घूल-मिल जाते हैं । स्वभाव से ही व्यक्तितत्व का परिचय प्राप्त हो सकता हैं । 'सुमन' जी एक ऐसे ही अच्छे स्वभाव वाले व्यक्ति थे । इस संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी लिखते हैं कि – 'सुमन' जी बड़े ही सहृदय, विनीत और मिलनसार व्यक्ति है। जिन लोगों से उनका सम्पर्क होता हैं, वे उनके स्वभाव की विशेषताओं को कभी नहीं भूल पाते । वे स्वभाव से हँसमुख, गंभीर, सुसंस्कृत और कर्तव्य निष्ठ हैं ।''[९]

उसके व्यक्तितत्व के इस पहलू को प्रसिद्धनारायण चौबे इन शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि – 'सुमन' जी की वाणी में ओजस्विता के साथ-साथ माधुर्य का भी सन्निवेश है । वे बड़े ही सहृदय, भावुक, विनीत तथा मिलनसार व्यक्ति हैं । जिन लोगों से उनका सम्पर्क होता है वे उनके स्वभाव की वृत्तियों को नहीं भूल पाते ।''[१०]

इस प्रकार साहित्य के प्रति, समाज के प्रति एक साहित्यकार और व्यक्ति में जो प्रतिबद्धता होनी चाहिए वह 'सुमन' जी में हमें देखने को मिलती है । उनका ऐसा परिचय उनके निकटतम मित्र, सहयोगी और साहित्यकारों से हमें प्राप्त होता है ।

२.३.४ सुमन की रूचि एवं संस्कारिता

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तितत्व में उसके संस्कार और रूचि महत्वपूर्ण और गहरा प्रभाव डालते हैं । संस्कारों से ही व्यक्ति सुसंस्कृत और समाजमान्य बन सकता है । संस्कार ही उनके विचारों को गढ़ते हैं । और उसी से संस्कारयुक्त व्यक्तितत्व निर्मित होता है ।

रस एवं रूचि उनकी जीवन-पद्धति के परिचायक होते हैं । रस एवं रूचि से भी उनके व्यक्तितत्व का परिचय मिलता है ।

'सुमन' जी जीवन में दांभिक्ता, बाह्याडंबर और दिखावे को हेय मानने वाले व्यक्ति थे । फिर भी वस्त्र परिधान, समय-पालन, व्यवस्थितता आदि में मानते थे । उम्र के हिसाब से उनके वस्त्र परिधान और शौक में परिवर्तन आया फिर भी वे एक शौकित व्यक्ति थे ऐसा हम कह सकते हैं । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी उनके व्यक्तितत्व के इस पहलू को उजागर कहते हुए लिखते है कि - ''जीवन के प्रत्यके क्षेत्र में बाह्याडंबर और प्रदर्शन की भावना को हेय मानते हुए भी 'सुमन' जी वस्त्र धारण में विशेष रूचि का परिचय देते हैं । जो कि उनके स्वस्थ दृष्टिकोण का प्रतीक है । समयानुसार अपनी वेष-भूषा में परिवर्तन करते रहते है । आजादी के आन्दोनल में सन् १९५० ई. तक तो सिर्फ खादी पहनते थे, घड़ी, फाउंटेन भी छोड़ दिये थे । आजादी के पश्चात् एरिस्टोक्रेटिक कार, बंगला, सूट, सिगरेट आदि का भी प्रयोग करते थे ।''[११]

'सुमन' जी को स्वदेशप्रेम की भावना विरासत में मिली थी । स्वदेश प्रेम उनमें फूट फूट कर भरा हुआ था । वे एक आदर्श राष्ट्रवादी व्यक्ति थे । आज़ादी के आंदोलन में पूर्वजो के बलिदान के संस्कार उनमें आये उनमें समाज प्रेम और प्रेम की भावना जाते पड़ी थी । प्रारंभ में वे प्रेम की ओर झुकते है; बाद में उनमें प्रौढ़ता आ जाती है और वे समष्टि की और मुड़ जाते हैं । व्यक्ति से समष्टि की ओर झुकने के उनके इस स्वभाव को और उनकी सामाजिक एवं राष्ट्रीय

भावना को उनकी संस्कारिता के संदर्भ में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी इस प्रकर लिखते हैं – 'स्वदेश-प्रेम की भावना उनमें संस्कारिक है । उनके पूर्वजो ने देश की आजादी में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । देशप्रेम के साथ-साथ समाज प्रेम के भाव भी विद्यमान है । अवस्था के प्रभाव के कारण कवि का झुकाव सर्वप्रथम प्रणय की तरफ होता है, परन्तु सामायिक प्रभाव के कारण 'सुमन' व्यष्टि से समष्टि की ओर मूड़ जाते हैं ।''[१२]

इस प्रकार 'सुमन' जी में समयानुसार परिवर्तन परिलक्षित होता है । यह बात उनकी मानवीय पहलू की परिचायक है । वे एक सामाजिक एवं सहृदयी व्यक्ति थे। सन् १९४३ ई. के बंगला के अकाल को देखकर वे दु:खी हो जाते हैं । इसलिए वे कह उठते हैं कि –

''हाय, सुन रहे कलकत्ते में,
फैला घोर अकाल
काल-गाल में समा गये,
कितने भाई के लाल ।'' [१३]

'सुमन' जी भक्तिकालिन कवियों के प्रति अपनी विशेष रूचि रखते थे । आधुनिक कवियों में निराला, दिनकर, पन्त, महादेवी वर्मा, मैथिली शरण गुप्त, प्रसाद, बच्चन जी आदि कवियों के प्रति सम्मान ए वं आदर की भावना रखते थे। संस्कृत साहित्य के कवियों में कालिदास उनके प्रिय कवि थे। महात्मा गाँधी और गुरूदेव रवीन्द्रनाथ के प्रति उनमें आदर की भावना थी ।

२.३.५ 'सुमन' : एक कुशल वक्ता

प्राय: कवियों और साहित्यकारों में एक बात विलक्षण-सी प्रतीत होती हैं कि उनकी लेखनी प्रभावशाली होती है, अपितु उनमें एक आदर्श एवं कुशल वक्ता के गुण नहीं होते वे लिखते प्रभावशाली हैं, परंतु लिखी हुई बात या विचार को कुशलता से प्रभावशाली व्यक्तितत्व में प्रस्तुत नहीं कर पाते है । 'सुमन' जी में यह बात नहीं देखने मिलती । सुमन एक राजनीतिक वक्ता नहीं है वे एक कवि है और साहित्यकार है, वे साहित्य का आदर्श जीव है । वे एक कुशल एवं प्रभावशाली कवि हैं, फिर भी उनकी एक यह विशेषता है कि राजनीतिक न होते हुए भी एक सक्षम एवं कुशल वक्ता भी है । इस संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी लिखते हैं कि - 'सुमन' जी के बोलने की शैली इतनी अद्‌भूत हैं कि श्रोता न चाहकर भी सुनने के लिए विवश हो उठते हैं । उनकी वाणी में अजीब संगीत है । कथन में ऐसी मौलिकता कि बस सुनते ही बनता है । योग्य और अयोग्य की प्रशंसा में 'सुमन' में अपनी वाणी का दुरूपयोग भी कम नहीं किया है ।[१४]

२.३.६ एक आदर्श अध्यापक एवं गुरू : 'सुमन'

'सुमन' जी एक आदर्श अध्यापक एवं गुरू थे, वे पढ़ाते तो छात्र उनके अध्यापन कार्य में रस एवं रूचिपूर्वक मग्न हो जाते थे । एक आदर्श और कुशल अध्यापक और सच्चे मार्गदर्शक गुरू कम मिलते हैं 'सुमन' जी ने सब कुछ छोड़कर अध्यापकीय कार्य स्वीकार किया था । अपने धर्म के प्रति न्यौछावर शिक्षक कम ही मिलते हैं । उन्होंने अध्यापन कार्य इस प्रकार किया कि जीवन की अंतिम घडियों तक

बीमारी की हद तक वे पढ़ा रहे थे । इस संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र का मत हैं कि – 'वेतन लेना सुमन की अनिवार्य औपचारिकता है, पर अध्यापन उनकी विवशता है । वे प्रशासक के पद पर बैठकर भी प्रशासक नहीं है – उसी तरह वे वेतन लेकर भी वेतन भोगी अध्यापक नहीं है । खूब पढ़ाना और झूम-झूमकर घण्टों पढ़ाना उनकी रूचि रही है । कक्षा के बाहर समाज में भी वे शिक्षक के दायित्व को निभाते रहे ।''[१५]

उनके व्यक्तितत्व के इस पक्ष को खुद स्वयं ही 'सुमन' जी इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि – ''मैं यह अनुभव करता हूँ कि आज नेतृत्व बहुत क्षुद्र और असंस्कृत लोगों के हाथ में हैं । जिससे नई पीढ़ी के साथ ही नये राष्ट्र को भी बहुत से खतरे हैं । इस लिए शिक्षकों को युवकों का नेतृत्व अपने हाथ में लेना है, ताकि वे नेतृत्व को भी ए क स्तर दे सकें ।''[१६]

'सुमन' जी वर्तमान शिक्षण व्यवस्था की अवदशा को देखकर क्षुब्ध और दु:खी होते थे । शिक्षको के नैतिक स्तर को देखकर 'सुमन' जी को दु:ख होता था । वे शिक्षक को एक पथ प्रदर्शक, समाज निर्माता, राष्ट्र निर्माता और दीर्घदृष्टा के रूप में देखना चाहते थे । कठिन सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों में तो अध्यापक का दायित्व और भी बढ़ जाता है ऐसा उनका मत था । 'सुमन' का अध्यापकीय व्यक्तितत्व इस प्रकार छात्रों को सम्मोहित करने के साथ-साथ प्रेरणादायक भी था । हिन्दी के गिने चुने आदर्श अध्यापकों में सुमन का स्थान अग्रिम पंक्ति में आता है । उन्होंने अध्यापन कार्य को और अध्यापन को नये आयाम दिये थे ।

२.३.७ 'सुमन' : कुशल प्रशासक

'सुमन' जी एक कुशल प्रशासक भी थे । जीवनभर उन्होंने अध्ययन कार्य के अलावा अनेक सरकारी एव गैर सरकारी संस्थाओं में प्रशासक के रूप में कार्य किया । उन्होंने न सिर्फ कार्य किया अपितु उनका निर्वाह कुशलतापूर्वक एवं सफलतापुर्वक किया । वे एक कुशल, सफल एवं आदर्श आचार्य और कुलपति थे । वें अन्य प्रशासकीय पदों पर कुशलतापूर्वक कार्य करते थे । वे समय पालन और वचन पालन के पक्के थे । वे एक नियमबद्ध प्रशासक थे । जब वे उपकुलपति थे तब वे कार्यालय में प्रवेश करते थे तब कर्मचारीगण अपनी घड़ियो को ठीक कर लेते थे । परंतु फिर भी वे जड़-नियमों और शिस्तबद्धता में नहीं मानते थे । कार्य सुचारू रूप से हो यह उसकी प्राथमिकता थी परंतु उनके लिए जड़ता को कभी वे अनिवार्य नही समझते थे । उनका मानवीय पहलू भी वे देखते थे । इस तरह हम कह सकते है कि सुमनजी एक कुशल एवं आदर्श प्रशासक भी थे ।

३.४ 'सुमन' के जीवन का मानवीय पक्ष

कवि 'सुमन' जी ने प्रारंभिक जीवन में अनेक दु:खों एवं कष्टों को भोगा हैं । उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा हैं । उनके जीवन का यह दर्द एवं व्यथा कहीं न कहीं उनके काव्य में दिखाई देती है । अपनी पीड़ा और दर्द को सहन कर लेने और दूसरों की पीड़ा एवं दु:ख को ही वाणी देने के बावजूद 'सुमन' जी अपने इस दर्द और पीड़ा को छूपा नहीं सके हैं और उनकी अभिव्यक्ति अपने काव्य में कर बैठते हैं 'हिल्लोक' का भावुक कवि कह उठता है कि –

"मेरे उर में जो निहित व्यथा,
कविता तो उसकी एक कथा ।
छन्दों में रो-गाकर ही मै,
क्षण-भर को कुछ सुख पा जाता
मैं सूने में मन बहलाता ।"[१७]

अन्य सभी कवियों की तरह 'सुमन' जी भी कविता को पीड़ा एवं दर्द से निर्मित मानते हैं । कवि 'सुमन' एकान्त की क्षणों में भी अपने मनोभावों को व्यक्त करके थोड़ी क्षणो के लिए आनंदानुभूति कर लेते हैं । 'प्रलय सृजन' में कवि 'सुमन' का यह दर्द तीखा हो गया है । वह निराश भी होते है । यह निराशा असफलता की निर्मिति है, उनका अन्तर्द्वन्द्व कविता में विफलता और परेशानी निराश भी करती है -

"घेरे हैं चारो ओर मुझे,
मेरी सीमा की आकुलता ।
तन-मन बन्धन में जकड़े से,
पग-पग पर बिखरी असफलता ।"[१८]

यह 'अन्तर्द्रन्द्र' कविता आज़ादी के पहले की कविता है, जिसमें 'सुमन' जी गुलाम भारत की दशा देख दुःखी हो जाते है । उनको हर क्षण पग-पग पर असफलता ही असफलता नज़र आती है जिसके कारण वे निराश हो जाते हैं ।

'सुमन' जी के व्यक्तित्व का यह भी एक मानवीय पहलू है, परंतु यह विचारणीय है कि यदि 'सुमन' औरों की तरह निराश होकर पथभ्रष्ट हो जाते, कुंठित निराश और आहत होकर निरे स्वार्थी बन जाते तो यहाँ उनके बारे में इस

चर्चा का कोई अर्थ ही न रह जाता । संवेदना एवं भावनाओं की व्यापकता और उनकी गहनता उनके व्यक्तित्व का एक अंग है । जो सभी के मन को सुमन की ओर प्रभावित करके आकर्षित करती है । 'सुमन' जी को अपने जीवन में अनेक बार अद्भूत एवं अजीबोगरीब अनुभव हुए । उन्होंने अपने इन अनुभवों को - 'ज़िन्दगी और मौत के दस्तावेज'[१९] के अन्तर्गत प्रस्तुत किया था ।

'सुमन' जी के व्यक्तित्व का एक पक्ष यह भी है कि वे हिन्दी मनीषियों की चुहलबाजी को भी अभिव्यक्ति देना नहीं भूलते । 'सुमन' जी युवाकाल की बीती घटनाओं का वर्णन ऐसा करते हैं कि जैसे वह कल की ही बात हो । 'सारिका' पत्रिका के सम्पादक श्री कन्हैयालाल नन्दन के नाम लिखे गये पत्र में उन्होनें हिन्दी मनीषियों की चुहलबाजी का नमूना पेश किया है । इस 'हास्य के केन्द्रबिन्दु बनारसीदास चतुर्वेदी' हैं ।[२०]

'सुमन' जी दूसरो को उनके अनुसार सम्मान भी देते थे । महापुरूषों के प्रति वे आदर और सम्मान की भावना रखते थे । जैसे - 'अपनी कविताओं में तो 'सुमन' जी ने महापुरूषो को कविता का विषय बनाया ही है, उनके निबन्ध और संस्मरण भी महापुरूषों के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटते दिखाई पड़ते हैं । साहित्य और संस्कृति के सात्विक परिवेश में डॉ. कर्णसिंह के मोहक व्यक्तित्व को 'सुमन' जी ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है ।''[२१]

'सुमन' जी में सरलता, विवेकपूर्णता का गुण था । वे अपने पर पड़ने वालों के प्रभाव और उनको नहीं भूलते, सहजता से और सरलता से उसे स्वीकार भी करते थे, यही उनकी महानता का परिचायक है । 'सुमन' जी व्यक्तित्व के निर्माण में अपने ऊपर पड़नेवाले प्रभावों की चर्चा करते हुए प्रसिद्धनारायण चौबे को व्यक्तिगत भेंटवार्ता में कहते हैं कि - ''मेरे ऊपर कई

प्रकार की अमिट छापें पड़ी है । १९३० के गांधी धरासना मार्च और नमक सत्याग्रह से प्रभावित होकर मैंने आन्दोलन में भाग लिया । फलस्वरूप मुझ पर स्वदेशी की धुन सवार हुई । १९३५ में मैं मार्क्सवाद से प्रभावित हुआ । काशी हिन्दी विश्वविद्यालय में महामना मालवीय जी का स्नेह मुझे प्राप्त रहा । एक तरह से मैं उनके परिवार का सदस्य हो गया था । उनके व्यक्तितत्व का मुझ पर भारी प्रभाव पड़ा है । पण्डित जवाहरलाल नहेरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ. सम्पूर्णानन्द, जेड. अहमद, डॉ. अशरफ़, रूस्तम सैटिन, आचार्य शुक्लजी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी राहुल सांस्कृत्यायन केशवप्रसाद मिश्र, आचार्य वाजयेपी आदि के स्नेह का मैं अधिकारी रहा हूँ । इन सबसे मैं प्रभावित हुआ हूँ। आचार्य द्विवेदी जी मुझे अपना मानस-शिष्य मानते थे । दिनकर की आत्मीयता, बच्चन की मैत्री, अज्ञेय की प्रगाढ़ ममता, निराला का दुलार, महादेवी का लाड़, पन्त का स्नेह, शिवरानी देवी का वात्सल्य और नहेरू का स्नेहाशीष मुझे प्राप्त थे - यह बहुतों की ईर्ष्या का कारण बना है । मेरे निर्माण में इन सबका प्रभाव है ।''[२२]

'सुमन' जी के व्यक्तितत्व के अनेक पहलू विद्यमान हैं, उनके व्यक्तितत्व की यही विविधता और विशिष्टता ही अनुकरणीय एवं अभ्यसनीय है । डॉ. प्रभाकर श्रोतिय के मतानुसार - 'सुमन' के व्यक्तितत्व में न उनकी नफीस ऊँगलियाँ आकर्षक है, न मसृण चर्म । उनके झूलते हुए बाँवरे केश और उनकी विशाल देह भी उनका व्यक्तितत्व नहीं है । 'सुमन' का सारा व्यक्तितत्व उनकी आँखों में है । संभ्रमित, आधी डूबी और आधी रहनुमाई से तर आँखों में, जो कपालों के ऊपर उठाव के निचले घेरों से करूणा के वृत्त बनाती है । यदि सुमन बहिर्मुखी है तो दर्पण ने उनसे अवश्य कहा होगा कि तुम वह हो जो तुम्हारी आँखे हैं।''[२३]

इस प्रकार 'सुमन' जी का आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व गहनता के साथ-साथ दर्शनीय एवं सरलता, सहजता और विवेकशीलता से सभर है । उनके बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व में वैसे समग्र दृष्टि से देखा जाय तो समानता दिखाई देती है । 'सुमन' जी के व्यक्तित्व को संपूर्णतया निष्कर्ष रूप में देखें तो डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि - ''डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन के बाहय और आन्तरिक व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करें, तो दोनों में एकरूपता झलकती है । 'सुमन' जी का बाह्य व्यक्तित्व जितना ही आकर्षक और मनमोहक है, उनसे कही अधिक वे अन्दर से उदार एवं दयालु है । किसी भी परिस्थिति से समझौता करने की कुशलता उनमें विद्यमान हैं । 'सुमन' जी देश एवं समाज से कभी भी अपने को अलग न कर सके । स्वदेश-प्रेम की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है । मानवतावादी विचारधारा होने के कारण किसी को दु:खी देखकर दु:खी हो जाना, तथा उसके दु:ख को दूर करने के लिए प्रयास करना उनका स्वभाव है । व्यक्तिगत स्वार्थ की उपेक्षा करके दूसरों की भलाई के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं । कवि और कुशल वक्ता के रूप में आज भी लोग याद करते हैं। उपर्युक्त गुणों के कारण हिन्दी साहित्य में 'सुमन' जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है ।''[२४]

२.५ 'शिव' शिवत्त्व में विलीन

सृष्टि में कुछ भी अगर सत्य है तो वह मृत्यु है, मृत्यु अनिवार्य है । दुनिया को छोड़कर सभी को एक दिन अनन्त यात्रा पर जाना है । परन्तु इस जीवन में कुछ ऐसा कर जाए जिससे यहाँ हमारा नाम रह जाए लोग याद करें, वैसे तो शिवतत्व में विलीन होना ही है । 'सुमन' जी उज्जैन में २७ नवम्बर, २००२ के दिन इस दुनिया को छोड़ कर अनन्त यात्रा पर चले गए। 'शिव' का सचमुच ही शिव तत्त्व में विलीनीकरण हो गया, वे अमर बन गए ।

२.६ शिवमंगलसिंह 'सुमन' का कृतित्व

'सुमन' जी का रचना संसार व्यापक है । मूल रूप से तो वह कवि ही हैं लेकिन उन्होंने नाटक और आलोचना पर भी अपनी कलम चलाई है । उनकी कृतियाँ इस प्रकार है -

२.६.१ काव्यसंग्रह :

(१) 'हिल्लोल' - सन् १९४० ई. में प्रकाशित ।

(२) 'जीवन के गान' - सन् १९४२ ई. में प्रकाशित ।

(३) 'युग का मोल' - सन् १९४२ ई. में प्रकाशित ।

(४) 'प्रलय सृजन' - सन् १९४४ ई. में प्रकाशित । दूसरा संस्करण सन् १९६९ ई. में प्रकाशित ।

(५) 'विश्वास बढ़ता ही गया' - सन् १९५५ ई. में प्रकाशित । दूसरा संस्करण सन् १९६९ में प्रकाशित - देव पुरस्कार से सम्मानित ।

(६) 'पर आँखें नहीं भरी' - सन् १९६६ ई. में प्रकाशित, दूसरा संस्करण सन् १९६९ में प्रकाशित ।

(७) 'विन्ध्य हिमालय' - सन् १९६६ ई. में प्रकाशित ।

(८) 'मिट्टी की बारात' - सन् १९७२ ई. में प्रकाशित । 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित ।

(९) 'वाणी की व्यथा' - सन् १९७० ई. से सन् १९८० ई. तक की कविताएँ संग्रहित हैं । सन् १९८० ई. में प्रकाशित ।

(१०) 'कटे अँगूठों की बन्दनवारे' : सन् १९९१ ई. में प्रकाशित ।

इस प्रकार 'सुमन' जी की काव्यरचना का विकास इन दस काव्य संग्रहो में हुआ । वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली द्वारा 'सुमन' समग्र खण्ड एक से पाँच 'सुमन' जी की समग्र साहित्यिक रचनाएँ संग्रहित हैं, उन्हें सन् १९९५ ई. और सन् १९६७ ई. में प्रकाशित किया गया है ।

२.६.२ नाटक

सुमनजी केवल कवि ही नहीं, अपितु गद्यकार भी रहे हैं, उन्होंने नाटक पर भी आपनी कलम चलाई है। सन् १९७४ ई. में उनका 'प्रकृति पुरूष कालिदास' नामक नाटक प्रकाशित हुआ । इसका पुनर्मुद्रण, और संस्करण पुनः सन् १९८१ ई. में हुआ । 'सुमन' जी ने इस नाटक में कालिदास को प्रकृतिपुरूष के रूप में चित्रित किया है ।'प्रकृति पुरूष कालिदास' का प्र. संस्करण स. १९७२ कैलाश पुस्तक सदन, पाटनकर बाज़ार, ग्वालियर-०१ से प्रकाशित हुआ था ।

२.६.३ गद्यग्रंथ आलोचना

'सुमन' जी ने गद्यग्रंथ के रूप में आलोचना पर अपनी कलम चलाई है । उनका एक मात्र आलोचना का गद्यग्रंथ है - 'महादेवी की काव्य-साधना' जो सन् १९५१ ई. में प्रकाशित हुआ था, जिसमें महादेवी की काव्य साधना पर उन्होंने टिप्पणी' की है । प्रथम सं. सम्वत् २००८ वि. विद्यामन्दिर प्रकाशन, मुरार (मध्य भारत) से प्रकाशित हुआ था ।

२.६.४ डी.लिट्. पदवी हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

'सुमन' जी ने अपनी डी.लिट्. की पदवी हेतु शोध प्रबंध लिखा, जिसका विषय था, 'गीतिकाव्य का उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य में उसकी

परम्परा' । उनको काशी हिन्दु विश्व विद्यालय वारासणी के सन् १९५० ई. में इस शोध-प्रबंध पर डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की उपाधि से सम्मानित किया । इसमें सम्वत् ९०० वि. से सम्वत् १९०० वि. तक की गीतिकाव्य की परम्परा का विवेचन है ।

२.६.५ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्ध एवं संस्मरण

'सुमन' जी की काव्येत्तर रचनाएँ 'कादम्बिनी', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'सारिका', 'धर्मयुग', आदि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी । 'सुमन' जी ने धर्म, संस्कृति, साहित्य, देशप्रेम आदि अनेक विषयों पर इन पत्र-पत्रिकाओं में अपने विचारों को प्रस्तुत किया था ।

२.६.६ अन्य रचनाएँ

'सुमन' जी की अन्य रचनाओं में आलोचना, यात्रा-वर्णन, संस्मरण, निबंध, काव्य संकलन आदि है, जैसे -

(१) 'हिन्दी गीतिकाव्य का विकास एवं मूल्यांकन'

(२) 'आज के लोकप्रिय कवि'

(३) 'सुमन संचयन' (निबन्ध)

(४) 'यात्रा संस्मरण' (वृत्त)

(५) 'मानव गा सकेगा' (नई कविताएँ)

उन्हों ने काव्य संकलन के रूप में भी साहित्य के सृजन का कार्य किया हैं, उनके काव्य संकलन है -

(१) 'सप्तपर्णा'

(२) 'मधुछन्दा'

(३) 'नविका'

(४) 'अनुपूर्वा'

(५) 'आधुनिक काव्यधारा'

(६) 'छायावादोत्तर काव्यधारा'

(७) 'मधदेवी की काव्य साधना'

इसके अतिरिक्त 'सुमन-समग्र' के पाँच भाग वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुए हैं जिसमें संपूर्ण कृतित्व संकलित है । इस प्रकार कवि 'सुमन' का रचना संसार विशात वैविध्यसभर एवं अनूठा है । अब हम उनकी सभी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे ।

२.७ सुमन की कृतियो का संक्षिप्त परिचय

(अ) काव्य-संग्रह

(१) 'हिल्लोल'

'सुमन' जी का प्रथम काव्य-संग्रह है 'हिल्लोल' । इस संग्रह में सन् १९३९ ई. तक की ५१ प्रारम्भिक रचनाओं का संकलन किया गया है । यह संग्रह सर्वप्रथम आचार्य केशवप्रसाद मिश्र की भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ । 'सुमन' जी की २३ वर्ष की अवस्था में प्रकाशित इस संकलन में मोज-मस्ती के गीत अधिक हैं । अधिकांश रचनाएँ कवि के छात्र-जीवन में लिखी गई है ।

समय के साथ-साथ कवि की भावनाओं और विचारधाराओं में परिवर्तन दिखाई देता है । यह संग्रह की कविताएँ यौवन या किशोरावस्था के उन्माद की कविताएँ हैं । हिल्लोल में कोई सुनिश्चित काव्यदर्शन या जीवन-दर्शन नहीं हैं, स्वतः ही कवि के हृदय में युवावस्था का जो उफान आया और भावनाएँ उमड़ पड़ी उसी का स्वाभाविक चित्रण किया गया है । स्वयं 'सुमन' जी इस संबंध में 'हिल्लोल' के लिए अपने विषय में लिखते हुए कहते है कि - ''अपने ही हृदय के विषय में कुछ कह सकूँगा, अथवा मुझे ही कुछ कह सकने का अधिकार भी है, यही मेरी समझ में नहीं आता । जीवन के सुख-दुःख, आशा निराशा पूर्ण क्षणों में प्राणों को मथकर जो भी अर्धस्फुट तुतले शब्द आवेशवश अथवा स्वभावतः निकल पडे है; बिना किसी आवरण के आपके समक्ष प्रस्तुत हैं ।''[२५] इसी संबंध में सुमनजी के शब्द देखिए -

''मेरे उर में जो निहित व्यथा, कविता तो उसकी एक कथा,
छंदो में रो गाकर ही मैं, क्षण भर को कुछ सुख पा जाता ।''[२६]

इस संग्रह में प्रेम, प्रेमजनित विरहानुभूति आदि का चित्रण हैं, इसमें जीवन-दर्शन भी उनका स्वतः ही उभर पड़ा है । प्रेम विरह के उन्माद भरे गीत गाने वाला कवि नियतिवाद और जीनव की क्षणभंगुरता की गंभीर विचारभूमि पर भी स्थित हो सका है । इस संबंध में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित का मत है कि ''हिल्लोल में कवि नियतिवादी भूमिका पर जीवन की क्षणभंगुरता का परिचय भी देता है ।'' [२७] इसकी पुष्टि हमें 'सुमन' जी के इन शब्दो में ही मिल जाती है -

''हम तुम दोनों में यौवन है,
दोनों में आकर्षण,
दोनो कल मुरझा जायेंगे,
कर क्षणभर मधुवर्षण ।''[२८]

'सुमन' जी ने इस संग्रह में प्रेम, मानवता, यौवन, विरह, चिंतन, दर्शन जीवन की क्षणभंगुरता आदि अनेक विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं । 'हिल्लोल' के लिए केशवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित आमुख में मिश्र जी ने लिखा है कि - ''सुमन में दार्शनिक तटस्था है, जिसका आभास उनकी पंक्तियों में यत्र-तत्र मिलता है । यह उनकी सहज अनुभूतियों का भागधेय है, संसर्गज विचारो का अपरिपक्व परिणाम नहीं ।''[२९] हिल्लोल का कवि मानवतावादी है फिर भी समजौतवादी भी उन्हें बनना पड़ा है, कारण है केवल परिस्थितियाँ । इस संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र लिखते हे कि - ''कवि संम्पूर्ण मानव जाति को सुखी देखकर वस्तुस्थिति से समझौता करता हुआ दिखाई पड़ता है ।''[३०] 'सुमन' जी की इन कविताओं में सच्चा अनुभूतिजन्य प्रेम चित्रण है । प्रसिद्धनारायण चौबेजी लिखते है कि - ''अनुभूति की भूमि पर ही उनकी कविता अपने वैभव का विस्तार करती है ।''[३१]

इस प्रकार 'सुमन' जी के इस काव्य संग्रह में उनके यौवन की अनुभूति मुखर होकर सामने आई है । यहाँ केवल उन्माद न होकर सत्ता चिंतन और विचारदर्शन भी है ।

(२) 'जीवन के गान'

'जीवन के गान' काव्यसंग्रह इक्यावन कविताओं को अपने कलेवर में समाहित करता है । सन् १९४१ ई. में इसका प्रकाशन हुआ । इसमे

सन् १९३९ ई. से जुलाई १८४२ ई. तक की कविताएँ संग्रहित हैं । 'हिल्लोल' की प्रणय भावना और काल्पनिक उड़ानों को छोड़कर कवि अब इस संकलन में जीवन और जगत की वास्तविकता का चित्रण करता है । यहाँ मानवता, प्रेम, जीवन-संदेश, जीवन-दर्शन, दलित चेतना, प्रगतिवादी विचारधारा, क्रांतिकारी भावना, ओजस्तिता, जीवन की यथार्थता और वास्तविकता के धरातल को छूने वाली कविताएँ है । 'हिल्लोल' की कोमल भूमि से हटकर जीवन के गान में कवि वास्तविकता की कठोर भूमि पर स्थित होता हुआ दिखाई देता है । कवि की वाणी में यहाँ वास्तविक्ता, यथार्थता ओजस्वी रूप में फूट पड़ी है । इसमें क्रांति का स्वर मुखर बनता हुआ दिखाई देता है । वीर रस प्रधान एक कविता के शब्द देखिएँ –

''आओ, उठो चलो जल्दी,
समरांगण में कुहराम मचाने,
पीकर जिसका दूध खड़े है,
उस माता की लाज बचाने,

वह देखो लग रहा समर में,
आज शहीदों का मेला है,
यह तो विप्लव की बेला है ।''[३२]

'जीवन के गान' में कवि दलितों की विजय, जीवन संघर्ष की विचारधारा को लेकर चलता है । इस संबंध में 'सुमन' जी का दृष्टिकोण देखने लायक है । सामाजिक जीवन की कुरीतियों, विकृतियों को और विषमताओं का भंडाफोड़ करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहा है ।

'सुमन' जी जीवन के गान की भूमिका में स्वयं ही लिखते है कि - ''जीवन के गान में मैं जीवन संघर्ष में दलित-वर्ग की विजय-कामना कर दूरसे बैठा स्वागत की तैयारियाँ करने वाला ही नहीं रहा हूँ । जीवन के गान में मुझे इतनी चेतना और मिली है कि मैं भी इस संघर्ष का एक अंग हूँ और उसमें सक्रिय भाग लेने के लिए, उनका उसका अभिन्न अंग बनने के लिए मैं सजग हो उठा हूँ और यह उदगार कि मेरा पथ मत रोको रानी'' आज कवि कैसी निराशा, विद्रोह करो - विद्रोह करो । उस संघर्ष में कूद पड़ने के पहले के संकल्प-विकल्पों के धोतक हैं ।''[३३]

'जीवन के गान' काव्य संकलन में कवि 'हिल्लोल' की अपेक्षा अधिक मुखर बना है । यहाँ कवि की वैचारिक परिपक्वता देखते ही बनती है । इस संग्रह की कविताएँ एक ऊच्च वैचारिक भावभूमि पर स्थित हुई दिखाई देती है । इन कविताओं के विचारबिन्दु सामाजिक परिवर्तन के सहायक सिद्ध होने में पूर्ण सक्षम है । डॉ. श्रोत्रिय का मत है कि - ''काव्य की दृष्टि से यह संग्रह लेखक के पिछले संग्रह से बहुत आगे हैं । भाषा अधिक संवरी है । शिल्प में सादगी के साथ शक्ति का संयोजन हुआ है । चित्र उपस्थित करने की क्षमता रही है । भावात्मक एवं वैचारिक दृष्टि से तो जीवन के गान 'सुमन' को नया परिवेश और अर्थ देते हैं ।''[३४]

इस संग्रह में 'सुमन' जी क्रांति और प्रलय की बात करते हुए मानवता और प्रेम की भी बात करते हैं । युग युग से शोषित और पीड़ित जनता में सुखमय जीवन की आशा भी वह बँधाते हैं। जब मानवता की विजय होगी तभी वसन्तरूपी सुख-समृद्धि आएगी, कवि के शब्द देखिए -

''युग युग से पीड़ित मानवता
सुख की साँसे भरती होगी
जब अपनी होंगे वन-उपवन
जब उजनी यह धरती होगी
तब समझूँगा आया वसन्त ।''[३५]

इस प्रकार इस संग्रह में प्रेम की परिपक्वता, जीवन संघर्ष, जीवन-संदेश, जीवन-दर्शन, मानवता, दलित-चेतना, प्रगतिशील विचारधारा के दर्शन होते है । 'सुमन'जी की इन कविताओं में विचार-पक्ष सबल रूप में उभरकर सामने आया है । यह 'सुमन' की विकासवादी प्रगतिशील सोच का दर्पण है ऐसा कहा जा सकता है ।

(३) 'प्रलय-सृजन'

'प्रलय सृजन' कृति 'सुमन' जी की तैतीस कविताओं का संग्रह है, सन् १९४० ई. और सन् १९४५ ई. के मध्य लिखी गई कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं । यह पुस्तक सर्वप्रथम राहुल सांस्कृत्यायन की भूमिका के साथ प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद से सन् १९४५ ई. में प्रकाशित हुई । जीवन के गान काव्य संग्रह की कविताओं की भावभूमि से इस संग्रह की साम्यता परिलक्षित होती है । इसमें कवि पूर्व काव्य संग्रहो से अधिक प्रोढ़ और संतुलित दिखाई देता है । इसमें परंपराएँ, रूढीवादिता और दकियानुसी विचारों का विरोध करके प्राचीन पूँजीवादी समाज को नष्ट करके समाज के नव-निर्माण और परिवर्तन की विचारधारा समाहित है । इस संबंध में राहुल सांस्कृत्यायन का मत हैं कि - 'प्रलय-सृजन' में कवि ने अपने आस-पास के संसार की अन्तर्वेदना को ही व्यक्त नहीं किया

और न केवल पीड़ितो के लिए आँसू बहा कर अन्तर्वेदना भर से ही संतोष कर लिया है, बल्कि उसे पीड़ा और दम घोंटने वाली परिस्थिति को बदलने का संदेश दिया है ।''[३६]

'सुमन' जी ने इस संग्रह में शोषक वर्ग पर करारा व्यंग्य किया है । जिस प्रकार से समाज में पूँजीवादी सभ्यता द्वारा शोषण-चक्र चल रहा है उससे सुमन भी कराह उठते हैं, वे मानते हैं कि सिर्फ़ बाते और विचार विमर्श करने से नहीं चलेगा, यह पूँजीवादी समाज सर्वहारा वर्ग को कभी भी उनके अधिकार नहीं देखा, उसके लिए एकमात्र उपाय क्रांति ही है, उन सभी का पर्दाफाश करके उनसे युद्ध ही एकमात्र उपाय है, सुमन के शब्द 'चल रही उसकी कुदाली' कविता के अंतर्गत देखिए जिसमें सुमन पूँजवादी के शोषणचक्र का पर्दाफाश करते हैं -

''लाल आँखे, खून पानी
यह प्रलय की ही निशानी
नेत्र अपना तीसरा क्या
खोलने की आज ठानी
क्या गया वह जान
शोषक-वर्ग की करतूत काली
चल रही उसकी कुदाली ।''[३७]

'सुमन' जी इस संग्रह की कविताओं में पूर्ण रूप से खिल उठे हैं । उनकी वाणी में प्रौढ़ता एवं प्रांजलता आगई है । 'सुमन' जी की विचार-धारा का परिमार्जित रूप दिखाई देता है, उसका प्रगतिवादी चेहरा हमें इस संग्रह की कविताओं में पूर्ण रूप से दिखाई देता है । 'सुमन' के विचार-पक्ष

की दृष्टि से यह संग्रह गहनतम विचारों से भरा पडा है । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी लिखते हैं कि - ''प्रलय-सृजन कवि 'सुमन' की ठोस विचार-धारा एवं अविचल निर्णय का प्रतीक काव्य-संग्रह है ।''[३८] कवि सुमन पूँजीपतियों और साम्राज्यवादीयों के साथ लड़ाई में शोषित वर्ग को सहारा देते हुए कहते है कि -

''ये हिंसक भेड़िये उड़ाने
चले सिंह का द्वारा
क्षय रोगी साम्राज्यवाद का
शेष यही उपचार
अबकी सबक सीख ले दुनिया
फिर न उठाये आँख
यह वे जिनकी मुई खाल से
लोह हुआ था राख ।''[३९]

'प्रलय-सृजन' क्रांतिकारी विचार धारा को स्पष्ट करता है । इस काव्य-संग्रह में समाज के नव-निर्माण, शोषण चक्र का विरोध, परिवर्तन शीलता, शोषितो का पक्ष, शोषको का विरोध और प्रगतिवादी विचारधारा समाहित है । इस संग्रह के संबंध में 'सुमन' जी के विचार पक्ष को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्धनारायण चौबे लिखते हैं कि - ''प्रलय-सृजन में कवि का विद्रोही स्वर फूटा है । जीवन की विषम परिस्थितियों को बदल देने के लिए कवि व्याकुल है । जब देश में 'भारत छोडो' आन्दोलन चल रहा था उसी समय कवि सोवियत रूस के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करता है ।

वस्तुतः कवि की साम्यवादी रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर भी मिला हुआ है । भारतीय स्वतंत्रता के साथ ही कवि यह भी चाहता है कि यहाँ सर्वहारा वर्ग का शासन हो ।'' [४०]

(४) 'विश्वास बढ़ता ही गया'

कवि 'सुमन' के विश्वास का प्रतीक यह 'विश्वास बढ़ता ही गया' काव्य संग्रह पच्चीस कविताओं का संग्रह है । यह संग्रह प्रगतिवादी युग की एक महान् उपलब्धि है । यह सुमन का वतुर्थ कविता-संग्रह है । सरस्वती प्रेस, बनारस से सन् १९५५ ई. में यह प्रकाशित हुआ । सन् १९४५ ई. से सन् १९५५ ई. के मध्य में लिखी गयी कविताओ का यह संकलन है । इसे मध्यप्रदेश शासन द्वारा 'देव पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था । इस संग्रह की कविताओं में समाजवादी शक्तियों का समर्थन करके साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियों की कटु आलोचना की गयी है और उनका विनाश करके नवीन प्रगतीशील समाज और संस्कृति की स्थापना करने का संकल्प व्यक्त किया गया है । सुमन शोषकों की पूँजीवादी और साम्राज्यवादी फाजिस्ट विचारधारा और वर्ग का विनाश कर देने की बात इस संग्रह की कविताओं में व्यक्त करत हैं । वे 'मैं बढ़ा ही जा रहा हूँ' कविता में कह उठते हैं कि -

''चाहता हूँ ध्वंस कर देता विषमता की कहानी
हो सुलभ सबको जगत् में वस्त्र, भोजन, अन्न-पानी ।[४१]

इसमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई हमें मिलती है । 'सुमन' अपने भारत के लिए न्यौछावर हैं । भारत को वह बार-बार नत मस्तक

होकर उनके प्रति समर्पित होना चाहते हैं । भारत को वह जन-जन का नायक सिद्ध करके कहना चाहते हैं कि भारत जनता की आशाओं का प्रतीक है, भाग्य विधाता है । वे 'नई' आग है, नई आग है' कविता में अपनी राष्ट्रीय भावना को उजागर करते हुए कहते हैं कि -

''भारत मेरे !
चालीस कोटि जनों के नायक
देश-देश की मूक पंगु
जनता की आशा भाग्य विधायक !
आओ, उठो करो तैयारी
बाकी अभी तुम्हारी बारी ।''[४२]

इस संग्रह में आशा, निराशा, उत्साह आदि भाव भी सम्मिलित हैं । साहित्यकारों के जीवन को सामाजिक परिप्रेक्ष में देखकर उनके प्रति श्रद्धाभाव भी अर्पित किया गया है । प्रेमचन्द और निराला के प्रति सुमन ने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं । सचमुच ही यह संग्रह 'सुमन' के द्रढविश्वास का प्रतीक हैं ।

(५) 'पर आँखे नहीं भरी'

'पर आँखे नहीं भरी' संग्रह में ४४ कविताएँ संकलित है । सर्व प्रथम राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ने इसे, प्रकाशित किया था । सन् १९६४ ई. में इसे 'नवीन पुरस्कार' प्रदान किया । यह पुस्तक कब प्रकाशित हुई, इसका स्पष्ट उल्लेख इस पुस्तक में नहीं हैं । इसका दूसरा संस्करण सन् १९६७ ई. में आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित

हुआ था । इस संकलन में 'सुमन' के सुंदर गीत हैं । यहाँ हमें 'सुमन' जी एक शुद्ध और सच्चे, सफल गीतकार के रूप में दिखाई देते हैं ।

इस संकलन की कविताओं को, अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि 'सुमन' जी अपनी पूर्व विचारधारा से मुडकर फिर से प्रेम और प्रकृति की और लौट आते हुए दिखाई देते है । यहाँ उनका वैयक्तिक रूप दिखाई देता है । इसमें वैयक्तिकता और आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ समसामयिक राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति प्रतिक्रिया, प्रणयभावना, करूणा, दया, ममता, प्रकृति-वर्णन, भी चित्रित हुए है । इसमें प्रणय की प्रौढ़ता दिखाई देती है ।

यहाँ कवि शारीरिक प्रेम की जगह आत्मिक और अशरीरी प्रेम का दर्शन करता है । कवि 'सुमन' का प्रणय अब लौकिक से पारलौकिकता की ओर बढ़ गया हो ऐसा प्रतीत होता है । 'मैं तुम्हे पहचानता हूँ', कविता के यह शब्द देखिए जिसमें कवि प्रेमी-प्रेमिका के प्रथम मिलन से ही परिचित भाव प्रकट करता है । अपितु यहाँ भी परोक्ष रूप से आत्मिक और पारलौकिक भावनाएँ ही सन्निहित है -

"चाँद-सूरज की तरह चलता,
न जाना रात-दिन है ?
किस तरह तुम गए मिल
आज भी कहना कठिन है ।।
तन न आया माँगने अभिसार,
मन ही जुड़ गया था ।"[४३]

'पर आँखे नहीं भरी' शीर्षक के अर्थ के संबंध में प्रसिद्धनारायण चौबे जी लिखते हैं कि – 'पर आँखे नहीं भरी का अर्थ है, भर आँखे नहीं देख पाना । प्रेयसी के दर्शन की आकांक्षा कभी शान्त नहीं होती । कवि प्रेयसी के सौन्दर्य में ही सब कुछ देख लेने और पा लेने का प्रयास करता है ।''[४४] इस संकलन में विश्वास, प्रेम, मानवता और जीवन-संदेश संबंधी विचार व्यक्त हुए हैं । महात्मा गांधी जी के प्रति 'सुमन' जी के मन में अपार श्रद्धाभाव है। 'वह चला गया' कविता के अंतर्गत वे अस्थिविसर्जन के समय बापू के प्रति अपने भावों को इन शब्दो में व्यक्त करते हैं –

''जिसने हमें जीवन दिया सोते से जगाया
जिसने अँधेरी रात में पथ हमको दिखाया
जिसने हमें हैवान से इन्सान बनाया
आज़ाद बनाया
आबाद बनाया
वह शान्ति-अहिंसा का पुजारी चला गया ।''[४५]

'पर आँखें नहीं भरी' संकलन के संबंध में प्रसिद्धनारायण चौबे टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि – ''प्रस्तुत संकलन में आज और माधुर्य का मिश्रित स्वर सुनाई पडता है । उत्तरार्ध में करूण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।'' [४६] 'पर आँखे नहीं भरी' नामक उत्तरार्ध में संकलित कविता में बापू के चले जाने से दु:ख और विषाद की जो स्थिति का निर्माण होता है, इसका चित्रण मार्मिक ढंग से 'सुमन' ने इसमें किया है । इस संग्रह की सभी कविताएँ उनकी संवेदनशीलता एवं भावनाशीलता का परिचय कराती है ।

(६) 'विन्ध्य हिमालय'

यह काव्य संग्रह आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से सर्वप्रथम सन् १९६६ ई. में प्रकाशित हुआ था । सन् १९५४ ई. से सन् १९६० ई. के मध्य लिखी गई कविताऐं इस संकलन में हैं । ४९ कविताएँ इसमें संकलित हैं । 'सुमन' जी के माल निवास एवं नेपाल प्रवास के समय उन्होंने प्रकृति के बीच रहकर जो अनुभूति की उसका चित्रण इसमें हैं । सन् १९५६ ई. से १९६० ई. तक 'सुमन' जी ने नेपाल स्थित भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक और सूचना सचिव के पद पर कार्य किया था, उसी समय में हिमालय की गोदी में प्रकृति के बीच कवि 'सुमन' की ह्रदय भावनाओं से उफान आ गया और उनकी प्रकृति निष्ठा जागृत हो गई । 'विन्ध्य-हिमालय' में सुमन का प्रकृति प्रेम दृष्टिगोचर होता हुआ दिखाई देता है । देश की मिट्टी से दूर रहकर कवि को अपनी भारत भूमि की मिट्टी की याद आती है और वे प्रकृति के माध्यम से अपनी राष्ट्रीय भावना भी उजागर करते हैं । कवि मालव निवास के समय विन्ध्य की प्राकृतिक सुष्मा से प्रभावित होकर गा उठता है । प्रस्तुत संकलन दो भागो में विभाजित हैं प्रथम 'विन्ध्य' और दूसरा 'हिमालय' । 'विन्ध्य' खण्ड में मध्यप्रदेश में लिखी गई प्रकृति प्रेम की कविताएँ हैं तो 'हिमालय' खण्ड में नेपाल प्रवास की हिमालय की प्रकृति प्रेम की कविताएँ है । हिमालय और विन्ध्याचल दोनों की प्राकृतिक सुषमा एवं ऐश्वर्य से वे प्रभावित होते हैं । कवि खुद कहते है कि - ''यह काव्य-संग्रह मालव-निवास और नेपाल-प्रवास की संचित स्मृतिराशि है ।''[४७] सुमन की प्रकृति निष्ठा उन्हीं के शब्दों में देखिए, जिसमें प्रकृति का मनोरम्य चित्र उन्होंने खींचा है -

''मधु माधव की डाल डाल पर
काम-विशिरव से छूटे,
कोयल के अरमान आम के,
रोम-रोम से फूटे,
मधुश्रतुपति के राजा मुकुट पर कलँगी लहारए ।''[४८]

'विन्ध्य' खण्ड में प्रकृति के माध्यम से जीवन के उल्लासमय पक्ष का उद्‌घाटन किया गया है । इसमें वसन्त की शोभा को कवि ने पूर्ण रूप से प्रकट किया है । इसमें प्रेम, विरह, मिलन की भावनाओं से भरपूर कविताएँ अनेक है तो साथ-साथ मानवतावादी विचारधारा एवं राष्ट्रीयता के विचार-पक्ष को उजागर करने वाली कविताएँ भी हैं । प्रयोगवादी शैली से भर कविताएँ भी है जिसमें प्रकृति के विशादपूर्ण एवं सौम्य दोनों प्रकार के चित्रों की अभिव्यक्ति हुई है । 'हिमालय' खण्ड में वियोग की भावना से व्यक्त कविताएँ समाहित है । इसमें पारिवारिक भावभूमि से लिप्त कविताएँ भी समाहित हैं । विन्ध्य- हिमालय के संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र लिखते हैं कि - ''विन्ध्य-हिमालय में कवि के विचार और चिंतन की नयी दिशाएँ सामने आयी हैं ।''[४९]

(७) 'मिट्‌टी की बारात'

यह काव्यसंग्रह सुमन का सातवाँ काव्यसंग्रह है । सन् १९६१ ई. से सन् १९७० ई. तक की ७२ कविताएँ संकलित हैं । राजकलम प्रकाशन, दिल्ली से सन् १९७५ ई. में यह पुस्तक सर्वप्रथम प्रकाशित हुई । सन् १९७५ में इसे 'साहित्य एकादमी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया था । यह संग्रह एक काव्य-रूपक है । जवाहरलाल नहेरू और कलम नहेरू

के फूलों (अन्तिम अवशेषों) की यह गौरव गाथा है । नहेरू ने अपनी पत्नी के अन्तिम अवशेषों को सुरक्षित रखा था । जब नहेरू की मृत्यु हुई तब दोनों के अन्तिम अवशेषों को एक साथ सिन्धु में बहाया गया । पूरे संग्रह में 'मिट्टी की बारात' एक शीर्षक एक प्रतीक है । यह प्रतीक संग्रह की संपूर्ण कविताओं में प्रतिनिधित्व करता है । इसमें कविताओं में जीवन-दर्शन है, मिट्टी की महिमा वर्णित है । इस संकलन में कवि 'सुमन' का जीवन-दर्शन प्रकट हुआ है, वे लिखते हैं कि - ''जन्म-मरण के चक्कर से छुट सकना कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है । कभी जीने और कभी मरने में ही सच्चा मज़ा है । शाश्वत शान्ति के भ्रम में गिने-चुने जीवंत क्षणों को गुमाने की बेवकूफी करने वाले मरने के बाद भी पछताते होंगे... 'मिट्टी की बारत' में मैने - जीवन की इस विराटता को जड़ चेतन के सूक्ष्म सम्बन्धों द्वारा पकड़ने का प्रयत्न किया है, पर जैसे उसकी अब चेतना हाथ में आते आते रह गई ।''[५०]

इस, संग्रह की कविताओं को छः भागों में विभाजित किया गाय है, जैसे - (१) माता भूमि : पुत्रो अहं पृथिव्या, (२) मुक्तसंग : समाचार, (३) देवहिंत पदायुः, (४) आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः, (५) हतो वा प्राप्यसि स्वर्ग, (६) परिशिष्ठ । प्रथम भाग में सत्रह कविताएँ है । इसकी प्रतिनिधि कविताएँ 'मिट्टी की बारात' की है । इस संग्रह में मूलतः दो आत्माओं के मिलन और पुनित प्रेम के बन्धन को व्यक्त किया गया है । शाश्वत पुरूष और शाश्वत नारी के रूपक को इसमें रूपायित किया गया है । डॉ. एस. शेषारत्नम् का इस काव्य संग्रह के सम्बन्ध में मत है कि - 'मिट्टी की बारात' शीर्षक कविता

इस लिए अन्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ी है, कि उसमें दो आत्माओं के पुनीत प्रेम का बन्धन व्यक्त किया गया है । अपनी प्रियतमा कमला नहेरू के निधन के बाद उसके भस्मावशेषों को जवाहरलाल नेहरू ने सुरक्षित इस लिए रखा कि इस संसार की अन्तिमयात्रा के बाद दोनों की मिट्‌टी साथ-साथ महाप्रयाण करेगी और साथ-साथ प्रवाहित होकर सिन्धु में मिल जायेगी ।''[५१] इस संग्रह में राष्ट्रीयता के विचार-पक्ष को भी स्थान मिला है साथ-साथ दार्शनिकता, आध्यात्मिकता, मानवता, संदेश, महापुरूषो का गुणगान, नारी-पुरूष समानता, क्षणवाद, समय का महत्त्व, मार्क्स और लेनिन के विचार, प्रगतिवादी विचार आदि अनेक विषयों पर कवि का चिन्तन प्रकट हुआ है । समाज में बढ़ती हुई असमानता, अव्यवस्था को देखकर कवि कहता हैं कि -

''समय के साथ - साथ स्वप्न हुए सपने भी
गैर तो गैर ही थे, गैर हुए अपने भी
नाम समता के सभी स्वार्थ समासीन हुए
धनी धनी हुए तो दीन ओर दीन हुए ।'' [५२]

(८) 'वाणी की व्यथा'

कवि 'सुमन' की आँठवी काव्यकृति 'वाणी की व्यथा' में सन् १८७२ ई. से सन् १९८० ई. के मध्य लिखी गई ४२ कविताएँ संकलित है । यह पुस्तक सन् १९८० ई. के अन्त में राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली से प्रकाशित हुई थी हिन्दी की काव्यधारा में समय-समय परिवर्तन होते रहते हैं । कवि 'सुमन' की विचारधारा में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं । इस काव्य संकलन का मुख्य विषय समाज की समसामयिक वर्तमान स्थिति का चित्रण है । महात्मा गांधी के बताये हुए

मार्ग पर न चलने के कारण कवि देशवासियों पर खिन्न है, उन्हें इस बाल का दु:ख है कि विश्व मानव बापू के चिन्तन और दर्शन को आज देशवासी भूल गए है । 'प्रायश्चित' कविता में कवि की यह पीड़ा व्यक्त हुई है । बुद्ध, महावीर, ईसा आदि महापुरूषो के गुण एक ही वैश्विक मानव-चेतना में बापू में थे, कवि के शब्द देखिए -

''बुद्ध की करूणा
अहिंसा महावीर की
ईसा का संवेदन
उतरे थे एक साथ धरती पर ।''[५३]

गाँधी जी ने राम राज्य का सपना देखा था, उस राज्य में समानता, प्रेम और अहिंसा होगी ऐसी आशा बापू को थी परंतु आज हम देखते हैं कि उनका यह सपना केवल सपना ही रह गया है । उनका विचार था, प्रजातंत्र को किसी पर भी थोपा नहीं जा सकता, नवीनता अपने आप उसमे से उत्पन्न होगी, उनको अपने आप विकसित होने दो, पलने दो, कवि के शब्द देखिए

''प्रजातन्त्र ऊपर से लादो मत,
फूटने दो नई फसल
धरतीकी कोख से
भारत के ग्रामो को
पहले उजागर करो
दिल्ली जगमगाने दी
उसकी ही ज्योति से ।''[५४]

इस काव्य-संकलन में मूलतः कवि की विचार-धारा गहनता से फूट पड़ी हैं । कवि का चिन्तन समाज सापेक्ष अधिक रहा है । कवि ने भारतीयता, वर्तमान दयनीय अवस्था, सामाजिकता, प्रगतिशीलता इसमें व्यक्त की है । गाँधी का जीवन दर्शन और विचारधारा कवि नें इस काव्य संकलन में व्यक्त की हैं । वर्तमान सामाजिक परिवेश को वह चित्रित करने में सफल रहे हैं । ऐसा कहा जा सकता हैं कि कवि 'सुमन' का आन्तरिक भावना पूर्ण हृदय उनकी सामाजिकता के रूप में इस काव्य संग्रह में उमड़ पडा है । यहाँ हमें असली 'सुमन' के दर्शन होते हैं । इस संग्रह की काव्य रचनाओं का विचार-पक्ष गहन सबल और प्रभावशाली है जो समाज की दिशा और दशा परिवर्तित करने में पूर्ण सक्षम है ।

(९) 'कटे अँगूठों की बन्दनबारें'

यह काव्य संग्रह सुमन का एक नवीनत्तम काव्य संग्रह है । यह संग्रह राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से सन् १९९१ ई. में प्रकाशित हुआ था । इसमें मूलतः सन् १९८० ई. से सन् १९९१ ई. तक के मध्य की कविताएँ संकतिल हैं । ऐसा कहा जा सकता है कि इस संग्रह में संकलित कविताएँ सुमन के जीवन के अंतिम समय की अनुभवराशि का खज़ाना है । 'सुमन' के समग्र जीवन के अनुभवों से संचित होकर यह संग्रह एक नवीनतम काव्यकृति बन पायी है । इस संग्रह को परिशिष्ट भी कहा जा सकता है । यह काव्य संग्रह हरिवंशराय बच्चन को समर्पित हैं । 'विज्ञप्ति' में 'सुमन' ने स्वयं लिखा है कि - ''इस संग्रह का बच्चनजी को समर्पण भी साभिप्राय

है । उसके मूल में हम दोनों की दीर्घकालीन प्रगाढ मैत्री तो है ही पर उनके प्राणवंत अवदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन भी है । बच्चन ने भाव, भाषा और अभिव्यक्ति को जीवन के ज्वलंत स्वरूप से जोड़कर काव्य के विस्मय शोधक स्वरूप को सहज और सहृदय-संवेद्य बना दिया । दैनन्दिन जीवन से चुने हुए उनके बिम्ब अनुभूति की आँच में द्रवित भाषा के सहारे जनमानस के उच्छासों और उल्लासों के पाथेय बन गए ।'' (विज्ञप्ति - कटे अँगूठों की बदनवारें)

इस काव्यसंग्रह के नामकरण के पीछे एक ऐतिहासिक कहानी जुड़ी हुई है । यह रचना जब रचनाकार ने रचित की तब उनके विचारमंथन से जो वैचारिक पीयुष निकला उनका यह परिणाम है । मध्यप्रदेश के 'झाबुआ' और 'अलीराजपुर' के आदिवासी इलाके के भील सहसंधान में अँगूठे का प्रयोग नहीं करते, केवल चार अँगुलियों से ही प्रत्यंचा खींच कर अचूक लक्ष्यवेध करने की उनकी क्षमता विस्मय उत्पन्न करने वाली है । वे सिर्फ इतना जानते हैं कि उनके यहाँ अँगूठे का प्रयोग वर्जित है । महाभारत की कथा से जूड़े 'एकलव्य' के कटे अँगूठे के स्वाभिमान संरक्षण की ऐसी प्राणवंत परम्परा स्वयं में ही अनन्य है । युगों पूर्व इनके पूर्वज 'एकलव्य' का अँगूठा गुरू दौणाचार्य ने कटवा लिया था । तब से आज तक उनकी सन्तानों ने उसका प्रयोग न करने का संकल्प किस धैर्य और साहस के साथ निभाया है । अशिक्षित और असभ्य कहे जानेवाले सर्वहारा वर्ग का अर्थात दलित शोषित, पीड़ित ऐसे बहुजन का यह स्वाभिमान एवं अस्मिता हैं जिनको देखकर कवि 'सुमन' का हृदय द्रवित हो जाता है और कविता बनकर फूट पड़ता है कि -

''जीवित है जिजीविषा
सौ -सौ अभावों के बीच
सदियों को रौंद-रौंद
शैरव की छाती पर ।''[५५]

इन कविताओं के पहले 'सुमन' का मानवतावादी स्वर उतना तीव्र नही था जितना इस संग्रह की कविताओं में है । इस संग्रह में 'सुमन' का मानवतावादी स्वर प्रखर एवं प्रभावशाली रूप में उभर पड़ा है। 'सुमन' ने इस संग्रह में मानवतावाद, विश्वमानवता, साम्प्रदायिकता का विरोध, मनुष्य की स्वार्थवृत्ति का विरोध, निस्वार्थता, शान्ति की तलाश, जीवन संदेश, ममता की प्रतिष्ठा, दाम्पत्यप्रेम, प्रगतिवादी विचार, सर्वहारा वर्ग का पक्ष आदि अनेक विषयों पर चिन्तन किया है । कवि ने जिस समाज, देश और दुनिया के लिए मनुष्यो के लिए जो स्वप्न देखे थे वे आज भी पूरे नहीं हुए हैं, इसका दु:ख व्यक्त किया है । अपितु अब भी उन स्वप्नों की पूर्णता को देखने के लिए प्रतिक्षारत है -

''स्वप्न मैने जो जवानी में संजोए
आज भी पथ पर अधूरे हों पडे हैं;
टोह मंजिल की जताने के बहाने
राह में पत्थर यथावत् ही गड़े है ।''[५६]

आज के इस आतंककारीयों के युग की माँग मानवता वादी विचारधारा है । आज सच पुछो तो मानवतावादी आन्दोलन की अधिक आवश्यकता हैं । विश्वमानव की परिकल्पना को देखते हुए 'सुमन'जी कहते हैं कि -

''विश्वमानव की नयी परिकल्पना
पहचानने में ही हमारी खैर
बुजदिले आतंक के होते नहीं पैर ।''[५७]

यह काव्य संग्रह सचमुच ही 'सुमन' के समग्र साहित्य सृर्जन की एक उपलब्धि कहा जा सकता है । इस संकलन की कविताओं का, विचार-पक्ष इतना सबल है कि 'सुमन' की विचारधारा की राशि में चार-चाँद लगा देते हैं । 'सुमन' का गहनतम चिन्तन इसमें हमे दिखाई देता है । सचमुच ही यह संकलन उनके सभी काव्य संकलनों में श्रेष्ठत्तम उपलब्धि मानी जानी चाहिए ऐसा मेरा मत है ।

२.७.२ 'सुमन' की पद्यकृतियाँ

(१) 'गीतिकाव्य का उद्गम और विकास तथा हिन्दी साहित्य में उसकी परम्परा'

प्रस्तुत विषय पर डि.लिट्. पदवी हेतु शोध-प्रबन्ध 'सुमन'जी ने काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में सन् १९४८ ई. में प्रस्तुत किया था । इसे प्रबन्ध में सम्वत् ९०० से १९०० विक्रमी तक की गीतिकाव्य की परम्परा का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इसका विषय बहुत ही विस्तृत हैं अतः इनके दो भाग किए गए है - (१) गीतिकाव्य का उद्गम और विकास तथा (२) हिन्दी साहित्य में उसकी परम्परा । यह शोध प्रबंध कुलमिलाकर दस प्रकरणों में विभाजित किया गया है । प्रथम प्रकरण में गीतों की आदिम अभिव्यक्ति तथा गीतिकाव्य के स्वरूप और विकास की समीक्षा की गई है । द्वितीय एवं तृतीय

प्रकरण में पाली, प्राकृत, अपभ्रंष एवं पुरानी हिन्दी में गीतिकाव्य का विकास दिखाया गया है । चतुर्थ एवं पंचम प्रकरणों में हिन्दी गीतिकाव्य की प्रस्तावना के अन्तर्गत वज्रयानी सिद्धों के गीत और दोहे तथा नाथपन्थी योगियों की साधनाओं की पदावली की पृष्ठभूमि विकास तथा प्रभाव की समीक्षा प्रस्तुत की गई है । अष्टम् एवं नवम् प्रकरणों के अन्तर्गत रामभक्ति काव्य और कृष्णभक्ति काव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य का गहन विवेचन प्रस्तुत किया गया है । दशम् प्रकरण में रीतिकालीन काव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य का ह्रास दिखाया गया है । नवम् प्रकरण तक लेखक ने गीतिकाव्य की लोक साहित्य से प्रभावित जिस परम्परा का निर्देश किया है, वह रीतिकाल तक आकर समाप्त हो जाती है । गीतकाव्य का विकास यहाँ तक आकर अवरूद्ध हो जाता है । अत: लेखक ने विक्रम सम्वत् ९०० से १९०० के अन्तर्गत उन्हें सीमित कर दिया है । लेखक ने यह स्पष्ट करते हुए अन्त में कहाँ है कि गीतिकाव्य के द्वितीय उत्पादन का अध्ययन भविष्य में प्रस्तुत करेंगा जिस में भारतीय के साथ विदेशी परम्परा का भी निरूपण होगा । इस तरह 'सुमन' ने गीतिकाव्य के क्षेत्र में एक सराहनीय शोधकार्य किया है ।

(२) 'महादेवी की काव्य-साधना'

'सुमन' का यह एक आलोचनात्मक ग्रंथ है । यह ग्रंथ सर्वप्रथम सम्वत् २००८ में विद्यामन्दिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर) से प्रकाशित हुआ था । 'सुमन' जी ने इसे सन् १९४०-४१ ई. में ही लिखा था । पुस्तक के प्रारम्भ में ही प्रकाशक ने यह लिखा है कि -

''यह पुस्तक कुछ वर्ष पूर्व लिखी गयी थी । हम चाहते है कि लेखक इसे एक बार दुहरा देते, परन्तु अपने व्यस्त जीवन में से वे इतना समय न निकाल सके और हमने इसे अधिक रोक रखना उचित न समझा, अतएव यह पाठकों के सामने हैं ।''[५८] हमें इस पुस्तक को समयावधि के संदर्भ में देखकर ही चलना होगा क्योंकि परिस्थितियों के अनुरूप मर्यादाएँ भी सामने हो सकती है अत: उन मर्यादाओं को सामने रखकर इसे देखा जाना चाहिए । नौ शीर्षको में यह पुस्तक बँटी हुई है । लेखक ने वर्तमान हिन्दी काव्य का सर्वप्रथम सामान्य परिचय दिया है । और बाद में महादेवी वर्मा के काव्य का भावपक्ष एवं कलापक्ष प्रस्तुत किया है । 'सुमन' जी के अनुसार महादेवी वर्मा के रहस्यवाद का मूलतत्त्व अद्वैतवाद ही है । लेखक महादेवी वर्मा की दु:खवादी भावना के दो मुख्यकारण बताते है (१) युग के नैराश्यपूर्ण जीवन की छाया और (२) बुद्ध भगवान के तत्वज्ञान का प्रभाव । इस पुस्तक में लेखक ने महादेवी के प्रारम्भिक गीतों से लेकर सांध्यगीत तक की रचनाओं के आधार पर आलोचनात्मक विवेचन किया है ।

(३) 'प्रकृति-पुरूष कालिदास' (नाटक)

यह नाटक तीस पृष्ठों में विभक्त हैं । इसमें केवल एक अंक और तीन ही दृश्य हैं । इस नाटक में नाटककार सुमन का मुख्य उद्देश्य कालिदास के प्रकृति-प्रेम और प्रकृति-निष्ठा को प्रकाश में लाना हैं । यह नाटक सर्व प्रथम सन् १९७२ ई. मे कैलाश पुस्तक सदन ग्वालियर से प्रकाशित हुआ था । इसका दूसरा संस्करण सन्

१९८१ ई. में प्रकाशित हुआ था । इस नाटक की भूमिका में स्वयं सुमन ने लिखा है कि –''प्रकृति–पुरूष कालिदास किसी सांख्य सिद्धान्त की व्याख्या का विस्फोट नहीं वरन् महाकवि की मर्म–मधुर सतरंगी संवेदना की झलक मात्र प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास है ।'' कालिदास को एक प्रकृति–पुरूष के रूप में इस नाटक में 'सुमन' प्रस्तुत करते है । कवि 'सुमन' कालिदास की प्रकृति निष्ठा से प्रभावित दिखाई देते हैं ।

(४) पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित – निबन्ध एवं संस्मरण

शिवमंगल सिंह 'सुमन' की निबन्ध एवं संस्मरण रचनाएँ अलग–अलग पत्रिकाओं में समयानुसार छपती रहती थी । ये पत्रिकाएँ है 'कादम्बिनी', 'साप्ताहिक', 'हिन्दुस्तान', 'सारिका', 'धर्मयुग' आदि । 'सुमन' ने 'दिनकर' व्याख्यानमाला के अन्तर्गत व्याख्यान २५ अप्रैल सन् १९७७ ई. को राष्ट्रीय संग्रहालय सभागार, जनपथ, नई दिल्ली में दिया था, जिसका विषय था – ''भारत की सांस्कृतिक परम्परा में दिनकर का योगदान'' यह व्याख्यान बाद में साहित्य और समाज नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ । इसमे 'सुमन' ने भारतीय संस्कृति की विशेषताओ को उजागर करके दिनकर को एक सांस्कृतिक संवाहक के रूप में प्रस्तुत किया था । लेखक ने भारतीय सांस्कृतिक विशेषताओं के विकास में दिनकर के योगदान को प्रस्तुत किया । इसमें लेखक सुमन ने कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, निराला आदि के योगदान पर भी प्रकाश डाला था । 'सुमन' के जीवन के अनुभवों को, उन्होंने 'जिन्दगी और मौत के दस्तावेज' विषय को 'सारिका' पत्र विशेषांक

(वर्ष-११, अंक ३०६, १ से १५ अप्रैल-१९८२ पृ. १२-१३) में प्रस्तुत किया था । निराला के प्रति उनकी श्रद्धा को अपने 'संस्मरण', 'शिमला का स्मरणीय साहित्य सम्मेलन (१९३८)' ('सारिका' (संस्मरण-विशेषांक एक वर्ष-२१, अंक २८२, १ से १५ अप्रेल, १९८१, पृ. १२-१६) में प्रस्तुत किया था । इस प्रकार 'सुमन' जी ने गद्य लेखन भी गहनता एवं सागर्भितता की दृष्टि से किया है । वे अच्छे लेखक रहे हैं यह इससे फलित होता है ।

(५) एम. ए. की परीक्षा में एक प्रश्न-पत्र के स्थान पर शिवमंगल सिंह 'सुमन' के कृतित्व पर लिखे गए लघु शोध-प्रबंध (अप्रकाशित)

'सुमन' जी के कृतित्व पर निम्नलिखित विषयो को लेकर अनुसंधान कार्य हुआ है और हो रहा है ऐसे अप्रकाशित पूर्ण एवं अपूर्ण लघु शोध-प्रबन्ध की सूची निम्नलिखित हैं -

(१) ''शिवमंगलसिंह 'सुमन' व्यक्तित्व और कृतित्व'', शीला जैन, पंजाब विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक (हरियाणा) सन् १९६८-६९ ई. ।

(२) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में संस्कृति का स्वरूप'', श्यामकृष्ण मिश्र; विक्रम विश्वविद्यलाय, उज्जैन, सन् १९७० ई. ।

(३) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की काव्यधारा एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण'', नारायण नम्पुतिरी पी. एम., कोचीन विश्वविद्यालय कोचीन, (केरल) सन् १९७२ ई. ।

(४) ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' व्यक्तित्व एवं कृतित्व'', श्रीमति रवीन्द्र कौर; गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात) सन् - १९९० ई. ।

(५) ''श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' के सर्जनातमक कृतित्व का समीक्षात्मक अध्ययन (शैली विज्ञान के संदर्भ में), श्री नटवरलाल मगनलाल उपाध्याय; सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, (गुजरात) में पंजीकृत ।

(६) ''डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रगतिवाद के विशेष संदर्भ में), श्री एन. एल. उपाध्याय; सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, (गुजरात) में पंजीकृत ।

इस प्रकार 'सुमन' जी के कृतित्व पर प्रचुर मात्रा में संशोधनकार्य हुआ है और हो रहा है । उनका कृतित्व इतना विशिष्ट और विचार प्रधान एवं प्रभावशाली हैं कि आगे भी उन पर कार्य जारी रहेगा, जिससे कि नित-नये विचार उनमें से समाज और साहित्य को मिलते रहें और मार्गदर्शन करते रहें।

२.८ निष्कर्ष

कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' सचमुच ही शिवत्व को प्राप्त किए हुए एक सच्चे साक्षर थे, ऐसा हम उसके समग्र जीवन और साहित्य के अध्धयन के फलस्वरूप कह सकते हैं । 'सुमन' पर उस समय की समसामयिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव रहा जो समय-समय पर उनके साहित्य में अवतरित होता रहा है । 'सुमन' किसी वाद के घेरे में न बंधकर स्वतंत्र रूप से स्थल, समय,

परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक उपादेयता को ध्यान में रखकर साहित्य सृजन करते रहे हैं । जब युवावस्था में थे तब स्वाभाविक रूप से यौवन एवं कल्पनाप्रचुर विचार पक्ष उनके काव्य में समाविष्ट हो गया और फिर धीरे-धीरे उनका काव्य विकास प्रगतिशील होता गया । प्रौढ़ हुए तब समाज की दासता एवं दयनीयता को देखकर उनका कवि हृदय द्रवित हुआ और दीन-दलित जनों के प्रति उनकी सहानुभूति और सहृदयता दिखाई दी प्रगतिवादी विचारधारा सम्पन्न काव्यों में । जब उनमें से बाहर आए तो जीवन के अनुभवों को लेकर उनका जीवन-दर्शन प्रकाश में आया और उनके काव्यों में जीवन-दर्शन प्रकाशित हुआ ।

कवि 'सुमन' जी संपूर्ण जीवन को भोगा, अनुभव किया उसका निष्कर्ष उनकी सभी काव्य रचनाओं में दिखाई देता है । उनके साहित्य में सच्चाई है, विचारों की गहनता है, सहृद एवं सहानुभूति का पुट है । उनका काव्य कोई काल्पनिक उड़ान नहीं, अपितु एक भोगा हुआ सत्य ही है, और यह बात यथार्थ ही है कि वही सच्चा साहित्यकार हैं जो भोगा हुआ, अनुभूत सत्य ही अपने साहित्य में प्रकाशित करें ।

'सुमन' जी के काव्य के अलावा उनके लेखन कार्य मे भी उतनी ही वैचारिक गहनता है जितनी उनकी काव्य रचनाओं में है, एक कवि के अलावा वे एक गद्यकार के रूप में भी सफल बन सके हैं यही उनको साहित्य के सच्चे जीव के रूप में हमारे सामने उपस्थित करता है । 'सुमन' जी सचमुच ही एक सफल साहित्यकार हैं, एक सफल एवं सच्चे कवि है ऐसा हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं । अन्त में 'सुमन' जी के संबंध में कन्हैयालाल वर्मा के इन शब्दों को रखकर 'सुमन' जी के संबं धमें प्रकाश डाल सकते हैं वे सुमन जी के

संबंध में लिखते है कि – 'सुमन' जी आधुनिक युग के सुकुमार कवि है । आपकी काव्य–प्रतिभा कैशोर्य काल में ही दिखाई पड़ने लगी थी । प्रारम्भिक रचनाएँ सौन्दर्य और रोमानीपन में डूबी हुई दिखती है, किन्तु विचारों की प्रौढ़ता के साथ ही साथ कवि प्रगतिशील विचार धारा का पक्षपाती हो गया । यों तो आप बहुत भावुक हैं, किन्तु आपका बौद्धिक रूझान आपको पिछड़े वर्ग की दयनीय दशा की ओर खींच ले जाता है । काव्य में जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण आपकी रचनाओं में मिलता है ।[५८] इस प्रकार वर्माजी ने 'सुमन' के जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक की समीक्षा और उनकी विचारधारा एवं साहित्य सृजन के प्रति यथार्थ विचार रखें है । निष्कर्षत: हम भी यह कह सकते है कि शिवमंगलसिंह 'सुमन' के काव्य उनके जीवन अनुभवों का यथार्थ चित्रण हुआ है । आगे के अध्यायों में 'सुमन' जी के काव्य के विचार पक्ष के संदर्भ में गहन एवं विशद चर्चा हम करेंगे ।

संदर्भसूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	९४
२.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	९५
३.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	९५
४.	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०५
५.	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०५
६.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुरपनेनि शेषारत्नम्	०९
७.	'हिल्लोल' शिवमंगल सिंह 'सुमन'		८३
८.	'सुमन' : मनुष्य और श्रष्टा	डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय	०४
९.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०५
१०.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय शिवमंगल सिंह' 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण मिश्र	०६
११.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०६

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१२.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०६-०७
१३	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०७
१४.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०७
१५.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	०८
१६.	'सुमन' : मनुष्य और श्रष्टा	डॉ. प्रभाकंर श्रोत्रिय	१४
१७.	'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२२
१८.	'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१५
१९.	'कादम्बिनी' पत्रिका	मई, १७९८	९०-९५
२०.	'सारिका' (पत्रविशेषांक)	वर्ष २२, अंक-३०६ अप्रैल-१९८२	१२-१३
२१.	'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'	१५-२१ मार्च, सन् १९८१	१८-१९
२२.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय शिवमंगलसिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	९९
२३.	'सुमन' : मनुष्य और श्रष्टा'	डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय	३२
२४.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रविन्द्रनाथ मिश्र	१०
२५.	'सुमन' समदा - ०१ (परिशिष्ट)	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	३७०
२६.	'हिल्लोल'	शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२२

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
२७.	'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि	डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' आनन्दप्रकाश दीक्षित	०५
२८.	'हिल्लोल'	शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१
२९.	'सुमन' समग्र – ०१ परिशिष्ट	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	३६९
३०.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रविन्द्रनाथ मिश्र	१७
३१.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगलसिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	१०५
३२.	'जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	४१
३३.	'जीवन के गान' (भूमिका)	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४
३४.	'सुमन' मनुष्य और श्रेष्टा	डॉ. प्रभाकर	५१
३५.	'जीवन' के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३८४
३६.	'सुमन-समग्र' ०१ (प्राक्कथन) प्रलय-सृजन)	राहुल सांकृत्थापन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	३८४
३७.	'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३
३८.	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१९
३९.	'प्रलय-सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६०-६१
४०.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्ध नारायण चौबे	११८-११९
४१.	'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	०६

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
४२.	'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३०-३१
४३.	'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	०२-०३
४४.	लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	१२६
४५.	'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११२
४६.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्ध नारायण चौबे	१२९
४७.	'विन्धेय हिमालय' (संकेत)	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	०१
४८.	'विन्धेय हिमालय' (संकेत)	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४
४९.	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	२४
५०.	'मिट्टी की बारात' (संकेत)	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	०६
५१.	'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व'	डॉ. सुरेपनी शेषारत्नम्	१८
५२.	'मिट्टी की बारात' (संकेत)	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१४६
५३.	'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७
५४.	'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८
५५.	कटे अँगूठों की बन्दनबारे'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७
५६.	कटे अँगूठों की बन्दनबारे'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१
५७.	कटे अँगूठों की बन्दनबारे'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३
५८.	'काव्यमंजूषा'	संपादक - कन्हैयालाल वर्मा	६२

तृतीय अध्याय

''शिवमंगल सिंह 'सुमन' : समकालीन परिवेश''

३.१ भूमिका

३.२ साहित्य और समाज

३.३ साहित्य और परिवेश

३.४ शिवमंगल सिंह 'सुमन' : समकालीन परिवेश

- ३.४.१ राजकीय परिवेश
- ३.४.२ सामाजिक परिवेश
- ३.४.३ आर्थिक परिस्थितियाँ
- ३.४.४ धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
- ३.४.५ साहित्यिक परिस्थितियाँ

३.५ निष्कर्ष

❍ संदर्भ-सूचि

३.१ भूमिका

पृथ्वी के वर्तमान परिवेश का विहंगावलोकन अगर किया जाए तो विदित होता है कि मनुष्य ने सभी क्षेत्रो में विकास किया है, परंतु मनुष्य के इस विकास के मूल में युगों-युगों से उसके द्वारा किए गये अथक परिश्रम की ही अधिक भूमिका दृष्टिमान होती है । प्राचीन काल से आज तक का मनुष्य जाति का विकास एक सीमा चिह्न है । सृष्टि के प्रलय के पश्चात से आज तक उत्तरोत्तर मनुष्य ने अनेक क्षेत्रों में नये किर्तीमान स्थापित किए हैं, इसमें संदेह नहीं कि आज तक के उसके विकास में वह बुद्धिमान प्राणी सृष्टि के अन्य प्राणियों की अपेक्षा में श्रेष्ठ सिद्ध हुआ है । आज के विज्ञान एवं तकनीकी विकास का संपूर्ण श्रेय उसी को जाता हैं क्योंकि इसके मूल में मनुष्य ही है । आज मनुष्य का जीवन पहले से कई अधिक मात्रा में सुख एवं सुविधा पूर्ण बन गया है, कई क्षेत्रो में क्रांतिकारी कदम भी उठाए गए हैं जिसका फल वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ी को मिलने वाला है जो कदाचित भूतकाल में संभव नहीं था । सृष्टि की सभ्यताओं का और इतिहास का अध्ययन करने से यह सत्य प्रतीत होता है कि जंगली एवं आदिम असंस्कृत अवस्था में ही मनुष्य रहता था, उसका जीवन पशु तुल्य ही था या ऐसा भी कह सकते हैं कि पशु और मनुष्य में कोई अंतर ही नहीं था । मनुष्य पहले निर्वस्त्र और समाज एवं सभ्यता रहित जीवन जीता था, न उसके पास रहन-सहन के तौर तरीके थे, न भाषा थी, न संस्कृति थी, न परिवार और न अपना समाज था । उसके लिए भूत, भविष्य और वर्तमान एक ही थे उसके लिए जंगली पशु एवं उसके खुद के जीवन में अंतर नापने का कोई माध्यम ही नहीं था । मनुष्य की बुद्धिशक्ति

का धीरे-धीरे विकास हुआ और अग्नि, चक्र आदि का आविष्कार हुआ धीरे-धीरे वह अकेलेपन से निकलकर समूह में रहने लगा और उसी में से उसमें संघ भावना उत्पन्न हुई । अब उन्हें एक दूसरे की आवश्यकता की अनुभूति भी होने लगी और उसी में से परिवार भावना उत्पन्न हुई । अब धीरे-धीरे विकास क्रम आगे प्रगति करता गया; परिवार समूह, समूह से जाति, जाति से गाँव, गाँव से शहर-कस्बे और फिर राज्य, राष्ट्र और अब विश्व-दुनिया, ब्रह्माण्ड तक की विकास यात्रा हुई है । अगर अध्ययन किया जाए तो प्रश्न होता है कि मनुष्य की इस विकासयात्रा का मूल प्रेरणाबिंदु क्या है ? सहज ही में गहन अध्ययन के फलस्वरूप हम अवश्य ही कह सकते हैं कि मनुष्य के आसपास का परिवेश, उसके आसपास की परिस्थितियाँ, घटनाक्रम, वातावरण ही है कि जिसमें से उसने कुछ सीखा है, जाना है और उसी के अनुभव से वह उत्तरोत्तर क्रमिक विकास के नये-नये सोपान चढ़ता गया और आज के आधुनिक मनुष्य की श्रेणी तक आ पहुँचा ।

परिवेश मनुष्य को जीना सिखाता है, सोचना सिखाता है, अनुकुलन सिखाता है । परिवेश का अनुभवजन्य ज्ञान ही उसके विकास की सीढ़ी बन जाता है । परिवेश के कटू एवं सुखद अनुभव से वह गिरता या चढ़ता है । अत: हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि मनुष्य के विकास में परिवेश की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

परिवेश के अंतर्गत मनुष्य के आस-पास का वातावरण, परिस्थितियाँ, आंतरिक एवं बाह्य वातावरण, परिवार, समाज, जाति, उत्सव, प्रकृति, पर्यावरण आदि का समावेश हो जाता है । यही परिवेश मनुष्य की

विचारधारा पर भी प्रभाव डालता है। मनुष्य की चिंतन शक्ति, रहन-सहन, जीवन पद्धति आदि सभी के ऊपर परिवेश का प्रभाव पड़ता है।

परिवेश साहित्य पर भी अपना प्रभाव डालता है । अधिकतर साहित्य सृजन परिवेश के प्रभाव से आपुरित होता है । साहित्यकार और उसके साहित्य पर परिवेश के कारण नित नये परिवर्तन आते रहते है । जो साहित्यकार आज जिस विचारधारा का वाहक है वही साहित्यकार कल परिवेश के बदलाव के कारण अन्य विचार धारा का कायल हो जाता है ।

परिवेश में साहित्य के संदर्भ में विचार करने पर प्रतीत होता है कि हर काल के साहित्यकारों के साहित्य पर उस समय के परिवेश ने प्रभाव डाला है, वह चाहे आदिकाल हो, मध्यकाल हो या आधुनिक काल हो । परिवेश के अंतर्गत राजकीय, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन होता है और उसी के संदर्भ में साहित्यकार की सोच विचारधारा, जीवनदर्शन और चिंतन का अध्ययन किया जाता है ।

३.२ साहित्य और समाज

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक एवं सहायक है । समाज और साहित्य एक सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि एक दूसरे को पृथक करके हम उसको नहीं देख सकते । साहित्य समाज पर अपना प्रभाव डालता है तो समाज भी साहित्य बदलता है । साहित्य के कारण समाज की मानसिकता में परिवर्तन का कार्य होता है । साहित्य ने कई बार सामाजिक मानसिकता पर अपना प्रभाव डालकर समाज को बदलने की कोशिष की है और परिवर्तन भी किया है । हर काल में साहित्य ने समाज

का चित्रण करके समाज की कलूषता का निर्मूलन किया है । मध्ययुगीन भक्ति साहित्य ने समाज की कलूषता को मिटाकर पवित्रता प्रदान की है तो आधुनिक समय के साहित्य ने समाज की दकियानुसी मानसिकता को, परंपरागत मूल्यों को परिवर्तित करने का कार्य किया है ।

साहित्य में समाज का वास्तविक चित्रण समय-समय पर होता आया है । सामाजिक युग चेतना के संदर्भ में साहित्य ने अपना कर्तव्य बखूबी निभाया है, इसके कारण समाज को एक नयी दिशा भी प्राप्त हुई है । प्रेमचंद के साहित्य ने समाज की सोच को बदलने का प्रभावशाली कार्य किया था । यह इसका प्रमाण है कि साहित्य में समाज की मानसिकताको बदलने की भी शक्ति है । प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक समस्याओं के चित्रण के फलस्वरूप ही नारियों की, किसानों की, दलितों की समस्याओं की ओर समाज का ध्यान गया था और उसको हल करने की दिशा में आवश्यक कदम भी उठाए गये थे । अत: साहित्य के द्वारा सामाजिक परिवर्तन हो सकता है यह निर्विवाद है ।

साहित्यकार समाज में रहता है, अत: सामाजिक परिवेश से, राजकीय परिवेश से प्रभावित होता है अत: वह समाज का वास्तविक चित्रण करके समाज को दर्पण दिखाने का कार्य करता है इसलिए ही साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है । साहित्यकार की अपनी विचारधारा, अपना जीवन दर्शन होता है उसको वह अपनी साहित्यिक शक्ति के द्वारा अपने साहित्य सृर्जन में चित्रित करता है अत: नयी सोच और नयी विचारधारा समाज को साहित्यकार के माध्यम से प्राप्त होती है

३.३ साहित्य और परिवेश

साहित्य और परिवेश एक दूसरे को प्रभावित करते रहते है । साहित्यकार समाज का ही एक अंग होने के कारण अपने आस-पास के परिवेश से प्रभावित रहता है । साहित्यकार की रचनाओं में समसामयिक परिस्थितियों के प्रभाव के कारण वास्तविकता का चित्रण और युगीन चेतना को अवकाश प्राप्त होता है । यह आवश्यक भी है कि साहित्यकार में और साहित्य में परिवेशगत सापेक्षता हो । इसके कारण ही साहित्य की परिभाषा सिद्ध होती है । यह आवश्यक ही है कि सामाजिक परिस्थितियाँ-परिवेशगत साहित्य में साहित्यकार अपनी राजकीय, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एव साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर साहित्य की रचना करे है । सामाजिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना वह नही रह सकता, उसकी चिंतनधारा में, जीवन-दर्शन में और विचारधारा में परिवेश एक अहम् भूमिका प्रदान करता है । अत: किसी भी साहित्यकार का और उसके साहित्य का अध्ययन उसके परिवेश को नजर समक्ष रखकर करना चाहिए जिससे अध्ययन में सातत्य, और यथार्थता आ सके ।

हम इस लिए ही इस अध्याय में शिवमंगल सिंह 'सुमन' के समकालीन परिवेश के संदर्भ में चर्चा करने जा रहे है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' के साहित्य में समकालीन परिवेश को परखना और जानना आवश्यक है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक आधुनिक कवि है अत: आधुनिक काल का परिवेश जानना उसका अध्ययन करना आवश्यक बन जाता है । इस अध्याय के अंतर्गत हम शिवमंगल सिंह 'सुमन' के समय की राजकीय परिस्थितियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक

परिस्थितियाँ, आर्थिक परिस्थितियाँ, एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ कैसी थी ? उस समय का परिवेश कैसा था? जिसका प्रभाव उनके साहित्य मे पड़ा इसको जानने की कोशिश करेंगे । इसी परिवेश ने उनके साहित्य को प्रभावित किया है अत: शिवमंगल सिंह 'सुमन' के समकालीन परिवेश का अध्ययन आवश्यक बन गया है ।

३.४ शिवमंगल सिंह 'सुमन' : समकालीन परिवेश

'सुमन' जी उत्तर आधुनिक काल के सशक्त हस्ताक्षर थे । यह समय भारत की कठिन परीक्षा का समय रहा है । 'सुमन' जी सन् १९१५ ई. सन् २००१ ई. तक के साहित्यकार थे । यह भारत का परिवर्तनशील समय रहा है । भारत का ही नहीं अपितु समग्र विश्व का परिवर्तनशील समय कहा जा सकता है । इस समय के वातावरण ने और परिस्थितियों ने 'सुमन' जी पर गहरा प्रभाव डाला है । हम यहाँ 'सुमन' जी के समय की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन करने जा रहे हैं क्योंकि 'सुमन' जी को समझने के लिए उनके परिवेश को जानना आवश्यक है क्योंकि परिवेश साहित्यकार पर विशेष प्रभाव डालता है, अत: सुमनजी के समय का राजकीय परिवेश, सामाजिक परिवेश, आर्थिक परिस्थितियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और साहित्यिक परिस्थितियाँआदि को जानकर, समझकर, 'सुमन' जी के साहित्य पर उसके प्रभाव को परिलक्षित करेंगे जो आगे के अध्यायों में विस्तृत रूप से रूपायित होगा ।

३.४.१ राजकीय परिवेश

'सुमन' जी का जन्म सन् १९१५ ई. में हुआ था । उस समय की राजकीय परिस्थितियाँ आज की परिस्थितियों से अलग थी ।

उस परिवेश का प्रभाव कहीं न कही 'सुमन' जी के साहित्य सृजन पर पड़ा है । 'सुमन' जी का समय राजकीय परिस्थितियों की दृष्टि से बड़ा ही उथल-पुथल का समय रहा है । सुमन जी स्वतंत्रता पूर्व के समय के कवि हैं । भारत पर अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था का प्रभुत्व था । भारत अंग्रेज़ो का गुलाम था । भारत पूर्ण रूप से अंग्रेज़ो के आधिपत्य में होने के कारण गुलामी की अवस्था में था । ऐसे माहौल में भारत में संपूर्ण प्रभुसत्ता अंग्रेज़ो के हाथों में थी इसलिए भारतीय जनता उनके शासनकाल में चारों ओर से पिसी जा रही थी । कहीं पर भी न्याय का शासन नहीं दिख रहा था । जनता अंग्रेज़ी भक्षकों के शासन से पीड़ित थी । एक ओर अंग्रेज़ी शासनकर्ता और दूसरी ओर ज़मीदार, छोटी रियासतों के स्थानिक राजा, अधिकारी वर्ग था। कहीं से भी जनता को न्याय नही मिल रहा था । जनता पीड़ित एवं त्रासित थी । इस संबंध में डॉ. दीनानाथ ने 'आधुनिक भारत का इतिहास' में भारत की इस राजकीय विषम परिस्थिति को इस प्रकार लिखा है - "१९३८ तक देश की प्राय: सभी प्रमुख रियासतों में एक बड़ी भारी जागृति पैदा हो चुकी थी । इसके साथ साथ अधिकांश रियासतों में प्रजा के बढ़े हुए आन्दोलन को रोकने के लिए अत्याचार और दमन का जोर भी बढ़ रहा था ।"[१]

स्वतंत्रता के पूर्व की स्थिति बड़ी भयावह थी । राजकीय परिवेश के संदर्भ में इस स्थिति में जनता का भला होने की बात कल्पना ही थी । अनेक क्रांतिकारी भगत सिंह, चंद्रशेखर आदि एक ओर से अपना अंग्रेज़ी सरकार विरूद्ध आंदोलन चला रहे थे, तो दूसरी ओर अहिंसक आंदोलन गांधी जी की अगुआई में चल

रहा था जिसमें सरदार पटेल, लालबहादुर शास्त्री, जवाहरलाल नहेढ आदि सहयोग कर रहे थे, 'भारत छोड़ो' आंदोलन चरम सीमा पर था । हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध सभी जातियों के लोग अत्याचारी अंग्रेजी शासन व्यवस्था के विरूद्ध एकजूट हो रहे थे । परंतु हिन्दु-मुस्लिम दो कौमों के बीच ज़हर घोलने का दुष्चक्र भी चल रहा था जिससे विभाजन की समस्या भी उत्पन्न हो गई थी । डॉ.दीनानाथ शर्मा जी इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि - ''३ जून, १९४७ ई. को ब्रिटिश सरकार ने भारतीय स्वतन्त्रता की समस्या हल की । हल करने के लिए देश के विभाजन की योजना बनायी । इस योजना के कारण देशी रियासतों की समस्या ओर भी जटिल हो गयी । जब ब्रिटिश संसद में भारतीय स्वतंत्रता विधेयक पेश हुआ उसी समय यह स्पष्ट हो गया कि देशी राज्य स्वतंत्र हो जायेगे और यह उनकी इच्छा पर रहेगा कि वे भारत के साथ सम्मिलित हो अथवा पाकिस्तान के साथ । इस प्रकार देश के लिए बड़ा ही संकटापन्न समय आ गया । छः सौ के लगभग देशी राज्य देश के भिन्न-भिन्न भागों में बिखरे पड़े थे । यदि वे अपनी पूर्ण स्वतंत्रता कायम रखने को कटिबद्ध हो जाते तो देश की एकता एवं शक्ति विनष्ट हो जाती । कुछ राज्यों ने तो परिस्थितियों से पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की । उदाहरणार्थ, भारत विभाजन की योजना घोषित होने के एक ही सप्ताह बाद हैदराबाद के निज़ाम ने यह फरमान जारी किया कि भारत से अंग्रेज़ी सत्ता हट जाने के बाद वह न तो भारत में शामिल होगा और न पाकिस्तान में वह स्वतंत्र राज्य रहेगा । त्रावणकोर राज्य के प्रधानमंत्री ने भी अपने राज्य के

संबंध में ऐसी ही घोषणा की । इससे देश के राजनीतिक विघटन की आशंका साफ-साफ नज़र आने लगी । प्रतीत होने लगा कि देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो जायेगा ।''[२]

गांधी जी और अन्य हजारों देश प्रेमियों का स्वप्न टूट रहा था, क्योंकि उनका बलिदान ऐसी स्थिति के कारणे व्यर्थ होने जा रहे थे । गांधी जी ने अहिंसक आंदोलन से देश को आजाद कराने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया था । हजारो भोगों ने अपनी त्याग भावना से देश को स्वतंत्र कराने में अपना सहकार दिया था। सुभाष चंद्र बोस जैसों ने भारत की सशस्त्र क्रांति की शुढआत भी की थी परंतु उनकी मृत्यु भी हो गई थी । अंतरराष्ट्रीय स्तर पर दो विश्वयुद्ध के कारण भयावह स्थिति थी । देशद्रोही प्रवृत्तियाँ भी जोरों पर थी । भारत एक बड़े राजनैतिक संकट से गुज़र रहा था । इन सब के मूल में भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था और फूट डालो और राज करो की स्थिति जिम्मेदार थी । भारत का यह दूर्भाग्य ही कहा जायेगा कि मूट्ठी भर अंग्रेजों ने इतने बडे देश पर दो-सौ वर्ष शासन किया । कई बार विद्रोह हुए थे परंतु अंग्रेजो ने अपनी कूटनीतियों से उसको दबा दिया । सर्वप्रथम हम ने उपरोक्त संदर्भो से भारतीय राजनीतिक समस्याएँ जो प्रमुख हैं उसको लिया जिसमें भारत में अंग्रेजी शासन का दमनचक्र और भारत विभाजन की समस्या इन दोनों को सर्व प्रथम प्रकाशित करने का उद्देश्य था क्योंकि भारतीय राजनैतिक परिदृश्य पर इन दो घटनाओं का प्रभाव अधिक मात्रा में रहा है, जो आज भी हैं । अब हम क्रमानुसार सन् १९१५ ई. के बाद की स्थितियों की चर्चा करेंगे ।

आधुनिक भारत की राजकीय स्थिति अत्यंत परिवर्तनशील रही है । उसमें बदलाव आते ही रहे हैं । डॉ. श्यामचंद्र कपूर अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में इस संबंध में अपना मत प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं कि – ''आधुनिक काल में भारत की राजनीति में नये–नये मोड़ आये । राजनैतिक चेतना के उथल–पुथल को इस काल में देखा जा सकता है । अनेक समस्याएँ उभरती गयी ।''[३]

सन् १९१६ ई. के बाद स्वतंत्रता संग्राम के नरम दल और गरम दल दोनों में समझौता हो गया था । वे आपसी विचारभेद को भूल कर एक मात्र किसी भी प्रकार से भारत की आजादी के लिए एकजूट होकर लड़ने के लिए तैयार हुए । संसार का प्रथम विश्वयुद्ध सन् १९१४ ई. से सन् १९१८ ई. तक चला जिसने भी राजनैतिक परिस्थितियों को प्रभावित किया । जिसमें भारतीयों का सक्रिय योगदान भी रहा था । सन् १९११ ई. में 'रॉलेट एक्ट' पास कर भारतीयों की आशाओं पर पानी फेर दिया गया था । इसी समय जलियावाला बाग हत्याकांड हुआ । सन् १९२० ई. में बाल गंगाघर तिलक के चले जाने के बाद कॉंग्रेस की बागडोर गाँधी जी ने संभाली । उन्होंने हिन्दु–मुस्लिम को सम्मिलित करके असहयोग आंदोलन चलाना शुरू किया । उपाधियों का बहिष्कार, विदेशी वस्त्र जलाना, अहिंसक आंदोलन, आदि कार्य करके स्वदेशी वस्त्र खादी को महत्त्व दिया जाने लगा । इसी समय मोतीलाल नहेढ ने स्वराज पार्टी की स्थापना की । फलस्वढप महमदअली जिन्नाह कॉंग्रेस छोड़कर मुस्लीम लींग में शामिल हो गए । सन् १९९० ई. से १९३० ई. तक अंग्रेज़ो की कूटनीति का दमनचक्र चलता रहा । इस

बीच काँग्रेस और अंग्रेज सरकार की अनेक बैठ के हुई । सन् १९३० ई. में सांप्रदायिक दँगे हुए गणेश शंकर विदार्थी जैसे देशभक्त मारे गये । सन् १९३१ ई. से १९३५ ई. तक कमीशनों, पैक्टों-संधियो का समय रहा, जिसमें विभिन्न प्रकार के करार हुए । सन् १९२७ में इंडियन नेशनल काँग्रेस का निर्वाचन हुआ । सन् १९३९ ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसमें भारत पुनः सम्मिलित हुआ । गाँधी जी का आंदोलन चल रहा था परंतु भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद जैसे वीर शहीद गये थे यह भी राजनीतिक विवादास्पद निर्णयो का समय रहा । सन् १९४० में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की माँग की गयी । सन् १९४२ ई. में समस्त भारतीयों ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया जिस के कारण अनेक भारतीयों को जेल की सजा काटनी पड़ी । इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९४५ ई. में ब्रिटेन में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को सहानुभूति प्राप्त हुई । 'गोलमेजी परिषद' निष्फल रही । लेकिन अखण्ड भारत के बहुत सतर्क रहने पर भी सन् १९४६ ई. में फिर से सांप्रदायिक दंगे भडक उठे और १४ अगस्त १९४७ ई. को भारत से पाकिस्तान अलग हो गया । १५ अगस्त सन् १९४७ ई. को अंग्रेजो ने भारत को आजादी दी और अंत में २६ जनवरी सन् १९५० ई. में भारत एक जनतांत्रिक देश बना ।

इस तरह स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारत में अनेक राजनैतिक उत्तार- चढ़ाव रहे हैं । एक ऐसे भारत का आविर्भाव हुआ कि जिसकी नीव में विभाजन की समस्या की झंग लग गई थी और उसी के मूल में वर्तमान वैश्विक आतंकवाद की भयंकर समस्या ने जन्म

लिया गाँधी जी दीर्घदृष्टा थे और सरदार पटेल भी दीर्घदृष्टा थे । गाँधी जी भारत का विभाजन नहीं चाहते थे इसलिए ही वह इनसे अलिप्त रहे । जब कि सरदार सहमत नहीं थे तो भी विभाजन की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए हृदय पर पत्थर रखकर इसका स्वीकार किया परंतु वे जानते थे कि आगे जा कर यह विष भारत को कैसे जहरिला बनायेगा ? इस लिए वह विवादमुक्त बँटवारे के पक्ष में थे । लेकिन इसमें वह दूर्भाग्य से असफल रहे । लेकिन भारत के निर्माण के मूल में शांति और सौहार्द हैं अतः भारत एक स्वस्थ विकसित राष्ट्र की श्रेणी में आ सका । जब कि पाकिस्तान अस्वस्थ राजनैतिक देश के रूप में रहा जो राजनैतिक संकटो से आज भी गुज़र रहा है । स्वतंत्रता के पश्चात की भूमिका को परिलक्षित करते हुए डॉ. नामदेव उतकर जी अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ में लिखते हैं कि ''स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीति में अनेक घटनाएँ हुई, जिनके कारण राजनीति में उतार-चढ़ाव आये । विश्व शांति के लिए पंचशील के सिद्धांतों को अपनाया गया ।''[४]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नहेढ को चुना गया । जवाहरलाल नेहढ ने आधुनिक उद्योग और खेतीप्रधान भारत की नींव रखी । सन् १९६२ ई. में चीन ने 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के सूत्र की आड़ मे ंभारतकी पीठ में खंजर भौंक कर भारत पर आक्रमण करके भारत की हजारो एकड जमीन हडप ली । जिसके आघात से जवाहरलाल नेहढ की मृत्यु हई । उस समय भारत कठिन आर्थिक परिस्थितियों से जूझ रहा था

तभी उसके बाद लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बने जिन्होंने 'जय जवान - जय किसान' का नारा देकर भारत में अप्रतिम आत्म विश्वास का संचार किया । इसी बीच सन् १९६५ ई. में भारत-पाकिस्तान का युद्ध हुआ इसमें लालबहादुर शास्त्रीने भारत को जवानों की शक्ति और अपनी कूटनीतिक सुझ-बुझ से जीत दिलाई । अचानक उनकी मृत्यु के बाद भारत में अनेक पक्षो की सरकारों का दौर चला । सन् १९७१ ई. में बांग्लादेश बना जिसमें भारतने मदद की भारत-पाकिस्तान का सन् १९७१ ई. का युद्ध हुआ जिसके कारण बांग्लादेश बना । भारत की दुर्गा जैसी तत्कालिन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सुझ-बुझ और कूटनीति के कारण और जवानो की बहादूरी के कारण भारत की जीत हुई । इसके बाद काँग्रेस में आपसी फूट के कारण सन् १९७१ ई. में 'जनता दल' अस्तित्व में आया लेकिन उसके पहले जयप्रकाश नारायणने राजनीति में काफी प्रभाव डाला था । 'जनतादल' सत्ताधारी बना । मोरार जी देसाई की सरकार के कारण भी भारतीय राजनीति प्रभावित रही । सन् १९८० ई. में फिर काँग्रेस सत्ता में आयी । काँग्रेस की इंदिरा गांधी फिर सत्ता में आई । उनकी राजनैतिक आपातकाल की नीति ने भी भारतीय राजनीति पर प्रभाव डाला था जिसके कारण उनको राजनति से थोड़े समय के लिए अवकाश लेना पड़ा था । सन् १९८० ई. में उनकी सरकार फिर से आने के बाद उनकी दूर्भाग्यपूर्ण तरीके से हत्या हुई वह साल था सन् १९८४ ई.। इस दौरान भारत की राजनीति पर अनेक पक्ष उभरे और मिटे । उसके बाद युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी की सरकार आयी उन्होंने स्थिर शासन

दिया भारत का तकनीकी विकास अच्छा हुआ । अनेक पक्षों की सरकारे आई जिसमें वी. पी. सिंह और चंद्रशेखर की सरकारे आई । यह समय भारत के लिए कठिन रहा। राजीव गांधी की हत्या सन् १९९१ में हुई और उसके बाद पी. वी. नरसिम्हा राव की काँग्रेस की अगुआई में सरकार बनी जिन्होनें पाँच साल तक शासन किया सन् १९९६ ई. में काँग्रेस की आम चुनाव में हार के कारण 'संयुक्त मोरचा' सरकार आयी जो एक अल्पमत की गठबंधन सरकार थी एच. डी. देवगौडा जिसके प्रधान मंत्री थे वाम मोर्चे के सहयोग से बनी और काँग्रेस के बाहरी समर्थन से वह सरकार बनी थी, वह अधिक समय तक नहीं टिकी । बाद में आई. के. गुजराल की अल्पमत की सरकार भी आई । फिरसे मध्यवर्ती चुनाव हुए । यह भारतीय राजनीति का अस्थिरता का दौर था । उस समय सन् १९९९ ई. में अटल बिहारी बाजपेयी जी की तेरह महिने की भारतीय जनता पार्टी की गठबंधन सरकार रही फिर अस्थिरता का दौर आया मध्यवर्ती चुनाव हुए और काँग्रेस विरोधी दलों के कारण अटलबिहारी बाजपेयी की अगुआई वाली भारतीय जनता पार्टी की और २४ पाटियों की बिन काँग्रेस सरकार आई जिन्होंने पाँच साल तक शासन किया । उन्होंने भारत को सन् १९९८ ई. में पोखरण परमाणु परिक्षण की भेंट धर कर विश्व की आण्विक शक्तियों में शामिल करवाया । डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम जैसे अणु वैज्ञानिक की मदद से भारत को अणुशक्तिसंपन्न राष्ट्र बनाया । भारत का इस दौरान औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास सराहनीय रहा । डॉ. कलाम भारत के सफल राष्ट्रपति सिद्ध हुए । इस तरह

भारत बीसवी सदी का राजैतिक परिवेश काफी उतर–चढ़ाव वाला और विवादास्पद तथा परिवर्तनशीलता का रहा है ।

ऐसे समय में शिवमंगल सिंह ‘सुमन’ जी ने जो अपने साहित्य का सृजन किया उसमें इन राजकीय परिवेश ने गहरा प्रभाव डाला है । हिन्दु और मुसलमानो के नेता गणों पर व्यंग्य करते हुए 'सुमन' जी कहते है कि

“दोनों के नेतागण बनते,
अधिकारों के हामी
किन्तु एक दिन को भी,
हमको अखरी नहीं गुलामी ।”[५]

यह कहना 'सुमन' जी के लिए वाजिब था क्योंकि भारत के गोधरा काण्ड, सिक्ख दंगे, हिन्दु–मुसलमानो के धार्मिक दंगे, भाषायी लड़ाई आदि का उन पर प्रभाव पड़ा था ।

'सुमन' जी का आविर्भाव प्रथम विश्व युद्ध के समय में ही हुआ था । इस लिए युद्ध की विभीषिका से 'सुमन' जी का यथार्थ परिचय न हुआ । उनकी काव्य सृजन यात्रा द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंम्भ में शुरू हुई । द्वितीय विश्व युद्ध सन् १९३९–४४ ई. की समाप्ति के बाद जर्मनी का पतन हुआ, नाज़िज्म और फासिज्म हार गया था । इसके साथ ही अंतरर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ बदली । अमेरिका, ब्रिटेन, फ्राँस तथा लाल ढस का विकास चरमसीमा पर था परंतु शीतयुद्ध अमेरिका और सोवियत संघ के बीच चल रहा था और सन् १९८० ई. में सोवियत संघ का पतन हुआ मिखाईल

गोर्बचोव अंतिम राष्ट्रप्रमुख उसके रहे फिर नया रशिया बना । इन सभी घटनाओं का प्रभाव भी 'सुमन' जी पर रहा । प्रगतिवादी प्रभाव के कारण वह ढस के समर्थक रहे हैं । परिवेश का प्रभाव उनकी इन पंक्तियों में देखा जा सकता है –

"अब की सेवक सीख ले दुनिया,
फिर न उठाये आँख
यह वे जिनकी मुई खाल से,
लौह हुआ था राख ।"[६]

इस प्रकार भारत और विश्व की राजकीय परिस्थितियों के परिवेश के संदर्भ में विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि राजकीय परिवेश काफी उतार-चढ़ाव वाला, काफी परिवर्तनशील रहा है । भारत की और दुनिया की राजकीय परिस्थितियों ने काफी प्रभावात्मक तरीके से परिवर्तन किया है आधुनिक राजकीय परिदृश्य के परिप्रेक्ष्य में अगर देखा जाए तो यह समय परिवर्तनशील, विज्ञान और तकनीकी विकास का रहा है जिन सभी पर राजकीय परिस्थितियों ने काफी प्रभाव डाला । 'सुमन' जी पर इन राजनीतिक परिवेश का प्रभाव रहा और उनका असर उनकी काव्य रचनाओं में अवश्य ही देखने मिलता है ।

३.४.२ सामाजिक परिवेश

साहित्य और समाज एक दूसरे के लिए दर्पण का कार्य करते हैं । साहित्य समाज को प्रभावित करता है तो कभी-कभी समाज भी साहित्य को प्रभावित करता है । साहित्य समाज में चल

रही गतिविधियों को सामने लाता है और उसका यथातथ्य चित्रण करके समाज के सामने रख देता हैं समाज उसमें से यथायोग्य अपनाने वाली विचारधारा और अपनाने योग्य बातें ग्रहण करके अपने आप में परिवर्तन कर लेता है तो साहित्य भी समाज में चलती विचारधाराएँ, चिंतनधाराएँ, परंपराएँ उत्सव आदि का साहित्य में चित्रण होता है । साहित्यकार उसका चित्रण अपने साहित्य में करता है । साहित्य समाज के लिए एक दर्पण की तरह कार्य करके अपनी उपादेयता सिद्ध करता है ।

साहित्य को सामाजिक परिवेश काफी हद तक प्रभावित करता है क्योंकि आखिरकार साहित्य भी समाज की ही निर्मिति है । आदिकालीन और मध्यकालीन साहित्य इसका प्रमाण है । आदिकालीन साहित्य में युद्ध और अशांति का माहौल था तो वैसा साहित्य निर्माण हुआ जबकि मध्यकाल में पूर्वमध्यकालीन भक्ति साहित्य की निर्मिति का कारण भक्ति आंदोलन था । तो रीतिकालीन भोगविलास और शृंगार चित्रण भी उसी समय का परिणाम था । आधुनिक काल में साहित्य की निर्मिति के आयाम बदल चुके हैं । आदिकाल के साहित्य में सामान्यजन को स्थान नहीं था जब कि आधुनिककाल के साहित्य में सामान्य जन को स्थान मिला । तब राजा, सामन्त या कुलिन व्यक्ति ही नायक हुआ करता था जब कि आज के साहित्य का नायक किसान, दलित, भिखारी या खलपुढष भी हो सकता है। अतः साहित्य और समाजिक परिवेश एक दूसरे को प्रभावित अवश्य करते है, ऐसा कह सकते है ।

अंग्रेजी शासन व्यवस्था आधुनिककाल में भारत में कार्यरत थी । 'सुमन' जी के समय में स्वतंत्रता आंदोलन चरमसीमा पर पहुँच कर अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सका । परंतु इस समय की सामाजिक परिस्थितियाँ कैसी थी इसका विचार भी करना आवश्यक है । अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था की अन्यायी नीतियों के कारण भारतीय जनता पिसी जा रही थी । भारत की जनता पर अंग्रेज़ी व्यवस्था के कारण प्रभाव पड़ रहा था । समाज अंग्रेज़ी - नीति-रीतियों से भी प्रभावित था । भारतीय समाज ज्यादातर अशिक्षित था । परंतु अंग्रेज़ो के कारण पाश्चात्य सभ्यता के सपंर्क से समाज में नये-नये परिवर्तन आ रहे थे । अंग्रेज लोगों की कथनी और करनी में अंतर परिलक्षित होता दिखाई देता है । ईसाई धर्म का सिद्धांत लेकर ईसाई पादरी भारत में आये थे, परंतु यहाँ अशिक्षित और दीन-दलित निम्न वर्ग के लोगों को इसाई धर्म में परिवर्तन करने का दुष्कार्य कर रहे थे । भारतीय समाज में संस्कृति का ह्रास हो रहा था । पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा था, तो दूसरी ओर शोषण का चक्र चल रहा था । विदेशी संस्कृति का भारतीय समाज पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ा [१] अनुकूल प्रभाव और प्रतिकूल प्रभाव ।

अनुकूल प्रभाव के ढप में ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, आदि संस्थाओं के कारण भारतीय अंध विश्वासों कुरीतियों के विरूद्ध जागृति उत्पन्न हुई । अंग्रेज़ी शिक्षा दीक्षा का प्रभाव बढ़ने लगा । नई स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई । रेल्वे, डाक सेवा आदि तकनीकी एवं औद्योगिक विकास हुआ । वैज्ञानिक विकास का लाभ समाज को मिला ।

प्रतिकुल प्रभाव में अनेक नई संस्थाओं का जन्म भी हुआ जिन्होंने राष्ट्रप्रेम और जागृति का शंख फूँका । आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि अनेक संस्थाओ का जन्म भी हुआ । स्वाध्याय परिवार और गायत्री परिवार, जैसी संस्थाओं का उदय हुआ । समाज में हर-रोज़ नित नई विचार धाराओं का प्रादुर्भाव हो रहा था ।

भारतीय समाज में मध्यवर्ग का स्तर बढ़ने लगा था । मध्यवर्गीय समाज की स्थिति धीरे-धीरे दयनीय होती जा रही थी । औद्योगिक विकास और वैज्ञानिक विकास अपनी गति से विकास कर रहा था । भारतीय समाज जो अशिक्षित था उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा था । आर्यसमाज जैसी संस्थाओं के कारण शिक्षा का क्षेत्र बढ़ने लगा था। समाज में शिक्षा के स्तर और क्षेत्रीय विकास के संबंध में डॉ. कैलाश खन्ना ''आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'' में लिखते हैं कि - ''आर्य समाज ने शिक्षा प्रसार के लिए भारी प्रयास किए । आर्यसमाज के प्रकाण्ड विद्वानों ने भारतीय संस्कृति को विकास और प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति को पुनर्जीवित करने के लिए भारी परिश्रम किया । अनेक स्थानों पर गुढकुल की स्थापना की गई, जिनमें कांगडी, इन्द्रप्रस्थ और वृन्दावन के गुढकुल बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं । कई स्थानों पर आर्य समाज कार्यकर्ताओं नें अंग्रेजी ढंग की संस्थाएँ स्वामी दयानंद के नाम पर खोली जो आजकल डिग्री कॉलेजो कें ढप में स्थिति हैं । १९२१ -१९२२ ई. में महात्मा गांधीजी ने शिक्षा को राष्ट्रीय आधार पर चलाने के लिए अनेक स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यापीठ खोली जिनमें प्रमुख गुजरात एवं काशी के विद्यापीठ तथा जामिया मिलिया

इस्लामिया जो दिल्ली में हैं प्रमुख हैं। गुजरात विद्यापीठ उनमें प्रमुख है । इस काल में प्रौढ़ शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया तथा इसके प्रसार के लिए कार्य किए गए''[७]

इस काल में नारी शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन मिला । विज्ञान और शिक्षा के कारण समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देता है । स्त्रियों की स्थिति सुधरने की शुढआत आज़ादी पूर्व ही हो गई थी । आजादी पूर्व स्वतंत्रता आंदोलन में अनेक नारियों ने अपना योग दिया था । गांधी जी ने भी इसके लिए प्रयत्न किए ।

समाज में आज़ादी पूर्व की स्थिति भयावह थी । सतीप्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जौहर प्रथा, अंध परंपराए आदि का प्रचलन तो था ही साथ में गरीबी का प्रभाव भी था । देश गरीबी में जी रहा था । बंगाल का अकाल भयंकर था । उस समय काफी संख्या में लोग भूखमरे से मर गये थे । अंग्रेज़ो की नीति के कारण लघुउद्योग टूट चुके थे गाँवों की हालत दयनीय थी, किसानों की हालत दयनीय थी । मजदूर शोषण चक्र का ग्रास बन रहे थे, पीड़ित थे ।

आज़ादी की लड़ाई चल रही थी तब देश में समाज के हर वर्ग में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी । समाज का हर वर्ग स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा ले रहा था । ऐसे समय में देश में अनेक सामाजिक संस्थाएँ समाज सुधार का कार्य भी कर रही थी । उन संस्थाओं की वजह से समाज में धीरे-धीरे जागृति आ रही थी । विज्ञान और तकनीकी के कारण संचार माध्यमों का प्रसार भी

बढ़ रहा था । अंग्रेजो ने अपने हित के लिए भारत में डाक, संचार, शिक्षा आदि का प्रारंभ किया परंतु अब वही तकनीकी और साधन सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागृति का कारण बन रहे थे ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में आशा की एक किरण दिखाई देने लगी थी परंतु अंग्रेजो ने भारत को अशिक्षण और गरीबी भेंट के ढप में दी थी अतः देश उससे जूझ रहा था । तुरंत ही देश में सुधार संभव न हो सका अतः असंतोष का वातावरण भी समाज में पनप रहा था । अब जो कार्य प्रारंभ हुआ उसमें गैरसरकारी संस्थाओं का कार्य था । अनेक गैरसरकारी सामाजिक संस्थाएँ गुलामी की अवस्था में जो सुशुप्त अवस्था में थी वह उठ खड़ी हुई थी । उनका कार्य सामाजिक जागृति, शिक्षा, तकनीकी आदि के विकास का कार्य रहा । दूसरी ओर सरकार की ओर से भी नये-नये कानून बने । सामाजिक अन्याय को रोकने के लिए अनेक कानून अस्तित्व में आए । नयी नयी शिक्षा संस्थाएँ खुली, अनेक न्यायालय खुलने लगे । न्याय और सामाजिक अधिकार के क्षेत्र में सरकारों ने मिलकर कार्य करना प्रारंभ कर दिया । गुजरात में श्वेत क्रांति हुई । अमूल कम्पनी के कारण श्वेत क्रांति सामाजिक सहभागिता के कारण हुई । हरियाणा और पंजाब में हरित क्रांति हुई । जिसके कारण देश की अनाज की आपूर्ति की समस्या हल होने लगी । कृषि क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा । परंपरित खेती की पद्धति से हटकर नई तकनीकों को अपनाया जाने लगा । देश में कलकारखाने भी बढ़ने लगे जिसमें अनेक लोगों को रोज़गार मिले, तो ताता,

बिरला, निरमा और रिलायन्स जैसी कम्पनियाँ भी अस्तित्व में आयी । बैंक और व्यावसायिक क्षेत्रों में क्रांति हुई । सहभागिता से बैंकिंग क्षेत्र का विकास किया गया । इस तरह औद्योगिक एवं व्यवासायिक विकास हुआ ।

इस विकास को देखें तो समाज के हर वर्ग तक इसके लाभ नहीं मिले देश का एक बड़ा वर्ग इससे वंचित रह गया । औद्योगिकरण के कारण मजदूर वर्ग भी अस्तित्व में आया उद्योगों के मालिकों ए वं मज़दूरों के बीच अंतर बढता गया । जिसकी वजह से वर्ग विषमता की समस्या उत्पन्न हुई । इसके कारण ही समाजवाद और मार्क्सवादी क्रांति का भी प्रारंभ हुआ, जिसके कारण मज़दूरो का जो शोषण हो रहा था, इसके कारणे कम्युनिज्म का प्रभाव भी बढ़ा । पूँजीवादी स्थापित हितों के कारण औद्योगिक क्रांति के लाभ आम आदमी को मिलने चाहिए थे वह नही मिले । गरीब अधिक गरीब होने लगा और अमीर अधिक अमीर जिसके कारण सामाजिक भेदभाव आर्थिकता के संदर्भ में अस्तित्व में आया । अशिक्षित एवं शिक्षित ऐसे दो वर्ग भी अस्तित्व में आए । शहरों का विकास हुआ लेकिन गाँवो का विकास नहीं हुआ अत: भारतीय समाज दो भागों में विभाजित हो गया - एक ग्रामीण भारतीय समाज और शहरीय भारतीय समाज । ऐसी ही परिस्थतियों के कारण साहित्य में प्रगतिवाद अस्तित्व में आया ।

आजादी के बाद अस्सी के दशक से तकनीकी, शिक्षा एवं औद्योगिक विकास तेज गति से आरंभ हुआ जिसका लाभ समाज को मिला । संचार क्षेत्र में क्रांति हुई, टेलिफ़ोन, मोबाईल, डाक,

कम्प्यूटर आदि के कारण संचार व्यवस्था दुरूस्त हुई । जिसके कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संचार और आदान-प्रदान बढ़ा । हैदराबाद और बैंगलूर इसके मुख्य क्षेत्र बने । भारत को कम्प्यूटर क्षेत्र में महारथ हासिल हुआ । भारत ने सोफ्टवेर क्षेत्र में अदभूत विकास किया । अनेक कम्प्यूटर कम्पनियाँ अस्तित्व में आयी । शिक्षा क्षेत्र में अदभूत क्रांति हुई । सरकारी और गैरसरकारी शिक्षा संस्थाओं का काफी विकास हुआ । भारतीय संविधान ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया । नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कारण शिक्षा क्षेत्र में अदभूत विकास हुआ । प्रबंधन, आरोग्य, विज्ञान कृषि क्षेत्र के नये-नये अभ्यासक्रम अस्तित्व में आने से शिक्षा क्षेत्र में उल्लेखनीय क्रांति आयी । रेल एवं वाहन व्यवहार क्षेत्र का विकास दोनों से विकास की गति ओर तेज़ हुई । गुजरात व्यावसायिक केन्द्र बना । नये-नये बंदरगाहों का विकास हुआ । बाहरी दुनिया से संपर्क बढ़ने के कारण स्थानंतर बढ़ा । लाखों लोग विदेशो में रोज़गार की तलाश में गये और यहाँ विकास किया अपनी एक नयी पहचान बनाने में कामयाबी हासिल की । अप्रवासी भारतीयों के एक नये सामाजिक वर्ग का उदय हुआ जिन्होंने भारतीय समाज के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया । इस तरह अनेक क्षेत्रों में विकास एवं प्रगति हुई ।

आधुनिकता एवं यांत्रिकता के कारण दूसरी ओर भारत में दूसरी अनेक समस्याओं ने भी जन्म लिया ।पारिवारिक समस्याएँ अस्तित्व में आने लगी । अनेक सामाजिक समस्याएँ अस्तित्व में

आयी । मनोवैज्ञानिक समस्याओं का जन्म हुआ । भागदौड और कार्य के कारण तनाव की स्थिति पैदा होने लगी । समाज में मनोवैज्ञानिक समस्याओं के कारण समस्याएँ उत्पन्न हुई । वैयक्तिक एवं पारिवारिक नयी समस्याएँ उत्पन्न होने लगी । संयुक्त परिवारो की जगह विभक्त परिवार भी अस्तित्व में आए । अश्लिलता, अप्रमाणिकता, भोगवाद, अनुशासनहीनता की समस्याओं का उदय हुआ ।

समाज में अंधानुकरण की वृत्ति के कारण अनेक समसयाओं ने जन्म लिया । अंधानुकरण के कारण पूँजीपति वर्ग में दिखावा बढ़ने लगा अत: उनको देखकर मध्यवर्ग भी उसका अनुकरण करने लगा इसकी वजह से मध्यवर्ग की आय कम होने के कारण वह महँगाई से जूझने लगा अत: आंतरिक एवं पारिवारिक तनाव की समस्याओं ने जन्म लिया । सामाजिक सुरक्षा का ह्रास होने लगा । चोरी, लूँटफाट की समस्याएँ उत्पन्न हुई, अनेक स्तर पर गैरकानुनी ढंग से संपत्ति एकत्रित करने की वृत्ति के कारण अनैतिकता और भ्रष्टाचार ने अपनी मर्यादाएँ लाँघ दी । जिस की वजह से सामाजिक स्वस्थता एवं सौहार्द को भी नुकसान हुआ ।

नेता गण राजनीति को अपनी जागीर समझने लगे ।नेताओं में भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता का बोलबाला था । जिसकी वजह से सगावाद, जातिवाद की समस्याएँ उत्पन्न होने लगी । धन और सत्ता की शक्तिवाले लोगों का विकास हुआ । परंतु आम आदमी की हालत बुरी होने लगी । उत्तम आदमी का जीना दुभर होने लगा

अत:वह अधिकतर युवा वर्ग अनैतिक एवं गुनाहित प्रवृत्तियों में संलग्न होने लगा । समाज के युवा वर्ग में नशे के दूषण ने अपनी मर्यादाओं का अतिक्रमण किया । बडी संख्या में युवा वर्ग गैरकानूनी प्रवृत्तियों में संलग्न होने लगा । युवावर्ग राष्ट्र की संपत्ति होती है परंतु युवा वर्ग नये और भ्रष्टाचार तथा अनैतिक प्रवृत्तियों में लिप्त होने से उस में वैयतिक्तकता बढ़ने लगी । युवा वर्ग दिग्भ्रमित होने लगा । कम समय में धनवान बनने की उसमे होड़ लगी जिस के कारण परिश्रम के बिना अनैतिक तरीकों से धन कमाने की लालसा नेजन्म लिया । स्त्री-पुढष संबंधो में शिथिलता बढ़ने लगी । आधुनिक यांत्रिक युग में स्त्री-पुढषों के अनैतिक संबंधो की समस्याएँ उत्पन्न होने लगी । नारियों ने घर की चार दिवारों से बाहर निकलकर व्यापार और अन्य क्षेत्रो में अपनी कुशलता दिखाने का प्रारंभ कर दिया । अनेक क्षेत्रो में नारियों का योगदान सराहनीय रहा । यह ए क अच्छी शुढआत कही जा सकती है, परंतु इसके बूरे परिणाम भी सामने आए । इसका यह एक परिणाम सामने आया कि नौकरी पेशा नारियों में अनैतिकता आने लगी । अनैतिक संबंधो की समस्या उत्पन्न हुई । समाज में असंतुलन उत्पन्न होने लगा । पारिवारिक निष्ठा की जगह वैयक्तिकता ने जन्म लिया । नारी वर्ग स्वार्थी लिप्सा में संलग्न होने लगा । इस सबके कारण कूण्ठा घुटन एवं संत्रास जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याओं ने जन्म लिया ।

भारत विभाजन की समस्याओं में धार्मिक विद्वेष के कारण भारत में आज तक हिन्दु एवं मुसलमानों के बीच खाई बनी हुई। राजनीति ने उसमें वॉट बैंक की राजनीति के कारण आग में घी डालने

का कार्य किया । इन सबके कारण आंतकवाद जैसी भयंकर सामाजिक समस्या ने जन्म लिया । युवानों को धार्मिकता का जह़र पिलाकर आंतकवादी प्रवृत्तियों में शामिल किया जाने लगा । पाकिस्तान ने उसमें अपनी भूमिका निभाई । भारत में आतंकवाद की समस्या भयानक बन गई । अनेक आतंकवादी हमले हुए । सुरक्षा की भावना को इससे ठेस पहुंचने लगी । आम जनता में उसके कारण असुरक्षा की भावना ने जन्म लिया । समाज में चारो ओर असुरक्षा की भावना पनपने लगी । आंतकवाद न केवल राष्ट्रीय समस्या बन गया अपितु एक वैश्विक समस्या भी बन गया ।

आधुनिक समय में फिल्म जगत ने सामाजिक जागृति का सराहनीय कार्य किया । परंतु इससे अधिक उसका उल्टा प्रभाव अधिक पड़ा । युवा वर्ग और बाल वर्ग इसकी चकाचौध में डूब गया जिससे भी अनैतिकता, गैरकानुनी प्रवृत्ति एवं, भोगवादिता को बढ़ावा मिला ।

इस कठिन समय में अनेक गैर सरकारी सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं ने सामाजिक एवं पारिवारिक जागृति का कार्य सराहनीय ढप से किया । अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाएँ जैसे स्वाध्याय परिवार जिसके प्रणेता पांडुरंग शास्त्री आठवले थे, उन्होंने मछुआरे, हरिजन, आदिवासी जैसे, दलित एवं पिछडे वर्गो को समाज की मूलधारा में लाने का अतुलनीय कार्य किया । उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथा पारिवारिक जीवन का विकास किया समाज में अस्मिता एवं मनुष्य गौरव की भावना का विकास किया तो गायत्री परिवार जिसके प्रेणता राम शर्मा आचार्य जी थे

उन्होंने शिक्षा और सामाजिक सौहार्द जगाने का कार्य किया । रामकृष्ण मिशन ने शिक्षा और वैचारिक उन्नति का कार्य किया । दक्षिण भारत और उत्तर भारत की अनेक सामाजिक संस्थाओं ने सामाजिक विकास का सुंदर कार्य किया ।

आधुनिकता के कारण समाज में बुजुर्ग वर्ग की हालत दयनीय होती दिखाई देती है । उनको सामाजिक सुरक्षा नहीं मिल रही है अत: वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ने लगी । अनाथ बच्चों की संख्या भी बढ़ने लगी पारिवारिक एवं वैयक्तिक अनैतिक संबंधो की समस्याओं ने अनाथालयों की संख्यामें वृद्धि की । प्रकृति के प्रति प्रेम की भावना कुंठित होने के कारण गौशालाओं की संख्या बढ़ी । व्यक्ति प्रकृति से विमूख होने के कारण पर्यावरणीय समस्याएँभी उत्पन्न हुई । पर्यावरण प्रदुषण की समस्या ने भयंकर ढप धारण किया जिस के कारण स्वास्थ्य एवं आरोग्य की समस्याओं ने जन्म लिया ।

अंग्रेज़ों की कूटनीति का इसके मूल में प्रभाव है । सामाजिक समस्याओं के मूल में कहीं न कहीं अंग्रेज़ों की नीतियाँ भी कारणभूत है । इसके संबंध मे डॉ. रविन्द्र मिश्र भारत की सामाजिक परिस्थितियों के संबंध में 'डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन' पुस्तक में लिख रहे हैं कि – ‘‘औपनिवेशक तथा साम्राज्यवाद के ढप में विकसित पूँजिवादी व्यवस्था उत्पन्न विभिन्न प्रतिक्रियाएँ यहाँ के देशवासियों में भी विकराल ढप में उत्पन्न हुई । फलत: यान्त्रिक विकास के कारण मिलों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ने लगी और दूसरी ओर श्रमिकों का

जीवन भारपूर्ण हो गया । ऐसे समय तक औपनिवेशक तथा साम्राज्यवाद के ढप में विकसित पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न विभिन्न प्रतिक्रियाएँ यहाँ के देशवासियो में भी विकराल ढप से उत्पन्न हुई फलतः यांत्रिक विकास के कारण मिलों मे काम करने वाले श्रमिकों का जीवन भारपूर्ण हो गया । इस प्रकार अंग्रेज़ो की कूटनीति के कारण भारतीयों को अन्य अनेक क्षेत्रो में कष्ट उठाने पड़े ।''[८]

अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों में इस समय में भारी परिवर्तन दिखाई दिया । दो महाभयंकर विशययुद्धों ने समाज एवं अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों को बदल दिया । सन् १९१७ ई. में ढस में क्रांति के कारण समाज का हर वर्ग प्रभावित हुआ जिसका असर राजनीति, साहित्य, समाज, संस्कृति पर पड़ा । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अंतरराष्ट्रीय परिवेश परिवर्तित हुई । बीसवीं शताब्दी में ढस एक महाशक्ति बन गया था अपितु अमेरिका भी महाशक्ति बन गया था, अतः ढस और अमरिका के बीच शीतयुद्ध प्रारंभ हुआ । संयुक्त राष्ट्रसंघ के कारण यह तनाव संघर्ष में न बदला अतःवैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति की होड लग गई ।चंद्र पर अमरिका के नील आर्मस्ट्रोंग ने प्रथम पैर रखा । ढस सन् १९९० में टूट गया । जिसके कारण अमेरिका सर्वोपरि बन गया । अतः बीसवीं शताब्दी में अमेरिका महाशक्ति बना जिसका प्रभाव विकासशील समाज पर पड़ा । यहाँ से स्थानांतरित एवं विदेश से स्थानांतरित लोग अमेरिका में स्थायी होने लगे । अमेरिकन समाज का प्रभाव भारतीय समाज पर और संस्कृति पर गहरे ढप में पडा । अतः पश्चिमी सभ्यता का

अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति बढने लगी । इस तरह अंतरराष्ट्रीय परिवेश ने समाज पर अपना गहरा प्रभाव डाला ।

'सुमन' जी के साहित्य पर इस सामाजिक परिवेश का गहरा प्रभाव पडा । उन्हों ने इस सामाजिक परिवेश से प्रभावित होकर सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित विचारधारा को अपनी कविताओं में स्थान दिया । उन्होंने अपनी कविताओं में आम आदमी, राष्ट्रीयभावना, प्रगतिवादी विचारधारा आदि का स्थान दिया । प्रगतिवादी विचारधारा एवं मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण उनकी कविताओं में रूस और उसकी विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है । वह रूस के प्रति समर्पित हैं, रूस का गुणगान वह गाते हैं इसके मूल में भी आम आदमी के प्रति उनकी सदभावना ही है -

अब की सबक सीख ले दुनिया
फिर न उठाये आँख,
यह वे जिनकी मुई खाल से
लौह हुआ था राख ।[१]

इस प्रकार भारत एवं अंतरराष्ट्रीय सामाजिक परिवेश सुमन जी के समय में परिवर्तनशील रहा है । उसका सीधा प्रभाव 'सुमन' जी की रचनाओं पर पड़ा है, इस सबंध में उनकी विचारधारा के रूप में सामाजिक परिस्थितियाँ चित्रित हुई हैं । आगे के अध्यायों में हम उनकी सामाजिकता के संदर्भ में चर्चा करने जा रहे हैं, वहाँ हम विस्तृत रूप में इस सामाजिक परिवेश का प्रभाव 'सुमन' जी की रचनाओं में किस प्रकार पड़ा है इसका अध्ययन करेंगे ।

३.४.३ आर्थिक परिस्थितियाँ

अर्थ व्यक्ति के जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि बिना धन के व्यक्ति जीवनयापन नहीं कर सकता । धन मनुष्य की समस्त गतिविधियों के केन्द्र में है अत: धन का प्रभाव मनुष्य के समग्र जीवन पर, उसकी विचारधारा पर जीवनशैली पर और उसके संस्कारों पर भी पड़ता है । बिना धन के विकास भी संभव नहीं है । अत: अर्थ के महत्व और उसकी उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता । आज तक के इतिहास पर अगर दृष्टिपात करे तो पता चलता है कि अर्थ ने हर काल में समाज, राजनीति, धर्म एवं संस्कृति ही नहीं अपितु साहित्य पर भी प्रभाव डाला है ।

अर्थ से ही सभी प्रकार की संचालन एवं प्रबंध व्यवस्था प्रभावित है । राजनीति में अर्थ की प्रभावशीलता को हम देख सकते हैं तो साहित्य एवं संस्कृति पर भी प्रभाव उसका परिलक्षित होता है । अर्थ सभी प्रवृत्तियों का मूल है । संसार में लड़ाई झगड़े भी तो अर्थ के केन्द्र में ही होते हैं, उसका कारण चाहे कोई भी हो अपितु उसके मूल में अधिकतर आर्थिक परिस्थितियाँ ही जिम्मेदार होती है । संसार के दो महायुद्ध के मूल में अर्थ ही था तो भारत की गुलामी का कारण भी और केन्द्र बिंदु भी अर्थ ही था । आज की सभी समस्याओं का मूल भी अर्थ ही है ।

साहित्य पर आर्थिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता हुआ दिखाई देता है । साहित्य समाज की ही निर्मिति है, अत: साहित्य और समाज अर्थ से प्रभावित हो यह भी स्वाभाविक है ।

हम जानते है कि संसार की सभी प्रवृत्तियों का मूल केन्द्रबिंदु अर्थ ही है, अतः अर्थ के संबंध में सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आर्थिक परिस्थितियों का आक्कलन आवश्यक हैं । यहाँ पर हम सुमन जी के कालखण्ड में आर्थिक परिस्थितियाँ कैसी थी ? इसके संदर्भ में चर्चा करेंगे ।

'सुमन' जी कालखण्ड स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता पश्चात ऐसे दो कालखण्डो में विभाजित है अतः दोनो की स्थिति अलग-अलग है । 'सुमन' जी के स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय समाज पर अंग्रेजी शासन का आधिपत्य था अतः सत्ता का केन्द्र भी अंग्रेजी शासन व्यवस्था थी । अंग्रेजी शासन व्यवस्था एवं पद्धति में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति चिंताजनक एवं भयावह थी यह सर्वविदित हैं कि अंग्रेज़ी एवं अन्य विदेशी जातियों के भारत पर आक्रमण के पीछे भारत की समृद्धि कारणभूत थी । भारत 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था । यहाँ पर कपड़ा, मरी-समाला, कच्चा माल, खेत उत्पादन तेल, हीरे, जवाहरात आदि का भंडार था, यहाँ के लोगों की महेनत के कारण भारत एक समृद्धि राष्ट्र था । प्राकृतिक भण्डार उसमें सहायभूत था, अतः आर्थिक दृष्टि से भारत की सद्धरता देखने लायक थी । इसी ने विदेशी ताकतो को भारत में आने के लिए लालायित एवं बाह्य किया । युरोप टूट चुका था उसकी आर्थिक ताकत कमज़ोर हो गई थी, राजकीय विपरित परिस्थितियों के कारण अंग्रेजो को पूर्व की ओर दृष्टिपात करने की आवश्यकता महसुस हुई, अतः उनकी दृष्टि भारत पर ठहरी और वे अन्य विदेशी जातियों की तरह भारत में आए व्यापार की दृष्टि से और यहाँ देखा कि

यहाँ पर शासन भी किया जा सकता है क्योंकि यहाँ की जनता में ऐक्य का अभाव था । अंग्रेजों ने इसी कमजोरी का फायदा उठाकर यहाँ पर धीरे-धीरे अपना राजनैतिक एवं आर्थिक आधिपत्य जमा दिया । सत्ता के सूत्र उनके हाथ में आने के कारण आर्थिक क्षेत्र भी उसके हाथ में आ गया अत: उन्होंने भारत में जो लघुउद्योग एवं गृहउद्योग थे उस पर अपनी नजर दौडाई । यहाँ के प्राकृतिक भण्डारों का भरपूर लाभ उठाया । 'सुमन' जी के समय पर पूर्ण भारत पर उसका अधिकार था । उन्होनें यहाँ के कच्चे माल को अपने देश में लेजाकर वहाँ उत्पादन करके फिर यहाँ और दूसरे देशो में बेचना प्रारम्भ कर दिया अत: वह यहाँ जो माल बेचते वह बिना लागत के या कम लागत के उत्पादित माल था अत:उन्हें सस्ता पडता था । इस कारण से उन्होंने धीरे-धीरे यहाँ के गृहउद्योगों एवं ग्रामीण अर्थतंत्र को नष्ट करके अपना व्यापार समृद्ध कर अपने देश की आर्थिक सज्जता प्रस्थापित कर ली । अंग्रेजी सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण यहाँ के वस्त्र उद्योग और गृहउद्योग नष्ट हो गए । यहाँ बेरोज़गारी का प्रमाण इस कारण से ही बढ़ गया । 'सुमन' जी के समय में अंग्रेजी शासन ने अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु विज्ञान और तकनीकी को भारत में प्रस्थापित किया और उसकी औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में जूट गए ।

'सुमन' जी के समय में भारत के सभी गृहउद्योग एवं लघुउद्योग नष्ट हो चुके थे, अत: भारत में गरीबी एवं बेरोज़गारी बढ़ी । खेती क्षेत्र नष्ट होने लगा । भारत की आर्थिक शक्ति जैसे गाँव टूटने लगे । किसान पर लगान के कारण बिजली गिरी ।

किसान महाजनों, अंग्रेज़ी अधिकारियों एवं ब्रिटीश सरकार इस तरह की त्रिविध लगान वसुली से त्रस्त हो गये । वह कर्ज़ के बोझ के तले दबते ही चले गये । कई किसानो ने अपनी जमीनों को गवाँ भी दिया । वे अपने ही खेतो में मज़दूर बनकर रह गए, इसके कारण उसको जीवनयापन के लिए शहरों में आना पडा और शहरों पर बोझ बढ़ता गया । भारत में अनेक उद्योग आए उसमें वे मज़दूरी करने लगे । इस तरह एक नये सामाजिक – आर्थिक मजदूर वर्ग की उत्पत्ति हुई । मध्यम वर्ग सी उत्पत्ति के कारण में भी यही था । पूँजीपतियों ने गरीब एवं मज़दूर तथा मध्य वर्ग का शोषण बहुत किया । पूँजीपतियो एवं अंग्रेज़ों का शोषणचक्र चल रहा था । भारत की आर्थिक परिस्थिति दयाजनक थी । इस संबंध में डॉ. कैलाश खन्ना अपनी ''आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'' पुस्तक में लिखते हैं कि – ‘‘स्थायी प्रबन्ध करके अंग्रेज उपनिवेश वादियों में भारत ने एक नया वर्ग पैदा कर दिया । अब बंगाल में जमींदारो का एक ऐसा वर्ग बन गया जो कम्पनी का बड़ा स्वामीभक्त और राज्य भक्त बन गया । यहाँ वर्ग उत्तरोत्तर कम्पनी सरकार का सबसे बड़ा शुभचिन्तक बन गया । इस प्रकार स्थायी प्रबन्ध के द्वारा सरकार ने संकट के समय सहायता प्रदान करने के लिए जमींदारो को अपना हमदर्द बना लिया । इसके कारण आगे चलकर क्रान्तियों तथा विप्लवों के समय सरकार को जमींदार वर्ग का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ ।’’[१०]

स्थायी प्रबंध से इस प्रकार अंग्रेज़ों ने जमीदारों से हाथ मिलाकर भारतीय अर्थतंत्र को अपने कब्ज़े में कर लिया । अंग्रेज़ो

का मूल उद्देश्य भारत से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ लेने का था । इस तरह उस समय किसान और मज़दूर वर्ग स्थायी प्रबंध के कारण जमीदारों एवं सरकार दोनों के शोषणचक्र में पीसता गया । स्थायी प्रबंध से भारत को बहुत नुकसानी आई । अनेक हानियाँ हुई। इसके संबंध में डॉ. कैलाश खन्ना का मत है कि – ''स्थायी प्रबन्ध से भारतीय समाज को ओर भी कई हानियाँ हुई । जिस समय सर्वप्रथम स्थायी प्रबन्ध किया गया था उस समय भूमि का ठीक माप न होने के कारण लगान की दर उत्यन्त कम निश्चित की गई तथा स्थायी प्रबन्ध से सरकारी आय को काफी धक्का पहुँचा । कुछ स्थानों पर तो जमीदार जो लगान सरकार को देते थे इसका बीस गुना भाग कृषकों से प्राप्त करते थे । इस प्रकार इस व्यवस्था से वास्तविक लाभ ज़मींदारो को हुआ तथा कृषको की दशा उतनी उन्नत नहीं हो सकी जितनी होनी चाहिए थी । ब्रिटिश सरकार ने जिन-जिन प्रदेशों को जीता उन सभी प्रदेशो में स्थायी प्रबध लागू किया तथा बाद में अन्य प्रान्तों की दर बढ़ा दी । इस व्यवस्था के परिणाम देश के लिए बड़े घातक सिद्ध हुए । कृषक लोग भूमि के स्वामित्व से सर्वथा वंचित हो गए । कृषकों की महेनत पर पलने वाली और महेनत के बिना उपभोग करने वाली ज़मींदार-श्रेणी स्थिर रूप से देश की छाती पर बैठ गई । किसान जो अब तक 'रैयत' बन गए, प्रतिदिन निर्धन और अशक्त होने लगे और ज़मींदार के मान-महलो और अट्टालिकाओं के रूप में परिणत होने लगे । यह स्थायी व्यवस्था की ही कृपा थी कि कुछ ही वर्षो में कलकता

'महलो का शहर' कहलाने लगा । स्थिर रूप से जमींदारी प्रथा की स्थापना ने प्रान्त के आर्थिक तथा सामाजिक संगठन की कायापलट ही कर दी ।''[११]

अंग्रेज़ो की स्थायी प्रबंध की आर्थिक नीतियों के दूरगामी परिणाम भारत ने भुगते हैं, जिसका प्रभाव आज भी भारत की आर्थिक परिस्थितियों पर पड़ता हुआ दिखाई देता है । अंग्रेज़ों, जमींदारों, सामन्तो, भ्रष्ट अधिकारियों की मिलिभगत से भारतीय जनता का शोषण हो रहा था । आज तक इसके प्रभाव को नही मिटाया जा सका है । जो घटियाशोषणनीति तब चली वही शोषण का चक्र आज परिवर्तित रूप में चल रहा है, फर्क इतना ही हैं कि तब शोषक अंग्रेज थे तो आज अंग्रेजीनुमा भारतीय ही हैं । आज मजदूरो, अधिकारियों, किसानों और आम जनता के शोषण का दृश्य देखकर अंग्रेजो की याद आ जाती है । आज की बड़ी बड़ी वित्तीय कंपनियाँ, वैश्विक कम्पनियाँ उस समय से अधिक मात्रा में भारतीय जनता का शोषण कर रही है । अंग्रेजो की नीतियाँ और आज की शोषक आर्थिक नीति में कोई फर्क नहीं है । डॉ. कैलाश खन्ना लिखते हैं कि – ''अंग्रेजों की शोषण नीति के कारण सारा देश गरीबी के रोग से ग्रसित हो गया और इसकी बुनियाद इतनी मजबूत हो गई कि स्वतंत्र भारत के छप्पन वर्षों के प्रयास के बावजूद इसे नहीं मिटाया जा सकता । विदेशी अंग्रेजी शासन ने जिस आर्थिक नीति का अवलम्ब लिया, यह पूरी तरह अंग्रेजी हितो के अनुकूल थी और भारत को निरंन्तर कंगाल बनाने वाली थी । अंग्रेज़ी शासनकाल में कृषि प्रधान देश भारत कृषि के क्षेत्र में दयनीय

स्थिति में पहुँच गया । हमारे कुटीर उद्योग धन्धे विनष्ट हो गए जिससे घोर आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ । लघु और हस्तकला उद्योगो के पतन से देश के कुशल कारीगर हाथ पर हाथ धरे बैठे रह गए और भारत की कारीगरी लुप्त हो गई । आत्मनिर्भर भारत विदेशियों का कर्ज़दार हो गया। भारत की कृषि, उद्योग, आर्थिक संगठन, व्यवसाय-व्यवस्था जो अंग्रेजों के आगमन से पूर्व उन्नत अवस्था में थी, वह अंग्रेज़ो के पक्षपातपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण नीति के कारण पुरी तरह कमजोर हो गई । धन-धान्य से पूर्णभारत गरीबी और बेकारी का केन्द्र बन गया । यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि भारत की अर्थव्यवस्था के लिए ब्रिटिशकालीन इतिहास सदैव अंग्रेज़ो की अन्यायपूर्ण आर्थिक नीतियों का स्मरण दिलाता रहेगा ।''[१२]

इस प्रकार अंग्रेज़ों के कुशासन एवं आर्थिक नीतियों के कारण भारत बेकार और गरीबी का पर्याय जैसा बन गया था । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने औद्योगिक एवं खेती प्रधान ऐसी दो प्रकार की मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया । भारत में औद्योगिक विकास हुआ । बेंकिंग एवं वाणिज्यिक क्षेत्रो में अभूतपूर्व विकास प्रारंभ हुआ । सहकारिता एवं सहभागीदारी पूर्ण रवैये से भारत की आर्थिक गति मंथर गति से भी आगे बढी । बड़ी - बड़ी कम्पनियाँ भारत को अब एक बडे वैश्विक बाज़ार के रूप में देखने लगी । इसके कारण विश्व में भारत का स्थान अच्छी तर सुदृढ होने लगा । बडी जनसंख्या भारत की कमजोरी न रहकर एक ताकत बन गई ।

भारत की ही कम्पनियाँ ओ.एन.जी.सी., आई.पी.सी.एल., रिलायन्स, मित्तल, विप्रो, इन्योसीस आदि कम्पनियाँ वैश्विक बडी कम्पनियों में स्थान पा सकी । रिलायन्स की प्रगति ने भारत की आर्थिक नीव सदृढ़ की तो ताता, बिरला आदि कम्पनियों ने अपनी ताकत वैश्विक स्तर पर स्थापित की । भारत एक बिज़नेस के रूप में स्थापित होने लगा । श्वेत क्रांति और हरित क्रांति के कारण भारत आत्म निर्भर बना । भारत का सोफ्टवेयर एवं हार्डवेयर क्षेत्र में कम्प्यूटर जगत में प्रथम स्थान रहा । सन् १९९२ ई. के बाद भारत ने भूमण्डलीकरण एवं उदार आर्थिक व्यवस्था में कदम रखा । डबल्यु.टी.ओ. में भारत का डंका बजने लगा । भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार सुदृढ हुआ । भारत ने इस प्रकार आर्थिक विकास के नये सीमाचिह्न स्थापित किए ।

शेयर बाज़ार की स्थिति एवं सुवर्ण भण्डार की भारत की स्थिति में आशातीत एवं उल्लेखनीय सुधार हुआ । अब भारत सिर्फ लेने वाला देश न रहकर देने वाला देश बन गया । लोगो की आमदनी बढ़ी, लोगों का आर्थिक स्तर सराहनीय ढंग से बढ़ा । आर्थिक एवं सामाजिक विकास में वैश्विक स्तर पर भारत का क्रमांक सुधरा । भारत की व्यक्ति स्तर पर आय बढ़ी । भारत ने अनेक क्षेत्रो में अपना विकास दर बनाये रखा । इस प्रकार इस समय में भारत ने आर्थिक क्षेत्र में अच्छा विकास किया ।

आर्थिक विकास की इस विकसित प्रक्रिया के बावजूद भारत का एक ऐसा भाग था जो अभी भी भू-मण्डलीकरण एवं वैश्विकरण के लाभों से वंचित था । मोल कल्चर एवं व्यापार

उद्योग के विकास के फायदे और उसके लाभ जन संख्या के एक बड़े तब्के को नहीं मिले । शोषण का चक्र आज भी जारी है । शोषण के रूप आज बदल गए है, आज महाजनी, सामन्ती एवं ज़मींदारी व्यवस्था नहीं है, परंतु सामने सरकारी अधिकारी, व्यापारी, पूँजीपति शैक्षिक और राजनेताओं का एक ऐसा वर्ग है जिन्होंने इन सबका स्थान ले लिया है । आज जनता के ऊपर नये-नये कर लगाकर महँगाई से पीड़ित किया जा रहा है । इस समय में मध्यवर्ग एवं निम्न आर्थिक वर्ग के लोगों का महंगाई की मार के कारण जीना दुभर हो गया है । नेता आर्थिक घोटाले करके जनता को, सरकार की लूँट रहे है। आज मध्यवर्गीय एवं गरीब वर्गीय जनता के बच्चों को महँगाई के कारण अच्छी शिक्षा मिलना कठिन हो गया है । निजीकरण से जनता की कमर टूट गई है । इस तरह आज आर्थिक रूप से शोषण जारी है परंतु फर्क इतना है कि शोषक हमारे ही देश के नागरिक हैं ओर शोषण के रूप एवं तौर तरीके बदल गए हैं । भारत अब वैश्विक स्तर पर आर्थिक गुलामी का शिकार हो गया है ।भारत आर्थिक गुलामी की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा है, यह भारत के लिए निश्चय ही शुभ संकेत नहीं कहा जा सकता ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी के समय में भी भारत की जनता आर्थिक रूप से पीड़ित थी, शोषण का चक्र आज भी बदस्तूर जारी है । आज भी चालीस प्रतिशत जनता गरीब हैं । भारत ने आर्थिक विकास अवश्य किया है, परन्तु स्वस्थ रूप में समाज के हर वर्ग को उसका लाभ मिलने चाहिए वह नहीं मिला है । 'सुमन' जी के काव्यों मे आर्थिक परिवेश के संबंध में भी

विचार प्रकट हुए हैं, जो अब आगे के अध्यायों में विस्तृत रूप में देखने का प्रयत्न करेंगे ।

३.४.४ धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

धर्म एवं संस्कृति समाज का एक अभिन्न अंग है । कोई भी समाज धर्म एवं संस्कृति से कभी भी अछूता नहीं रह सकता । समाज व्यवस्था पर धर्म एवं संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता ही है । कोई भी मनुष्य धर्म एवं संस्कृति से पृथक होकर नही जी सकता । धर्म से व्यक्ति के आंतरिक गुणों का विकास होता है और धर्म ही व्यक्ति को जीवन शैली सिखाता है । संस्कृति किसी भी समाज की परिचायक होती है, संस्कृति से मनुष्य की विचारधारा, आचार प्रणाली, विचार प्रणाली निर्मित होती है और एक जीवन पद्धति निर्माण होती हैं ।धर्म एवं संस्कृति हैं अवश्य ही एक सुव्यवस्थित आचारप्रणाली, विचारप्रणाली एवं जीवन पद्धति का निर्माण होता है ।

परंतु धर्म एवं संस्कृति से मानवीय समाज में विभाजन की एक समस्या उत्पन्न हो गई है । जो धर्म एवं संस्कृति मानवीय समाज को जोड़ने का कार्य करते थे उसी से थोडे स्वार्थी एवं अंधी मानवता विरोधी शक्तियों ने तोडने वाली शक्तियाँ बना दी है । सुमनजी के समय में भारतीय समाज में अनेक धर्म प्रचलित थे । आजादी से पहले हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, बौद्ध, जैन आदि धर्मो की प्रजा से भारत में एक विविधतापूर्ण मानवीय समाज अस्तित्व में था और आज भी वह है । विविधता में एकता की विशेषता ही

भारतीय जनसमाज की पहचान है । भारत में आज़ादी पूर्व विभिन्न धर्मो के लोग आपस में बंधुत्व की भावना से जुड़े हुए थे और स्वतंत्रता आंदोलन की सफलता का श्रेय भी विभिन्न धर्मो के लोगों को जाता हैं, जिन्होंने एक हो कर अंग्रेजी शासन का प्रतिकार किया । हिन्दु, मुसलमान एवं सिक्ख धर्म सभी लोगों ने एकात्म भाव से स्वतंत्रता का आंदोलन चलाया था । परंतु अंग्रेजो की फूट डालो और राज करो की नीति के कारण भारत के स्वतंत्रता पूर्व विभाजन की समस्या उत्पन्न हुई । आज़ादी के आंदोलन के अंतिम चरण में हिन्दु और मुसलमानो एवं सिक्ख और मुसलमानों के बीच धार्मिक दंगे भडक उठे थे । धार्मिक नींव पर पाकिस्तान की रचना हुई परंतु भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र रहा । अंग्रेजो ने भारतीय समाज में धार्मिक विद्वेष का विष घोल दिया और जिसके कारण विभाजन के पूर्व हिन्दु-मुसलमान और मुसलमानो एवं सिक्खों के बीच भयंकर धार्मिक युद्ध प्रारंभ हो गया जिसके कारण भारत का विभाजन हुआ । इस समस्या को अनेक उपन्यासकारों ने चित्रित किया था । उस में यशपाल का 'जूठासच' एवं भीष्म साहनी का 'तमस' उपन्यास महत्वपूर्ण है । 'तमस' में स्वतंत्रता पूर्व धार्मिक विद्वेष के कारण हुए धार्मिक दंगो का चित्रण है तो 'झूठासच' में विभाजन पश्चात के धार्मिक विद्वेष का चित्रण है ।' 'तमस' का धार्मिक विद्वेष का चित्रण यथार्थ के धरातल पर खडा है । एक सिक्खों के गाँव पर बलवाइयों, जो कि मुसलमानी हमलावर थे हमले का चित्रण देखिए - ''निहंगसिंह को गाँव के पार दूर क्षितिज के पास धूल उड़ती नज़र आयी । धूल का बवण्डर था । उसने आँख लगाकर

देखा, धूल का बवण्डर आगे बढ़ता जा रहा था । उसने किशन सिंह से कहा, किशन सिंह ने उठकर झरोखे में से देखा ओर देर तक देखता रहा । धूल का बवण्डर ही था पर इस और सचमुच बढ़ता आ रहा था । उसे पहले तो अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ, पर देखते ही देखते गहरी भिनभिनाती – सी आवाज उसके कानों मे पडने लगी। उसका माथा ठनका । सभी को विश्वास था, शरारत गाँव के अन्दर से होगी, कालू मलंग, असरफ कसाई और नबी तेली जैसे लोग फिसाद पर तुले हुए जान पडते थे, पर बलवाई सचमुच बाहर से आ रहे थे । वह अभी खड़ा सुन रहा था कि ढोल बजने की गहरी दबी आवाज उसके कानों में पडी । देखते ही देखते स्थिति ने गम्भीर और विकट रूप ग्रहण कर लिया था । उसने निश्चय किया कि नीचे जाकर तेजासिंह जी को आगह कर दे, पर यहाँ मोर्चे पर खड़े होकर दुश्मन की चाल–ढाल को देखना भी जरूरी था, चुनाँचे सूचना देने का काम उसने निहंग सिंह के सुपुर्द कर दिया । निहंग भागता हुआ सीढ़ियाँ उतरा और आखिरी सीढ़ी तक पहुँचते – पहुँचते चिल्लाकर बोला, ''तुर्क आ गये । तुर्क आ गये'' ढोल बजने की आवाजें नजदीक आने लगी । 'या अली' ! का शोर भी नज़दीक से सुनायी दिया । तभी पिछवाड़े से जोर का नारा बुलन्द हुआ : “अल्लाह ओ अकबर !” क्षण भर के लिए हॉल के अन्दर सकता – सा छा गया । फिर गुढद्वारे के अन्दर उत्तेजना की लहर दौड़ गयी । “जो बोले सो निहाल, सत सीरि अका... ल !” का जवाबी नारा हवा में गूँज गया । “गुढ का प्यार कोई सिंह यहाँ से बाहर नहीं जाये । सब अपने अपने मोर्चे पर पहुँच

जाओ !''[१३] और फिर दोनों के बीच भयंकर मारफाट हो जाती है । इस प्रकार भारत विभाजन के पूर्व हिन्दु मुसलमानो के बिच धार्मिक विद्वेष था ।

आज़ादी पश्चात यही धार्मिक विद्वेष विभाजन का कारण बना और धार्मिक आधार पर पाकिस्तान की रचना हुई, आज आतंकवादी वातावरण के मूल में भी यही धार्मिक विद्वेष ही है । आज़ादी के पश्चात हिन्दु और मुसलमानों के बीच यह खाई मज़बुत होती हुई दिखाई देती है । सन् १९९२ ई. के बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद के धार्मिक झगड़े, गोधरा काण्ड आदि कई ढपो में धार्मिक विद्वेष दिखाई देता है ।

हिन्दु धर्म में भी अनेक संप्रदाय अस्तित्व में आये । अनेक धार्मिक संस्थाएँ अस्तित्व में आयी । इस तरह भारत में आज भी विभाजन की विभिषि का सुषुप्त ढप में व्याप्त हैं। प्रा. अर्चना जैन अपनी 'तमस: एक अध्ययन' पुस्तक में इस संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहती है कि – ''आज तक भी हमारा देश इस साम्प्रदायिकता के आसुरी पंजो से मुक्त नही हो पाया है ।''[१४]

आज़ादी के पश्चात भू-मण्डलीयकरण, शिक्षा, विज्ञान के प्रसार के कारण और बेहतर संचार व्यवस्था के कारण एक मिली जुली मिश्रित संस्कृति का उदय हुआ । पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव बढ़ा । भारत के समाज जीवन पर पश्चिमीकरण का प्रभाव बढ़ा । खाने पीने, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि पर और विचारों पर पश्चिमी संस्कृति का गहरा प्रभाव बढा । संयुक्त की जगह विभक्त परिवार

अस्तित्व में आने लगे । होली, दीवाली, ईद आदि परंपरागत उत्सव को मनाते हुए लोग पश्चिम के वेलेन्टाइन डे, क्रिसमस आदि उत्सव भी मनाने लगे । हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई की एक मिली जुली संस्कृति का उदय भी हुआ जो एक अच्छी निशानी भी है । भारतीय संस्कृति ने विश्व पर अपना प्रभाव डाला । योग, अहिंसा, सत्य मानवता, विश्वशांति जैसे भारतीय संस्कृति के मूल्यो एवं विचारों को विश्व कें लोगो ने अपनाया, उसका प्रभाव बढ़ने लगा । माँसाहार की जगह शाकाहार का प्रभाव भी बढ़ने लगा । महाकुम्भ पर्व और दूसरे हिन्दु पर्व को देखने विदेशी आने लगे । इस प्रकार भारतीय धर्म एवं संस्कृति का प्रभाव भी विश्व पर पड़ा । इस तरह धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदान प्रदान इस समय में बढ़ा ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आजादी पूर्व अनेक धर्मो एवं सांस्कृतिक विचारधारा में बँटा हुआ भारत धार्मिक विद्वेष से बाहर आकर एक मिश्रित धर्म एवं संस्कृति वाला देश बनने की ओर बढ़ने लगा । आज़ादी के पश्चात भारतीय धर्म निरपेक्षता के कारण विश्वस्तर पर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी । भारत एक सांस्कृतिक विचारधारा के केन्द्र के रूप में विश्व स्तर पर अपनास्थान सुनिश्चित करने में सफल रहा ।

३.४.५ साहित्यिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का इतिहास चार काल खण्डो में विभाजित किया गया है । जिसमें आदिकाल, मध्य काल उसमें पूर्व मध्य

काल – भक्ति काल और उत्तर मध्यकाल रीतिकाल, आधुनिक काल को क्रमशः काल विभाजन में रखा जा सकता है । आधुनिक काल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जा सकता है । जिसको संक्रांति काल या नवजागरण काल भी कहा जाता है जो सन् १८५७ ई. से सन् १९०० ई. तक का माना जाता है । बाद में द्विवेदी काल आता है जिसको जागरण काल या सुधारावादी युग के रूप में माना जाता है यह कालखण्ड महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के नाम से माना जाता है । जिसका समय सन् १९०० ई. से सन् १९१८ ई. तक है ।'सुमन' जी का समय इसी काल खण्ड से प्रारंभ होता है । इस समय तक आते आते हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली हिन्दी प्रवेश कर चुकी थी । गद्यसाहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था । कविताएँ, निबंध, कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक आदि नई–नई विधाएँ विकसित हो रही थी । द्विवेदी जी के समय में उनकी 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य का विकास किया । बाद में छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद नई कविता, अति आधुनिक कविता, विचार कविता, अकविता वर्तमान कविता आदि कई रूप में कविता का विकास हुआ और काव्य साहित्य लिखा जा रहा था । गद्य साहित्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना, जीवनी, आत्मकथा, रीपोतार्ज, पत्र–साहित्य, निबंध, विचारलेखन, आदि अनेक रूप में गद्य साहित्य लिखा जाने लगा और लिखा जा रहा है । हम यहाँ 'सुमन' जी के समय की साहित्यिक परिस्थितियों के संबंध में चर्चा करने जा रहे हैं ।

छायावादी काल में छायावादी विचारधारा की कविताएँ लिखी जाने लगी, जिसका समय सन् १९१८-२० ई. से लेकर सन् १९३८-४० ई. तक का माना जाता है। इस काव्य धारा के मुख्य कवि हैं - सुमित्रानंदन पंत,जयशंकरप्रसाद, महादेवी वर्मा, सुर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' । छायावादी काव्य में रहस्यात्मकता, मानवतावाद, मानवीकरण, प्रकृति चित्रण, देशप्रेम, वैयक्तिकता आदि अनेक विशेषताएँ थी । परंतु जन-जीवन से और यथार्थ धरातल से विमुख होने के कारण यह धारा केवल बीस वर्षो के अंतराल में ही समाप्त हो गई । इस काल की इस विचार धारा से विमुख होकर स्वतंत्र रूप से, रचना करने वाले अन्य कवि है - हरिऔध, अमीरअली 'मीर',गिरधर शर्मा 'नवरत्न',गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही', सत्यनारायण 'कविरत्न', मैथिलीशरण 'गुप्त',रामनरेश त्रिपाठी आदि । द्विवेदी युग में नाटक भी लिखे गये जिसमें अनुदित नाटक भी शामिल थे । इस युग में उपन्यास, कहानी, निबंध भी लिखे गए, आलोचना और पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ । 'सरस्वती' पत्रिका इसमे मुख्य है । छायावादी कविता धारा के संबंध में डॉ. नामदेव उनकर जी कहते है कि - ''छायावादी कविता - मोटे रूप से दो महायुद्धो के बीच की स्वच्छंदतावादी कविता को ही कहते है । द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता (मैटर ऑफ फैक्ट) की प्रतिक्रिया स्वरूप इस छायावाद का जन्म हुआ । इस वाद के कवियों ने अपनी कविताओं में मौलिकता और नवीनता का आग्रह रखा जिसमें काव्य के लिए एक नई दिशा खुल गई ।''[१५] इस काल की प्रसाद को 'कामायनी' महाकाव्य श्रेष्ठ रचना के रूप में हिन्दी साहित्य को उनकी देन है ।

इस समय में उपन्यास, नाटक, निबंध, कहानी, आलोचना, जीवनी, आत्मकथा, पत्र-पत्रिकाएँ आदि गद्य साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में लिखा गया ।

छायावाद के बाद छोटे से कालखण्ड में एक महत्वपूर्ण विधा 'हालावाद' की झाँकी भी हिन्दी साहित्य में हुई उसके प्रवर्तक हरिवंशराय बच्चन माने जाते हैं । लेकिन यह विचारधारा बहुत आगे न चल सकी । छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का प्रणयन हुआ । मार्क्सवादी, प्रगतिवादी, समाजवादी दर्शन से प्रभावित यह कविता धारा ने केवल काव्य में ही नही अपितु नाटक, निबंध, उपन्यास और कहानी में भी अपने पँख फैलाए प्रगतिवाद छायावाद से भी समृद्ध साहित्य विद्या सिद्ध हुई । यथार्थ के धरातल पर कविताएँ लिखी जाने लगी जो सामान्य जन जीवन से स्पर्श करती थी इस लिए यह धारा बहुत ही लोक प्रिय रही ।

प्रगतिवाद का प्रारंभ सन् १९३८ ई. के आसपास माना जाता है प्रगतिशील लेखक संघ से इसकी शुढआत हुई । सन् १९३६ ई. से सन् १९४३ ई. तक के छोटे काल खण्ड में यह चिंतन काफी प्रभावशाली सिद्ध हुआ । इसकी मुख्य विशेषताएँ रही जन शोषण का विरोध, शोषकों के प्रति, घृणा, समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता, नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण, नारी-चित्रण, नारी-चेतना, धर्म का विरोध, साम्यवादी देशो के प्रति अन्धश्रद्धा, क्रांति का पक्षहार, ढढियो का विरोध, शोषितों का करूण गान, शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण, बौद्धिकता और व्यंग्य प्रचार, मानवता, पाश्ववाद

का विरोध । 'सुमन' जी की अधिकतर रचनाएँ इसी विचारधारा की कविताएँ हैं । इसके मुख्य कवि रहे है – केदारनाथ अग्रवाल, 'दिनकर', 'सुमन', 'नागार्जुन', 'पंत', निराला, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा आदि । अन्य प्रगतिवादी कवि हैं रांगेय राघव, रामविलास शर्मा, अज्ञेय, मुक्ति बोध, गिरिजा कुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल आदि । गद्य में नाटक, निबंध, आलोचना, कहानी, उपन्यास और अन्य गद्य साहित्य की रचना हुई । प्रेमचन्द, प्रसाद आदि ने गद्य में रचनाएँ की । प्रेमचन्द की 'गोदान' श्रेष्ठ रचना है । प्रेमचन्द को उपन्यास सम्राट कहा जाता है । एकांकी लिखे गए । इस समय में फ्राँयड से प्रभावित मनोवैज्ञानिक धारातल पर साहित्य लिखा जाने लगा जिसमें जैनेन्द्रकुमार और अज्ञेय मुख्य है । इस समय में यात्रावर्णन, संस्मरण, रिपोतार्ज,जीवनी साहित्य, पत्र साहित्य, इन्टरव्यू, आदि गद्य साहित्य लिखा जाने लगा । 'हंस', 'इन्दु' आदि उनेक पत्रिकाओं का साहित्यिक विकास के योगदान में महत्वपूर्ण रहा । रामचन्द्र शुक्ल, रामकुमार वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाबू गुलाबराय आदि अनेक आलोचकों ने विभिन्न विषयों पर आलोचना लिखी । इस काल के संबंध में बच्चन सिंह का मत है कि – ''कवि का 'मै' अपने भोगे हुए यथार्थ तक सीमित हो गया, कल्पना का स्थान यथार्थ ने ले लिया ।''[१६] इस समय क्रांति, देशप्रेम, गांधी दर्शन, स्वतंत्रता आंदोलन, राष्ट्रपिता, नव्यप्रगतिवादी साहित्य और जनवादी साहित्य की रचना हुई । 'सुमन' जी के समय में प्रसाद जी और कमलेश्वर जैसे समर्थ नाटककारों ने हिन्दी साहित्य को सर्वश्रेष्ठ नाटक दिए । प्रसाद के चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी मुख्य हैं,

तो मोहन राकेश का आधे अधुरे 'आषाढ़' का एक दिन नाटक महत्वपूर्ण है ।

प्रगतिवादी युग के बाद प्रयोगवादी विचारधारा का युग प्रारंभ हुआ जिसके प्रवर्तक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय को माना जाता है । सन् १९४३ से सन् १९५८-६० ई. तक यह विचारधारा रही जिसने कविता और गद्य साहित्य में नये-नये प्रयोग किए इस वजह से उसे प्रयोगवाद कहा गया । 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद की नीवं डाली गई । नई कविता की काव्यधारा भी इसी तार सप्तक के साथ ही प्रारंभ हुई । तार सप्तक द्वितीय के साथ नई कविता की विचारधारा प्रारंभ हुई । प्रयोग वाद सन् १९४३ ई. से सन् १९५३ ई. तक माना जाता है जिसका प्रभाव सन् १९६० ई. तक रहा । प्रयोगवादी कविता की विशेषताएँ है - घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, दूषित वृत्तियों का नग्न रूप में चित्रण, निराशावाद, क्षणवादिता, यथार्थवाद की प्रतिष्ठा अति बैद्धिकता और शुष्कता, वैचित्र्यदर्शन, व्यापक सौंदर्य भावना अपमानों की नवीनता आदि । इस समय, नाटक, उपन्यास, कहानी निबंध के अलावा अन्य गद्य साहित्य भी लिखा गया । उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि मुख्य गद्य साहित्यकार इस काल की देन है । बाबू गुलाबराय, इलाचंद्र जोशी, जैनेन्द्र, आदि इसमें मुख्य है । प्रयोगवादी मुखय कवि है - डॉ. जगदीश गुप्त, मेघराज इन्द्र, अज्ञेय, डॉ. धर्मवीर भारती, अनंतकुमार, शकुंतला माथुर तथा 'तार सप्तक' के अन्य कवि ।

नई कविता और प्रयोगवादी कविता का संबंध अतरंग है क्योंकि दोनों के प्रवर्तक अज्ञेय जी है । द्वितीय तारसप्तक से नई कविता का प्रणयन माना जाता है । अज्ञेय जी ने सन् १९५२ में नई कविता का प्रणयन किया । पटना आकाशवाणी की भेंटवार्ता में 'नई कविता' नामकरण किया । नई कविता के प्रमुख कवि हैं - अज्ञेय, धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यंत कुमार, नेमिचन्द्र जैन, भारतभुषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सकसेना, कीर्ति चौधरी, विजयदेव नारायण और सप्तकेत्तर कवियों में श्रीकान्त वर्मा केदारनाथ सिंह तथा दुष्यंत कुमार आदि । नई कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं - यथार्थवादी अहंवाद, नवीनता का आग्रह अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता, यथार्थ के प्रति व्यंग्य, आधुनिक एवं समसामयिकता का प्रतिनिधित्व, चित्रमयता और अनुशासित शिल्प, नई छन्दयोजना, नवीनता, आधुनिकता आदि । नई कविता और प्रयोगवाद के मूल में तारसप्तक मुख्य है - तारसप्तक इस प्रकार प्रकाशित हुए - 'तार सप्तक' - सन् १९४३ ई., तार सप्तक द्वितीय सन् १९५१ ई., तार सप्तक तृतीय १९५९ ई., तार सप्तक चतुर्थ सन् १९७९ ई. सन. १९६९ ई. के बाद साठोत्तरी कविता का प्रारंभ हुआ । इस समय में अनेके नई विचारधाराओं को लेकर नये नये कवियों ने कविताएँ लिखीं । इस प्रकार अकविता, विचार कविता आदि नये नये नाम भी मिले । वर्तमान में कमलेश्वर, मंगलेश डबराल, मालती जोशी जैसे अनेक साहित्यकार साहित्य साधना में लिप्त होकर हिन्दी साहित्य को

समृद्ध कर रहे हैं । आधुनिक काल में नारियों द्वारा साहित्य सर्जन क्रांतिकारी घटना है जिसमे मन्नू भंडारी, ममता कालिया, अमृता प्रितम, मालती जोशी मुख्य है ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी के समय में जो साहित्यक लिखा गया वह और जो साहित्यिक परिस्थितियाँ रही वह यथार्थ और जनवादी 'धरातल पर खड़ी हैं । अत: अवश्य ही समाज का हित करनेवाला साहित्य कहा जा सकता है । बच्चन जी का यह कथन निष्कर्ष के रूप में पर्याप्त ही है कि - 'उत्तर - स्वच्छन्दताकाल में पघ की तरह है । गद्य भी मुख्यत: स्वच्छन्दतावाद के यथार्थ की ओर मुड़ता है ।[१७] जिसको हम यथार्थवादी साहित्य कह सकते हैं जो सचमुच में साहित्य है ।

३.५ निष्कर्ष

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी का समय एक संक्रांतिकाल माना जा सकता है, उस समय का परिवेश कहीं न कहीं वर्तमान को प्रभावित करता है । 'सुमन' जी के समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ, उस समय के सरकारी एवं राजनैतिक निर्णय कहीं न कहीं समाज जीवन और जन जीवन को प्रभावित करते हैं । वर्तमान समय की समस्याएँ भूतकाल के राजनैतिक परिवेश का ही परिणाम लगता है, भारत और पाकिस्तान का निर्माण धार्मिक आधार पर हुआ, जिसके मूल में आज की धार्मिक स्थिति है, आज की आतंकवाद की समस्या है । 'सुमन' जी एक राष्ट्रवादी कवि थे अत: उन्होंने उस समय जो देखा उसी के संबंध में अपने विचार अपने काव्य

साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किए । राजनैतिक परिवेश का प्रभाव भी उनके काव्यों पर पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है ।

'सुमन' जी के समय की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ विचारणीय थी । उस समय का आर्थिक शोषण, पूँजीवादी नितियाँ, दलितों एवं पीड़ितों की दयनीय स्थिति आदि सभी के संबंध में 'सुमन' जी का ए क स्पष्ट विचार दर्शन था । वह एक भावनाशील एवं संवेदनशील कवि रहे है, अत: शोषण के प्रति उनका आक्रोश भी स्वाभाविक ही है, उन्हें जो समाज विरोधी, जन विरोधी लगा उन पर उन्होंने व्यंग्य भी किया और उन पर अपने विचार भी प्रकट किए । कोई भी साहित्य अमर होता है, उसमें भविष्य की ओर देखने की दृष्टि होती है । आज अलग और नवीन रूप में यांत्रिकता, आधुनिकता, भौतिकता और विकास के नाम पर शोषण का चक्र चल रहा है । 'सुमन' जी ने इस संबंध में अपना दर्शन अपने काव्यों में स्पष्ट किया है । अत: सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों ने भी उनको प्रभावित किया और उसके फलस्वरूप 'सुमन' जी के प्रगतिवादी साहित्य का निर्माण हुआ ।

धार्मिक एव सांस्कृतिक परिस्थितियाँ 'सुमन' जी के समय भी विवादास्पद एवं अराजकता भरी थी और आज भी आराजकता भरी स्थिति है । उस समय की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने भी उनके साहित्य को कहीं न कहीं प्रभावित किया है ।

'सुमन' जी छायावादी काल से लेकर नई कविता, अकविता, विचार कविता और अति आधुनिक वर्तमान कविता तक सभी कालखण्डों में व्याप्त है, उन्होंने हर साहित्यिक विचारधारा के आंदोलन को देखा है

उनमें से उनका खुदका एक अलग दर्शन परिलक्षित होता है । कोई भी साहित्यकार के उपर उनके, दर्शन पर साहित्यिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी पर उस समय की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों के परिवेश ने गहरा प्रभाव डाला था और उसी से प्रभावित साहित्य का निर्माण हुआ । हम इस संबंध आगे में विस्तृत चर्चा करेंगे ।

संदर्भसूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१.	''आधुनिक भारत का इतिहास''	डॉ. दीनानाथ वर्मा	२५४
२.	''आधुनिक भारत का इतिहास''	डॉ. दीनानाथ वर्मा	२५७
३.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. श्यामचंद्र कपूर	१८७
४.	हिन्दी साहित्य का युगीन प्रवृत्तियाँ	डॉ. नामदेव अकर	१४१
५.	'विश्वास बढ़ता ही गया'	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५३
६.	'प्रलय-सृजन'	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६१
७.	'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'	डॉ. कैलाश खन्ना	१३४
८.	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन'	डॉ. रविन्द्रनाथ मिश्र	११
९.	'प्रलय-सृजन'	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६१
१०.	'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'	डॉ. कैलाश खन्ना	५८
११.	'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'	डॉ. कैलाश खन्ना	५९
१२.	'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'	डॉ. कैलाश खन्ना	६९
१३.	'तमस'	भीष्म साहनी	१८६-१८७
१४.	'तमस' : एक अध्ययन	प्रा. अर्चना जैन	७१
१५.	हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ	डॉ. नामदेव अकर	२०७
१६.	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'	बच्चन सिंह	२२७
१७.	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'	बच्चन सिंह	३०५

चतुर्थ अध्याय
'सुमन' के काव्य का सामाजिक विचार-पक्ष''

४.१ भूमिका

४.२ समाज और साहित्य

४.३ 'सुमन' के काव्य का सामाजिक विचार-पक्ष

४.३.१ सामाजिक विषमता के प्रति असंतोष

४.३.२ वर्तमान सामाजिक व्यवस्था अस्वीकार्य

४.३.३ सामाजिक यथार्थ

४.३.४ सामाजिक चैतन्य

४.३.५ 'सुमन' की दृष्टि से भावि समाज

४.३.६ सामाजिक सौहार्द्र, मानव प्रेम और विश्वमंगल की भावना

४.४ 'सुमन' काव्य के सामाजिक विचार पक्ष की प्रासंगिकता

४.५ निष्कर्ष

★ संदर्भसूचि

४.१ भूमिका :

सृष्टि के अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि सृष्टि का व्यवस्थापन सुचारू हो । सृष्टि सुव्यवस्थित, नियमबद्ध और सुचारू ढंग से चलनी चाहिए । उसमें समयानुसार परिवर्तन भी आवश्यक हैं । प्राचीनकाल में सृष्टि का सृजन हुआ और विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं एवं प्राणियों का आविष्कार होता गया । प्रारंभ में मनुष्य पशुतुल्य जीवन जी रहा था । अन्य जंगली जानवरों की तरह ही वह शिकार कर रहा था और उसी शिकार का कच्चा माँस वह खाता था । न तो उसके पास अपने अस्तित्व का पता था और नहीं उसके पास किसी भी प्रकार की जीवन शैली थी । तब का मनुष्य असंस्कृत और असभ्य था । मनुष्य की खाद्य प्रवृत्तियाँ भी सीमित थी । वस्त्र परिधान का ख्याल भी नहीं था बिलकुल नग्नावस्था में पशु-पक्षियों की भाँति उसका जीवन-यापन होता था ।

मनुष्य को वह मनुष्य है ऐसा भी अंदा़जा नहीं था । खुद उसके अस्तित्व से वह अनजाना इधर-उधर जंगलो में मारा-मारा फिरता था । जहाँ मिले वहाँ शिकार करके यहाँ-वहाँ सो जाता था । उसको पशु-पक्षियों एवं प्रकृति से भय लगता था । सृष्टि एवं प्रकृति से भी वह अनजान था । आचार पद्धति का नामों निशान तक नहीं था । ऐसे समय में धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क का विकास हुआ । सर्वप्रथम अग्नि का आविष्कार हुआ जिससे मनुष्य कच्चा माँस पकाकर खाने लगा, वह उसको अधिक स्वादिष्ट लगता था फिर उसमें से ही वह माँस को पका कर अलग-अलग व्यंजनों में परिवर्तित करके खाना सीखता गया । चक्र का आविष्कार हुआ और उसी में से संचार एवं वाहनव्यवहार की व्यवस्था का प्रारंभ हुआ और उसके लिए परिवहन सुलभ हुआ । वस्त्र परिधान का ख्याल आया और चमड़े 'वृक्षों' की खाल को 'वस्त्रों' को रूप में पहना जाने लगा ।

केवल माँस की जगह फल-फूलो के और सब्ज़ियों के आविष्कार से व्यक्ति शाकाहारी वृत्ति की ओर आगे बढ़ा । खेती-बाड़ी का आविष्कार आज की परिस्थिति एवं व्यवस्थातंत्र के पीछे एक क्रांतिकारी आविष्कार सिद्ध हुआ । खेतीबाड़ी की शुरूआत से मनुष्य जीवन स्थिर हुआ । जंगलों में स्थानांतरण करता रहता था वह बंद हो गया और नदी-तालाब एवं समुद्रों के किनारों पर वह स्थायी होने लगा । इससे मनुष्य जीवन में स्थिरता आने की शुरूआत हुई । मनुष्य अब अकेला न रहकर छोटे-छोटे गुटों में समुह जीवन में रहने लगा । इससे पृथक्तावाद की जगह सामुहिकता एवं सहकार की भावना का विकास हुआ और मनुष्य जीवन में परिवार का प्रवेश हुआ । व्यक्ति धीरे-धीरे व्यष्टिवादी की जगह अब समष्टिवादी बनने लगा वह अब सिर्फ अपने बारे में न सोचकर अपने परिवार के बारे में भी सोचने लगा । वह परिवार की चिंता करने लगा । अनेक परिवारों के मिलन से बड़े गुट एवं समुह बने और फिर ग्राम्य संस्कृति का जन्म हुआ, गाँव बने उसके व्यवस्थापन में से ही नीति-नियम बने, पंचायतों का निर्माण भी समुह जीवन में से ही हुआ । फिर गाँवो के अलावा शहरों का निर्माण हुआ और इसी प्रकार राष्ट्र बने । प्रारंभ में मनुष्य अकेला या परिवार तथा गुट या अपने समूह तक की जीवन शैली तक सीमित एवं पद्धति तक सीमित था । इस लिए व्यवस्थित एवं उचित व्यवस्थातंत्र की उसे आवश्यकता नहीं महसूस हुई लेकिन जिस प्रकार जनसंख्या बढ़ी उसी प्रकार एक व्यवस्थातंत्र की आवश्यकता लगने लगी । इसी प्रकार एक विशाल समुदाय का निर्माण हुआ और उसी में से सभ्यता एव संस्कृति का निर्माण हुआ ।

सृष्टि को सुचारू ढंग से चलाने के लिए, उसके अस्तित्व के लिए, मनुष्य जीवन के अस्तित्व के लिए व्यवस्थातंत्र की आवश्यकता होती है । एक समाज

जीवन की आवश्यकता होती है । सृष्टि के लिए समाज आवश्यक है । व्यक्ति बिना समाज जीवन के जी नहीं सकता । एक नवजात शिशु को आप जंगल में समाज एवं समूह से दूर रखकर उसको पशुओं के बीच पनपने दीजिए वह आगे जाकर मनुष्य की जगह एक पशु ही बन जाएगा । उसका जीवन बिलकुल पशुतुल्य ही बन जाएगा । यह बात निर्विवादरूप से सिद्ध होती है । मनुष्य समूह में, समाज में रहना पसंद करता है । समाजरहित मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती ।

प्रारंभ में केवल व्यक्तिगत जीवन था लेकिन बाद में सामुहिक जीवन के कारण एक निश्चित राज्यव्यवस्था, समाज व्यवस्था, पारिवारिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था तथा धार्मिक व्यवस्था की आवश्यकता महसुस हुई । बच्चा परिवार के बीच ममता एवं दुलार से पनपता है, बढ़ता है, और परिवार से ही सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजकीय नीतिनियम सीखता है, मनुष्य जीवन के पाठ पढ़ता है । परिवार में से ही उसको आदर्श जीवन प्रणाली आचार प्रणाली एवं विचार-प्रणाली, सीखने मिलती है ।

समाज की सुरक्षा के लिए व्यवस्थित राज्यतंत्र की आवश्यकता होती है । भूतकाल में सरमुखत्यारशाही-राजाशाही थी लेकिन बाद मे धीरे-धीरे सामाजिक एवं शैक्षणिक विकास के कारण गणतांत्रिक व्यवस्था का आविष्कार हुआ और यह स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक भी था । राजाशाही में मनुष्य जीवन का पूर्ण विकास संभव नहीं होता गणतांत्रिक व्यवस्था में यह संभव है । भूतकाल में धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता परंपरा एवं रूढिवादिता से ग्रसित थी । धीरे-धीरे शिक्षण, विज्ञान और गणतांत्रिक विकास के कारण विशाल दृष्टि की, वैचारिकता, बौद्धिकता, धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता का निर्माण होने लगा

है । इस प्रकार ही भूतकाल मे प्रारंभिक अवस्था में आर्थिक व्यवस्था का क्षेत्र सीमित था अतः आर्थिक व्यवस्थातंत्र जटील न रहकर सरल था । लेकिन जन संख्या की वृद्धि के कारण आर्थिक व्यवस्थातंत्र के सुचारूपन की आवश्यकता महसुस हुई । प्रारंभ में व्यक्ति को केवल अपने परिवार की ही आर्थिक व्यवस्था करनी पड़ती थी लेकिन बाद में राज्य, राष्ट्र और अब तो वैश्विक आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता महसुस होने लगी है ।

व्यक्ति का समाज से अटूट नाता है । बिना समाज के वह जी नहीं सकता । समाज जीवन का व्यक्तिगत जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । सामाजिक परिवर्तन का गहरा प्रभाव व्यक्तित्व जीवन पर पडता है । व्यक्तिगत परिवर्तन धीरे-धीरे सामुहिक रूप लेकर सामाजिक परिवर्तन में परिवर्तित हो जाता है । समाज और व्यक्ति एक दूसरे के सहायक एवं पूरक है । जनसंख्या वृद्धि के बाद सामाजिक व्यवस्थातंत्र की जटीलता के बाद अनेक सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत, आर्थिक, राजकीय एवं धार्मिक-सांस्कृतिक समस्याओं का जन्म भी हुआ है, लेकिन उसके बीच भी सृष्टि सुचारू रूप से चले यह आवश्यक है इसलिए बेहतर राजकीय व्यवस्था का होना आवश्यक है । धार्मिक विद्वेष न हो और मनुष्य-मनुष्य के बीच मानवता, प्रेम और ममत्व टिका रहे यह आवश्यक है । समाज में गरीब वर्ग, मध्यम वर्ग और धनिक वर्ग जैसे आर्थिक वर्ग बन गये है, यह नहीं होने चाहिए । समाज के अंतिम मनुष्य में एकता एवं भातृत्व की भावना टिकी रहे यह आवश्यक है । मनुष्य समूह जीवन से ही उत्सवप्रिय बना है । संस्कृत में तो, कहा गया है कि ''उत्सवप्रिया: खलुमानवा:'' । स्वस्थ मनोरंजन उत्सवों से ही मिलता है । समाज जीवन के लिए यह भी आवश्यक है । संक्षिप्त में जीवसृष्टि, मनुष्य जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि समाज जीवन और सामाजिक व्यवस्थातंत्र सुचारू हो ।

सुचारू सामाजिक व्यवस्थातंत्र आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है क्योंकि भेदभाव सामाजिक व्यवस्था को तोड़कर रख देगा । समाज में भेदभाव की वृत्ति नहीं आनी चाहिए इसके लिए योग्य एवं श्रेष्ठ सामाजिक विचारों की आवश्यकता है । साहित्य श्रेष्ठ समाज जीवन के विचारों को प्रदान करता है । समाज चित्रण से साहित्य सृजन करके समाज के समक्ष वह एक आयना रखता है जिससे समाज में व्याप्त अव्यवस्था एवं कूप्रथा, कूरीतियाँ आदि का समाज दर्शन करे और उसमें परिवर्तन करें तो सामाजिक कलुषितता को मिटाने के लिए साहित्य और साहित्यकार श्रेष्ठ सामाजिक साहित्य का सृजन करता है और उसके साहित्य का सामाजिक विचार-पक्ष समाज में योग्य एवं आवश्यक परिवर्तन भी लाने की कोशीश करता है । इस अध्याय में हम शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्यों में व्यक्त सामाजिक विचार-पक्ष के संबंध मे चर्चा करेंगे । 'सुमन' जी के काव्यों के सामाजिक विचार पक्ष के अध्ययन से उसमें से अपनाने योग्य सामाजिक श्रेष्ठ विचार प्राप्त होंगे और उन्ही सामाजिक विचार पक्ष के कुछ वैचारिक बिंदु से सामाजिक कलुषितता एवं अव्यवस्था मिटाने में सहायता मिलेगी । सर्वप्रथम हम यहाँ समाज और साहित्य के संबंध में चर्चा करेंगे ।

४.२ समाज और साहित्य :

समाज और साहित्य का संबंध अभिन्न है । समाज मनुष्य के लिए आवश्यक है इसी प्रकार समाज के लिए मनुष्य भी आवश्यक है । प्रखर समाज शास्त्री देवेन्द्रनाथ तोमर जी मनुष्य के सामाजिक प्राणी के संबंध में अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हुए अपनी पुस्तक ''समाजशास्त्र के मूल तत्त्व'' के प्राक्कथन में लिखते हैं कि - ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह सामाजिक प्राणी इसलिए है चूँकि समाज से अलग वह अपना जीवन व्यतीत नहीं कर

सकता समाज के अभाव मे कोई भी मनुष्य अपने जीवन की कल्पना, नहीं कर सकता । जो समाज से बाहर अपना जीवन व्यतीत करने की क्षमता रखता है वह या तो समाज विरोधी है या फिर पशु समाज से अलग मानव-जीवन की कल्पना प्रभु का स्थान प्रतीत होता है । एक व्यक्ति का जन्म समाज में ही होता है, समाज ही उसका पालन-पोषण करता है, समाज ही उसे सही शिक्षा-दीक्षा प्रदान करता है ।''[१] यह तो निर्विवाद ही है कि मनुष्य और समाज के बीच अटूट संबंध है इसलिए एक दूसरे की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ही समाज में व्यवस्थितता आए इसका ध्यान रखना चाहिए । यह दायित्व प्रबुद्ध वर्ग का है । हमे समय-समय पर सामाजिक स्थिति की खोज भी करनी चाहिए । हमारे साहित्य, धार्मिक एव वैचारिक ग्रंथो ने भी तो यही किया है । इस संबंध में डॉ. ओ. पी. वर्मा 'समाजशास्त्र की मूल अवधारणा' पुस्तक में लिखते हैं कि ''मोटे तौर पर तो मनुष्य ने आदिकाल से ही अपने चारों और फैले सामाजिक वातावरण को पहचानने और समझने का प्रयास किया है । मुहावरों और लोकोक्तियों तथा प्राचीन सन्तों के लिखित उपदेशों से सामाजिक शक्तियों से संबंधित ज्ञान का पता चलता है । वेदशास्त्र-स्मृतियाँ आदि धर्मग्रन्थ वास्तव में मनुष्य की सामाजिक स्थिति से संबंधित खोज का परिणाम है ।[२]

इसलिए ही हमें सामाजिक समरसता, सुखी समाज जीवन के लिए समाज को समझना चाहिए, समाज को जानना चाहिए । समाज को बिना समझे और बिना जाने हम सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक कदम भी नहीं रख पाएँगे । समाज की विशेषताओं, प्रवृत्तियों, विचारधाराओं, उत्सवों, समस्याओं आदि से हमे परिचित होना चाहिए तभी हम सही रूप मे समाज को जान पाएँगे और समझ भी पाएँगे । समाजशास्त्री वीरेन्द्रप्रकाश शर्मा जी अपनी

पुस्तक 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था' में लिखते हैं कि - ''अगर हम किसी समाज को समझना चाहते हैं तो हमे उस समाज की संस्कृति इतिहास, आध्यात्मिकता, सहिष्णुता, धार्मिकता, ग्रहणशीलता परिवार आदि विशेषताओं एवं व्यवस्थाओं का अध्ययन करना चाहिए ।''[३] और साहित्य यही करता है, वह समाज को समझकर उसकी खोज करके उसमें आवश्यक परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है ।

कला एवं मनुष्य सदियों से परस्पर मिलते एवं सहयोग करते आ रहे है । कला मनुष्य की सहचरी है । समय और समाज के साथ कला का संबंध अभिन्न एवं अटूट रहा है । समय और समाज के साथ इस कला के संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी का मत है कि - ''समय और समाज के साथ अगर कला का संबंध नहीं होता, तो कवि हमेशा आदि मानवों की भाँति उछल-कूद कर अपने मनोभावों को व्यक्त कर लेता । लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं है । सभी युगों के कवि एक ही विषय पर कविताएँ नहीं लिखते और न कोई कवि अपनी रचना को जनता से छिपाता है ।''[४]

इस लिए समाज और साहित्य का संबंध पुराना एवं प्राचीन है । समाज और साहित्य का संबंध अटूट एवं अभिन्न है । क्योंकि समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं ओर एक दूसरे के सहायक हैं । साहित्य समाज का दर्पण है तो समाज साहित्य से ही मार्गदर्शन लेकर परिवर्तित होता है । समाज और साहित्य के संबंध को डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र इन शब्दों में व्यक्त करके समाज, मनुष्य और साहित्य के संबंध के बारे में बताते हैं कि ''समाज और साहित्य का संबंध आत्मा और शरीर की भाँति है । जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर और बिना शरीर के आत्मा को कोई अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार समाज

और साहित्य का संबंध है । ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । मनुष्य समाज की इकाई है, मानव समूह को ही हम समाज की संज्ञा देते हैं । मनुष्य का समाज से अन्दर रहना अत्यन्त आवश्यक है । अगर उसे समाज से अलग कर दिया जाए तो उसकी हालत शेर के माँद मे डाले बच्चे की तरह होगी, एक बार किसी एक समाज शास्त्री ने एक बच्चे को पैदा होते हुए शेर की माँद में डाल दिया । कुछ दिनों बाद देखा गया कि उसमें शेर के अधिकांश गुण आ गए । उसका आशय यह है, कि साहित्य का निर्माण करने के लिए समाज के अन्तर्गत रहनेवाले मनुष्यों में मानवीय मूल्यों की कभी कमी न हो । मनुष्य समाज के अन्दर रहकर ही अच्छा मनुष्य बन सकता है । इस प्रकार जैसा समाज होगा उसी प्रकार का साहित्य होगा साहित्य वह दर्पण है, जिसमें कि हम समाज के क्रिया-कलाप को अच्छी तरह से देख सकते हैं ।''[५]

सामाजिक परिवर्तन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है । समाज में समयानुसार आवश्यक परिवर्तन होते रहते हैं । सामाजिक परिवर्तनों में जीवनशैली, सामाजिक वर्ग, पद्धतियाँ, परंपराएँ, विचारधाराएँ आदि समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं । सामाजिक विकास के लिए परिवर्तन आवश्यक हैं । समाज एक नदी की तरह है क्योंकि नदी बहती रहती आगे बढ़ती है तभी वह लोकमाता कहलाती है बहती नदी शुद्ध एवं शीतल तथा पवित्र रहती है, अब इसी नदी का पानी अगर रूक जाये और नदी गति करना बंद कर दे तो ऐसी बधनयुक्त नदी अशुद्धियों से ग्रस्त होकर मट-मैली बन जाएगी । ठीक इसी प्रकार समाज भी बंधनयुक्त न रहकर परिवर्तन की लहरों से गतिमान हो तभी वह चैतन्य युक्त एवं विकसित होता रहेगा । समाज परिवर्तन का चक्र चलता ही रहता है । सामाजिक और समाज का अन्य विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहता है ।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया के संबंध में डॉ. जनार्दन वाघमारे अपनी 'समाज परिवर्तन की दिशाएँ' किताब में लिखते हैं कि – ''समाज जीवन में विविध विचारों पर अर्थात् मत-मतांतरों पर वाद-विवाद होते ही रहते हैं । एक विचार धारा दूसरी विचारधारा पर आघात करते हुए आगे निकल जाती है । अथवा समांतर रूप से दूसरी के साथ चलती रहती है । जो विचारधारा शक्तिशाली साबित हो जाती है वह समाज परिवर्तन की प्रक्रिया को गति तथा विशिष्ट दिशा देती जाती है ।''[६] साहित्य इसी परिवर्तन को ही अपनाता हुआ चलता है । साहित्य सामाजिक परिवर्तनों को अपनाता भी है और समाज मे परिवर्तन की लहर भी फूँकता है । साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है और मनुष्य समाज का एक अभिन्न अंग है । साहित्य का विषयवस्तु मानवसत्य, कल्पना सत्य और भाव सत्य है । वह मनुष्य और समाज के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत करता है । डॉ. नगेन्द्र अध्याय (३) – 'साहित्य के सामाजिक आख्यान का क्रम विकास' में साहित्य और समाज के इस तथ्य को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि – ''साहित्य का विषयवस्तु – सत्य नहीं वरन् मानव-सत्य अर्थात् मानव भावना और कल्पना का सत्य है वह भौतिक सत्य से अधिक मानवीय होने के कारण भव्यत्तर होता है ।[७] साहित्यकार जो यथार्थ है उसका वर्णन अपने साहित्य में करता है और समाज का चित्रण करके उसका कलूषित चेहरा भी दिखता है । जिससे उसमें से संदेश पाकर समाज मे परिवर्तन आए । यथार्थरूप से साहित्य सामाजिक यथार्थ को रखता है । आदिकालिन युद्धों का चित्रण रासोग्रंथो में हुआ है । तो मध्ययुगीन भक्तिकाल के स्वर्ण युग का चित्रण हुआ । अराजकता एवं आक्रमणों के समय में भक्तिकालिन कवियों कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, मीरा आदि के विचारों ने समाज को सामान्य जन को सबंध प्रदान करके उसमें आस्था एवं श्रद्धा जगाकर उसमें चैतन्य का संचार किया था और हिन्दु धर्म

मानवता, आध्यातिमकता, आदि की रक्षा हुई थी । तुलसी ने 'रामचरित मानस' में उत्तरकाण्ड में कलियुग का जो वर्णन किया है वह तत्कालिन समाज का ही चित्रण है, लेकिन यह केवल तत्कालिन चित्रण न बनकर भविष्य का भी चित्रण बन गया, उनके विचार आज भी प्रासंगिक है, जबकि आज तो उसकी अत्यधिक आवश्यकता है । वैसे ही कबीर के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है जो तब थे साहित्यकार अनुभूत सत्य के साथ, सममामयिक सत्य को चित्रित करता है, अपितु संभाव्य सत्य भी प्रस्तुत करता है और यही उसका कर्तव्य भी है । काव्यशास्त्र इसी बात की पुष्टि करता है कि – कवि का कर्तव्य-कर्म जो हो चुका है उसका वर्णन करता नहीं है, वरन जो हो सकता है, जो संभाव्यता या आवश्यकता के अधीन संभव है, उसका वर्णन करता है ।[८]

साहित्य और साहित्यकार का कर्तव्य एवं उद्देश्य है साहित्य के द्वारा सत्यं, शिवं और सुंदरम् की स्थापना हो । साहित्यकार अपने साहित्य में अपने अनुभव को चित्रित करता है, आसपास के समाज में घटित होनेवाली घटनाएँ, पनपने वाली परिस्थितियाँ आदि का चित्रण करता है तो वह उसका ''स्वांतः सुखाय'' साहित्य हो जाता है लेकिन उसकी यही अनुभूति जब भावक या पाठक की अनुभूति बन जाती है, जब उनके स्वयं के विचार समाज के विचारों मे परिवर्तित होकर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन जाते है तब यही 'स्वांतः सुखाय'' साहित्य ''परान्तः सुखाय'' बन जाता है । तुलसी ने ''स्वांतः सुख'' के लिए ही साहित्य सृजन किया था परंतु उसका साहित्य ''परान्त सुखाय'' ही बन गया, वैसे ही कबीर और अन्य साहित्यकारों के बारे में भी हम कह सकते है ।

साहित्य सामाजिक परिवर्तन का आधार बनता है । प्रेमचन्द ने स्वतंत्रता पूर्व को गाँवों, किसानो, दलितों आदि की स्थिति को अपने कथासाहित्य एवं

उपन्यास साहित्य मे जो स्थान दिया और विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया उससे समाज मे एक जागृति का संचार हुआ और जमीदारी प्रथा, साहुकारी प्रथा, अंध विश्वास आदि का धीरे धीरे नाश हुआ और गरीबी उन्मुलन, विधवा विवाह, नारी चेतना, दलित चेतना आदि को बल मिला । इस प्रकार साहित्य से सामाजिक परिवर्तन आ सकता है । कोई भी लेखक अपने साहित्य में वैयक्तिकता से बच नहीं सकता उसमे वैयक्तिक भावनाएँ, व्यक्तिगत विचार, समसामयिकता अनायास ही आ जाती है । लेकिन यह क्रिया स्वाभाविक ही होती है और वहाँ भी सामाजिक परिवर्तन का आधार बन जाती है । लेखक सामाजिक भावना को व्यक्तिगत भावना के साथ मिला कर उसको अपने साहित्य मे स्थान देता है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' का इस संबंध में मत है कि ''किसी भी लेखक की रचना में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से उस समाज की प्रतिच्छाया जिसमें कि वह रह रहा है अवश्य पड़ती है ।''[९] समाज में घटित घटनाएँ, प्रसंग, समस्याएँ, आर्थिक परिस्थितियाँ आदि का प्रभाव हमारे भावना लोक पर पड़ता है और इसी कारण हम परिवर्तन की लहर में चले जाते है । शिवमंगल सिंह 'सुमन'जी कहते है कि हमारी आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पहले हमारी भाव-चेतना पर पडता है और भाव चेतना का सामाजिक चेतना से उतना ही अविच्छिन्न सम्बन्ध है जितना व्यक्ति का और समाज का, और फिर इसी सामाजिक चेतना की क्रिया-प्रक्रिया हमारे सारे वातावरण तथा राजनीतिक जीवन को प्रभावित करती रहती है, यहाँ तक कि धीरे धीरे वह हमारी मूलभूत आर्थिक परिस्थितियों को ही परिवर्तित कर देती है ।[१०]

साहित्य समाज का दर्पण है, सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है । इसलिए साहित्य का महत्व अत्यधिक है । श्री रामधारी सिंह दिनकर जी

साहित्य में सामाजिक महत्व को बताते हुए लिखते हैं कि - ''साहित्य कला का सबसे बड़ा सामाजिक महत्व यह है, कि इससे समाज बदलती हुई समकालीन प्रवृत्तियों से रागात्मक सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता प्राप्त करता है । कवि अपनी कल्पना धारा से वास्तविकता के रूप पर प्रभाव डालता है, उसमें समयानुरूप परिवर्तन लाने की चेष्टा करता है और कविता के द्वारा मनुष्य को सत्य के इस बदलते हुए रूप की ओर उन्मुख करता है ।''[११]

साहित्यकार समाज को देखता, समाज में घटित घटनाओं और परिवर्तनों को अपने मस्तिष्क में उतारकर गहरा चिंतन करता है । उसकी सत्यता असत्यता पर विचार करता है फिर उसमे से मूलतत्व को अपनी वाणी देकर साहित्य सृजन में उसको शामिल करता है । श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के शब्दों मे - ''कवि अथवा साहित्यकार जिस जीवन को अपने चतुर्दिक हिल्लोरे मारता हुआ देखता है, उसी से यह प्रेरणा पाता है । उसका मानसिक संसार कोई, बन्दमुक्ता मंजूषा नहीं है । अपनी स्वतंत्र सत्ता देखते हुए भी उसकी भावनाओं का संसार निरन्तर बाह्य जगत की घटनाओं से प्रतिध्वनित और झंकृत होता है ।''[१२]

कवि समाज पर गहरी नज़र लागकर रखता है । उसकी दृष्टि पैनी होती है । वह समाज पर, मनुष्य जीवन पर दृष्टि रखता है, उसकी नज़र से कुछ भी नहीं बचता वह एक दृष्टा की भाँती समाजदर्शन करता रहता है । डॉ. रामविलास शर्मा के मत्तानुसार - ''सामाजिक विकास से सम्बद्ध कला के अनेक तत्व जहाँ आर्थिक विकास जीवन पर निर्भर होते हैं, उनका एक स्पष्ट वर्ग आधार होता है । वे आर्थिक व्यवस्था के बदल ने पर या कुछ समय बाद परिवर्तित हो जाते है, जहाँ अनेक तत्व अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं वर्गो से परे और बहुत कुछ अपरिवर्तनशील होते है ।''[१३]

सामाजिक परिवर्तन का आधार आर्थिक परिवर्तन से जुडा है । अधिकतर आर्थिकता से ही हर समस्या जुडी हुई है । इसी को आधार को मानने वाला साहित्यकारों का एक वर्ग है जब कि साहित्यकारो का एक वर्ग केवल आर्थिकता को आधार न मानकर अन्य बातो को भी आधार मानते है । भारतीय साहित्यकार केवल आर्थिकता को आधार नही मानते वे उदारमतवादी है वे आर्थिक बातों के अलावा अन्य दूसरी बातों को भी मानते है । साहित्यकार मार्गदर्शक होता है, वह रथ के सारथी की तरह होता है । अपने साहित्य को वह उचित दिशा भी प्रदान करता है । डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दो में - ''ऐसा नही होता कि समाज के रथ में लेखक पीछे बँधा हुआ हो और उसके पीछे लीक पर घसिटता हुआ चलता हो । लेखक सारथी होता है, जो लीक देखता हुआ साहित्य की बागडोर सँभालते हुए उचित मार्ग पर ले चलता है ।''[१४]

लेखक या साहित्यकार कोई समाज-सुधारक नहीं, वह तो समाज मे जो कलुषितता उन्होंने देखी है उनके प्रति उनकी जो भावनाएँ हैं उसको केवल अभिव्यक्ति देता है । उनके विचार उनके साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं, बाद में समाज उसके संदर्भ मे विचार विमर्श करता है, समाज में चर्चाएँ चलती है और फिर वह विचार सामाजिक विकास एवं निर्माण में सहायक एवं विधायक हो तो समाज की जनता की उसे स्वीकृति मिल जाती है और समाज में लेखक या साहित्यकार के साहित्यिक रचना में व्यक्त विचारों द्वारा स्वतः ही परिवर्तन आने लगता है । उदाहरण स्वरूप प्रेमचन्द साहित्य और उससे आनेवाले परिवर्तनों को हम ले सकते हैं । साथ ही आधुनिक जीवन के चित्रण वाले आधुनिक उपन्यासों में जो निम्न-मध्यवर्गीय समाज की आधुनिक जीवन की जो समस्याएँ हैं उनकी चित्रित करते हुए आधुनिक उपन्यासों को भी

हम ले सकते हैं तो वर्तमान विचारप्रधान एवं जनसामान्य के निकट ऐसी कविताओं को भी हम उदाहरण के तौर पर ले सकते है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' समाज सेवा को अत्यधिक महत्व देते हैं । दीन-दलित, पिछड़े समाज के मनुष्यों की दुर्दशा को सुधारना, उनको आम समाज में उचित स्थान दिलाना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं । वे इस कार्य को ही सच्चा कवि कर्म मानते है । 'सुमन' जी के इस संदर्भ में सामाजिक विचारों को देखिए - ''मैं सामाजिक कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध हूँ गति पर विश्वास करता हूँ । मेरा मार्ग गौतम की तरह मध्यम मार्ग है । मैं अति को अध्यावहारिक उबाल मानता हूँ और रूढधर्मिता से दूर रहना चाहता हूँ । मेरे मन में लक्ष्य साफ है, मेरी आगामी काव्यधारा भी लोक साधना का ही प्रतिरूप होगी ।''[१५]

समाज के लिए पुरानेपन, दकियानुसी विचारधारा, रूढ़िवादिता आदि की चुंगल में से निकलना अत्यंत आवश्यक है । किसी भी देश के विकास की पहचान उनके सामाजिक विकास के ऊपर ही निर्भर है । इसी सामाजिक विकास में साहित्य और साहित्यकार अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोग करते हैं । साहित्य और साहित्यकार सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से सामाजिक विकास के चितेरे बन जाते हैं । देश का विकास संस्कृति का विकास एवं साहित्य का विकास सामाजिक विकास पर ही अवलंबित है । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी लिखते हैं कि - ''किसी भी देश में कला, संस्कृति एवं साहित्य के विकास की प्रक्रिया सामाजिक आधार ग्रहण कर ही विकास पाती है । कला और संस्कृति का सम्बन्ध जीवन के अन्त: पक्ष से है, और समाज का बाह्यपक्ष से है । देश की जागरूकता का श्रेय समाज पर ही जाता है । नवीन मूल्यों की स्थापना

एवं परिवर्तन समाज के अन्दर ही होता है । जिसका प्रभाव सम्पूर्ण देश पर पड़ता है ।''[१६]

आलोचना जगत में एक लंबी चर्चा चली थी कि ''कला कला के लिए है'' या ''कला जीवन के लिए है ।'' कला केवल मनोरंजन के लिए ही होती है अतः साहित्य सृजन केवल कल्पनाओं पर आधारित है और केवल मनोरंजन हेतु ही उसका सृजन होना चाहिए, ऐसा माननेवाले साहित्यकारों का वर्ग था, लेकिन विचार किया जाए तो कला का उद्देश्य या साहित्य का उद्देश्य केवल आनन्द प्रदान करना या मनोरंजन प्रदान करना नहीं हैं । जो हित करे' यही साहित्य है । समाज का जिससे कोई हित ही न हो और केवल मानसिक ऐन्द्रिक आनन्द के लिए ही लिखा जाता है वह तो सच में साहित्य ही नहीं है, साहित्य का अर्थ होता है हितकारी, हित करे वह । तो साहित्य या कला जीवन के लिए हो यह आवश्यक है । इस लिए ''कला केवल कला के लिए ही है'' सिद्धांत स्वीकार्य नहीं हो सकता अतः ''कला कला के लिए'' न होकर ''कला जीवन के लिए है'' - यह सिद्धांत स्वीकार्य अधिक हुआ । इस लिए यह बात निर्विवाद है कि साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य समाज का मार्गदर्शक है । साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है । डॉ. नगेन्द्र का मत है कि ''साहित्य और समाज के संबंध की अनिवार्यता के विषय में आज कोई विशेष मतभेद नहीं है ।''[१७] निष्कर्षतः हम अदोल्फो संकेज वाज़केज़ के इस मत से संपूर्ण सहमत हैं कि - ''कला और समाज में अनिवार्य संबंध है । कोई कला समाज के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकती । कला का इतिहास प्रायः उतना ही पुराना है जितना मनुष्य का अर्थात समाज का ।''[१८]

४.३ 'सुमन' के काव्य का सामाजिक विचार पक्ष

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक यथार्थवादी साहित्यकार हैं । उनकी कविताएँ जीवन के धरातल से जुडी हुई कविताएँ है । वह कभी भी कल्पनाओं में रचने वाले कवि नही रहे, उनकी कविताओं का एक पभावशाली विषय अगर कोई रहा हो तो वह सामाजिक भावनाएँ हैं । सामाजिक भावनाओं को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया । उसके पीछे कोई स्वार्थ नहीं अपितु एक तरह का समाज के प्रति निःस्वार्थ प्रेम ही है । उन्होंने अपने जीवनकाल में अपने आसपास के समाज जीवन में जो कुछ अनुभव किया उसका यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं में किया है । समाज के प्रति वे सच्चे रूप में प्रतिबद्ध साहित्यकार रहे हैं । उनके काव्यसंग्रह 'जीवन के गान', 'प्रलय सृजन' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' में सामाजिक भावना प्रखर एवं प्रभावीरूप में उभरकर सामने आयी है । उनका हिन्दी साहित्य जगत में प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ ही प्रवेश हुआ था । छायावादीकाल तक समाज के बहुजन और सर्वहारा वर्ग को जो उपेक्षा मिली उसी वर्ग को प्रगतिवादी काल में साहित्य में स्थान मिला । समाज के निम्न एवं उपेक्षित वर्ग का यथार्थ चित्रण प्रगतिवाद की मुख्य विशेषता है । समाज में जो असमानता की स्थिति है वह आर्थिक परिवेश के कारण ही है जिसका प्रभाव कविता पर भी पड़ा है । 'सुमन' जी उस संबंध में स्वयं कहते है कि - ''हमारी आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पहले हमारी भाव-चेतना पर पडता है और भाव-चेतना का सामाजिक चेतना से उतना ही अविच्छिन्न सम्बन्ध है जितना व्यक्ति का और समाज का, और फिर इसी सामाजिक चेतना की क्रिया-प्रक्रिया हमारे सारे वातावरण तथा राजनीतिक जीवन को प्रभावित करती रहती है, यहाँ तक कि धीरे-धीरे वह हमारी मूलभूत आर्थिक परिस्थितियों को ही परिवर्तित कर देती है ।''[१९]

इस प्रकार स्वस्थ समाज का आधार सामाजिक समान स्वरूप हैं। जब समाज में असमानता आती है तब सामाजिक आरोग्य बिगड़ जाता है । इसलिए इन सबके मूल में समाज है । 'सुमन' जी ने सामाजिक विचार पक्ष को प्रभावशाली ढंग से अपनी कविताओं में स्थान दिया है । उनके सामाजिक विचार पक्ष को हम निम्नलिखित बिन्दुओ के आधार पर देखने का प्रयत्न करेंगे ।

४.३.१ सामाजिक विषमता के प्रति असंतोष

स्वस्थ समाज के निर्माण के हेतु आवश्यक हैं कि उस समाज का ढांचा भी समानता के स्तर पर हो । समाज में समानता हो, स्तरीयता, असमानता या विषमता न होकर समाज के सभी वर्गो के लोगों में समानता हो । समाज के हर वर्ग के लोग विषमता के मूल में आर्थिक विषमता होती है । अत: आर्थिक रूप से भेदभाव नहीं होने चाहिए । 'सुमन' जी इस आर्थिक विषमता के विरोधी है । समाज में विशाल धनराशी हो, अनाज और सम्पत्ति के विशाल भण्डार हो और वह सिर्फ कुछ ही लोगों को मिले यह असहनीय हैं । समाज का धनिक वर्ग समाज की सम्पत्ति गरीब एवं मजदूर वर्ग के लोगों के पास से कानून और अन्य अपने द्वारा ही बनाए गए अपने हथकण्डों से उससे छिनकर केवल अपनी भोग लिप्सा की पूर्ति के हेतु उपयोग करे और समाज का वृहद वर्ग उससे रहित हो जायेगा ऐसी स्थिति स्वीकार्य नहीं हो सकती । इससे धनिक ओर गरीब तथा मध्यवर्ग जैसे सामाजिक वर्ग उत्पन्न हो जाते हैं और फिर यह आर्थिक असमानता धीरे-धीरे जीवन के दुसरे क्षेत्रों में भी फैल जाती है और समाज अन्य दूसरे क्षेत्रों में भी विभक्त होकर सामाजिक

रूप से विषम बन जाता है । अतः सामाजिक विषमता समाज के लिए शाप के समान है, समाज का रोग हैं । 'सुमन' जी ऐसी सामाजिक विषमता पर दुःख प्रकट करते हुए लिखते हैं कि -

''इस ओर सजा मधु-मदिरालय हैं,
रास-रंग के साज कहीं ।
उस ओर असंख्य अभाग थे हैं,
दाने तक को मुँहताज कहीं ।''[२०]

वर्तमान समाज व्यवस्था सामन्तवादी एवं पूँजीवादी विचारधारा पर टिकी हुई थी जिसके कारण ही सामाजिक असमानता थी । सामाजिक असमानता के मूल में साम्राज्यवादी और पूँजीपतिवर्ग की विचारधारा थी । आज यह असमानता ओर भी बढ़ गई है । आज मध्य वर्ग नामक बीच का नया सामाजिक वर्ग उत्पन्न हो गया है । वर्तमान एवं अतीत की समाज व्यवस्था और राजनीति पर स्वतन्त्रता सेनानी वैजनाथ शर्मा अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि - ''हमने तीन बातों को अपने संघर्ष में प्राथमिकता दी थी । पूँजीवाद का सर्वनाश हो, साम्राज्यवाद का नाश हो, किसान-मजदूर की जय हो - हमारा नारा था । परन्तु आज जिन हालात में हम जी रहे हैं, उनमें और तत्कालीन परिस्थितियों में कोई अंतर नहीं दिखता । राजनीति में सिद्धान्त और मूल्य खत्म हो चूके है । सत्ता में सेवा भावना से अधिक पदभावना हो गयी है । भ्रष्टाचार को इस कदर मान्यता मिल चुकी है कि लोग इसे करना पाप नहीं, पुण्य समझने लगे हैं । गरीबी और बेरोज़गारी के जहर का प्याला

पीना जिस आम आदमी की नियति बन चुकी हो, वहाँ अमृत पिलाने की बात करना एक और सपने में किसानों और मज़दूरो का खुशहाल मुल्क बनाना है तो पहले अपनी राजनीति को स्वच्छ और निर्मल बनाना होगा ।''[२१]

कवि 'सुमन' वर्तमान सामाजिक विषम परिस्थितियों के प्रति असंतोष की भावना रखते थे । कवि ने धनिक वर्ग के भोगविलास का और साथ ही गरीब वर्ग की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण किया है । इस मानव समाज में व्याप्त, विषमता को मिटाने की भावना व्यक्त की है । हमारी सामाजिक दशा ठीक नहीं थी इस लिए कवि के हृदय के यह शब्द देखिए -

''हाय, यहाँ मानव मानव में
समता का व्यवहार नहीं है
हाहाकारों की दुनिया है
स्वप्नों का संसार नहीं है
इसीलिए अपने स्वप्नों को मुट्ठी में मलता जाता हूँ
मैं पथ पर चलता जाता हूँ ।''[२२]

गरीब वर्ग के बच्चों की दयनीय दशा आर्थिक विपन्नता के कारण असहनीय थी । उनकी स्थिति दिल हला देने वाली थी । गरीब वर्ग की निम्न आर्थिक दशा के कारण उनको भोजन भी सुलभ न था । सुप्रभात की बेला में गरीब बच्चों को भूख से तडपते देखकर 'सुमन' की कवि हृदय कोप उठता है -

''बासी लिये रोटी बडा भाई
छोटा उठा मुँह टोकरी से
दूध कहकर रो पड़ा
मैं कँप उठा था और टपका एक पीला पात था
कैसा मधुर सुप्रभात था ।''[२३]

इसी सामाजिक विषमता के कारण ही जगत में प्रीति का वातावरण निर्माण नहीं होता है । समाज में आर्थिक विषमता के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच एक खाई बन जाती है । मनुष्य मनुष्य प्रेमपूर्वक एक दूसरे को मिल भी नहीं पाते जिसके कारण समाज के हर वर्ग के मनुष्य के बीच जो प्यार के सेतु का निर्माण होना चाहिए वह नहीं हो पाता, इस प्रकार की समस्याएँ उसमे से ही उत्पन्न होती है अत: स्वस्थ एव सुखी समाज के लिए सामाजिक विषमता बाधक है । सुमन के शब्द देखिए -

''हाय सामाजिक विषमता
ही बनी है आज बाधक
हन्त क्या मिल भी न पाते
विश्व में दो प्रीति-साधक
और फिर मचता हृदय में क्यों विकट अत्पात
आज आधी रात ।''[२४]

समाज के वैषम्य का परिणाम यह होता है कि विषम परिस्थितिजन्य मनुष्य उपेक्षित रहता है, उसके साथ न तो स्वस्थ, सामाजिक व्यवहार होते है और न तो कोई उसे महत्त्व देता है । गरीब

अवस्था के कारण उसे समाज में हमेशा अपमान सहन करने पडते हैं, यह उपेक्षित सा बन जाता है, इस संदर्भ में कवि 'सुमन' के शब्द देखिए -

''और कुम्हलाने लगा है आज कुछ कुछ गात साथी,
रूप के बाजार में होगी न मेरी बात साथी
मैं उपेक्षित, सा किसी भूले हुए का प्यार हूँ,
आज तो मैं भी हृदय का घर हूँ ।''[२५]

'सुमन'जी मानव मात्र के प्यार की हिमाकत करते है, वे चाहते हैं कि मानवमात्र के बीच प्यार हो, भाई-चारा हो । इसलिए अगर आवश्यकता पडे तो सामाजिक विषमता के विरूद्ध क्रांतिकारी कदम उठाने पड़े तो भी बेहिचक उठाने चाहिए । इसलिए वे ध्वंसात्मक क्रांतिकारी कार्यवाही की भी बात करते हुए उसका समर्थन भी वे करते है वे कहते हैं कि -

''ठहर जाओ ध्वंस कर लूँ
मैं विषम संसार पहले
और मानव-मात्र को
उपलब्ध कर दूँ प्यार पहले
कर्मपथ पर तुम न डालो अब अधिक व्याघात
आज आधी रात ।''[२६]

सबसे अधिक भयावह एवं असह्य पेट की आग है । भूखा आदमी नर-राक्षस तक बनने को तैयार हो जाता है । भूख की आग बड़े-बड़े का गर्व खण्डित कर देती है । इसी भूख की आग के कारण सामाजिक वैषम्य के कारण ही फैलता है । वना इतना कृषि उत्पादन

होने के बाद भी कुपोषण एवं भूखमरे से जनसमुदाय त्रस्त है ? यह सामाजिक विषमता, सामाजिक, असमानता का ही परिणाम है जो आर्थिक असमानता के आधार पर ही होती है कवि 'सुमन' का दृष्टिकोण देखिए, समाज में सामाजिक वैषम्य का कारण मन एवं पेट की भूख की आग ही है ऐसा प्रतिपादित करते हुए कहते हैं -

''यहाँ मानसिक भूख जगी है,
वहाँ पेट में आग लगी है
जग का यह वैषम्य देखकर,
मेरा सारा, खून उबलता
मेरे प्राणों की व्याकुलता ।''[२७]

धनिक वर्ग की ओर से समाज में असमानता अधिक फैलायी जाती है, उनका असमानता पूर्ण व्यवहार ही सामाजिक वैषम्य को जन्म देता है । वे असहायों पर खेल खेलते रहते हैं । सिर्फ उसे आशावादी अफ़ीम खिलाते रहते हैं और शोषित वर्ग उसे पीकर पिसता रहता है । इस कार्य में राजनीति उसे साथ देती है । इसके सहारे धनिक वर्ग का राज चलता रहता है । लेकिन 'सुमन' उसे कहना चाहते है कि हम सब इसी जीवसृष्टि के अंग है, उसमें से सर्वहारा वर्ग और समाज का अधिकांश वर्ग अगर समाप्त हो जाएगा तब क्या समाज में इस मरघट पर अकेले रहोगे ? किसके साथ रहोगे तुम ? ऐसा वे कहकर अपनी व्यथा उसके सामने इस प्रकार प्रकट करके लिखते है -

''यों खेल करोगे तुम
कब तक असहायों से
कब तक अफ़ीम
आशा की हमें खिलाओगे
बरबाद हो गई
फ़सल कहीं जोती बोई
क्या बैठ अकेले ही
मरघट पर गाओगे ?''[२८]

आर्थिक दयनीय अवस्था के कारण मजदूर और किसान वर्ग को बलात साहुकारों ओर धनिकों से कर्ज़ लेना पड़ता है । इसी कर्ज़ को लेकर वे जीवनभर की दरिद्रता को अपना लेते हैं । उनके लिए हुए कर्ज के ब्याज के बोज के नीचे वे हमेशा के लिए दब जाते है और फिर हर क्षण उसके नीचे दबकर रहते हुए अन्याय और अंत्याचार को सहन करते रहते हैं । कर्ज़ का यह ज़हर सामाजिक विषमता में सहायक बनता है । सुमन इसके विरोधी है । 'सुमन' के शब्द देखिए -

''मैंने अपनी जलती आँखे
सिगनल की पतवार पर टाँग दी हैं
जिस से माल और मेल
बेखटके उसके नीचे से गुजर जायँ,
दहकते नाज के बोरे
बुझे-बुझे डाक के थैलों से बेहतर हैं
क्योंकि अब
कर्ज़ की मय पीने की ताब नहीं है ।''[२९]

चारों ओर सामाजिक वैषम्य के कारण बेरोज़गारी का वातावरण फैलाया जाता है । धनिक वर्ग, व्यापारी वर्ग एवं कम्पनियाँ जान बूज़कर बेरोज़गारी का वातावरण निर्माण करवा के बाद में मज़दूरों से कम मज़दूरी में काम करवाते हैं । उसकी बेबसी का फायदा पूँजीपतिवर्ग उठाकर उसमें से ही धन कमाता है । मजदूर, दलित, गरीब, मध्यमवर्गीय बेबसी सामाजिक विषमता में है, उनकी 'बेबसी' कवि सुमन के शब्दों में देखिए -

''मैं मज़दूर का बेटा
मुझे काम दो
बिना मजूरी किए रहा नहीं जाता
मेरे दादा - पिता
काम करते ही करते
काम आ गए
तुम मुझे बिना काम के
रखना चाहते हो
भूखा हूँ
जीना चाहता हूँ
पर हराम की खाकर नहीं
तुम-से निकम्मों के
गीत गाकर नहीं ।''[३०]

गरीब, मज़दूर भले ही गरीब होते हैं लेकिन वे कभी अपना ज़मीर नहीं बेचते, वे मेहनतकश इन्सान होते हैं, वे हराम की रोटी

चापलूसी करके नहीं खाते, वे ऐसी रोटी खाना स्वीकार भी नहीं करते । उसे केवल काम चाहिए, और उसी काम के माध्यम से उससे कमा कर ही वे जीना चाहते हैं, उन लोगों मे ऐसी तेजस्विता होती है। लेकिन धनिक वर्ग उसे बिना काम के रखकर उसकी चापलूसी करवाना चाहते है जो सर्वहारा वर्ग कभी स्वीकार नहीं कर सकता । उपरोक्त 'सुमन' की 'बेबसी' कविता सर्वहारा वर्ग की तेजस्वी वृत्ति का एवं सामाजिक विषमता का बयान कर रही है । 'सुमन' जी साहित्य के माध्यम से अर्थात् अपनी कविता के माध्यम से समाज के अंदर व्याप्त विषमता को मिटाना चाहते थे । इस लिए ही उन्होंने अपनी कविता का समाज के लिए सृजन किया हैं, वे कला अर्थात् – साहित्यकला को केवल कलापूर्ण आनन्द के लिए नहीं अपितु जीवन के लिए आवश्यक मानते थे । इस संबंध में प्रसिद्धनारायण चौबे जी अपनी पुस्तक 'लोक चेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' में लिखते हैं कि – 'सुमन' जी की दृष्टि में कला कला के लिए नहीं, कला जीवन के लिए होती है ।''[३१] इस संबंध में 'सुमन'जी खुद लिखते हें कि ''हमारे बदलते हुए समाज सम्बन्धों तथा पुराने या अब तक के समाज सम्बन्धों की चेतना से कलाकार के मस्तिष्क में जो तनातनी होती है, कला उसकी अभिव्यक्ति कहलाती है ।''[३२]

मज़दूरों, गरीब लोगों और किसानों ने संसार को बहुत कुछ दिया है । दुनिया का भरण पोषण किया है तो दुनिया की कलुषता को मिटाकर उसे स्वच्छ एवं पवित्र बनाए रखा है । ऐसे लोगों को आज तक क्या मिला है ? केवल नफ़रत और अस्पृश्यता के अलावा उसे कुछ नहीं

मिला । 'सुमन'जी का विचार हैं कि ऐसे दुनिया के इस सच्चे सेवकों को मान-प्रतिष्ठा और सच्चा सुख-सम्पन्न जीवन मिलना चाहिए इसलिए उनकी हमें प्रतिष्ठा करनी चाहिए, उनको सम्मान दिलाना और देना चाहिए । वे लिखते हैं कि -

''कीचड़-कालिख से सने हाथ
इनको चमों
सौ कामिनियों के लोल कपोलों से बढ़कर
जिसने चूमा दुनिया को अन्न खिलाया है
आतप वर्षा, पाले से सदा बचाया है ।''[३३]

कवि 'सुमन' केवल शोषक वर्ग के काले कारनामों का भण्डाफोड करके नहीं रह जाते वे तो शोषित वर्ग को जागृत होने का संदेश भी देते हैं, वे उन्हे जागृत होकर संगठित होकर चलने और कार्यरत होकर आगे बढ़ने के लिए जागृत होकर संदेश देते हुए कहते हैं कि -

''जो लिख रहा हूँ आज मैं
जो दिख रहा हूँ आज मैं
उसमें अगर झलके न तुम
तो व्यर्थ है सब आराधना ।''[३४]

मेहनतकश इन्सानों की संख्या अधिक हैं, वे मेहनत करके काली मज़दूरी करके अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं लेकिन इतनी मज़दूरी के बावजूद भी उन्हें सही मज़दूरी नहीं मिलती और उसके हिस्से का उसके मालिक ऐसे सेठ, साहुकार, उद्योगपति, पूंजीपति ले

जाते हैं जिसकी वजह से समाज में वैषम्य फैलता है, इस सामाजिक वैषम्य का नग्न चित्रण 'सुमन' की दहकती शब्दराशि में देखिए -

''इस ओर पड़ी खाना - बदोश
मेहनतकश मानव की पाँते
फूटपाथों की चट्टानों पर
जो काट रही अपनी राते ।''[३५]

समाज में व्याप्त पूँजीपतियों के कारनामे काले और पापग्रस्त हैं । व्यापारी एवं पूँजीपति वर्ग धन कमाने की लालसा में मानवता को भूलकर मुनाफ़ाखोरी, कालाबाज़ारी, संग्रहखोरी करते हैं । एक ओर भूखमरे की स्थिति में गरीब और असहाय निर्धन लोग भूखे मर रहे हैं तो दूसरी ओर ऐसे सेठ, साहुकर महाजन गोदामों मे अनाज सड़ रहा हैं तो दूसरी ओर वे कभी कभार मृत-लाशों पर भी व्यापार शुरू कर देते हैं, ऐसे वर्ग के लोग निश्चय ही निंदा एवं धृणा के अधिकारी हैं ।ये लोग लुटेरों की भूमिका निभा रहे हैं ऊपर से सरकार का उनको कसमर्थन भी मिल रहा है । ऐसे लोगों के प्रति 'सुमन' का आक्रोश इस कदर टूट पड़ता है -

''तो क्या कभी मुनाफाखोरों
की यह चलती चाल ?
मरते लोग सड़ा करता यों
कोठारों में माल ?
हड्डी के ढाँचो पर गिनते, रूपयों के अंबार
बच्चों की लाशों पर करते, पूँजी का व्यापार ।''[३६]

पूँजीपतिवर्ग धनप्राप्ति की लालसा में गुनाहित कृत्यों मे भी लिप्त हो जाते हैं, ये लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मज़दूर, गरीब लोगों के जीवन के साथ खिलवाड़ करके मौत का खेल भी खेल सकते हैं । फैक्ट्रीयों मे मजदूर किसी खतरनाक हादसे के कारण कीड़ो की तरह मरते हैं लेकिन उसकी सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं किए जाते । ऐसे लोगों की सुधी भी नहीं ली जाती, इस बात पर रोष प्रकट करते हुए व्यंग्यात्मक एवं प्रतीकात्मक भाषा में 'सुमन'जी लिखते हैं कि -

''रोडेशिया में कसाइयों की दूकानें
सजी-बजी हैं सरे-आम
पाँच-पाँच कँकाल लटक रहे हैं
जिन का गोश्त बिक रहा है सरे - बाज़ार
इंसान बकरों का खाना छोड़ रहा है
उसकी जीभ में इंसानी खून लग गया है ।''[३७]

कवि सामाजिक विषमता के संबंध मे व्यंग्यपूर्ण भाषा में प्रतीकात्मक शैली में उसका विरोध दर्शाता हुआ कहता हैं कि -

''कह सकना मुश्किल है
हिंद महासागर में
कितनी असहाय मूक
विगलित व्यथाओं का
खारापन मिला हुआ,
कितने उच्छ्‌वासों के

बादल बरसे हैं यहाँ
विवश विषादपूर्ण
अमा के अँधेरे में ।''[३८]

व्यापारी वर्ग अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए दिन-ब-दिन महँगाई को बढ़ावा देते जाते हैं । पहले तो वे लोग वस्तु एवं जीवन आवश्यक चीज़ो की संग्रहखोरी करते हैं और फिर बहाना करके उसके दाम बढ़ाकर महंगे दामों में उसे बेचते हैं । पहले सस्ते में खरीददारी करके फिर समाज में उसकी आपूर्ति की समस्या या कम उत्पादन का कारण बताकर उसने संग्रह किए हुए माल को दुगने दामों में बेचते हैं इस तरह महंगाई बढ़ती जाती है । दिनों-दिन बढती हुई महंगाई के कारण जीवनयापन अस्त-व्यस्त हो जाता है 'सुमन' के शब्द देखिए -

''कुछ ऐसी बदल रही दुनियाँ जल्दी-जल्दी
फँसती जाती है खुद अपने ही फंदे में
जीवन का रस रिसता जाता धीरे-धीरे
दिन-दिन की बढ़ती महँगाई में, मंदे में ।''[३९]

समाज में व्याप्त फ़रेब़, चालबाज़ी चुगली जैसे अनेक दुर्गुण, बेतहाशा फैल गए हैं । इन सबके मूल में भी आर्थिक एवं सामाजिक विषमता ही है । यह सब पूँजीपति वर्ग के लोगों के हथकंडे है । समाज में व्याप्त ऐसे वातावरण में सामाजिक वैमनस्य फैल जाता है, जिसके कारण सामाजिक विषमता की समस्या ओर भी भयावह हो जाती हैं ।

इसे सामाजिक विषमता के प्रति 'सुमन'जी का असंतोष देखिए -

''बाज़ार गर्म हैं जहाँ फ़रेबी चालों का
चुगली करने का चस्का-सा लग जाता है
इन्सान बिचारा मारा-मारा फिरता है
ईमान दुबककर दबे पाँव भग जाता है ।''[४०]

समाज में जी रहे गरीब परिवारों मे जनसंख्या वृद्धि के कारण अनेक बच्चे भी होते हैं । सच मे ये बच्चे देश का भविष्य है, सही रूप में इन बच्चों को शिक्षा एवं दिशा मिलनी चाहिए जिसके बूते पर वे अपना भविष्य बना सके किन्तु यहाँ शिक्षा तो दूर की बात है, इन बच्चों को उनकी प्राथमिक आवश्यकता और पौष्टिकता दिलानेवाला आहार दूध तक नसीब नहीं होता । गरीब परिवारों के बच्चों के लिए दूध 'स्वप्न एवं कल्पना का ही विषय रह जाता है, इस सामाजिक असमानता को 'सुमन' के शब्दो में देखिए -

''सींचते पत्ते और खोदते थे मूलों को
बोते थे काँटे और रौंदते थे फूलों को
बहार में कहाँ कमल-गुलाब खिलता है
लाखों बच्चों को अभी दूध नहीं मिलता है ।''[४१]

गरीब परिवारों की दशा दयनीय होती है माँ अपने बच्चों की पूर्ण रूप से सुधी लेती हैं लेकिन उनके प्रयत्न भी नाक़ाम हो जाते है ।ऐसी लाखों माँऐ हैं जो अपने बच्चों को एक बेहतर भविष्य देना चाहती हैं लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण वे

अपना कर्त्तव्य पूर्ण नहीं कर पाती । अपने बच्चों को वे अच्छे कपड़े भी मुहय्या नहीं करा पाती । सामाजिक असमानता का एक ओर उदाहरण 'सुमन' की कलम से देखिए -

''बिखरे केशों में झेल जुल्म के झपेटों को
बेबसी मे बिलख, बिसूर रही बेटों को
कोशिशे थिगड़ियाँ लगाने की सब व्यर्थ रहीं
अंध आवेश में बढ़ने का कोई अर्थ नहीं ।''[४२]

अपने बच्चों की और परिवार की बदहालत देखकर परिवार के माता-पिता अत्यन्त दु:खी हो जाते हैं । फटे-पुराने कपड़ो से, भूख से, तृषा से और खण्डहर जैसे घरो से ही काम चलाना पड़ता है । अपने पास से कर्ज के ब्याज के नाम पर व्यापारी, महाजन सूद के रूप में अपना ही कड़ी महेनत से कमाया हुआ धन-अनाज ले जाते हैं, उन पर ऐसे जुल्म ढाते हैं फिर उनसे अपनी कोठियाँ भरते है ऐसा देखकर भी परिवार के लोग कुछ नहीं कर पाते और अन्याय सहन करते जाते हैं । जब ऐसे अन्याय मर्यादा का उल्लंघन कर लेते है तो परिवार की दुर्दशा को सहन न करनेवाली माता आत्महत्या करने पर उतारू हो जाती है । 'सुमन' के शब्द देखिए -

''फटे कपड़े फटी आँखे, तपिश की तहत दूनी है,
दरारें दर-दिवारों में, धरा की गोद सूनी है
किसी की चूडियाँ तडकीं, किसी ने कोठियाँ भर लीं,
बिलखते बालकों को देख माँ ने खुदकुशी कर ली ।''[४३]

ऐसी अनगिनत माताएँ कुएँ में कूदकर या फिर ओर दूसरे तरीकों से बच्चों समेत आत्महत्याएँ कर लेती हैं । 'सुमन' के शब्दों में यह भयानकता देखिए जो सामाजिक विषमता का परिणाम है और 'सुमन' उसके प्रति असंतोष प्रकट करते हैं –

''पढ़ा कहीं रायपुर में,
कोई अभागिन माँ
अपने तीन बच्चों सहित
कुएँ में कूद गई ।
कैसी थी माँ हन्त
कैसा था कुआँ वह ?
वही तो नहीं जिसमें
बसता था ब्रह्मराक्षस
मुक्ति बोध का ।....
करूणामयी जननी जब
गला घोंटे बच्चों का
दया-माया-ममता को
आश्रय फिर कौन दे ?''[४४]

समाज की उपरोक्त पंक्तियों मे वर्णित परिस्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है ? सही रूप में सामाजिक और आर्थिक विषमता ही इसके लिए जिम्मेदार है, जिसके कारण ही परिवार की प्रेम और वात्सल्यमूर्ति माँ को ऐसा कदम उठाना पड़ रहा है । ऐसी स्थिति में भी हम साहित्य और संस्कृति की बाते करते हैं और सभ्यता एवं संस्कृति

के भाषण झाड़ते हैं । जब समाज की ऐसी दशा हो तब सभ्यता एवं संस्कृति की बातें हास्यास्पद एवं बुद्धिहीन तथा असहनीय मालूम पड़ती है, 'सुमन' के व्यंग्यात्मक शब्द देखिए –

''भूख की मरोर क्रूर
तिल-तिल तराशती जब
मानव अस्तित्व को
बड़ी-बड़ी बातें तब
साहित्य और संस्कृति की बगलें-सी झाँकती हैं ।''[४५]

गरीब वर्ग के लोग, उसमें भी विशेष करके गरीब परिवारों की नारियाँ अशिक्षा की समस्या से पीडित होती है । इन परिवारों मे आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वे शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती इसके कारण वे समाज की मुख्य धारा से जूड नहीं पाती । इस समस्या को 'सुमन' के शब्दों में देखिए –

''मेरे घर बरसों से
चौका-बासन करने वाली
अपनी उम्र नहीं जानती
उसे सिर्फ मालुम है
राख और माटी से
कालिख तराशना ।....
जन्म की अशिक्षिता औ'
गंदुमी गंवारिन वह
चलती है मचल-मचल ।''[४६]

ऐसे अशिक्षित गंवार और गरीब लोग अत्याचारों के और अन्यायों के विरूद्ध कुछ बोल भी नहीं सकते, उसकी प्रतिकारक्षमता ही नष्ट हो चुकी होती है । और इसका फायदा धनिक वर्ग के लोग उठाकर उसका शोषण करते हैं, 'सुमन' के शब्द देखिए -

''वे मुँह तक खोल नहीं सकते
निर्बल हैं बोल नहीं सकते
तू गला घोंटता था उनका वे तड़प रहे थे चुप गुमसुम
कवि, अभी अधुरा ही संयम ! ''[४७]

यहाँ 'वे' शब्द शोषित गरीब वर्ग के लिए हैं और 'तू' संबोधन शोषक धनिक वर्ग के लिए हैं । यह धनिक वर्ग के लोग अलग अलग रूप में शोषण का चक्र चलाते हैं । ये लोग मनुष्य का क्या भला करेंगे ? ऐसे वर्ग के लोग अपनी शारीरिक एवं मानसिक भूख तथा प्रतिष्ठा की भूख में अनेको गरीबो की मृत्यु का कारण बनते हैं । 'सुमन' के शब्दों मे

''वह भेष छिपाए दानव का
क्या भला करेगा मानव का
जब क्षणिक क्षुधा के वश में हो कर गया अनेकों जीव हज़म
कवि, अभी अधुरा ही संयम ! ''[४८]

ऐसे शोषित लोग गरीबों के मुँह का निवाला छीन लेते हैं, उनकी ऐसी वृत्ति के कारण ही सामाजिक विषमता का जन्म होता है । 'सुमन' के शब्द देखिए -

''नीड़ों प्यारा छीन लिया
बच्चों का चारा छीन लिया
वे चोंच खोल बैठे होंगे बन अथक प्रतीक्षा के विभ्रम
कवि, अमी अधूरा ही संयम '' ![४९]

डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र 'सुमन' के सामाजिक विचार-पक्ष के संबंध में 'सुमन' की आर्थिक एवं सामाजिक विषमता के विरूद्ध भावना को इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि - ''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य का एक सशक्त पक्ष यह है, कि सामाजिक विकृतियों को उभारना । कवि ने सामजिक रूढ़ियों और परम्परागत मान्यताओं को काव्य में अंकित ही नहीं किया है, वरन् सामाजिक तथा आर्थिक दु:ख दैन्य से सम्बन्धित पक्षों को भी सजीव रूप मे चित्रित किया है । समाज में उत्पन्न वर्ग विषमताएँ, आर्थिक दु:ख-दैन्य आदि से आज का मनुष्य आक्रान्त है !'' समाज का शोषक वर्ग किस प्रकार निम्न वर्ग पर उत्याचार करता है ! ''[५०] इस कथन की साक्षी 'सुमन' की ये पंक्तियाँ हैं देखिए -

''हन्त भूख मानव बैठा
गोबर से दाने बीन रहा है
और झपट कुत्ते के मुँह से
झूठ़ी रोटी छीन रहा है
साँस न बाहर भीतर जाती
और कलेजा मुँह को आता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[५१]

इस समाज का एक उपेक्षित एवं पीडित वर्ग है किसानों का किसान अपनी मेहनत से खेत में निष्ठापूर्वक कार्य करता है, वह दुनिया का पोषण करता है लेकिन उसकी दशा तो दयनीय ही रही है । न तो उसे उचित दाम मिलते हैं न उसका उचित स्थान ही मिलता है । किसान सदा सर्वदा उपेक्षित ही रहा है । दलाल एवं बिचौलिये उसका हक छीन लेते हैं, जिसके कारण उसे उचित फल नहीं मिल पाता । इस कारण से भारतीय किसान की हालत अति दयनीय एवं दु:खी रह जाती है । आज भी जगतात किसान की हालत दयनीय एवं दु:खी है 'सुमन' के शब्द देखिए -

''भूमि से रण ठन गया है
वृक्ष उसका तन गया है
सोचता हैं, देव अथवा
यन्त्र मानव बन गया है
शक्ति पर सोचो जरा तो
खोदता सारी धरा जो
बाहुबल से कर रहा है
इस धरणि को उर्वरा जो
लाल आँखें, खून पानी
यह प्रलय की ही निशानी
नेत्र अपना तीसरा क्या
खोलने की आज ठानी
क्या गया वह जान
शोषक-वर्ग की करतूत काली
चल रही उसकी कुदाली ।''[५२]

धनिक वर्ग के लोग भूखे गरीब लोगों की रोज़ी-रोटी छीनने में तनिक भी शरमाते नहीं । वे लोग उसके मुँह का निवाला निर्दयता से छीन लेते हैं उसकी निर्दयता के संबंध में 'सुमन' का समबोधन देखिए, जिसके ऊपर ही उसी के माध्यम से धनिक वर्ग सुख एवं समृद्धि प्राप्त करता है और उसी के शोषण के कारण जीवित मनुष्य और मानवता मिट गई है -

''जर्जर-कंकालों पर वैभव
का प्रासाद बसाया
भूखे मुख से कौर छीनते
तू न तनिक शरमाया ।''

तेरे कारण मिटी मनुजता
माँग माँग कर रोटी
नोची खाल-श्रृगालों ने
जीवित मानव की बोटी ।''[५३]

यह संसार मानों दीनजनों के आँसुओं से संचित होकर बना हो ऐसा लगता है । समाज में व्याप्त भोग विलास एवं ऐश्वर्य के पीछे न जाने कितने, अनगिनत शोषितों के अश्रु हैं । शोषित समाज ने उनका शोषण करके ही यह भोगविलास एवं ऐश्वर्य प्राप्त किया है । इस सामाजिक विषमता में दीनजनों को हम हमारे संसार से बाहर आकर अगर देखें तो चारो ओर हाय, हाय ! का शोर ही मचा हुआ दिखाई देगा । 'सुमन' के शब्द देखिए -

''सुख-दु:ख के झीने तागों से विधि ने विषम विश्व विरचाहै धूमिल-पथ है
धूमिल-कणों से कोई राही नहीं बचा है

दीनजनों की अश्रुधार से हरा-भरा जग गया रचा है, बाहर आकर तनिक निहारो, हाय-हाय का शोर मचा है ।''[५४]

इस युग की सामाजिक एवं आर्थिक विषमता ऐसी भयानक है कि मानव और पशु अर्थात् कुत्ते एक ही रोटी के टुकटे पर एक साथ झपटते हैं । और मानवताहीन समाज के पेट का पानी भी नहीं हिलता है आज मानों इस सामाजिक एवं आर्थिक विषमता की ज्वाला में मानवता की मृत्यु ही हो गई है । 'सुमन' की सामाजिक भावना उन्हीं के शब्दों में -

''मेरे युग में हाय मिट गई
नर-पशु के अंतर की रेखा
मानव-श्वान एक टुकडे पर
टूट रहे वह दिन भी देखा
जिसे समझता था अनहोनी
वही सत्य बन व्यंग्य कर गयी
खुलेआम सड़कों पर मानवता
कुत्तो की मौत मर गयी ।''[५५]

हरेक देश के गुलाम व्यक्ति का स्वतंत्रता का एक रंगीन स्वप्न होता है । हमारा देश भी अंग्रेजी और अंग्रेजी सरकार की गुलामी में था तब उसके विरूद्ध जनता एक जूट होकर, बलिदान देकर लडी थी, वह

इसलिए कि स्वतंत्रता के पश्चात् हमारा अपना मूल्क होगा । चारों और सुख-शांति और समृद्धि होगी और शोषण का साम्राज्य समाप्त हो जाए गा । किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह न हो सका लोगों के स्वप्नों का भंग हो गया । अत जनता मे ऐसी सामाजिक विषमता के प्रति असंतोष उत्पन्न हो गया । कवि व्यंग्यात्मक भाषा में लिखते हैं कि -

''क्या अभी पेटभर रोटी हमें नसीब नहीं
क्या अभी हमारे चाचा-ताऊ नंगे है
क्या अभी अकालों के गिद्धो का जमघट है
क्या ग्राम-नगर मे डगर-डगर भिखमंगे है ।[५६]

असहाय और भिखमंगे निम्न वर्ग के बच्चों में कुपोषण की समस्या विकट है ।भेदभावयुक्त सामाजिक विषमता के कारण इन बच्चों को एक समय का भी भोजन नहीं मिल पाता इसका जीवन सड़कों के फूटपाथों पर गुज़र जाता है, जैसे कुत्ते ऐसा जीवन गुजारते हैं वैसे ही 'सुमन' के इन शब्दों में हमारी सामाजिक विषमता का ज्वलंत उदाहरण देखिए -

''कुत्ते के पंजो से आहत, जर्जर तन बलहीन
श्वान झपट ले जाता होगा, मुँह की रोटी छीन
छोड़ एक विश्वास सड़क पर शिथिल व्यक्ति मृतप्राण
आँसु बरसा कर रह जाता, होगा वह हैरान ।''[५७]

इस महाजनी अन्यायपूर्ण व्यवस्था में समाज में भेदभाव हो यह स्वाभाविक है । श्रमिक लोगों की बस्तियों पर अत्याचार करके

अन्यायपूर्ण तरीके से उनको हटाया जाता है और फिर उस पर धनिक वर्ग के लिए बडे-बडे भवनों का निर्माण होता है । उनकी बस्तियाँ उजड़ जाती है । अन्य दूसरे लोगो की सुख सुविधा हेतु अपने लोगों पर अत्याचार करके अन्यायपूर्ण रीति से उन्हें हटाया जाता है । ऐसी सामाजिक विषम परिस्थिति को सुमन के शब्दों में देखिए -

''छतों के पड़ते ही
श्रम के सैलानियों की
बस्तियाँ उजड़ जाती ।
और कहीं गड़ जाती

आहत सैन्य शिबिरों सी ।
पराई सुख सुविधा हेतु
आहुतियों सी अर्पित
पीढ़ियों पर पीढ़ियाँ
टुकुर टुकुर देखा करती
अपने ही कृतित्व को ।''[५८]

स्वतंत्रता पश्चात भी अनवरत गति से यह शोषण का चक्र चल रहा है । 'सुमन' कहते है कि इस शोषण पूर्ण सामाजिक विषमता को मैं आज़ादी के बाद भी देख रहा हूँ जैसी आज़ादीपूर्व भी थी ।

''ब्रह्म-विरोपण
देखता हूँ किन्तु
शोषण को वही निबँध नर्तन
क्षुब्ध शंकाग्रस्त जीवन ।''[५९]

निम्नवर्गीय लोगों को सिर्फ छेटा सा आश्रयस्थान की चाहिए । एक छोटे घर में ही वे रह लेंगे, किन्तु जीवनभर की काली मजदूरी के बाद भी उनको अपना घर-एक अच्छा आश्रय स्थान, नसीब नहीं होता । उनको न चाहते हुए भी खण्डहरों जैसी गंदी जगहों में रहना पड़ता है । एक और बड़े-बड़े भवन और इमारते हैं जो खाली है, उसमे रहने वाला कोई नहीं और दूसरी ओर जिसको रहना है उसे आश्रय स्थान नहीं मिल रहा, श्रमजीवियों के घरों की दुर्दशा को 'सुमन' के शब्दों मे देखिए -

''वाम पार्श्व पंछी भुँजवा का
घर खंडहर प्राय
सबको बिराता खड़ा
पोपले मसूढ़ो से ।
पंचमा चमार की
चंबल की भीहों-सी
नंगी दीवारें ढहीं
एक मात्र छप्पर से
वंचित कर
श्रम के पुजारी को ।''[६०]

४.३.१ वर्तमान सामाजिक व्यवस्था अस्वीकार्य :

समाज व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें समाज के हर वर्ग के लोगों को समान अधिकार प्राप्त हो । समाज में भेदभाव नहीं होने चाहिए । सुख-समृद्धि एवं खुशहाली का वातावरण ही स्वस्थ समाज व्यवस्था की निशानी हैं । ऐसे समाज की कल्पना हमारे ग्रंथो में

की गई है । ऐसा एक समाज था भी वह था रामकाल में जिसमें 'रामराज्य' का आदर्श है । इसी रामराज्य को कल्याण राज्य की भी संज्ञा दी गई है । गांधीजी भी ऐसे ही राजराज्य रूपी समाज व्यवस्था की बात करते थे । जिसमें कोई भी पीड़ित, दु:खी, शोषित न हो, सर्वत्र समानता एवं आनंद की अवस्था हो । किन्तु वर्तमान समाज व्यवस्था को देखकर कोई भी व्यक्ति उसको अस्वीकार करेगा । 'सुमन' जी को वर्तमान समाज व्यवस्था अस्वीकार्य है । इस अन्यायी और शोषणयुक्त समाज व्यवस्था के प्रति उन्हें असंतोष है । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि -

''वर्तमान समाज-व्यवस्था पर कवि 'सुमन' का मन खिन्न है । क्योकि आज़ादी प्राप्त हुए लगभग दो दशक बीत गए परन्तु देश एवं समाज की हालत लगभग वैसी ही है । आज भी कितनों को रोटी-कपड़ा नसीब नही है । भिखमंगों की टोलियाँ रास्ते-रास्ते में घूम रही है । अकाल एवं भुखमरी का तांडवनृत्य हो रहा है । 'सुमन' जी इन सबका कारण समाज की कुछ गलत नीतियो को देते हैं जिसमे कि उन नीतियों के नियामक कुछ विशेष अमानुष तत्व हैं ।''[६१]

वर्तमान समाजव्यवस्था में कुछ विशेष लोगों को ही मानो सर्वाधिकार प्राप्त है । निम्न दलित एवं सर्वहारा वर्ग को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो ऐसा ही लग रहा है । समाज का एक विशेष सुविधाभोगी वर्ग ही सभी प्रकार के अधिकारों को भोगता हैं । कानून नीति-नियम राजनीति सब इन्ही लोगों के हाथों में हैं, धन और बल के सहारे ये लोग कुछ भी कर सकते है । समाज मे व्याप्त अन्याय और शोषण इन्ही

लोगों का किया-धरा है । ऐसी समाज व्यवस्था कदापि श्रेष्ठ नही कही जा सकती । 'सुमन' ऐसी समाज व्यवस्था के प्रति अपना असंतोष प्रकट करते हैं । 'सुमन'जी ने अपनी कविताओं में अन्याय पूर्ण एवं शोषक समाज व्यवस्था का विरोध करके उसको अस्वीकार कर दिया है । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी के शब्दों में -''वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति असन्तोष 'सुमन' जी की कृतियों मे मुखरित हो उठा है । समाज में कुछ व्यक्तिविशेष लोगों मे सारी व्यवस्था सिमट गयी है । वे ही इसके कर्ता-धर्ता हैं, और सारी जनता उसकी अनुगामिनी है । लोकतन्त्र के बावजूद भी आधपत्य उन्हीं लोगों का है । जमीदारों के स्थान पर समाज के नेताओं ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया है । मार्क्सवादी विचारधारावाले कवि 'सुमन' साम्यवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिनमें सबका समान अधिकार हो ।''[६२]

देश की राजनीति ही समाज के नियमन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । ज्यादात्तर आधार राजनीति पर ही होता है । देश की राजनीति और उनके राजनेता जो रक्षक होने चाहिए उनके स्थान पर भक्षक बन जाए और वही सामाजिक विघटन में साथ दे तब तो देश और समाज का हो चुका कल्याण ! आजादी के पश्चात् के स्वतंत्र भारत के विशेष करके सत्तर के दशक के बाद के नेताओं की देशभावना पर और सामाजिक भावना पर ही शंका उठती है । जनता को इन नेताओं ने निराश किया है । वोट बेंक की राजनीति के कारण विभिन्न धर्मो के बीच विष घोला गया और समाज में इन धर्म के वर्ग के लोगों के बीच बिखराव हो गया है और इनके लिए हमारे आधुनिक भारत के भ्रष्ट एवं स्वार्थी नेता ज़िम्मेदार हैं । 'सुमन' के व्यंग्यात्मक शब्द देखिए -

''दोनों के नेतागण बनते, अधिकारों के हामी
किन्तु एक दिन को भी, हमको अखरी नहीं गुलामी
दोनो को मोहताज हो गए, दर-दर बने भिखारी
भूख, अकाल, महामारी से, दोनों की लाचारी
आज धार्मिक बना, धर्म का नाम मिटाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं मिटाने वाला ।''[६३]

देश और समाज की स्थिति दयनीय हैं । वर्तमान समाज व्यवस्था पर असन्तोष व्यक्त करते हुए 'सुमन' जी कह उठते हैं कि -

''देश मेरे इस तरह क्यों खिन्न, त्रस्त, उदास
बन गए हो स्वयं अपनी विकृति के उपहास
लीलता हर किरन-कन को स्वार्थ का खग्रास
शील, संयम, आचरण, चरने गए हैं घास ।''[६४]

आज चारों ओर अन्याय और शोषणयुक्त अंधकार का वातावरण हैं । हम सुधारावादी है ऐसी डींगे हाँकते हैं, लेकिन वस्तुस्थिति कुछ ओर है । आज जनतंत्र, समाजतंत्र, राज्यतंत्र, धर्मतंत्र कराह रहा है । ऐसे अन्धकारपूर्ण युग में जन्म लेकर 'सुमन' जी मानों पछता रहे हैं उनके शब्द देखिए -

''पग-पग पर प्रताप सी करती छिपी यहीं पर प्रलय कहीं हैं,
अब मैं फिर पीछे को लौटूँ इतना मुझको समय नहीं है ।
लाचारी है, आखिर मैने ऐसे युग मे जन्म लिया है,
जहाँ सभी ने रूपसुधा को छोड़ गरल का पान किया है ।''[६५]

समाज में ऊँच-नीच के भेद स्वतंत्रता पश्चात भी विद्यमान है । हमारे धर्मशास्त्र, महापुरूषों इत्यादी ने कहा है कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की सन्तानें हैं अतः समान है इसलिए भेदभाव नहीं रखना चाहिए । फिर भी समाज में दलित-सवर्ण नारी पुरूष, गरीब-धनिक, शिक्षित-अशिक्षित भेदभाव विद्यमान है । 'सुमन' जी ऐसी भेदभाव युक्त समाज व्यवस्था का अस्वीकार करते हैं वे क्रांतिकारी विचारों से इस मिटा देने की घोषणा करते हैं, 'सुमन' के क्रांतिकारी शब्द देखिए -

''भस्मात कर दूँगा क्षण में
ऊँच-नीच के सर्व आडम्बर
काँप उठेगी निर्बल जगती
सिहर उठेगा सूना अम्बर
पाद प्रहारों से मैं पथ के कुश-कण्टक दलता जाता हूँ
मैं पथ पर चलता जाता हूँ ।''[६६]

हमारा समाज रूढ़ीग्रस्त एवं दकियानुसी मानसिकता से ग्रस्त है। समाज में अन्धविश्वास, खोखली परंपराएँ, जड़ मान्यताएँ व्याप्त हैं । ऐसे समाज की व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न ही लगेगा । ऐसी व्यवस्था को कवि 'सुमन' ध्वस्त कर देना चाहते हैं । जिसमें निर्बलों की कोई आवाज़ ही न सुनी जाती हो । रूढ़ीग्रस्त समाज की ऐसी व्यवस्था वर्तमान में भी हैं, आज भी वही मान्यताएँ एव विचारधारा चुल रही है । केवल उसका स्वरूप बदल गया है, उसका आधुनिक रूप बन गया है, लेकिन ऐसी व्यवस्था को 'सुमन' क्रांतिकारी स्वर में अस्वीकार करते हैं -

''निर्बलों का नाद देखो
हिल उठे प्रासाद देखो
रूढ़िग्रस्त समाज जर्जर चल रही है अंत खासा
आज कवि कैसी निराशा ।''[६७]

आज हमारा समाज इतना कलुषित हो गया है कि चारों ओर मानो आग-ही-आग है । आम आदमी का खून खून नहीं पानी है । आम आदमी में किसान, मजदूर, अशिक्षित व्यक्ति, गरीब व्यक्ति आते हैं जिसका लहू व्यापारी, धनिकवर्ग, फैक्टीयों के मालिक, सरकारी अधिकारीगण आदि चूसते हैं, उसका शोषण करते हैं । 'सुमन'जी ने प्रतीकात्मक ढंग से इस अन्यायी समाज व्यवस्था को अपनी इन पंक्तियों में व्यक्त किया है, जिसमे वे कहते हैं कि आज की इस शोषित समाज व्यवस्था के कारण ही आम आदमी का रक्त मानो घी की तरह जलाया जाता है, और उनकी हड्डियों का ईंधन के रूप में उपयोग हो रहा है अर्थात् उसको अत्याचारों एवं अन्याय के तले घसीटा जा रहा है । आज इस विकट समय में आम आदमी की मृत्यु का कोई मूल्य नहीं रहा । मनुष्य को ही मनुष्य खा रहा है । एक मनुष्य ही दूसरे मनुष्य के स्वयं साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार कर रहा है । 'सुमन' जी की व्यथा देखिए -

''आज रक्त धृत बन बलता है
हड्डी का ईंधन जलता है
कंकालो की आहुति पड़ती यह ऐसी भीषण विकराला
चारों ओर जल रही ज्वाला
देख देख सिर चकराता है,
मानव को मानव खाता है

फिर भी आज लिये बैठे कुछ अपना अलग सुराही प्याला
चारों ओर जल रही ज्वाला ।''[६८]

समाज मे जर्जर पीड़ित और भूख एवं प्यास से पीड़ित ऐसे अपनी जीवन नैया को बलात घसीटतें जा रहे हों ऐसे अनगिनत मनुष्य हैं । इस जीवन से ऊब जाने के कारण जो आत्महत्या करना चाहते है । मानव की आज सिर्फ़ चीख एवं चिल्लाहट ही सुनाई देती है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''देख रहा आँखो के आगे
कितने जर्जर पीड़ित ऐसे
भूख प्यास से ऊब माँगते
जो विष खाने को ही पैसे
और नहीं यह भी मिलता है
मानव चीख चीख चिल्लाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[६९]

समाज की असमान आर्थिक व्यवस्था के कारण लोगों को रोजगारी नहीं मिल पाती जिसके कारण समाज में भिखारीयों की संख्या बढ़ती जाती है । हमारी समाज-व्यवस्था में मूक-बधीर अंधे तथां शारीरिक रूप से एवं मानसिक रूप से अपाहिज व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा नहीं मिल रही हैं, जिसके कारण उसे न चाहते हुए भी भीख माँगनी पड़ती है । हमारी सरकार ने अब तक सामाजिक सुरक्षा मुहय्या कराने के नाम पर कुछ भी नहीं किया । इस कारण से ऐसे लोगों की दशा दयनीय बन जाती है । समाज में उनके लिए जीना दुभर हो जाता

है । हम उनका अपमान करते हैं, ऐसी पशुतुल्य हरकत हम उन लोगों के साथ करते हैं । हम उन्हें सच पूछो तो मनुष्य की कोटि में ही नहीं गिनते । उनके समग्र जीवन की दिनचर्या में पग-पग पर सिर्फ ठोकर, तिरस्कार, उपेक्षा ही उन्हें मिलती है । 'सुमन' जी के शब्दों में इस अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था के प्रति असंतोष देखिए । ऐसी समाज व्यवस्था उसके लिए अस्वीकार्य है जो मनुष्य को पशुतुल्य मजदूरी करने पर बाध्य कर देती है

''टेक टेक कर टेढ़ी लकड़ी, पथ पर घूमा करता अन्धा
सुबह शाम चिल्लाया करता, बाबा, दुनिया गोरख धन्धा
खाली हाथ लौटता जब घर, किस्मत ठोंक-ठोंक पछताता
हाय नहीं यह देखा जाता ।
मानव की छाती पर बैठा, झूम रहा दानव मतवाला
सींग पूँछ से हीन पशु बना, खींच रहा है रिक्शावाला
मुँह से आग स्वेद तन से, ठोकर खा-खाकर गिरता जाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[७०]

मजदूरों पर और खेतीहर किसानों पर बहुत अत्याचार होते है । मजदूरों को उनकी ठीक तनख़्वाह नहीं मिलती तो किसानों को उनकी फ़सल के उचित दाम नहीं मिलते, बिचोलिये - दलाल उनका हक छीन लेते है, ऊपर से सरकारी अन्याय पूर्ण लग़ान व्यवस्था । इन सभी अन्याय एवं अत्याचारों में मज़दूर और किसान त्रस्त हो जाते हैं, उनके खून का पानी बन जाता है । जितनी भी संपत्ति धनिक वर्ग के द्वारा इकट्ठी की गई वह इन मज़दूरों और किसानों का रक्त चूसकर ही की गई है । 'सुमन' जी ऐसी व्यवस्था के विरूद्ध क्रांति करने का आह्वान भी करते हैं -

''चूसकर जिसको निचोड़ा
रक्त भी जिसका न छोड़ा
वह लिए हँसिया हथौंड़ा
कर चुका है शेष फन की कील ढीली आज
सुन रहे हो क्राँति की आवाज़ ।''[७१]

हमारे देश में इतनी गरीबी अभी भी हैं कि भारत के चालीस प्रतिशत लोग गरीबी में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, फिर भी भारत के विकास का ढोल पीटा जा रहा है, हजारों गरीब परिवारों के बच्चे कुपोषण से पीड़ित है या भूखमरे से मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । लेकिन दूसरी ओर संक्षिप्त ऐसे धनिक वर्ग के पास अखूट संपत्ति है जिसका उपयोग भोगविलास और केवल मौज़-मस्ती के लिए अधिक होता है । हमारे देश की अधिकतर स्त्रियाँ अपने बच्चों को प्यार और वात्सल्य नहीं दे पाती क्योंकि पेट को पालने में पूरा समय मजदूरी करने में ही व्यतीत हो जाता है । मजदूरों से बेतहाशा कम वेतन मे अधिक समय तक काम लिया जा रहा है । एक गरीब माँ की दयनीय हालत 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए -

''पापी पेट पालने मे ही
स्नेह सरसता छली गई है
छाती पर पत्थर धर माँ भी
अभी काम पर चली गई है
जिसका स्नेह लाड़ला पथ पर
दीन दु:खी पामाल पड़ा है
यह किसका कंकाल पड़ा है ।''[७२]

ऐसे मनुष्यों को खाना नसीब नहीं होता तो तन ढकने के लिए कपड़े भी नसीब नहीं होते । जो अपनी लाज ढक नहीं पाते ऐसे लाखों लोगों के पास तन ढकने के लिए कपड़े भी नहीं है और दूसरी ओर हम निर्लज्ज होकर समाज में फैशन का दिखावा करके अपने वैभव का प्रदर्शन करते हैं ? 'सुमन' जी के व्यंग्यात्मक शब्द देखिए –

''चिथड़ों में सिकुड़े जाते हैं
लाज नहीं जो ढंक पाते हैं
मैं निर्लज्ज दिखाता उनको
निज वैभव की शान
अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ
अपने जीवन – गान ।''[७३]

'जीवन के गान' काव्य-संग्रह सामाजिक विषमता, सामाजिक यथार्थ, सामाजिक चेतना को पूर्ण रूप से प्रकट करने वाला 'सुमन'जी का एक महत्वपूर्ण काव्यसंग्रह है । 'सुमन' की सामाजिक विचारधारा अर्थात् सामाजिक विचार-पक्ष ऐसी इस संग्रह की अनगिनत कविताओं में पाया जाता है । वे इसमें सफल हुए हैं । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र लिखते हैं कि – 'सुमन'जी की प्रौढ़ रचना जीवन के गान में संग्रहीत कविताओं का प्रधान विषय सामाजिक वैषम्यों से सम्बन्धित हैं । ये कविताएँ कवि की सामाजिक चेतना को पूर्णरूप से निखारती हैं । सामाजिक चेतना कवि के व्यक्तितत्व का एक प्रकार से प्रधान अंग-सा लगता है । 'जीवन के गान', 'प्रलय-सृजन' संग्रहों में इसी प्रकार के सामाजिक दु:ख दैन्य के चित्र कवि ने खींचे हैं ।''[७४]

पूँजीवादी समाज व्यवस्था में नारीयों की दशा दयनीय हो गई है । धनिक वर्ग चंद रूपयों में नारी चेतना को निर्लज्ज रूप से खरीदकर खत्म कर रहा है । धनिक वर्ग के लोग अपने भोग-विलास के लिए सामाजिक नीति-नियमों का उल्लंघन करके अनीतिपूर्ण जीवनशैली अपनाते हैं । 'सुमन' के शब्द देखिए -

''बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ,
चाँदी के थोथे टुकड़े में
कर्तव्यपालता धनिक वर्ग
मदिरा के झूठे चुकड़ो में ।''[७५]

पूँजीवादी शासन व्यवस्था में और इस पूँजीवादी समाजव्यवस्था में नारियों की स्थिति अति दयनीय होती है । इस व्यवस्था के अंतर्गत सामान्य मनुष्य को दासत्व का जीवन जीना पड़ता है और नारियाँ चौराहे पर शिशु को जन्म देती है क्योंकि गरीब वर्ग के पास अपना घर नहीं है । नारियों की लज्जा को लूँटा जा रहा है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''बुड्ढों की जीवन की लकड़ी
माँ की संचित आश
दोदो रूपयों में बिकते हैं
ये दासों के दास
आज कहाँ नारी की लज्जा ?
धर्म-कर्म का जाल
चौराहे पर माताएँ
जनती हैं अपने लाल ।''[७६]

इस व्यवस्था में मज़दूर और किसान वर्ग का बूरा हाल है । किसान आजादी पूर्व के समय में महाजन, साहुकार और जमीदारों की गुलामी करते थे । उन सब मे किसानों की बुरी दशा की थी, लेकिन आज भी किसानों की दयनीय अवस्था है । आज धनिक वर्ग, दलाल, व्यापारी मल्टीनेशनल कम्पनियाँ किसानों को लूँट रही है । किसानों की गाढी कमाई को ये लोग लूँटते है । खाद-पानी के दाम बेतहाशा बढ़ा दिए गए है । घास-चारे की किसानों की ज़मीन छिन का उस पर बड़े-बड़े उद्योग लगाए जा रहे हैं । अब किसान इन पूँजीवादीयों की करतूतों को जान गया है और कभी भी उनकी क्रांति का लावा फूट सकता है । 'सुमन'जी के शब्दों में -

''भूमि से रण ठन गया है
वक्ष उसका तन गया है
सोचता मैं देव अथवा
यन्त्र मानव बन गया है

शक्ति पर सोचो ज़रा तो
खोदता सारी धरा जो
बाहुबल से कर रहा है
इस धरणि को उर्वश जो

लाल आँखे, खून पानी
यह प्रलय की ही निशानी
नेत्र अपना तीसरा क्या
खोलने की आज ठानी

क्या गया वह जान
शोषक-वर्ग की करतूत काली
चल रही उसकी कुदाली ।''[७७]

व्यापारी वर्ग के द्वारा शोषण का चक्र षड्यंत्रपूर्वक चलाया जा रहा है । बाजार में दलालप्रथा के कारण चीज वस्तुओं के दाम बेतहाशा बढ़ा दिए जाते हैं और जनता को लुटा जाता है । मुनाफ़ाखोर और संग्रहखोर व्यापारी अनुचित रूप से चीज-वस्तुओं का संग्रह करके फिर बातूके बहाने बनाकर उसकी किल्लत बाजार में खडी करके फिर दाम बढ़ाकर मुनाफ़ा कमाते हैं, जिसके गरीब एवं मध्यम वर्ग की जीवन शैली पर बुरा प्रभाव पडता है । लोग भूख से मरते हैं लेकिन माल गोदामों में सडता रहता हैं । सरकार भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरूस्त नहीं करती सरकार और मुनाफाखोरों की ही यह मिलीभगत है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''तो क्या कभी मुनाफ़ाखोरों
की यह चलती चाल ?
मरते लोग सड़ा करता यों
कोठारों में माल ?
हड्डी के ढाँचों पर गिनते
रूपयों के अंबार
बच्चों की लाशों पर करते
पूँजी का व्यापार ।''[७८]

हमारी राजनीतिक व्यवस्था भी मुनाफ़ाखोरों, पूँजीपतियों की गुलाम हो गई है । समाज की विषमता के मूल में हमारी सड़ी हुई राजनीतिक व्यवस्था है । हमारे नेता दीन और हीन है केवल विचारशक्ति, निर्णयशक्ति और कार्यप्रणाली की दृष्टि से ये नेताओं की ही उनके साथ मिलीभगत होती है, इस लिए ही शोषकों को खुल्लेआम छूट मिल रही है । 'सुमन' जी का व्यंग देखिए -

''हन्त हमारे ही भाई ये,
दीन, हीन, लाचार
यो सड़को पर सडते होती
यदि अपनी सरकार
हाँ अपनी सरकार देश की
जनता की सरकार
मज़दूरो की मज़लूमों की
भूखों की सरकार ।''[७९]

हमारी समाज व्यवस्था आर्थिक रूप से विषमतापूर्ण हैं । आज का समाज शोषक और शोषित ऐसे दो वर्गो में विभाजित हो गया है । अस्थियों की नींव पर महल बनाए जाते हैं । शोषण का चक्र निबाँध गति से चल रहा है । मनुष्य जीवन उसमें भी सामान्य मानव का जीवन कंकड़ और पत्थर के मूल्यों के समान रह गया है, उसका कोई महत्त्व ही नहीं हैं कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''आज शोषक - शोषितों में हो गया जग का विभाजन
अस्थियों की नींव पर अकड़ा ख़ड़ा प्रासाद का तन
धातु के कुछ ठीकरों पर मानवी-संज्ञा- विसर्जन
मोल ककड-पत्थरों के बिक रहा है मनुष्य - जीवन ।''[८०]

हमारे देश के समाज के कई रंग रूप हैं और उसमें अनेक धर्म, भाषा-भाषी लोग रहते है । लेकिन जनता इन धार्मिक वर्गो में बँटी हुई है और मानवता का घर भी बँटवारे से ग्रसित हो गया है । समाज की इस व्यवस्था के मूल में सामाजिक विषमता पूर्ण सामाजिक व्यवस्था एवं भेदभाव युक्त तथा शोषण सहित की राजनैतिक व्यवस्था जिम्मेदार है । कवि 'सुमन' जी को ऐसी मनुष्य-मनुष्य के बीच अंतर उत्पन्न करनेवाली सामाजिक व्यवस्था स्वीकार्य नहीं है -

''ईश्वर-ईश्वर में आज पड़ गया अंतर
टुकडों-टुकडों में बँटा मनुजता का घर
ली ओढ़ धर्म की खोल, पर ह्रदय सूना
पूजन-अर्चन सब व्यर्थ देवता पत्थर ।''[८१]

आज समाज में पूँजीवादी व्यवस्था के प्रभाव के कारण दिखावा, छल, प्रपंच आदि का बोलबाला है, क्योंकि व्यक्ति पूँजीवादी समाज के वर्ग के लोगों के जैसा वैभवी जीवन जीना चाहते हैं । इसलिए कुछ भी करके, किसी भी तरह ऐश्वर्य एवं भोगजीवन की प्राप्ति के लिए कोई भी बड़ा गैरकानुनी काम भी करने में नहीं हिचकिचाता । आज संपत्ति के लिए एक ही रक्त के भाई-भाई आपस में लड़ते है ।

धन संपत्ति के लिए संबंधो की मर्यादा तक नही रही है । ऐसी सामाजिक परिस्थिति के लिए आज की समाज व्यवस्था जिम्मेदार हैं और इसलिए ही उसको कवि 'सुमन' जी धिक्कराते हैं -

''भाई ने भाई के उष्ण रक्त से
तर्पण करना चाहा,
रक्त स्तनों का पीकर नवयुग का
शिशु मूक अजान कराहा ।''[८२]

इस अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था में पूँजीपति वर्ग अत्याचारी असुर का प्रतीक है । उनके जूल्म कितने और कैसे भयंकर हैं इसका शब्द चित्र 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए जो वर्तमान समाज व्यवस्था में भी देखा जाता है -

''दहलकर दम्भ से जिसको सभी दशशीश कहते थे,
जिसे देखकर खड़ी खेत को पाला मार जाता था,
ककहरा जुल्म का बच्चों के बचपन से सिखाता था ।
कि वेदों और शास्त्रों की सदा होली जलाता था
मनन करते मुनियों की खाले खींच लेता था
घरौंदे खेलते बच्चों की टाँगे चीर देता था,
किसानों के घरों के शेष दानें बीन लेता था
श्रमिक की रक्तमज्जा से रँगी जिसकी हवेली थी
धरा ने बड़े ही धीरज़ से दमन की धमक झेली थी ।''[८३]

आज समाज में 'सुमन' जी की उपरोक्त पंक्तियों में वर्णित चित्र दिखाई देता है । दमन और शोषण का चक्र आज भी चल रहा है ।

उसके साधन, माध्यम और पद्धति बदल गए है लेकिन शोषण और अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था आज भी वैसी ही चल रही है जो पहले चलती थी ।

सर्वहारा वर्ग समाज का एक अति महत्त्वपूर्ण वर्ग है, अगर इस वर्ग की अनदेखा करके चलने को या आगे बढ़ने की कोशिश की गई तो विकास संभव नहीं । उनका विश्वास नहीं तोड़ना चाहिए । आज भी समाज में सर्वहारा वर्ग की अनदेखी की जा रही है और समाज में उनके विश्वास को तोड़ा जा रहा है । कवि 'सुमन' सीख देते है कि सर्वहारा वर्ग को अनदेखा मत करें और उनको भी महत्त्व दे नहीं तो समाज और समाज की व्यवस्था को बुरे परिणाम भूगतने पड़ेंगे ।

''यों खेल करोगे कब तक असहायों से
कब तक अफ़ीम आशा की हमें खिलाओगे,
बरबाद ही गई फ़सल कहीं जोती बोई
क्या बैठ अकेले ही मरघट पर गाओगे ?

विश्वास सर्वहारा का तुमने खोया तो
आसन्न मौत की गहन गोंस गड़ जाएगी,
यदि बाँध बाँधने के पहले जल सूख गया
धरती की छाती में दरार पड़ जाएगी ॥''[८४]

हमारे देश की और हमारे समाज की अव्यवस्था देखकर कवि 'सुमन' जी असंतोष व्यक्त करते हुए अपनी पीड़ा व्यक्त करते हैं कि

आज समाज में से शील, संयम, शुद्धाचरण, लुप्त हो गए हैं और चारों और स्वार्थ, विकृति, अव्यवस्था, शोषण और भोगवाद का विषचक्र घूम गया है ।

> ''देश मेरे इस तरह क्यों खिन्न, त्रस्त, उदास,
> बन गए हो स्वयं अपनी विकृति के उपहार ।
> लीलता हर किरन - कन को स्वार्थ का खग्रास
> शील, संयम, आचरण, चरने गए हैं घास ।''[८५]

वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था के संबंध में उनके कारण और परिणाम की ओर संकेत करते हुए डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं और कहते हैं कि सामाजिक अव्यवस्था के पीछे किस किसका हाथ है ? उसके मूल में क्या है ? और कौन है ? - ''प्रगतिवाद के उन्नायक कार्ल मार्क्स जन-जीवन का मूलाधार ''अर्थ'' को ही मानते हैं । उनकी इस मान्यता के अनुसार वर्तमान समाज का गठन पूँजीवाद की ही देन हैं । केवल वे धनिक ही पूँजीवादी नहीं है, जो मध्यम और निम्नवर्गीय मानवों का शोषण कर विशाल सम्पत्ति के स्वामी हुए हैं, पर वे पण्डे, पुरोहित, मौलवी, पादरी, कर्थित धर्माचार्य और वे राजनेता भी पूँजीवाद के ही अंग हैं, जिन्होंने अपने स्वार्थ साधने के लिए समाज में सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों को जन्म दिया ।''[८६] 'सुमन' के इस संबंध में व्यंग्यात्मक शब्द देखिए -

> ''भाग्य लूटने वाले को
> वह धर्मवान भगवान बनाता
> जीवन हाय हराम कर दिया
> उसकी जय जयकार मनाता

जिसने सब कुछ छीन लिया
उसको ही वह दाता बतलाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[८७]

इस अन्यायपूर्ण और शोषित समाज व्यवस्था में समग्र जनसमाज दुःखी है । समस्त समाज पीड़ित है, शोषण और अत्याचार पूर्ण समाज व्यवस्था में आम आदमी की हँसी-खुशी लुप्त हो गई है । 'सुमन' जी की असंतोषपूर्ण वाणी देखिए -

''वह कौन दुखिया आज है
पीड़ित समस्त समाज है
सौ में अगर दस हँस लिए
क्या विश्व हँसमुख रह सका,
कब कौन अपनी कह सका ।''[८८]

'सुमन'जी इस सड़ी, गली, जर्जर समाज व्यवस्था के जनक लोगों के विरूद्ध मोार्चा खोलकर उनसे विद्रोह करके युद्ध करने के क्रांतिकारी स्वर में इच्छा व्यक्त करते हैं । वे पूरे समाज को इस खोखली और अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था से मुक्ति दिलाना चाहते है, उनके शब्द देखिए -

''झपटूँ शिकारी बाज बन
जर्जर व्यवस्था के जलपते गिद्ध पर
कर बिद्ध खूनी चंचु
पंजे तोड़ पैने
जीर्ण डैन ध्वस्त कर
दूँ मुक्त कर आकाश
हँसों औ' बगुलियों के लिए ।''[८९]

समाज में आज भी व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़ियाँ, दकियानुसी मानसिकता, रूढ परंपराएँ चल रही है । समाज में इससे भी अव्यवस्था उत्पन्न होती है । सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करनेवालों में इन सभी का भी हाथ है । ये सभी प्रायः पूँजीवादी सभ्यता एवं वर्ग का सहारा पाकर ही पनपते हैं । कवि सामाजिक जड़ता और रूढ़ परंपराओ के प्रति अपना असंतोष व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि -

''यह युग के अभिशापों की कैसी जड़ता है
कबिरा को मरने मगहर जाना पड़ता है ।''[९०]

सामाजिक अव्यवस्था की सड़ांध से जीवन मानो सभी जगहों से विलुप्त हो गया हो ऐसा लगता है । कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जीवन भाग गया है
मंदिरों, मस्जिदों और गिरजों से
जम-सी गई है
अर्चना की अर्चियों में
ठिठुरी राख,
भक्तों से अधिक
घंटों की टनटनाहट में
हरारत है ।''[९१]

ऐसी व्यवस्था को मिटाकर एक स्वस्थ समाज की नींव रखने का कार्यारंभ नहीं किया जाता केवल उसको मिटाने की, समस्याओं के निवारण की डींगे हांकी जाती है और केवल चर्चाकएँ ही चलती है ।

ऐसी स्थिति में सामाजिक न्याय मृगजल के समान ही प्रतित होता है, 'सुमन' जी का असंतोष इन शब्दों में फूट पड़ता है -

''प्रति प्रभात जागृति के
फतवे दिए जाते
जलती समस्याओं पर
डींग हाँकते अनिंद्य
कल्पित संघर्षो के
चलते अबाध मुक्त
चखे चर्चाओ के
अपलक अलापते राग
अपनी चर्चाओं के ।''[९२]

इस समाज को जानबुझकर, षड़यंत्रपूर्वक शोषितों ओर विशेष सुविधाभोगी वर्ग और पूँजीपति वर्ग के हवाले कर दिया गया है, ऐसा लगता है । जिसके कारण ही सामाजिक अव्यवस्था को मिटाया नहीं जा सका है, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''इतनी बड़ी दुनिया,
कुछ सरमायेदारों, इज़ारेदारों के
हवाले कर दी गई है ।''[९३]

सामाजिक अव्यवस्था युद्ध एवं साम्राज्यवादी, फ़ाजिस्ट मानसिकता के कारण होती है । दुनिया में बेमतबल बेतुके कारण दिखाकर कहीं-न-कहीं किसी न किसी देश एवं उसके समाज पर युद्ध

थोप दिया जाता है, जिसके कारण सामाजिक अव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती हैं । वियतनाम युद्ध इसकी मिसाल है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''वियतनाम लगता है
नामशेष का पर्याय.....
भुनगों सा भूना जा रहा है इंसान
बारूद के भाड़ में भुनकर
कपोलों की मासुम किरचें
धरती में धमक समा गई है
बाँझपन की
गर्भ में कसमसाती फसलों की ऊष्मा
फासिल्स बनती जा रही है – वीरान – वीरान – वीरान
इन्सान सावधान !''[९४]

आज सभी प्रकार के धर्म-कर्म बाज़ारों में बिक जाते हैं, मानवता और दया नाम की चीज नहीं हैं । सटोरिये और समाज की हामी भरते महान नेताओं में कोई फर्क नहीं रह गया है । जो भी आता है वह मुस्कान के साथ, हँसता हुआ आता है लेकिन जाता है तब कांटे बोकर जाता है, अपने पीछे दु:ख और पीड़ा छोडकर जाता है अर्थात् आज समाज में किसी पर विश्वास ही नहीं बैठता ऐसा अविश्वास का वातावरण निर्माण हो गया है, कवि के शब्दों में सामाजिक अव्यवस्था का चित्र देखिए जिसके प्रति वे असंतोष प्रकट करते हैं

''सब धर्म-कर्म बिक रहे बजारों-हाटों में
कुछ फर्क न दिखता सटोरिए में, बंदे में
मेरी किस्मत ने कुछ ऐसा चक्कर खाया
फँस गया एक दिन कूटनीति के धंधे में ।

जो भी आता है फूलों सी मुस्कान लिए
जाते जाते पथ पर काँटे बो जाता है ।

लिपस्टिक, रूज, लैवेण्डर, इवनिंग पेरिस की
इथरी गमक में तन-मन बौरा जाता है
बेचारी नीति बराए ताक़ धरी रहती
माँसल उभार में कालकूट उफ़नाता है ।''[९५]

इस वर्तमान समाज में आर्थिक विषमता की स्थिति के कारण नया सामाजिक वर्ग उत्पन्न हुआ है वह है मध्यमवर्ग । मध्यवर्ग की आच सीमित होती है और परिवार का भरपोषण, सामाजिक, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ आदि के कारण वह रेंगते पशुओं की तरह हर क्षण कार्य करता है । इससे उसका मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य भी बिगडता है । इस कारण से सामाजिक समस्याएँ नए सीरे से उत्पन्न हो गई है । इस कारण से मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक व्यक्तिगत समस्याओं में जन्म ले लिया है । 'सुमन' जी के शब्दों में इस आधुनिकता के कारण और सामाजिक विषमता के कारण मध्यमवर्गीय दयनीय स्थिति का चित्रण देखिए -

''मैं इतना पीछे
कि किसी को मेरी बारी
देखने की फरसत नहीं
फिर भी सिर नीचा किए
जीभ निकाले
श्वान सा हाँफता
दौडा चला जा रहा हूँ
बेतहाशा बदहवास
इतना ही अहसास
कि इस लम्बी दौड़ में
मैं भी कमी शामिल था ।''[९६]

समाज में सामाजिक, कुदरती विषम परिस्थितियों के चलते उस समय में मुनाफ़ाखोर व्यापारी वर्ग कालाबाज़ारी, मुनाफ़ाखोरी से अनैतिक धन की प्राप्ति करता है । गेहूँ, काजू के दामों में बिकने लगता हैं, तो तेल घी के दामों में बिकने लगता है । 'सुमन' जी के शब्दों में व्यंग्य देखिए -

''गेहूँ काजू के भाव
तेल घी के दामों में
घी है आँख आँजने की
रस्मी अदायगी ।''[९७]

वर्तमान समय के समाज में राजनीति का खस्ताहाल है । राजनीति समाज का एक अहम हिस्सा होती है । राजनीतिक फैंसलों

और वातावरण के आधार पर ही सामाजिक परिस्थिति का निर्माण होता है । तुलसीदास ने कहा है कि जिस राज की जनता दु:खी दीन-हीन हो उसकी स्थिति दयनीय हो, वह राज्य नर्क का अधिकारी बनता है । लेकिन इस नीति विषयक उपदेश को आज के राजनेता घोलकर पी गए हैं । आज जनता भय, भूख एवं भ्रष्टाचार से पीड़ित हैं । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''बाबा को कह गए
खुलेआम
सुबहशाम
''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।''[९८]

आज के नेतागण हीन विचारवाले स्वार्थी देशभक्ति की भावना से रिक्त और अपनी ही नज़रों मे गिरे हुए हैं। उनकी समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं है । 'सुमन' जी की आज का राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य देखिए -

''मैं राजदरबार से चला आया
अपनी ही नज़रो में
गिरने से बच गया ।
नये माहौल में
भटकना भला लगता है
सुविधा का क्षण-क्षण तो
खुद को ही छलता है,
उनकी क्या करता
हाँ हजूरी
जो खुद ही मोहताज हैं ।''[९९]

आसुरी शक्तियाँ सामाजिक अव्यवस्था फैलाने और शांति का माहौल भंग करने के लिए मानों गिद्धों की तरह बैठी है । समाज में वे लोग व्यवस्था भंग करने और मानवता को मिटाने के लिए षड्यंत्र करते ही रहते हैं । वह शोषण को ही अपना सनातन धर्म मानकर चलते हैं । आसूरी शक्तियों के षड़यंत्रों पर 'सुमन' जी के शब्दों में व्यंग्य देखिए -

''भली भाँति अपनाई
आसुरी अनाचारों का
एक ध्येय, एक लक्ष्य
मानवता मिट जाए
दया, क्षमा, करूणा का
रह न जाए नाम लेवा
बन रहे कल्पों तक
शोषण का सनातन धर्म ।''[१००]

साम्राज्यवाद किसी भी समाज के लिए नुकसानदेह साबित हुआ है । साम्राज्यवाद को जनतांत्रिक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था में जगह नहीं है । महात्मा गांधी ने साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंका था । आफ्रिका से उसके सत्याग्रही समर की शुरूआत हुई थी । अतः साम्राज्यवाद सामाजिक सुचारू व्यवस्था के लिए कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकता । आज के संदर्भ में भी यह कितना प्रासंगिक है ! आज आर्थिक शक्ति सम्पन्न साम्राज्यवादी देशों का वर्चस्व बढ़ रहा है । 'सुमन' जी इस साम्राज्यवाद को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते -

''हमारे राष्ट्रपिता का
सामा्राज्यवाद के विरूद्ध
सपना जिहाद का
अफ्रिका में दीखा था
सत्याग्रह का अमरमंत्र
वहीं कही सीखा था ।''[१०१]

क्योंकि साम्राज्यवाद पूँजीवादी व्यवस्था का पोषक एवं समर्थक है और उसमें शोषण का चक्र चलता है । भारत की जनता को इस साम्राज्यवाद का विरोध करके उसको उखाड फेंकना चाहिए । दमन और शोषण के चक्र के विरूद्ध निरंतर मुद्धरत रहना चाहिए -

''दमन और शोषण से
दुर्धर संघर्षों का
चिर-अटूट नाता है
भारत का जन-जन
अफ्रीकी जनता के
विजय गीत गाता है ।''[१०२]

शिक्षण समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है । शिक्षा पर भविष्य निर्माण का आधार है । परंतु अगर शिक्षानीति अनीतिपूर्ण और भेदभाव युक्त तथा अन्यायी हो तो वह समाज के लिए हानिकारक है । वर्तमान शिक्षणव्यवस्था का व्यापारीकरण हो गया है । जिससे गरीब ओर मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती । आज गरीब और मध्यवर्गीय परिवार के बच्चों अच्छी शिक्षा प्राप्ति करने के मौलिक

अधिकार को छीना जा रहा है । शिक्षा संस्थानों में अन्याय और शोषण का दमनचक्र चल रहा है । इसी अन्यायी शिक्षानीति समाज के लिए नुकसानदेह है । उसका विरोध 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए -

''कटे अंगूठों की बन्दनवारें बाँधे
सर-सन्धानों के जलसे मनाते तुम
बिके द्रौणाचार्यों के अभिजाती मूल्यों पर
दुर्धर महाभारत के थोथे गान गाते तुम
तब से आज तक
स्वाभिमानी सर्वहारा
चार अंगुलियों से ही
साधता अधुरा लक्ष्य
आहत अस्तित्व का ।''[१०३]

उपरोक्त संदर्भपंक्तियाँ 'सुमन' जी की 'कटे अंगूठो की बन्दनवारें' कविता की है । उसमें उन्होंने सन्दर्भ लिया है वह मध्यप्रदेश के आदिवासी भील प्रजा का है, वे केवल चार उँगलियों से ही शर-संधान करके अपना लक्ष्य साधते हैं । वे अपने आपको एकलव्य का वंशज बताकर एकलव्य को कटे अंगूठे के स्वाभिमान की रक्षा करके उसकी प्राणवान परंपरा को जीवित रखे हुए हैं ।

सामाजिक शांति गुटबाज़ी, जातिवादी राजनीति, सांप्रदायिक्ता, धार्मिक षड्.यंत्र आदि के कारण भंग होती है । भारत का बँटवारा उसका ज्वलंत उदाहरण है । इस भारत विभाजन के बूरे परिणाम आज सारा भारत भुगत रहा है । भारत ही नहीं अब तो पुरा विश्व भी इसके प्रभाव में है ।

इसमें से ही धार्मिक विद्वेष और आतंकवाद की समस्या उत्पन्न हो गई है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''पूरी की पूरी पीढ़ियाँ
जो घायल हो गई थी
किसी कृत्रिम बँटवारे में
भीतर ही भीतर
नासूर-सी रिसती हैं,
सने चौबारों पर ।
मज़हबों सम्प्रदायों के
झूठे फ़रेबों से
इन्सानी रिश्तों के
रेशे कभी मरते नहीं ।

मिट्ठी, हवा, पानी से
बिछूड़ी आत्माओं के
घाव कभी भरते नहीं ।''[१०४]

गुटबाज़ी के कारण मनुष्य-मनुष्य के संबंधो के बीच एक विष फैल जाता है । मनुष्यों के बीच खाई बन जाती है । एक ओर सामाजिक विषमता के कारण, शोषण के कारण, दुःख, पीड़ा और अव्यवस्था के कारण, अशांति और दुसरी ओर गुटबाज़ी के कारण सामाजिक व्यवस्था चरमरा जाती है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''इधर कूप उस ओर खाई खुदी है
करे कौन जन-जन व्यथा का निवारण
उधर नादाँ बच्चे पे ईमाँ निछावर
इधर गुटपरस्ती औ' बहुरूपियापन ।''[१०५]

इस प्रकार शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी एक सामाजिक नीतिज्ञ और समाजशास्त्री की तरह अपनी कविताओं मे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से अप्रसन्न हैं । वे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते और उसमें मूल में से ही परिवर्तन करके, नवीनता आए, सामाजिक व्यवस्था दुरूस्त हो ऐसा चाहते है । निश्चय ही 'सुमन' के सामाजिक विचार स्वीकारणीय हैं । 'सुमन' इस प्रकार सामाजिक वर्तमान स्थिति एवं वर्तमान सामाजिक व्यवस्थातंत्र से नाराज है और उसको स्वीकार नहीं करते ।

४.३.३ सामाजिक यथार्थ :

साहित्य का यह कर्त्तव्य है कि समाज का वह यथार्थ एवं वास्तविक चित्रण करें । सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि ही विकासोन्मुख दिशा को सुदृढ़ बना सकेगी । समाज में जो वास्तविक परिस्थिति हैं उसका सत्य और यथातथ्य चित्रण करना साहित्यकार का कर्तव्य बन जाता है । सामाजिक चित्रण में यथार्थवादी दृष्टि के कारण समाज की सही स्थिति का आंकलन कर सकते हैं, भावि रणनीति भी बना सकते हैं । अतः समाज का यथार्थवादी चित्रण हो यह आवश्यक है। सोवियत युनियन के अधिकारी कला का मूल्यांकन यथार्थवादी दृष्टि से करना

चाहते है । वह समाज का यथार्थो चित्रण करने के पक्ष में हैं, इस लिए वे कला को ज़िम्मेदार बनाते हैं । वे दूसरे अन्य यथार्थो से कला की भिन्नता दिखाना चाहते थे । उसी तरीके को समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी है । यथार्थवादी दृष्टि को इन शब्दों में देखिए - ''कलाकार कला में सतत यथार्थ की सत्य छवियों को ही अंकित करे आदमी और निसर्ग दोनों की । तब से समाजवादी यथार्थ की साम्यवादी तरीके से छवियाँ अंकित की जाने लगीं । मार्क्स ने किसी प्रकार के यथार्थ का अंकन कला में करने का सुझाव नहीं दिया था । इसलिए समाजवादी यथार्थ के अगुआ लोग एंगिल्स के लेखक से समाजवादी यथार्थ का स्त्रोत ढूँढ निकालने का प्रयास करने लगे । उन्होंने पाया कि मार्गरेट हाकनस समीक्षापत्र में जो 'सिटीगर्ल' के संबंध में था, उसके दो सन्दर्भो में यथार्थवाद का जिक्र था ।''[१०६]

वहाँ यथार्थवाद का अर्थ था - (१) सत्य विवरण एवं सत्य पुनरूत्पादन - वर्गगत चरित्रों का, वर्गगत परिस्थितियों के मध्य और (२) स्पष्ट वर्तमान दृष्टि और भविष्य का परिदृश्य । साहित्यकार को अपने विचार थोपने नहीं चाहिए बल्कि अपने साहित्य के माध्यम से ही अपने विचारों को व्यक्त करना चाहिए । चाहे तो जनता उसे स्वीकारे या ना स्वीकारे । समाजवादी का स्पष्ट एवं निश्चित स्वरूप ऐंगिल्स की मृत्यु के तीन दशक बाद दिखाई पड़ा । सोवियत लेखक संघ में सन् १९३४ ई. में सामाजिक यथार्थवाद के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया गया, जो निम्नलिखित मुद्दों को प्रस्तुत करता हैं - ''साम्यवादी यथार्थ

एक आधारभूत तरीका है । सोवियत साहित्य एवं समीक्षा में इनका अनुगमन आवश्यक है । वह आग्रह करता है, कि कलाकार का सत्य एवं ऐतिहासिक ठोस यथार्थ के क्रान्तिकारी विकास को प्रस्तुत करें । अधितर कलात्मक यथार्थ के अंकन में सच्चाई हो और ऐतहासिक ठोस यथार्थ का वैचारिक परिवर्तन एवं कलाकार की आत्मा को शिक्षित करने से जुड़ा ही रहना चाहिए ।''[१०७]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' बिलकुल इसी दिशानिर्देश पर चले हैं, उनकी कविताओं में सामाजिक यथार्थ झलकता हैं । समाज का यथार्थवादी चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में किया है । 'सुमन की यथार्थवादी दृष्टिकोण की पुष्टि डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र के इन शब्दों में देखिए - ''समाज का यथार्थवादी चित्रण 'सुमन' जी के काव्य का प्रमुख अंग रहा है । इसके अंतगर्त उन्होंने किसान, मज़दूर तथा अन्य शोषित वर्गो के यथार्थ जीवन का चित्रण किया है । इन शोषितों में उन नारियों का भी स्थान है; जो वर्तमान पूँजीवादी समाज व्यवस्था में धर्म और सामाजिक आचार-विचारो के नाम पर युग-युग से शोषित होती आ रही है । यथार्थवादी चित्रण के दूसरे विषय में पंडे, पुरोहित और नेता है ।''[१०८]

समाज में विरोधाभासी स्थिति विद्यमान है । समाज की इस विरोधाभासी परिस्थिति के कारण समाज कुरूप बन गया है । समाज में एक ओर सुंदरियों और प्रेम के पागलपन के पीछे मरनेवाले अनगिनत लोग है तो दूसरी ओर पेट की भूख मिटाने वाले अनगिनत् लोग बिना भोजन के जल रहे हैं, कुपोषण और भूखमरे की समस्या से पीड़ित है ।

'सुमन' जी की 'असमंजस' नामक कविता में शोषितों और शोषकों का यथार्थ चित्रण देखिए -

''इस ओर रूप की ज्वाला में
जलते अनगिनत पतंगे हैं
उस ओर पेट की ज्वाला से
कितने नंगे भिखमंगे हैं ।''[१०९]

समाज में अनेक लोग ऐसे हैं जो असमय ही बिना आहार-भोजन के भूखमरे के कारण मृत्यु को वरण कर लेते हैं । समाज की एक नवविवाहिता युवती का पति भूखमरी की चपेट में अपना दम तोड़ रहा है, अपने ही परिवार के सामने उसकी क्या हालत होती होगी । परिवार के जीवन का एक मात्र सहारा वह युवक भूखमरे के कारण मर गया है, उस मां की क्या हालत होगी ? उस परिवार की क्या हालत होती होगी ? ऐसा सोचने से भी कंपन महसूस हो जाता है । मनुष्य के कंकाल को देखकर 'सुमन' जी का मन भारी हो उठता है । 'सुमन' जी के शब्दों में सामाजिक यथार्थ -

''भरी जवानी में ही इसके चहेरे पर पड़ गई झुर्रियाँ''
पीब चिपचिपाती शरीर में भनन-भनन कर रही मकिखयाँ
क्या मानव, इस तरह निराश्रित
धरती पर बेहाल पड़ा है
यह किसका कंकाल पड़ा है ?''[११०]

प्राकृतिक आपदाओं के आगे मनुष्य लाचार एवं बेबस हो जाता है । एक ओर समाज में भूखमरी, बेरोज़गारी और गरीबी मुँहफाड़े तांडव कर रही हो ओर उसमें अकाल की समस्या अचानक आन पड़े तो समाज की हालत दयनीय और भयानक हो जाए यह स्वाभाविक है । ऐसा ही भयानक कलकत्ते का - बंगाल का अकाल था । इस अकाल में भूख उतनी खतरनाक हो गई हैं कि मनुष्य भूखे भेड़ियों की तरह मैली गंदी नाली का कचरा भी मुँह में डालकर खाने लगते हैं । मनुष्य के शबों को चील ओर गीदड़ नोचकर खा रहे है । समाज की ऐसी वास्तविक और भयावह स्थिति है फिर भी ऐसी स्थिति में समाज का शोषक-पूँजीपूति धनिक वर्ग महलों - भवनों में भोगविलास में लिप्त है । 'सुमन' जी का समाज की दयनीय एवं विरोधाभासी विपरीत स्थिति का यथार्थ चित्रण देखिए, जो अकाल सन् १९४३ ई. में बंगाल में हज़ारों की मौत बनकर आया था -

''बीन सड़ा मैला नाली का, मुँह में लेता डाल,
भूख-भूख ने मिटा दिया है, भले बुरे का ख्याल ।
ये जीवित शव भी मानव हैं, मूक त्रस्त पामाल ?
चील्ह नोचती आँखें गीदड़, खाते जीवित खाल ।''[१११]

बिना अन्न के लोग दम-तोड़ रहें हैं, बच्चे भूख से दम तोड रहे, भूखमरे की वास्तविक स्थिति का 'कलकत्ते का अकाल - १९४३' कविता में 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''बिना अन्न दम तोड़ रहे जो

खुले आम बाजार ।''[११२]

भारत में अंग्रेज़ों की अन्यायपूर्ण और शोषित राज्यव्यवस्था और उनकी कूटनीतियों के कारण सदियों से भाई-भाई की तरह साथ में रहने वाले हिन्दु-मुसलमानों के बीच वैरभावना और साम्प्रदायिक आग फैल गई है । उसमें भी मुसलमान एवं हिन्दुओं के नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थ ने तो स्थिति को ओर भी गंभीर बना दिया है । अकाल जैसी विकट समस्याभरी गंभीर परिस्थितियों में भी लोग सांप्रदायिकता की आग को नहीं भूलते । 'सुमन' जी के शब्दों में ऐसी सामाजिक यथार्थता देखिए -

''जाति धर्म के भेद कहाँ सब

बँधे भूख की डोर

हिन्दू-मुस्लिम खींच रहे पर

अपनी - अपनी ओर

कोख कलंकित करनेवाली

कैसी यह सन्तान ?

क्या 'गणेश'जी का निष्फल ही

गया अमर बलिदान ?''[११३]

देश सांप्रदायिकता की आग में जब जल रहा था जो आज भी जल रहा है, तब देश को इस आग से बचानेवाला कोई न था । साम्प्रदायिकता की आग में हिन्दु-मुसलमान जल रहे थे 'सुमन' जी के शब्दों में समाज

की साम्प्रदायिकता की आग में जलने की यथार्थ स्थिति का चित्रण उनके शब्दों में ही देखिए जिसमें 'साम्प्रदायिक आग लगाने वालों को लताड़ा है तब ये अंग्रेज़ थे आज हमारे ही स्वार्थी नेता हैं -

''घर-आँगन सब आग लग रही
सुलग रहे बन-उपवन
दर-दीवारें चटख रही हैं, जलते छप्पर-छाजन
तन जलता है, मन जलता है
जलता जन-धन जीवन
एक नहीं जलते सदियों से
जकड़े गर्हित बन्धन ।
दूर बैठकर ताप रहा है, आग लगाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला ।''[११४]

समाज में से नीतिमत्ता और आदर्श लुप्त हो रहे हैं । सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सच्चे मानवीय मूल्य खत्म हो रहे हैं । राज नैतिक मूल्यों का भी ह्रास हो रहा है । 'लोकतंत्र' या 'जनतंत्र' की आड़ में स्वच्छन्दता नाच रही है । लोगों में खुशहाली का अभाव दिखाई दे रहा हैं । लोग दुःखी हैं, त्रस्त हैं । ऐसी विषम परिस्थिति समाज की हैं, तब इसमें 'सुमन' जी की नए गीत लिखने की आदत छूटती दिखाई दे रही है । 'सुमन' जी भारत का सच्चा रूप नहीं देख रहे है जो उन्होंने कल्पना की थी, लोगों की जो आशाएँ थी । समाज का शोषण और विनाश ही उन्हें दिख रहा है जो पहले था -

''चुम्बन अभिशाप बने अनब्याहे होंठो पर
वैश्व सी राजनीति बैठ गई कोठों पर

सत्य हरिश्चन्द्र बिके मरघट के बोटों पर
सूखे पर भेंट हुए हरियाली के सपने
जन-मन खुशहाली की धड़कन सी रूठ गई ।
नए गीत लिखने की आदत सी छूट गई ।''[११५]

सचमुच ही 'सुमन' जी के द्वारा चित्रित सामाजिक यथार्थ स्थिति यथार्थ ही है । आज भी 'सुमन' जी की कविताओं में चित्रित सामाजिक भयावह स्थिति हैं वह समाज में मौजूद हैं, उस समय से आज यह भयावह स्थिति अधिक स्फोटक भयानक एवम् विकट हैं ऐसा हम कह सकते हैं ।

४.३.४ सामाजिक चैतन्य :

सामाजिक चेतना से तात्पर्य है कि समाज स्वस्थ जीवंत, गतिशील, कर्मशील, खुशखुशाल हो जिससे समाज में चैतन्य निर्माण हो । सामाजिक एवम धार्मिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द्र, अन्याय का विरोध, आधुनिकता, नए विचार, आदि इसके अंतर्गत आ सकते हैं, 'सुमन'जी के काव्यों में सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं । उनके सामाजिक चेतना के विचार प्रभावशाली हैं । मानवीय जीवन सामाजिक चेतना का एक मुख्य अंग हैं, कवि 'सुमन' जी ऐसे अमूल्य मानवीय जीवन जो समाज का एक अंग है और समाज के लिए आवश्यक है उसे नहीं खोने की सीख देते हैं -

''तेरे जीवन का अपनापन
उनके जीवन का महँगापन
संचित हैं इनमें हाय इन्हें सूनेपन में खोया न करो
चुपके-चुपके रोया न करो ।''[११६]

मनुष्य समाज का एक मुख्य अंग है । अतः मनुष्य का सम्मान करना चाहिए । मनुष्य ने आज तक जितनी भी चुनौतियाँ आयी है उसका सामना किया है और उस पर सफलता-विजय भी प्राप्त की है । मनुष्य जीवन चैतन्यमय होगा तो समाज भी चैतन्यमय ही बनेगा । इस लिए मनुष्य के अंदर के गुणों को विकसित कर उसे बाहर लाना चाहिए । मनुष्य साहस, शौर्य, क्रांति की भावना, दृढता, धैर्य आदि गुणों से भरा हुआ है और उनमें एक गज़ब की जीवनी शक्ति होती है । समाज में व्याप्त ऊँच-नीच के जो आड़ंबर हैं उन्हे खत्म करने की क्रांतिकारी शक्ति उसमें है, 'सुमन' जी के शब्दों में मनुष्य और समाज की चैतन्यमयी शक्ति देखिए -

''अटल हिमालय - सा. मैं मानव
जब लगता हूँ आहें भरने
मेरे रोम-रोम से प्रति पल
फूट फूट पड़ते है झरने
शीश न झुकने पाया
यद्यपि तिल-तिल में गलता जाता हूँ,
मैं पथ पर चलता जाता हूँ ।

भस्मात कर दूँगा क्षण में
ऊँच नीच के सब आडम्बर
काँप उठेगी निर्बल जगती
सिंहर उठेगा सूना अम्बर
पाद प्रहारों से मैं पथ के
कुश-कण्टक दलता जाता हूँ
मै पथ पर चलता जाता हूँ ।''[११७]

सामाजिक चैतन्य के लिए आवश्यक हैं आंतरिक शक्ति की । मनुष्य के जीवन में अनेक मुश्किले आएगी, मनुष्य एक पथिक है, मार्ग में अनेक कंटक होंगे, संघर्ष होगा लेकिन ऐसी स्थिति में, कर्म पथ पर उसके पैर डगमगाने नहीं चाहिए । अपने पथ को, लक्ष्य को, उद्देश्य को मनुष्य को भूलना नहीं चाहिए । अपने पराए बन सकते हैं । विफलताएँ भयंकर परिणाम ला सकती हैं फिर भी ऐसी कठिन क्षणों में मनुष्य को पथ न भूलने की या निराश न होने की आवश्यकता रहती है । समाज के अनगिनत मनुष्यों की भी यही दुविधा है । तब समाज की चेतना शक्ति को जागृत रखने के लिए आत्मबल, आत्मसंयम, श्रेष्ठ-विद्यायक-उत्साही एवं आशावादी विचार ही मनुष्य ग्रहण करे यह आवश्यक है 'सुमन' जी की कलम से -

''जब कठिन कर्म पगडण्डी पर
राही का मन उन्मुख होगा
जब सब सपने मिट जाएँगे
कर्तव्यमार्ग सन्मुख होगा

तब अपनी प्रथम विफलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं ।

अपने भी विमुख पराए बन
आँखो के सन्मुख आएँगे
पग पग पर घोर निराशा के
काले बादल छा जाएँगे ।
तब अपने एकाकी-पन में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं ।''[११८]

समाज का सुख-शांति-चैतन्य उसी में हैं कि मिल-जुल कर नवनिर्माण हो । समाज की ऐक्य एवं समानता की शक्ति ही यह कार्य कर सकती है । समाज के नवनिर्माण में, समाज की सेवा में अपना सर्वस्व भूलकर यदि एकात्मभाव से कार्य किया जाय तो अवश्य ही सामाजिक चैतन्य जीवंत रह सकता है -

''जीवन का अर्थ यही समझा
हँस हँस कर अर्पित प्राण करें
आओ चर अचर सभी मिलकर
नव-सुषमा का निर्माण करें ।''[११९]

जब समाज में दीन-दुःखी और सम्पन्न वर्ग एक साथ एक होकर बैठकर खाएगे, पीयेंगे और रहेंगे तभी सामाजिक चैतन्य का निर्माण होगा । जब सामाजिक सेवा हेतु बलिदान की भावना मानव-मानव में उजागर होगी तभी स्वस्थ समाज निर्मित होगा -

''जब कभी सुनोगी दीनो
दुखियों का मैनें सम्मान किया
मधुस्मृतियों को मानवता की
बलिवेदी पर बलिदान किया
सन्तोष न रूप तुमको होगा ।''[१२०]

समाज में बसनेवाली जनता ही सर्वोपरि होती है । उनके सहकार एवं समर्थन के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता । 'सुमन'जी के शब्दों में जनता का सम्मान देखिए -

''इस मिट्टी के गीत सुनाना
कवि का धन, सर्वोत्तम
अब जनता जनार्दन ही है
मर्यादा - पुरूषोत्तम ।''[१२१]

प्रेम, समानता और शांति से ही समाज स्वस्थ बनेगा, चैतन्ययुक्त बनेगा । समाज में निरंतर स्नेह और प्रेम का वातावरण बनाए रखना चाहिए । नवीनता का स्वागत भी इसी तर्ज पर करके समाज का निर्माण एवं नियमन होना चाहिए -

''शांति-स्नेह-समता अर्जन में
नवयुग का बलिदान अमर हो
जन-जन की ज्वाला से पिछले युग प्रतिमा पाषाणी
शुभ हो नव जन वाणी ।''[१२२]

सामाजिक स्वतंत्रता स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकती है । समाज में कहीं भी बंधन नहीं होना चाहिए न तो रूढियों का, न परंपराओं का, न धन-वैभव का किसी का भी । समाज जीवन के जन-जन उन्मुक्त गगन में विचरण करने चाहिए स्वतंत्र होने चाहिए तभी समाज चैतन्यमय बन सकता है -

''हम पंछी उन्मुक्त गगन के,
पिंजरबद्ध न गा पाएँगे,

हम बहता जल पीने वाले,
स्वर्ण-श्रृंखला के बन्धन में,
अपनी गति उडान सब भूलें,

पागल प्राण बँधेंगे कैसे
नभ की धुँधली दीवारों में ।''[१२३]

सामाजिक चैतन्य के लिए स्वतंत्रता और उसके साथ प्रेमभावना को बलवती बनाना चाहिए क्योंकि प्यार से ही सृजन-खुशी का माहौल समाज में निर्मित होगा । 'सुमन' जी के शब्दो में सामाजिक चैतन्य के लिए प्रेम भावना की आवश्यकता -

''आँख हिलती है तो सब आसमान हिलता है
प्यार खिलता है तो सारा ज़हान खिलता है ।''[१२४]

समाज के हर व्यक्ति में अपनत्व का भाव सभी व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थानों आदि सभी में अगर विद्यमान हो तो समाज में खुशहाली आ सकती है । कवि 'सुमन' जी सामाजिक चैतन्य हेतु यह आवश्यक

समाझते है कि धरती पर सभी के बीच सभी में अपनत्व की भावना प्रकट हो, कवि 'सुमन' जी के शब्दों मे -

''इस लिए धरित्री का कण-कण प्यारा
इस लिए जिंदगी का क्षण-क्षण प्यारा ।
चाहे सुषुप्ति हो, जागृति हो, सपना,
कुछ भी न पराया यहाँ सभी अपना ।''[१२५]

वैज्ञानिक आविष्कारो से समाज खुशहाल बना है । आज तक के सभी प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य की कर्मकुशलता का परिणाम है । मनुष्यों ने अपनी कर्मकुशलता एवं कठोर परिश्रम से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करके समाज जीवन को चैतन्ययुक्त बनाया है, कवि के शब्दों में -

''जिन आविष्कारों पर सभ्यता पली,
ये रेल तार, रेडियो, फोन, बिजली
ये वायुयान, जलयान, ब्रेनगन, भ्रम,
ये टेंक, टारपीड़ो, अणु-उद्जन बम ।

ये सब अपने छाया-प्रकाश के धन,
गतिपथ पर बनी बैलगाड़ी इंजन ।
कितनों को इसके लिए पड़ा तपना,
साकार हुआ तब सदियों का सपना ।''[१२६]

विज्ञान समाज का मित्र है, मनुष्य का मित्र है । विज्ञान के विकास के माध्यम से समाज में खुशहाली लाई जा सकती है, केवल

उसका सदुपयोग एव विवेकपूर्ण उपयोग हो यह आवश्यक है । सामाजिक चैतन्य से संचरण में विज्ञान अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है । कवि 'सुमन' जी का मत देखिए –

''शत्रु नहीं विज्ञान तुम्हारा
संकट का साथी है,
यह भी ऋषियों के चिन्तन का
रस है, परमार्थी है ।
यह भौतिकता का नव
आध्यात्मिक स्तर साज रहा है,
हर प्रयोगशाला में ज्योतिब्रह्म विराज रहा है ।''[१२७]

सामुहिक भावना के माध्यम से विकास के फूल चखे जा सकते हैं । विकास समाज का साझा रूप में सामुहिक स्तर पर ही हो सकता है । कृषि, शिक्षण, धर्म, राजनीति आदि में सामुहिक भावना से कार्य करना चाहिए । यही सामुहिक भावना सामाजिक चेतना का पर्याय बन जाती है । 'सुमन' जी कहते हैं कि –

''खाई खंदक खाल
पोखरों, गड्ढों को भरना है,
ऊँची-नीची धरती का
विघटन समतल करना है ।
सामूहिक खेती होगी अब
सामूहिक श्रमदान,
संगच्छध्व संवदध्वं संवो
मनांसि जानताम् ।''[१२८]

जीवन में, समाज में सब कुछ जो अच्छा हैं, नवीन है, विकासात्मक हैं उनको नहीं रोकना चाहिए । उनको आने देना चाहिए । नवनिर्माण को, परिवर्तन को समाज में होने देना चाहिए, उसका स्वागत करना चाहिए 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''हर किरण ज़िन्दगी की आँगन तक आने दो
नव-निर्माणों की लपटों को मत बन्द करो ।''[१२९]

इसी दृष्टि एवं नीति के कारण समाज में वैज्ञानिक विकास संभव हो सका है । मनुष्य चन्द्र पर अपने पद्‌चिहन रखकर आया है । चारों ओर विकास का माहौल है, यह वैज्ञानिक प्रगति की ही देन है 'सुमन' जी की कलम से -

''त्रेता और कलजुग में
एक यही अंतर है,
अब नहीं कहता कोई
त्राहिमाम त्राहिमाम
प्रत्युत्तर प्रगटाता वह
अपना विराट रूप
सहस्त्राशीर्ष सहस्त्रकारों की
उद्‌भावना
चंदा की छाती पर
अंकित कर आया है
अपने पदचिह्‌न जो
धरती का छद्‌म उसे
कब तक छल सकता है ।''[१३०]

वैज्ञानिक विकास के कारण नवीनता आ रही है । सभी जगह नाविन्य का प्रभाव है । असंभव कार्य भी संभव दिख रहा है । अब तो वैश्विक एवं समष्टिगत रिश्तों की बाते हो रही है । धरती में समाज में नए विश्वास का संचार हो रहा है । नवीनता, आधुनिकता, वैज्ञानिक विकास के कारण ही सामाजिक चैतन्य निखर उठा है 'सुमन' जी के शब्दों में -

''चाँद धरती के नये रिश्ते जुड़े जब
हर असंभव आज संभव दिख रहा है
ग्रह उपग्रह और आते जा रहे हैं पास
जग रहा फिर आज
धरती मे नया विश्वास
भीट बंजर जोतने का
रोपने का
नयी फसलों का नया उल्लास ।''[१३१]

किन्तु कवि 'सुमन' इस आधुनिकता, शहरीकरण और भोगवाद, यांत्रिकता और वैज्ञानिक दुरूपयोग से चेतावनी भी देते हैं । आधुनिकता की आड़ में केवल यांत्रिकता और भोगवाद के कारण समाज जीवन में केवल स्वार्थ और भोग की लालसा बढ़ने से सामाजिक चैतन्य समाप्त हो सकता है । आज बिलकुल ऐसा ही हो रहा है । शहरीकरण के कुकृत्य, यांत्रिकता, कहलानेवाली आधुनिकता, दिखावा, फैशन परस्ती बढ़ रही है । ऐसे माहौल में मनुष्य अपना अपनत्व, मनुष्यत्व खोता जा

रहा है । ऐसी शहरीकरण की भयानकता के विरूद्ध हमे 'सुमन' जी आगाह भी करते हैं, उनके शब्दों में शहरीकरण और आधुनिकता देखिए

''जयपुर से लौट रहा था
बौराया बदहवास....
नाम तक न पूछ सका
मेरी ही गाफिली
कोसेगी बार-बार
पी-पीकर पानी
बलखाती बेशुद्ध बयार ।
फिर कभी लौटने तक
शहर गढ़ जाएगा, कौन पहचानेगा...
करती रहेंगी दिक
मुग्धा महमानदारी
दिन पर दिन दुर्लभ होती जा रही जो
सुलभ होती जा रही शुक्र मंगल की यात्रा ।''[१३२]

कवि ऐसी आधुनिकता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि जो अस्तित्व ही मिटा दे, पहचान ही मिटा दे ऐसी आधुनिकता ऐसा शहरीकरण किस काम का ? कवि के शब्दों में आधुनिकता और शहेरीकरण की अतिशयोक्ति के खतरनाक परिणामों से चेतावनी देखिए -

''पहले दिल्ली आता था तो लाल किल्ला हुमायूँ का मकबरा
कुतुबमीनार औ' शेषनाग के फन पर गड़ी किल्ली देख
उत्तेजित हो उठता था । अब तो सिर्फ चक्कर लगाता हूँ

कनाट प्लेस अथवा मंत्रालय को तैमूरी आक्रमणों
नादिरशाही लूटों की बर्बरता के खण्ड़हर
मानस दहलाते नहीं जफ़र के बेटों के
कटे रूण्ड-मुण्डों का हल्फी बयान लिए
खड़े बुर्ज़-दरवाज़े घायल कल्पना के
मर्मस्थल सहलाते नहीं । मस्ती की रह गई है
जिन्स जैसी ज़िन्दगी स्वप्नहीन, आस्थाहीन
केवल काम काम की ।''[१३३]

शहरीकरण और आधुनिकता के कारण अनेक प्राकृतिक सामाजिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं ने जन्म लिया है । लोग इसी कारण तेज हीन, नपुंसक बनते जा रहे है । शहरीकरण और आधुनिकता के बूरे परिणाम 'सुमन' जी की इन पंक्तियो में देखिए -

''बेहद संतप्त हूँ कि
नपुंसकों की पीढ़ियाँ
जन्म ले रही हैं आज
शेरों की माँद में
काज़ी होता तो
कभी का दुबला हो गया होता ।''[१३४]

उत्सव-त्यौहार, मेले, व्रत-उपवास आदि और धार्मिक एवं सांस्कृतिक मिलन समाज का एक अंग है और सामाजिक चैतन्य के लिए आवश्यक भी हैं । व्यक्ति जीवन जंजालों, यांत्रिकताओं, प्रदुषणों,

संघर्षो आदि से तंग आकर ही मानसिक शांति एवं आनंद, हेतु उत्सवों का सहारा लेता है । यह उत्सव सामाजिक चेतना में वृद्धि करते हैं । 'सुमन' जी की कविताओं में सामाजिक चेतना के रूप में उत्सवों को भी स्थान मिला है । कवि नूतन वर्ष के उत्सव को महत्त्व देते हैं । नुतनवर्ष अतीत की स्मृतियाँ, भावि की अभिलाषाएँ नवजीवन की, नवयुग के नवीन सन्देशों की सौगात लेकर आता है और मानवी इसमें से आनन्द एवं खुशी प्राप्त करता है । नववर्ष के उत्सव के रूप में 'सुमन' जी की सामाजिक चेतना देखिए -

कितनी अतीत की स्मृतियाँ
कितनी भावी अभिलाषाएँ
आया है लेकर वर्ष नया
कितनी नव-जीवन आशाएँ
नवयुग के नव सन्देशों का
स्वागत है आज सहर्ष सखे
आया है नूतन वर्ष सखे ।''[१३५]

सामाजिक शांति, सुख एवं आनन्द के लिए उत्सव-पर्व-त्यौहार आवश्यक हैं, क्योंकि उत्सव प्रेम का उद्दीपक होते हैं और इसी प्रेम से ही समाज में सोहार्द्र बन सकता है और सामाजिक चेतना, जीवन्त रह सकती है । उत्सव प्रेम का उद्दीपक होते हैं ऐसे ही उत्सवों में से एक है होली का उत्सव । होली मे दिल खिल जाते हैं और रंगो में रंग मिल जाते है । होली उत्सव खुशहाली के रंगों का और प्रेम का प्रतीक है । कवि 'सुमन' जी के शब्दों में -

''आज सुबह से बदली-बदली बोली है,
लोल कपोलों में अबीर है, रोली है,
होली - होली कहते तारे भाग गए
अम्बर की आँखों में शोख ठठोली है ।
मादक लाली की सीमा कजरारी है
राधा को बाँधे रसिया बनवारी है,
रंग-रंग के रंग धरा ने देखे है
लेकिन इस रंग की लीला बलिहारी है ।''[१३६]

रंग-पंचमी के उत्सव में चारों ओर समाज में आनन्द एवं उल्लास का चेतनायुक्त वातावरण होता है । रंग-पंचमी खुशी के अनेक रंग लेकर आती है । रंग-पंचमी त्यौहार और होली के त्यौहार की लालिमा कवि 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए -

''बड़ी रंग ली रंग पंचमी आई हो,
गली-गली में रस की बदली छाई हो ।

गेहूँ का रंग-रूप सृजन का साज़ है,
इसी लिए तो होली हँसती आज है ।
इसी ठठोली में फागुन की लाज है,
इसकी लाली में खिलता श्रृंगार है ।
मलो अबीर, गुलाल तुम्हें अधिकार है,
काला मुख करने वालों से रार है,
होली तो बस लाली का त्यौहार है ।''[१३७]

फागून की पूर्णिमा के दिन उज्जैन की मालीपुरा की होली का तो अनूठा ही रूप रंग होता है । उस समय चारों ओर रंगों की रचना होती है । फूलों की नयनरम्य झाँकिया सजाई जाती है । लोग मिल-जूलकर इस त्यौहार को खुशी से मनाते है कवि 'सुमन' जी के शब्दों में फागुन की पूर्णिमा की होली का ऐश्वर्य देखिए -

''उज्जयिनी का मालीपुरा
सचमुच निराला है
फागुन की पूर्णिमा को
राग-रंग रचता है
फूलों की झाँकी
सजाता नयनाभिराम
पंचबाण धारी की
आरती उतारने को,
प्राँगण भर जाता
अनुरागी अनुभावों से
राजमार्ग

वृन्दावन कुंजो-सा लालायित
गलियाँ चौराहे सब
उमड़-उमड़ उठते हैं
उन्मद नद अनियंत्रित ।''[१३८]

प्रतिवर्ष विजयादशमी का त्यौहार नवरात्री के पूर्ण होते ही अश्विन महिने की नवरात्री के दसवें दिन पर आता है । यह उत्सव सत्य

की असत्य पर प्रकाश की अंधकार पर विजय का प्रतिक हैं तो राम सत्य एवं प्रकाश तो रावण अंधकार का प्रतिक हैं । अंधकार से तात्पर्य यहाँ शोषण, अनीति, भ्रष्टाचार और अन्याय से हैं । हम ऐसे दुर्गुणों पर की विजय को हर्ष एवं उल्लास से मनाते हैं, जैसे

''आता प्रतिवर्ष पर्व विजयादशमी का जब
राम और रावण का युद्ध हम रचाते हैं
दुहराते हैं रूढ़ियाँ सगर्व राम-लीला की
गौरव-गुमान भरे विजय-गान गाते हैं
रावण का भीमकाय पुतला बनाते हम
पेट में पटाखे, सर गधे का लगाते हैं
उत्सव उल्लास बीच बच्चे बन जाते सब
हल्ला मचाते खूब आग जब लगाते हैं ।''[१३९]

नया संवत्सर जब आता है तथा नए विचार, नई राहें, नये कार्य, नयी भावि योजनाएँ आदि का संदेश लेकर आता है । 'परिवर्तन सृष्टि का नियम है', 'परिवर्तन शाश्वत है' ऐसा अमर संदेश लेकर यह नया संवत्सर आता है । हमें भी इससे ऐसा ही उपदेश ग्रहण करके जीवन में नवीनता का स्वागत कर जीवन और समाज को चैतन्यमय बनाना चाहिए । कवि के शब्द देखिए -

''साका नया चला दिया
फिर से नये विक्रमों ने
अगली यात्राएँ अब यहीं से गिनी जाएँगी,
बहुत दिनों बाद
कदम मिले शूरमाओं के, नब्बे कोटिकदमों की

एक चाप

एक दाप

चरैवेति, चरैवेति

बढ़ते चलो, बढ़ते चलो ।''[१४०]

गंगादशहरा उत्सव में पूर्णिमा तक मेला लगता है और लोग खुशी-खुशी अपने जीवन का गम-पीडा भूलकर इकट्ठे होकर स्वतंत्रता की मौज मनाते हैं । कवि के शब्दों में गंगादशहरा उत्सव के उत्साह पूर्ण मेले के उत्साहपूर्ण वातावरण का चित्रण देखिए -

''गंगादशहरा से

पूर्णिमा तक

उमड़ पड़ा था मेला

नवब्याही साधों का,

रथों में बिठाकर

भगा ले जाने की

कवांरी रोमांचकता

सार्थक-सी लगती थी ।''[१४१]

इस प्रकार इन सभी के केन्द्र में तो मानव ही है, अगर मनुष्य है तो मनुष्य जीवन है और मनुष्य जीवन है तो समाज और सामाजिक चैतन्य है । इस धरती पर मानव से श्रेष्ठ सुंदर इश्वर की ओर कोई भेट या सौगात नहीं हो सकती । और यही सही सामाजिक चेतना है कवि के शब्दों में मानव महत्त्व देखिए -

''धरती पर मानव से
सुन्दर सौगात नहीं
मंत्रो, प्रार्थनाओं
अजानों, अर्चनाओं में
प्यार की कहानी से
बढ़कर कुछ बात नहीं ।''[१४२]

इस प्रकार शिवमंगल सिंह 'सुमन' की काव्य रचनाओं में सामाजिक चेतना प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुई है । उसकी सामाजिक चेतना के मूल में मानव है, समाज की खुशहाली और सामाजिक विकास है । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र जी लिखते हैं कि - ''ये कवितायें कवि 'सुमन' की सामाजिक चेतना को पूर्ण रूप से निखारती है । सामाजिक चेतना कवि के व्यक्तितत्व का एक प्रकार से प्रधान अंग-सा लगता है ।''[१४३]

४.३.५ 'सुमन' जी की दृष्टि से भावि समाज :

साहित्य समाज का दर्पण है अगर साहित्य समाज का वर्तमान चित्रित करके भूतकाल की गलतियों से उबरना सिखाता है तो भावि की कल्पना देकर भविष्य निर्माण भी कर सकता है । तुलसीदास के 'रामचरित मानस' में 'उत्तर काण्ड' में वर्तमान और भावि समाज की ही कल्पना की गई है और वर्णन किया गया है । कवि भविष्य दृष्टा होता है वह अपने विचार दर्पण की मदद से भविष्य देख सकता है । कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' भी एक दृष्टा हैं । उन्होंने भी भावि समाज की कल्पना की है, लेकिन उनकी यह कल्पना छायावाद की तरह कल्पना ही नहीं है,

लेकिन यथार्थ की धरती पर विचरण करनेवाली कल्पना है । इस सम्बन्ध में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा जी का मत है कि - ''काव्य नन्दन कानन का कल्पित कल्पतरू नहीं हैं, बल्कि वह हमारी ही दुनिया का आम्रवृक्ष है, जो शिशिर और वसन्त के स्पर्श से विषादित और आह्लादित हुआ करता है । साहित्य अमरावती में प्रवाहित होनेवाली पीयूषधारा नहीं बल्कि वह हमारे ही हिमालय से कलकल स्वर करती हुई हमारी ही धरती पर बहनेवाली मंदाकिनी की शीतल ऊष्णधारा है, जिससे हमारे हृदय की आशाएँ, अभिलाषाएँ तरंगित होती रहती है, बल्कि वह हमारे ही प्राणों के पुलकित वन में बजनेवाली व्याकुल विपंची है जो सुख-दु:ख के तारों से झंकृत हुआ करती है । साहित्य इसी ठोस धरती का बीज है ।''[१४४]

'सुमन' भी ठोस भूमि पर ही विचरण करनेवाले कवि है अत: उनकी कविताएँ धरती की है, न कि व्योम की ।अत: उनकी भावि समाज की कल्पना यथार्थ की भूमि पर ठहरी हुई कल्पना है । 'सुमन' जी की काव्य रचनाओं में भावि समाज की कल्पना है । मन के अनुकूल वातावरण न पाकर वे दु:खी भाव से कह उठते हैं कि -

''सच है मैंने प्यार न पाया
निज कल्पित संसार न पाया
किन्तु अभागों की दुनियाँ में नया नहीं हिय मंथन मेरा,
कौन सुनेगा क्रंदन मेरा ।''[१४५]

'सुमन' जी के मस्तिष्क में समानता पूर्ण समाज का चित्र है । वे ऊँच-नीच से परे भेद-भाव रहित खुशहाल समाज चाहते हैं । वे जहाँ समाज दु:खी है वहाँ उसके दु:ख के साथ खुद दु:खी होते हैं । वे अपने सुख के साथ समग्र मानवता में सुख की कामना करते हैं । इस दु:खीयों की दुनिया में वे अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति देकर नवीन समाज की कल्पना करते हैं । समाज की विषमता को दूर करके भावि समाज विषमता रहित एवं सुखी हो ऐसा चाहते है, 'सुमन' के शब्दों में

''भस्मसात कर दूँगा क्षण में
ऊँच-नीच के सब आडंबर
काँप उठेगी निर्बल जगती
सिहर उठेगा सूना अम्बर
पाद प्रहारों से मैं पथ के कुश-कण्टक दलता जाता हूँ,
मै पथ पर चलता जाता हूँ ।''[१४६]

'सुमन' जी मार्क्सवादी साहित्यकार हैं । वे मार्क्स से प्रभावित हैं । अत: मार्क्स की विचारधारा के अनुरूप पूँजीवाद रहित, शोषण रहित मार्क्स के विचारानुकूल साम्यवादी समाज की कल्पना करते है । पूँजीवादी समाज की समाप्ति के पश्चात निर्माण होनेवाले भावि समाज को वे साम्यवादी बनाना चाहते हैं जहाँ केवल और केवल समानता की ही भावना हो । कवि के शब्द देखिए जिसमें वे भावि साम्यवादी समाज का सुंदर चित्र खींचते हैं -

''यहाँ नहीं सोने चाँदी पर दास खरीदे जाते
यहाँ न मेहनतकश की रोटी छीन और खा पाते
यहाँ न भूखे नंगे जर्जर वसन दिखाई पड़ते
यहाँ दूध के बिना न बच्चे, पत्तों से झर पड़ते ।''[१४७]

'सुमन' जी चाहते हैं कि भावि समाज विकासात्मक हो, समाज में केवल विकासात्मक परम्परा को ही स्थान मिले । ''जल रहे है दीपक जलती है जवानी ''कविता देखने लायक हैं । प्रलय के बाद जब नवसृष्टि का सर्जन हुआ तब उसके बाद आसुरी शक्तियों का प्रकोप बढ़ा तो धरतीपुत्रों ने राम का रूप धारण करके आसुरी सत्ता का नाश कर दिया था । मनुष्य जीवन के साथ-साथ भावि समाज की विकासात्मक परम्परा के सन्दर्भ में सुमन जी के शब्द देखिए -

''दौर नव-कृषि-सभ्यता का राम बनकर रम रहा था
कारवाँ यायावरों का बस रहा था जम रहा था,
झोंपड़ो मे ज्योति जीवन का प्रदीप जला गयी थी
धरा की बेटी मनुज की व्याहता बन आ गयी थी ।''[१४८]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की जनता ने भारत के भविष्य के नित नये स्वप्न देखे थे किन्तु स्वार्थी नेता एवं कलुषित राजनीति के कारण यह स्वप्न धूल में मिल गये । चारों ओर शोषण का चक्र चला । अतः इस शोषणचक्र एव अन्यायी व्यवस्था के विरूद्ध 'सुमन' जी क्रांतिकारी भावनाओं में संदेश देते हैं । भावि समाज के निर्माण हेतु क्रांतिकारिता को आवश्यक माना हैं, वे आहवान करते हैं कि -

''होश में आओ वर्ना बाद में पछताओगें
कब तलक क्रान्ति को यों बरगलाते जाओगे
रूष्ट शिव को गये तो सृष्टि कौन रेलेगा ?
उमड़ भागीरथी की धार कौन झेलेगा ?
चेत जिससे न गिरे राष्ट्र कहीं भारत में
अब तो शास्त्री-सा भगीरथ भी नहीं भारत में
इस लिये बिखरी शक्तियों की फिर सहेज करो
कौम के कारवाँ की घंटियों का तेज़ करो
हिला है आज हिमालय तो दाँव मत चूको
समुद्र बाँधों और पांचजन्य फिर फूँको
लगाओ हाँक जरा कूच का सबैरा है
जरा मशाल जलाओ बड़ा अंधेरा है ।''[१४९]

समाज में मुक्त वातातरण से ही उचित परिणाम मिल सकते हैं । समाज ऐसा होना चाहिए जिसमें हर एक को मुक्त रूप से अपने-आप पनपने एवं विकसित होने का अवसर मिले । ऐसा समाज ही सुनहरे भविष्य का निर्माण करेगा । प्रजातंत्र की स्वतंत्रता के संबंध में 'सुमन' जी के ये शब्द देखिए -

''तुमने कहा
प्रजातंत्र ऊपर से लादो मत
फूटने दो नई फसल
धरती की कोख से,
भारत के ग्रामों को

पहले उजागर करो
दिल्ली जगमगाने दो
उसकी ही ज्योति से
तुलसी ने नानापुराण
निगमागमों का सत जो निचोड़ा था
कंठ में तुम्हारे वह
भाषा निबंध मति मंजुल
बन बोल उठा ।''[१५०]

यहाँ 'सुमन' जी गाँवो में खुशहाली हो, शहर जगमगाएँ और प्रजातंत्र सचमुच प्रजातंत्र हो ऐसे समाज की ओर संकेत करते हैं गोस्वामी तुलसीदास कृत ''रामचरित मानस'' के प्रारम्भिक श्लोक की अन्तिम पंक्तियों की ओर भी 'सुमन' जी यहाँ निर्देश करते है –

''नाना पुराण निगमागम सम्मतं मद,
रामायणे निगदितं कचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबन्धमति मंजुल माल नोति ॥''[१५१]

ऐसा समाज होगा तभी स्वान्तः सुख की प्राप्ति होगी ऐसी तुलसी की भावना से 'सुमन' जी भी सहमत दिखाई देते है । तुलसी की रामायण के सदृश रामराज्य से भावि समाज की सुमन कल्पना रखते हैं जिसमें सर्वत्र खुशहाली ही खुशहाली हो ।

४.३.६ सामाजिक सौहार्द्र, मानव प्रेम एवं विश्व मंगल की कामना

समाज तभी खुशहाल बन सकता है जब समाज में सौहार्द्र हो । सामाजिक सौहार्द्र सामाजिक विकास की सीढ़ी है । हमारे भारत देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग हैं । हमारा देश भिन्नभाषी, भिन्नधर्मी, भिन्नवेश, प्रांतीय बहुलताओं वाला देश है इस लिए हमने धर्मनिरपेक्षता को अपनाया है । ऐसे भिन्नताओं वाले समाज में सामाजिक सौहार्द्र रहे यह आवश्यक ही नहीं किन्तु अनिवार्य है । 'सुमन' जी के काव्यों में सामाजिक सौहार्द्र की भावना झलकती है । उनकी सामाजिक सौहार्द्र की भावना देखिए -

''इसी लिए कहता हूँ
बिखरी चिन्गारियाँ बटोरो,
छोट-मोटे मतभेदों को
गंगाजी में बोरो ।''[१५२]

साम्प्रदायिक सद्‌भाव ही समाज में शांति स्थापित कर सकता है । महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक एकता की स्थापना की थी उनकी वजह से सामाजिक सौहार्द्र की भावना दृढ हुई थी गांधी द्वारा सामाजिक सौहाद्र की भावना देखिए -

''धड़कन विराट की
साँसों के स्वर में झलकी
गीता, कुरान, बाईबिल
सब तुमने लिखी दिखी ।''[१५३]

सभी मनुष्य चाहे वह प्रार्थना करनेवाला हिन्दु हो, अजान पढ़नेवाला मुसलमान हो, एक इश्वर की ही संताने हैं । इस नाते सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई है, तो साम्प्रदायिक विद्वेष ही नहीं होना चाहिए । प्रार्थनाओं और अजानों में केवल प्यार की ही बात कही गई है । अनेक महापुरूष केवल अल्ला - ईश्वर तेरे नाम का एकेश्वरवाद का जाप ही रटते रहे हैं, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''धरती पर मानव से
सुन्दर सौगात नहीं
मंत्रों प्रार्थनाओं
अजानों अर्चनाओं में
प्यार की कहानी से
बढ़कर कुछ बात नहीं ।
नामदेव, नानक, दादु
कबीर, तुकाराम
अविराम रटते रहे
ईश्वर-अल्ला एक नाम ।''[१५४]

हमें ऐसी एकता की शक्ति का निर्माण करना चाहिए जिसमें साम्प्रदायिक विष का नाश हो जाय और सामाजिक सौहार्द्र दृढ हो जाय, 'सुमन' जी के शब्दों में सामाजिक सौहार्द्र, साम्प्रादियक एकता की भावना व्यक्त हुई है ।

''बहबूदी अगर चाहते हो
अपनी या मेरी नहीं
पीढ़ियों की, पीड़ित मानवता की
तो मिल-जूलकर कोई ऐसी
एटमी शक्ति ईजाद करो
जिसमें नफ़रत फिरकेबंदी
मज़हबी फ़सादों का
ज़हरीला-भूल बीज
बिखरे-बिखरे ।''[१५५]

मज़हबी ज़हर की आग में ही मानवता नष्ट हो जाती है । भारत का विभाजन इसी मज़हबी आग की लपटों के कारण हुआ था । मज़हबों और संप्रदायों के फरेबों के कारण सामान्य मनुष्य को दर्द मिला था जो आग आज भी जल रही है । 'बँटवारे का दर्द' 'सुमन' जी के शब्दों में -

''पूरी की पूरी पीढ़ियाँ
जो घायल हो गई थीं
किसी कृत्रिम बंटवारे में
भीतर ही भीतर
नासूर-सी रिसती हैं
सूने चौबारों पर ।
मज़हबों सम्प्रदायों के

झूठे फ़रेखों से
इन्सानी रिश्तों के
रेशे कभी मरते नहीं
मिट्टी हवा पानी से
बिछुड़ी आत्माओं के
घाव कभी भरते नहीं ।''[१५६]

अब अगर हम एक नहीं हुए सामाजिक सौहार्द एवं ऐक्य की भावना को बलवती नहीं बनाया, समाज में प्रेम और अहिंसा का वातावरण नहीं बनाया और ऐक्य की भावना से भाईचारा नहीं बनाया तो सर्वनाश निश्चित है, 'सुमन' जी का संदेश देखिए -

''कंधे से कंधा मिला कर नहीं चल सकते तो
खान में, पिंडलियों में बल नहीं ला सकते तो
अपने हाथों ही सर्वनाश को तैय्यार रहो
समय किसी का सगा है नहीं हुशियार रहो ।''[१५७]

सामाजिक सौहार्द के लिए आवश्यकता है, प्यार, ममता, अहिंसा और मानवता की मानवतावाद बलवान होना चाहिए मनुष्यता को जीवित रखने के लिए जातिवादी, सांप्रदायिक और शोषित ताकतों से मनुष्य जाति को बचाने के लिए मानवतावाद पनपे यह आवश्यक है । मानवतावाद और उनसे जुडी कवि की भावनाओं के संबंध में डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र का मत है कि - ''मानवतावाद प्रगतिशील कवि की

भाव-चेतना का एक अभिन्न तत्त्व है । आधुनिक युग का पुनर्जागरण मानव-महत्ता के गान के साथ ही होता है, और भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा छायावादी युग में भी क्रमशः मानवतावाद की भाव चेतना विकसित और व्यापक होती चली गई है, लेकिन प्रगतिशील कविता में इस चेतना को अधिक ठोस, स्पष्ट तथा व्यावहारिक धरातल प्राप्त हो सका है । सामाजिक यथार्थ की प्रतिष्ठा, समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति, साम्राज्यवाद एवं युद्ध का विरोध, शोषितों के प्रति प्रेम, नारी की मुक्ति कामना, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय चेतना आदि मानवतावादी चेतना के व्यावहारिक रूप को ही स्पष्ट करते हैं ।''[१५८]

'सुमन' जी के काव्यों में मानवप्रेम और विश्वमंगल की भावना गहनता एवं दृढता के साथ चित्रित हुई है । 'सुमन' जी एक संवेदनशील कवि हैं वे मानवता के पक्ष धर हैं, वे एक वैश्विक साहित्यकार हैं, उनकी मानवीय दृष्टि उन्हीं के शब्दो में देखिए -

''इस ओर अतृप्ति कनखियों से लानत है मुझे निहार रही
उस ओर साधना के पथ पर, मानवता मुझे पुकार रही ।''[१५९]

'सुमन'जी शोषको के प्रति घृणा की दृष्टि से देखते हैं । वे मानवता के दुश्मन शोषक वर्ग को ही मानते है । शोषक वर्ग और अपने आप के बीच तुलना करते हुए वे दुःखी होते हैं, उनके मानवीय प्रेम के उद्गार की अभिव्यक्ति देखिए -

''आज जो मैं इस तरह आवेश में हूँ अनमना हूँ
यह न समझों मैं किसी के रक्त का प्यासा बना हूँ
सत्य कहता हूँ पराए पैर के काँटा रोक सकता
भूल से चींटी कहीं दब जाय तो भी हाय करता
पर जिन्होंने स्वार्थवश जीवन विषाक्त बना दिया है
कोटि-कोटि बिभूक्षितों का कौर तकल छिन लिया है
'लाभ-शुभ' लिखकर जमाने का हृदय चूसा जिन्होंने
और कल बंगाल वाली लाश पर थूका जिन्होंने ।''[१६०]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' मूलतः प्रगतिवादी कवि हैं और प्रगतिवाद तथा वैश्विक प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । वे अंतरर्राष्ट्रीय ऐक्य, सद्भाव, प्यार और वैश्विक प्रेम के चितेरे कवि है । सुमन को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में पूर्ण विश्वास है और पूरी समष्टि में यह भावना फैल जाए इसके, समर्थक हैं । लेकिन यह पुण्यकार्य वे प्रगतिवादी विचारधारा एवं कार्यपद्धति के माध्यम से करना चाहते है उनके शब्द देखिए -

''स्नेह-सौहार्द्र की फुहारें मुक्त बरसें
सिद्ध 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की साधना हो
मॉरीशस मे मानवता फूले-फले सरसे ।''[१६१]

'सुमन'जी से किसी का दुःख देखा नहीं जाता है, वे सामान्य मनुष्य को भूखा, दुखी या परेशान देखकर खुद दुःखी होते है । वे मज़दुरो की पीड़ा नहीं देख सकते, उन्होंने सामान्य मनुष्य ऐसे मज़दूरो को अपनी कविता मैं स्थान देकर मनुष्यता की ज्योत प्रज्जवलित की है -

''मैं मजदूर का बेटा
मुझे काम दो
बिना मजूरी किए रहा नहीं जाता
तुम मुझे बिना काम के
रखना चाहते हो
भूखा हूँ जीना चाहता हूँ ।''[१६२]

'सुमन'जी वैश्विक प्रेम और विश्वशांति के पक्ष धर है । उनकी वैश्विक सामाजिक भावना देखिए, जिसमें वे तुलसी, गालिब, रहीम, रवीन्द्र जैसे प्रेम और वैश्विक शांति के समर्थक थे उसकी विरासत के एक भाग के रूप में अपनी पहचान देते हैं -

''हम प्रेम-नेम के दिवाने
हम विश्व-शांति के हरकारे
तुलसी-रहीम, गालिब-रवीन्द्र
के स्वर हमने ही गुंजारे ।''[१६३]

इस प्रकार 'सुमन' जी की कविताओं में मानव-प्रेम, विश्व मंगल और सामाजिक सौहार्द्र की भावना गहनता, दृढ़ता एवं प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुई है । वे आम आदमी को महत्व देते हुए वैश्विक प्रेम और वैश्विक समष्टिगत भावना का संदेश देते हैं । सचमुच शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक संत हृदयी कवि हैं ।

४.४ 'सुमन' काव्य के सामाजिक विचार-पक्ष की प्रासंगिकता :

साहित्य समाज का दर्पण तो है ही लेकिन साथ साथ समाज का दिशा निर्देशक भी है । वही साहित्य एवं साहित्यिक रचनाएँ कालजयी बन पायी है और अमर हो गई है जो दीर्घदृष्टि से सम्पन्न हैं । आज तक के हिन्दी साहित्य के इतिहास को अगर देखा जाए तो पता चलता है कि तुलसी, कबीर, मीरा, जायसी, सूर, प्रेमचन्द आदि की रचनाएँ कालजयी एवं अमर रचनाएँ है । क्योंकि उनकी रचनाओं में दीर्घदृष्टि थी । उनकी रचनाओं में प्रासंगिकता का गुण था जो सदियों तक मानव जीवन का मार्गदर्शन करता रहेगा । तुलसी, कबीर और उपरोक्त सभी के विचार और उनकी साहित्यिक कृतियों और उनमें व्यक्त दर्शन एवं विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने तब थे । अत: दीर्घदृष्टिपूर्ण रचनाएँ ही अमरत्व प्राप्त कर सकती है ।

हमारे शिवमंगल सिंह 'सुमन' भी एक दीर्घदृष्टा कवि थे । उनकी रचनाएँ आज भी प्रासंगिकता के गुण से सम्पन्न है । उनकी रचनाओं में व्यक्त सामाजिक विचार-पक्ष आज भी उतना ही प्रासंगिक हैं जितना उस समय था । 'सुमन' जी ने समाज का यथार्थ चित्रण किया है । आम आदमी शोषणचक्र में पूँजीवादी व्यवस्था में पिसा जाता है यह उस समय भी था और आज भी है, लेकिन आज परिवर्तित और लुभावने नवीन स्वरूप में है । आज बड़ी-बड़ी मल्टिनेशनल कम्पनियाँ मजदूर, किसान एवं दलितों का शोषण करके अपनी तिजौरियाँ भर रही है । यह सामाजिक व्यवस्था तब भी अन्याय एवं अनीतिपूर्ण थी और आज भी वैसी ही है । आज कम वेतन में अधिक काम लिया जाता है

और हवाला दिया जाता है प्रॉफेशनालिज्म का किसानों, मज़दूरों, मध्यवर्ग को अन्याय हो रहा है तो ऐसी अस्वीकारणीय व्यवस्था आज भी समाज में विद्यमान है । आज मुनाफ़ाखोरों के कारण महंगाई आसमान छू रही है जिससे गरीब एवं मध्यवर्ग का जीना दूभर हो गया है । आज का सामाजिक यथार्थ तब का भी सामाजिक यथार्थ था । आज भोगवाद, यंत्रवाद, फैशन दिखावे पूर्ण आधुनिकता के कारण सामाजिक व्यवस्था छिन्न भिन्न होती दिखाई दे रही है ।

उस समय सामाजिक सौहार्द्र नहीं था तो आज भी परिस्थिति बिगडी हुई है । पश्चिम बंगाल की मार्कसवादी-साम्यवादी सरकार टाटा कम्पनी का खिलौना बन वहाँ के किसानों की ज़मीने और अधिकार छीनने की कोशिश करती है, किसानो एवं मज़दूरो का खून बहाया जा रहा है । किसान आत्महत्या कर रहे है । समाज में सौहार्द का वातावरण नहीं है गोधराकाण्ड उसका साक्षी है । इस अशांतिपूर्ण वातावरण में मानवता मर चुकी है । 'सुमन' जी के समय में ऐसी गंभीर परिस्थितियाँ थी जिसका चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में किया है । अपने सामाजिक विचार पक्ष को अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है वे, सामाजिक विचार आज भी प्रासंगिक है क्योंकि आज वैसी ही सामाजिक स्थिति है जो तब थी, किन्तु आज उससे भी बद से बद्तर स्थिति है । इसलिए 'सुमन' जी के काव्यों में सामाजिक विचार-पक्ष की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता । अतः सुमन काव्य का सामाजिक विचार पक्ष प्रासंगिक एवं आज भी प्रस्तुत है जैसा उसके समय में था ऐसा हम निर्विवाद रूप में कह सकते हैं ।

४.५ निष्कर्ष :

समाज के विकास की जड़े सामाजिक सुव्यवस्था में ही सन्निहित हैं । समाज में सुव्यवस्था होगी तभी समाज सुखी, सम्पन्न, शांत एवं आनंदित होगा । साहित्य समाज के लिए है अतः साहित्य में समाज की भलाई के पक्ष में विधायक विचारधारा को ही प्रभावशाली रूप में स्वीकारा जाता है अतः साहित्य जीवन के लिए हैं, समाज के लिए है यह निर्विवाद है ।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक समाजवादी एवं सामाजिक विचारक, चिन्तक कवि एवं लेखक हैं । वे समाज से मुह मोडकर केवल नीरे कवि कर्म में पड़कर कविता लिखनेवालों में से नहीं हैं । इस लिए ही उन्होंने समाज को ध्यान में रखकर समाज केन्द्रित साहित्य सृजन किया । 'सुमन' जी की रचनाओं में सामाजिक चेतना प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुई है ।

'सुमन'जी वर्तमान सामाजिक विषमता के विरोधी है । ऐसी समाज व्यवस्था जिसमें अन्याय, अनीति, शोषण हो उसे स्वीकारा नहीं करते, पूँजीवाद के विरोधी हैं । उनकी कविताओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि वे वर्तमान अनीतिपूर्ण सामाजिक अव्यवस्था से दु:खी त्रस्त एवं खिन्न है । अतः ऐसी व्यवस्था की विषमता को वे अस्वीकार करते हैं । सामाजिक यथार्थ को उन्होंने प्रभावशाली ढंग से रखा है । उनके सामाजिक वास्तविक शब्द चित्रों से समसामयिकता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है ऐसा हम कह सकते है ।

'सुमन' जी की सामाजिक चेतना सचमुच ही समाज में चैतन्य, उत्साह एवं उमंग को भर देनेवाली सामाजिक चेतना है । 'सुमन' जी ने समाज के अस्तित्व के लिए अपने अनुभवों से तो सीखा ही है उसको नया करके समाज का मार्गदर्शन करके समाज को नसीहत दी हैं । उनके सामाजिक चैतन्य संबंधी विचार सामाजिक सुव्यवस्था के लिए अपनाने योग्य हैं ।

'सुमन' जी आम आदमी को महत्त्व देते हैं । वे मज़दूर किसान दीन दलित एवं मध्यवर्ग तथा शोषित एवं पीडित वर्ग के पक्षधर हैं । समाज में दु:ख दैन्य देख कर वे खुद दु:खी हो जाते हैं । इसलिए उनकी मानवतावादी दृष्टि प्रभावशाली रूप में उनकी कविताओं में प्रकाशित हुई है । उनके विचार सामाजिक सौहार्द्रपूर्ण विचार है । उनकी मानवता केवल व्यक्तिगत न रह कर समष्टिगत बनकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विशाल दृष्टि की ओर जाती हुई दिखाई देती हैं । निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'सुमन' काव्य का सामाजिक विचार -पक्ष उनकी रचनाओं में प्रभावशाली ढंग से चित्रित हुआ है और यह विचार अवश्य सामाजिक चैतन्य के लिए अपनाने योग्य हैं ।

संदर्भसूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१.	''समाजशास्त्र के मूल तत्व''	देवेन्द्रपाल सिंह तौमर	०१
२.	''समाजशास्त्र की मूल अवधारणा''	डॉ. ओ. पी. वर्मा	०१
३.	''भारतीय सामाजिक व्यवस्था''	वीरेन्द्रप्रकाश दीक्षित	१६
४.	''डॉ. शिवममंगलसिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	९७
५.	''डॉ. शिवममंगलसिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	९७-९८
६.	''समाज परिवर्तन की दिशाएँ''	डॉ. जनार्दन वाघमारे	१०
७.	''डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली अध्याय-३, भाग-४	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली-०२	२९८
८.	''काव्यशास्त्र''	भगीरथ मिश्र	२५
९.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह सुमन	१५
१०.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह सुमन	१९
११.	''मिटट्‌ी की ओर''	श्री रामधारीसिंह दिनकर	१०२
१२.	''आधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि''	प्रकाशचन्द्र गुप्त	२९
१३.	''आस्था और सौंदर्य''	डॉ. रामविलास शर्मा	३४
१४.	''इतिहास और आलोचना''	डॉ. रामविलास शर्मा	३८
१५.	''सुमनः मनुष्य और स्रष्टा''	डॉ. प्रभाकर श्रोतिय	१४
१६.	''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	९९
१७.	''डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली भाग-०४ अध्याय-२ ('साहित्यी और समाज का परस्पर संबंध)	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली-०२	२९८

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१८.	''आर्ट एण्ड सोसाइटी''	अदोल्फ़ो संकेज़ बाज़केज़	११२-११३
१९.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११
२०.	''हिल्लोल''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८३
२१.	''धर्मयुग'' अंक-२६, (''कितना चरितार्थ हुआ हमारा आजादी का सपना ?'')	जनवरी से १ फरवरी सने १९७६	०८
२२.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६
२३.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९
२४.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०४
२५.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०२
२६.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०४
२७.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०५
२८.	''सुमन समग्र''-०२ 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६७
२९.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्ठी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११६
३०.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्ठी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६१
३१.	''लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्धनारायण चौबे	१६३
३२.	''जीवनके गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९
३३.	''मिटट्ी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११
३४.	''पर आँखें नहीं भरी''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६९
३५.	''प्रलयसृजन''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	०८
३६.	''प्रलयसृजन''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८१
३७.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्ठी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६२
३८.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्ठी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८७

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
३९.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०६
४०.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०६
४१.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१३
४२.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१४
४३.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२२७
४४.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३५
४५.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३५
४६.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५०
४७.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०७
४८.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०७
४९.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०६
५०.	''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रविन्द्रनाथ मिश्र	१०५
५१.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२८
५२.	''सुमन समग्र''-०१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६३
५३.	''सुमन समग्र'' -०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४६
५४.	''सुमन समग्र'' - 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५५
५५.	''सुमन समग्र'' -०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८१
५६.	''सुमन समग्र''-२ 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७५
५७.	'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८०
५८.	''सुमन समग्र''-२ 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८१

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
५९.	''सुमन समग्र''-२ 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८४
६०.	''सुमन समग्र''-२ 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९४-२९५
६१.	''डॉ. शिवमंगलसिंह'' 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१०४
६२.	''डॉ. शिवमंगलसिंह'' 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१०५
६३.	''विश्वास बढ़ता ही गया''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५३
६४.	''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८
६५.	''सुमन समग्र''-०१ 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५५
६६.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८२
६७.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११७
६८.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११९
६९.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२८
७०.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२९
७१.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३३
७२.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३४-१३५
७३.	''सुमन समग्र''-०१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३९
७४.	''डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१०६
७५.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१४९-१५०
७६.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०८-२०९

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
७७.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६३
७८.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१०
७९.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१०
८०.	''सुमन समग्र''-१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१८
८१.	''सुमन समग्र''-१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५९
८२.	''सुमन समग्र''-१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८१
८३.	''सुमन समग्र''-१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९२-२९३
८४.	''सुमन समग्र''-२ 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६७
८५.	''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८
८६.	''डॉ. शिवमंगलसिंह'' 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१००
८७.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८७
८८.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३८
८९.	''सुमन समग्र''-२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११०
९०.	''सुमन समग्र''-२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१४०
९१.	''सुमन समग्र''-२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१५७
९२.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१५६
९३.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६४
९४.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६४-१६५
९५.	''सुमन समग्र''-०२ 'मिट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०६-२०७

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
९६.	''सुमन समग्र''-०२''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५९-२६०
९७.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६६
९८.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६७
९९.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८८
१००.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६८
१०१.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२७१
१०२.	''सुमन समग्र''-०२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२७१
१०३.	''सुमन समग्र''-०२ ''कटे अंगूठों की बन्दरवारें''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८१-२८२
१०४.	''सुमन समग्र''-०२ ''कटे अंगूठों की बन्दरवारें''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९१-२९२
१०५.	''सुमन समग्र''-०२ ''कटे अंगूठों की बन्दरवारें''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३०१
१०६.	''लिटरेचर एण्ड आर्ट''	मार्क्स - इन्गिल्स	८९-९२
१०७.	''सोवियत राइटर्स कांग्रेस''	सन्. १९३४ ई.	७१६
१०८.	''डॉ. शिवमंगलसिंह'' 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१०८
१०९.	''हिल्लोल''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८२
११०.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९५
१११.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१०
११२.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२११
११३.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२११
११४.	''विश्वास बढ़ता ही गया''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५२
११५.	''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३९

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
११६.	''सुमन समग्र''-१ ''हिल्लोल''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५९
११७.	''सुमन समग्र''-१''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८२
११८.	''सुमन समग्र''-१''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९८-९९
११९.	''सुमन समग्र''-१''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१०१
१२०.	''सुमन समग्र''-१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७०
१२१.	''सुमन समग्र''-१ ''विश्वास बढ़ता ही गया''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४८
१२२.	''सुमन समग्र''-१ ''विश्वास बढ़ता ही गया''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८४
१२३.	''सुमन समग्र''-१ ''पर आँखे नहीं भरी''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३१२
१२४.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५६
१२५.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५९
१२६.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	५९-६०
१२७.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६४
१२८.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६५
१२९.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६८
१३०.	''सुमन समग्र''-२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६९
१३१.	''सुमन समग्र''-२ ''कटे अंगूठो की बंदनवारें''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२८५
१३२.	''सुमन समग्र''-२ ''कटे अंगूठो की बंदनवारें''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३०४-३०५
१३३.	''सुमन समग्र''-२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५५-२५६

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१३४.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्ठी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१५२
१३५.	''सुमन समग्र''-१ ''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८३
१३६.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्धय-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	४१
१३७.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्धय-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	४२
१३८.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२०-१२१
१३९.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९७
१४०.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९९
१४१.	''सुमन समग्र''-२ ''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५७
१४२.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६८
१४३.	''डॉ. शिवमंगलसिंह'' 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	१०६
१४४.	''हिन्दी साहित्यकोष''	सं.डॉ. धीरेन्द्र वर्मा	११३
१४५.	''हिल्लोल''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११३
१४६.	''जीवन के गान''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६
१४७.	''प्रलयसृजन''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६३
१४८.	''विश्वास बढ़ता ही गया''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९९
१४९.	''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८४-१८५
१५०.	''वाणी की व्यथा''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८
१५१.	''श्री रामचरित मानस''	तुलसीदास गीता प्रेस, गोरखपुर सं.२१वाँ	३०
१५२.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६१-६२
१५३.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६६
१५४.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६८

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१५५.	''सुमन समग्र''-२ ''विन्ध्य-हिमालय''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०५
१५६.	''सुमन समग्र''-२ ''कटे अंगूठो की बंदनवारें''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९१-२९२
१५७.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२७५
१५८.	''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	११७-११८
१५९.	''हिल्लोल''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८३
१६०.	''विश्वास बढ़ता ही गया''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	०५
१६१.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८८
१६२.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६१
१६३.	''सुमन समग्र''-२ ''मीट्टी की बारात''	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०४

पंचम् अध्याय
''सुमन'' के काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष''

५.१ भूमिका

५.२ 'राष्ट्र' का अर्थ, स्वरूप एवं संकल्पना

५.२.१ अर्थ

५.२.२ स्वरूप एवं संकल्पना

५.३ राष्ट्रवाद का स्वरूप एवं संकल्पना

५.४ हिन्दी कविता में राष्ट्रवाद

५.५ 'सुमन' काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष

५.५.१ माँ भारती की प्रशस्ति और प्रेम

५.५.२ भारतीय संस्कृति और इतिहास का गौरव

५.५.३ राष्ट्रनायकों की प्रशस्ति, पूर्ण निष्ठा और सम्मान की भावना

५.५.४ राष्ट्र के प्रति आत्मसमर्पण और बलिदान की भावना

५.५.५ राष्ट्रीय क्रांतिकारी भावना एवं राष्ट्रद्रौही तत्वों का विरोध

५.५.६ राष्ट्रीय ऐक्य की भावना

५.५.७ प्रगतिवादी राष्ट्रीयता

५.६ 'सुमन' काव्य के 'राष्ट्रवादी विचार पक्ष की प्रासंगिकता

५.७ निष्कर्ष

★ संदर्भ सूचि

५.१ भूमिका

संसार का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी के प्रति आस्थावान, श्रद्धावान एवं निष्ठावान होता है । इसमें व्यक्ति आत्म बलिदान एवं समर्पण की भावना से संचालित होता है । व्यक्ति अपने परिवार माता-पिता, गुरू एवं विशिष्ट महान नेताओं के प्रति आस्थावान, निष्ठावान और समर्पण की भावना रखता है । प्राचीनकाल से लेकर आज तक के इतिहास को देखा जाए तो व्यक्ति अपनी मातृभूमि के प्रति पूर्ण निष्ठावान और आत्मबलिदान एवं समर्पण कीभ ावना से प्रेरित होता दिखाई देता है । यही आत्मसमर्पण एवं बलिदान की भावना ही उसे अपने अस्तित्व के प्रति जागृत रखती है, अपने अस्तित्व का भान कराती है, व्यक्ति में अस्मिता एवं चैतन्य का संचार करती है । ऐसी ही एक पवित्र भावना है राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयता को राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्र भक्ति या देशभक्ति के अलग-अलग नामों से पहचाना जाता है । इन सभी नामों में एक ही तत्व और एक ही भावना सन्निहित है और वह है अपनी मातृभूमि, अपने देश या राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पित एवं आत्म बलिदान की भावना । राष्ट्र के प्रति पवित्र प्रेम, निष्ठा एवं भक्ति ।

राष्ट्रवाद एक क्रांतिकारी भावना है । यह अपने राष्ट्र या मातृभूमि के प्रति भक्ति एवं निष्ठा से नतमस्तक होने की भावना है । कोई भी व्यक्ति अपने देश या मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम रखता है । यह बात अलग है कि राष्ट्रद्रोही एवं गद्दार व्यक्ति भी होते हैं, लेकिन अधिकतर मनुष्य अपनी मातृभूमि को उतना ही प्यार करते हैं जितना वे अपनी माता से प्यार करते हैं । इस लिए ही वाल्मिकीय रामायण में राम वनवास के समय लक्ष्मण के साथ लंका में

होते हैं तब लक्ष्मण से भावनाशील अवस्था में, आँखों में, भावाश्रु के साथ वे कहते हैं कि -

''अपि नमें रोचते स्वर्णमयीं लंका
जननि जन्मभूमिश्च सवर्गादपि गरियसी''

राष्ट्रवाद की भावना एक पवित्र आंतरिक भावना है । इसका संबंध हृदय-पक्ष से अधिक है । हमारे हृदयमंदिर में जब तक किसी को स्थान नहीं मिला तब तक हम उसको स्वीकार्य नहीं करते और जो अपने हृदय को जीत लें, उसे छू जाय उसके प्रति पूर्ण समर्पित हो जाते हैं । राष्ट्र भावना ऐसी ही भावना है, जो राष्ट्रवाद के रूप में भी पहचानी जाती है । राष्ट्रवाद का स्वरूप समयानुसार बदलता रहता है । प्राचीनकाल में अलग-अलग रजवाड़ों तक ही राष्ट्रीयता सीमित थी, फिर देश और खण्ड तक राष्ट्रीयता सीमित हो गई और आज राष्ट्रीयता वैश्विक एवं समष्टिगत स्वरूप एवं स्तर पर पहुँच गई है । आज हमारे ऋषि-मुनियों के वेदों की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली राष्ट्रीयता अधिक स्वीकार्य है । इस लिए ही राष्ट्रवाद के भी दो प्रकार बन जाते है । (१) संकुचित राष्ट्रवाद और (२) वैश्विक राष्ट्रवाद । पहले का राष्ट्रवाद संकुचित था क्योंकि उसमें केवल अपने भूमिखण्ड एवं मातृभूमि की प्रेमभावना थी और अन्यों को तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाता था । लेकिन अब वैश्विक राष्ट्रवाद की बात अधिक स्वीकार्य बन रही हैं, क्योंकि उसमें समग्र विश्व और मानव समाज एवं समग्र जीवसृष्टि के प्रति प्रेम भावना की बात की जाती है । जब ऐसा मानकर चला जाता है कि केवल अपना देश या राष्ट्र और उसके लोग ही अपने हैं और अन्य देशो के या राष्ट्रों के लोग पराये हैं तो उसे हम संकुचित राष्ट्रवाद कहेंगे और 'वसुधैव कुटुम्बकम्', की भावना के साथ सभी राष्ट्रों के

लोग एवं पूरी मनुष्य जाति एवं जीवसृष्टि एक ही परमात्म शक्ति की उपज है और हम सभी उसकी संताने हैं इस लिए हम सब आपस आपस में भिन्न भाषी, भिन्न, देशी एवं भिन्न धर्मी होने के बावजूद एक है; भाई-भाई हैं - मान कर चला जाता है तब यह वैश्विक राष्ट्रवाद बन जाता है ।

आज के हिंसा, धृणा एवं अव्यवस्था के युग में वैश्विक राष्ट्रवाद की भावना की परमावश्यकता है । साहित्य एक ऐसा माध्यम है कि जिसके द्वारा समाज का हित होता है, देश का हित होता है । साहित्य अनेक विचारधाराओ का वाहक बना है, अनेक विचारधाराओं का मार्गदर्शक एवं माध्यम बना है । अतः साहित्य में राष्ट्रवाद की भावना एवं विचारधारा भी अपनी गति एवं लय के साथ प्रस्तुत हुई है । प्राचीनकाल से लेकर आज तक अनेक साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की भावना को अपने साहित्य का मुख्य विषय बनाया है । संस्कृत, अंग्रेजी, अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ और हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की भावना प्रबल एवं प्रभावी रूप में प्रकाशित हुई है । इस अध्याय में हम ऐसे ही राष्ट्रवादी, राष्ट्रप्रेमी साहित्यकार एवं कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्यों में व्यक्त राष्ट्रवादी विचार-पक्ष की चर्चा करेंगे । 'सुमन' जी एक राष्ट्रीय कवि हैं, उनकी कविताओं मे राष्ट्रप्रेम प्रभावशाली ढंग से एवं गहराई से व्यक्त हुआ है । यहाँ हम उनकी कविताओं के राष्ट्रवादी विचार-पक्ष को देखने का प्रयत्न करेंगे ।

'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त राष्ट्रवादी विचार-पक्ष के दर्शन से पहले यह आवश्यक है कि हम राष्ट्र, राष्ट्रवाद की संकल्पना, अर्थ, स्वरूप एवं हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवादी भावना को जानें, क्योंकि इससे हमारा मार्ग एवं हमारी वैचारिक एवं समीक्षात्मक दृष्टि अधिक पैनी बनेगी और इसलिए हम उसको अधिक अच्छी तरह से न्याय दे सकेंगे । और वैसे भी किसी भी

भावना और विचारधारा का अध्ययन और समीक्षा तभी अधिक विश्वसनीय बन सकती है जब उसके संबंध में सर्वप्रथम हमें पूर्ण ज्ञान हो । अतः पहले हम राष्ट्र, राष्ट्रवाद बाद में हिन्दी साहित्य में व्यक्त राष्ट्रवादी विचारों को जानने के बाद 'सुमन' के काव्यों में व्यक्त राष्ट्रवादी विचार-पक्ष का अध्ययन करेंगे ।

५.२ 'राष्ट्र' का अर्थ, स्वरूप एवं संकल्पना

'सुमन' काव्य के राष्ट्रवादी विचार-पक्ष के संबंध में चर्चा से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्रवाद में समाहित 'राष्ट्र' का अर्थ और स्वरूप एवं उसकी संकल्पना क्या है ? यहाँ पर सर्वप्रथम हम 'राष्ट्र' के अर्थ को जानकर विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के माध्यम से उसके स्वरूप को जानेगे और उसके आधार पर संकल्पना का निर्धारण करेंगे ।

५.२.१ अर्थ

'राष्ट्र' शब्द को साधारणतया हम कोई भी देश के लिए प्रयुक्त करते हैं । 'राष्ट्र' शब्द की व्युत्पत्ति 'दिप्ति' अर्थ वाली 'राज्' धातु से हुई मानी जाती है जिसमें, औणादिक 'ष्ट्रन' प्रत्यय द्वारा जोड़ा गया है । श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्यजी 'वाचस्पत्यम्' ग्रंथ में 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ 'जनपद' करते हैं । इस अर्थ के, समर्थन के लिए ' प्रबोधचंद्रोदय' ग्रंथ के 'गोडं राष्ट्रमनुत्तमम्' वाक्य को उद्धृत किया गया है, जिसका अर्थ है, गोडों का राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ हैं । इसी प्रकार राजा राधाकान्त देव द्वारा संपादित ग्रंथ 'शब्दकल्पद्रुम' में 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ 'विषय'

किया गया है । इस अर्थ की पुष्टि में 'मनुस्मृति' का यह श्लोक उद्धृत किया जाता है -

''अशासंस्तस्करान् यस्तृ बलिं गृहणाति पार्थिवः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्र स्वर्गाच्य परिहीयते ॥''[१]

अर्थात् '' जो राजा तस्करों को नियंत्रित नहीं करता है और प्रजा से बलि (= राजकर) प्राप्त करता है, उसका 'राष्ट्र' ठीक उसी प्रकार 'क्षुभित' हो जाया करता है, जिस प्रकार कि वह स्वयं भी स्वर्ग से वंचित हो जाता है ।''

यहाँ ग्रंथ-लेखक ने 'विषय' शब्द का अर्थ 'जनपद' ही लिखा है । यह अर्थ 'वाचस्पत्यम्' कोश के अर्थ से भी पुरी तरह मेल खाता हुआ दिखाई पड़ता है ।

डॉ. एस. मोनियर विलियम्स द्वारा संपादित कोश 'इंग्लिश-संस्कृत डिक्शनरी' में 'नेशन' शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में ''जातिः, लोकः, जनपदः, प्रजाः, वर्णः, जनताः, देशः, विषयः, राष्ट्रं, देशाजनः, देवलोकः, देशवासिनः, राष्ट्रवासिनः, विशेष, देश-जनता''[२] किया गया है ।

प्रो. वामन, शिवराम आप्टे द्वारा संकलित कोश 'इंग्लिश-संस्कृत डिक्शनरी' में 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ ''किंडम रेल्म, एम्पायर, डिस्ट्रिक्ट टैरिटरी, कंट्री, रीजन, पीपल, नेशन, सब्जैक्ट्स[३] किया गया है ।

'राष्ट्र' शब्द एक प्राचीन शब्द है जिसकी चर्चा प्राचीन साहित्य में प्राप्त होती है । यजुर्वेद में राष्ट्र 'शब्द अनेक बार आया है, और

''वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं में देहि''[४] अर्थात् - 'वर्षण - सिंचन करने वाले के संबंध की तू तरंग है, 'राष्ट्र' यानी जनपद, उसका तू स्वभावतः दाता है, हम तुझसे कहते हैं कि तू हमें राष्ट्र प्रदान कर') इसी प्रकार ''अर्थोत्स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत''[५] (अर्थात् - 'हे प्रयोजनयुक्त तरंगों, तुम 'राष्ट्रदा' अर्थात् राष्ट्र की दाता हो, अतः हम तुमसे प्रार्थना करते हैं कि तुम हमें राष्ट्र प्रदान करो' कहकर राष्ट-प्राप्ति की उत्कट लालसा प्रदर्शित की गई है । अथर्ववेद में राष्ट्र की समृद्धि के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं जैसे -

> ''उपैतु मां देव सूखः कीर्तिश्चमृणिना सह ।
> प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु में ॥''[६]

इस प्रकार 'राष्ट्र' शब्द कोई नया नहीं है । प्राचीन समय से यह शब्द वैदिक वाडमय मे प्रचलित है ।

वैदिक साहित्य में हमें 'राष्ट्र' की एक विशिष्ट अवधारणा या परिकल्पना देखने को मिलती है । ऋषि स्वयं द्वारा किये जाने वाले यज्ञों विशेषतः राष्ट्र-प्राप्ति यज्ञों की संज्ञा से अभिहित हो सकने वाले यज्ञों में 'राष्ट्र' की इसी उपलब्धि-हेतु विविध देवताओं को आहुतियाँ देते हुए उनका भाँति-भाँति से आह्वान किया करते थे । जब वे अपने 'राष्ट्र-नामक' (राजा, शासक) के मस्तक पर एक 'तिलक' करते थे, उस समय भी उनकी हार्दिक कामना एवं स्तुति में निजी 'राष्ट्र-लाभ' का ही भाव निहित रहा करता है । डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने इन महान ऋषियों के विषय में कहा है - ''वे राजाओं को उपदेश देते थे कि वे

उपलब्ध हुए अपने राष्ट्र की सर्वात्मना सुरक्षा करें, सभी प्रजा-जनो का पालन करें, सबको समान लाभ प्रदान करें, तेजस्वी बने और ऐसा आचरण करें कि विभिन्न प्रकार की उनकी प्रजाएँ उनकी हार्दिक प्रशंसा करें।"[७] ऋषियों के इस कथन में समाजवादी व्यवस्था के आदर्श के अंकुर देखे जा सकते हैं। "राजा अपनी प्रजा की श्रद्धा के पात्र भी तभी हो सकते हैं जबकि वे दृढ़ता और स्थिरता अपने राष्ट्र को प्रदान करने में पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हों, अन्यथा नहीं।"[८] एक अन्य संदर्भ देखिए - "जिस प्रकार हम अपने भुजा - बल से अपने शरीर की रक्षा करने का काम लिया करते हैं, इसी प्रकार वे राजा अपने राष्ट्र रूपी शरीर की रक्षा-हेतु अपने तन के भुजबल को बनाऐ रखते थे।[९]

डॉ. हरिनारायण दीक्षित का मत है कि - "तत्कालिन ऋषि 'यज्ञ' जैसे परम धार्मिक कार्यो में भी अपने राष्ट्र की समृद्धि के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते थे कि उनके राष्ट्र में ब्राह्मण ज्ञानसंपन्न हो, राष्ट्ररक्षक क्षत्रिय, शूरवीर-शस्त्रयुक्त-कलाकुशल, शत्रुनाशक तथा महारथी हो, स्त्रियाँ सर्वगुणसम्पन्न हो, रथी योद्धाओं में विजय प्राप्त करने की इच्छा बलवती हो, युवक निर्भीक एवं सुशील हो, मेघ आवश्यकतानुसार वृष्टि करें।"[१०]

यजुर्वेद में लिखित तत्कालीन ऋषियों की प्रार्थना के शब्द देखिए जिसमें राष्ट्र की औषधियाँ फले-फूलें, अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती रहे और प्राप्त वस्तुएँ सुरक्षित बनी रहे ऐसी प्रार्थना और सद्‌भावना किया करते थे -

''ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमों नः कल्पताम ॥''[११]

जब ऋषि-मुनि नववधु और वर को आशीर्वाद देते थे, तब उन्हें अपनी समृद्धि से भी पहले अपने राष्ट्र की समृद्धि करने का भी सदुपदेश दिया करते थे, जैसे -

''अभिवर्धताम् पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रच्या सहस्रवचसेमौ स्तामनु पक्षितौ ॥''[१२]

'बृहत् हिन्दी कोश' में 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ 'देश', 'राज्य' और 'जाति' किया गया है ।[१३] आचार्य रामचन्द्र वर्मा द्वारा संपादित कोशग्रंथ 'मानक हिन्दी कोश' में 'राष्ट्र' शब्द के ये अर्थ हैं - ''किसी देश राज्य या किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहनेवाले लोग, जिनकी एक भाषा, एक-से रीति-रिवाज तथा एक-सी विचारधारा होती है तथा किसी एक शासन में रहने वाले सब लोगोकं का समूह है ।''[१४]

इस प्रकार 'राष्ट्र' शब्द जन, भूमि, देश, राज्य, प्रजा, जाति आदि विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । हमे भारतीय और पाश्चात्य दोनों मतों को इस संबंध में देखना चाहिए । इन भारतीय मतो और पाश्चात्य मतों में 'राष्ट्र' शब्द के अर्थ के साथ उसका स्वरूप भी स्पष्ट ही जाएगा ।

सर्वप्रथम हम 'राष्ट्र' शब्द के भारतीय मत के संबंध में चर्चा करेंगे । विभिन्न भारतीय मत इस प्रकार हैं -

श्री पुखराज जैन के मतानुसार 'राष्ट्र' जनसमुह में विद्यमान एकता की उस विशेष भावना का नाम है, जो इस जनसमुदाय को साथ

रहने और किसी भी बाह्य नियंत्रण का प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित करती है ।"[१५]

डॉ. जी.डी. तिवारी के मतानुसार – "एक निश्चित भूखण्ड में निवास तथा वंशगत एकता ही राष्ट्र के निर्माणकारी तत्त्व नहीं हैं । इनके साथ-साथ भाषा, धर्म, संस्कृति, इतिहास, साहित्य आदि की एकता का होना भी किसी जनसमूह के एक 'राष्ट्र' के रूप में संगठित होने की भावना को प्रदर्शित करता है ।"[१६]

'नालंदा' शब्दकोश के अनुसार 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ है – "वह लोक समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो ।"[१७]

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'राष्ट्र' का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है – 'राष्ट्र का सम्मिलित अर्थ पृथ्वी उस पर रहनेवाली जनता और उस जनता की संस्कृति है ।"[१८]

राष्ट्र के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डॉ. सुधीन्द्र लिखते हैं कि – "भूमि, भूमिवासी जन और जन-संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है । भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता जन अर्थात् जनगण की राजनीतिक एकता जनसंस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता – तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है । राष्ट्र में भौगोलिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ईकाईयाँ पुँजीभूत है ।"[१९] डॉ. सुधीन्द्र आगे लिखते है कि – "भूमि उसका (राष्ट्र का) कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस है ।"[२०]

डॉ. विनयमोहन शर्मा के अनुसार 'राष्ट्र' जाति, धर्म एवं भाषा की एकता का नाम नहीं है, वह भावना की एकता का नाम है ।''[२१]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी के शब्दों में ''राष्ट्र केवल सीमाओं और जनसंख्या के समुच्चय का नाम नहीं है, उसके साथ परिस्थितियों के एक विशिष्ट आपात और एक विशिष्ट इतिहास का भी योग होता है । राष्ट्र एक व्यक्ति के सदृश ही हैं ।''[२२] प्रसिद्ध विचारक श्री मा. स. गोलवलकर के मतानुसार - ''जो भाव 'राष्ट्र' शब्द के अंतर्गत है वह एक संपूर्ण में अविच्छिन्न रूप से घुले-मिले पांच विशिष्ट अंशो का योग है । प्रसिद्ध पाँच ईकाईयाँ-भोगोलिक (देश), जातीय (जाति), धार्मिक (धर्म), सांस्कृतिक (संस्कृति) और भाषात्मक (भाषा) है ।''[२३] 'राष्ट्र' का अर्थ एवं स्वरूप है ।

अब हम 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ पाश्चात्य मतों के अनुसार देखेंगे । राजनीतिशास्त्र के अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने 'राष्ट्र' की विविध परिभाषाएँ की हैं । अंग्रेजी भाषा के आक्सफर्ड शब्दकोश के अनुसार ''एक पूर्वज की संतान जिसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ एक हों, जो एक विशेष भू-भाग में निवास करती हो तथा जो सुशासन द्वारा संचालित होती हो, राष्ट्र के अंतर्गत आती है ।''[२४] प्रॉ. बर्गेस ने राष्ट्र के जातीय आधार पर बल देते हुए उसकी परिभाषा इन शब्दों में की है -''राष्ट्र जातीय एकता के सूत्र में बंधी हुई वह जनता है जो किसी अखंड भौगोलिक प्रदेश पर निवास करती है ।''[२५] बर्गेस की इस मान्यता का खंडन करते हुए होलकोम्बे तथा हेंकिन्स आदि लेखकों ने कहा है कि ''न तो राष्ट्र केवल एक जातीय समूह माना जाता

है, न राष्ट्र के लिए जातीय एकता अनिवार्य तत्त्व है । जर्मन विद्वान ब्लंटश्ली के शब्दो में - राष्ट्र, राज्यसूत्रों में बंधनों की एकता से निरपेक्ष, विभिन्न व्यवसायों एवं सामाजिक स्तर के मनुष्यों का समुदाय होता है, जो परंपरा प्राप्त संस्कारों एवं भावनाओं वाले एक समाज में रहता है, जिसका प्रत्येक सदस्य भाषा तथा आचार के आधार पर अपने समाज के अन्य सदस्यों से अपनी एकता एवं विदेशियों से अपनी पृथक्ता का अनुभव करता है ।''[२६]

ए.ई. जिमर्न ने लिखा है कि - ''राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह है जो घनिष्ठता अभिन्नता और प्रतिष्ठा की दृष्टि से संगठित है और एक मातुभूमि से संबंधित है ।''[२७] बाइस ने लिखा है कि - ''राष्ट्र वह राष्ट्रीयता है जिसने अपने आपको स्वतंत्र अथवा स्वतंत्र होने की इच्छा रखनेवाली राजनीतिक संस्था के रूप में संगठित कर लिया हो ।''[२८] तो रूपर्ट इमर्सन ने राष्ट्र का प्रधान आधार संस्कृति को माना है । उनके मतानुसार - ''परंपरागत आदर्शो तथा भावी लक्ष्य की एकता से युक्त जनसमूह ही राष्ट्र है ।''[२९] एस के स्टालिन 'राष्ट्र' की परिभाषा इन शब्दों में देते है - ''राष्ट्र यह जनसमुदाय है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित और स्थायी होने के साथ-साथ सर्वसामान्य, भाषा, भू-भाग, आर्थिक जीवन और संस्कृति में प्ररिलक्षित होनेवाली विशेष मनोरचना से युक्त हो ।''[३०]

५.२.२ स्वरूप एवं संकल्पना

उपरोक्त परिभाषाओं एवं अर्थो से राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित होता है । राष्ट्र का स्वरूप 'स्व' से प्रारम्भ होता है । 'स्व' राष्ट्र का

मूल बिन्दु है और व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र आदि 'स्व' के विस्तार का परिणाम है । 'राष्ट्र में ही 'स्व' परिवार और समाज आदि सब समाविष्ट हो जाते हैं । अत: 'स्व' व्यष्टि से समष्टि तक और 'मैं' से 'हम' तक विस्तारित हो जाता है और राष्ट्र में समाहित हो जाता है । राष्ट्र का स्वरूप केवल भू-गोल अर्थात् निर्जीव पहाड़ों पत्थरों ही नहीं अपितु उसमे 'स्व' की विस्तृत मानसिकता का संगठित स्वरूप भी समाविष्ट रहता है । यह मानसिकता किसी भू-भाग में समूह स्वरूप में बसे, जन-जन की मनोभूमि की होती है, जिसका केन्द्रबिन्दु 'राष्ट्र' होता है । इस सन्दर्भ में डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य का यह कहना उचित है कि ''किसी विशिष्ट भू-भाग के प्रति अविचल, मानसिक निष्ठा के उदय से ही राष्ट्र का उदय होता है ।''[३१] तो रा. प्र. कानिटकर जी लिखते हैं कि ''चारित्र्य, कतृत्त्व तथा राष्ट्राभिमान इस गुणत्रयी पर राष्ट्र का निर्माण निर्भर करता है ।''[३२]

अथर्ववेद के 'पृथिवी' सूक्त में मातृभूमि के सन्दर्भ में जो भी कुछ कहा गया है वह राष्ट्र के लिए ही कहा गया है । भूमि को माता कहा गया है जिससे राष्ट्र के लिए भूमि की आवश्यकता एवं महत्त्व स्पष्ट होता है । परन्तु राष्ट्र केवल भूमि ही नहीं है । ''भूमि और उस पर बसनेवाले जन अर्थात् भूमिपुत्रों के सहयोग से 'राष्ट्र' बनता है ।''[३३] भूमि, उसमें बसने वाले लोग, अर्थात जनसमुदाय और इसके साथ-साथ उसकी संस्कृति से राष्ट्र का स्वरूप बनता है । अत: भूमि, जन और संस्कृति से राष्ट्र का सही स्वरूप बनता है । इस लिए संस्कृति भी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है । डॉ. शिवकुमार मिश्र का यह कथन देखिए

जिसमे राष्ट्र के स्वरूप के बारे में प्रकाश डाला गया है - "भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जन-गण की राजनैतिक एकता और जन-संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता इन तीनों के समुच्चय का नाम 'राष्ट्र' है ।"[३४] एक ओर देखिए - "भूमि राष्ट्र का शरीर है जन उसको प्राण है और जनसंस्कृति राष्ट्र का मन है । इन तीनों के सुन्दर सम्मिलन से और उन्नति से राष्ट्र की आत्मा का निर्माण होता है ।"[३५] इन तीनों के सम्मिलन का ही नाम है सच्चा, सम्पूर्ण तथा जीवन्त 'राष्ट्र' ।

राष्ट्र के विभिन्न घटक जैसे भूमि, जनता, संस्कृति, धर्म, जाति, भाषा इत्यादि का राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है । परन्तु इन तत्त्वों का केवल समुच्चय राष्ट्र नहीं होता उनका सम्मिलत समन्वित स्वरूप राष्ट्र की छवि को बनाता है, सँवारता है । इन घटक तत्त्वों में आपसी मेल तथा परस्पर सहयोग चाहिए राष्ट्र का सम्बन्ध ऐक्य भावना से है । "जहाँ किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहनेवाले ऐसे लोग जिसकी भाषा, रीति-रिवाज, विचारधारा एक-सी हो ।"[३६] यहाँ सही अर्थ में राष्ट्र का स्वरूप उभरता है । सिर्फ कुछ लोगों के एकत्र होने और उनमें राजनैतिक एकता होने से तथा केवल भू-गोल या प्रदेश से राष्ट्र नहीं बनता ।" इतिहास और भू-गोल, पराक्रम और प्रदेश दोनों के समन्वय से राष्ट्र-निर्माण होता है ।"[३७] जनसमुदाय का एक प्रदेश विशेष में रहना, एक राजा विशेष की सत्ता स्वीकार करना, उनमें राज्य संस्था तथा सुव्यवस्था का होना सुव्यवस्थित अर्थव्यवस्था का होना, स्वरक्षा के लिए 'सैन्यबल' और अन्य राज्यों से

सुसम्बन्ध स्थापित होना आदि तत्त्वो की राष्ट्र निर्माण के लिए बहुत आवश्यकता है ।

पाश्चात्य विचार-परम्परा राज्यसंस्था और अर्थ-व्यवस्था को राष्ट्र का आदि तत्त्व मानती है । उसको सहयोगिता और सामाजिक उत्कर्ष के ध्येय के रूप में स्वीकारा नहीं गया है । परन्तु भारतीय विचार परम्परा के अनुसार सच्चा राष्ट्र तो अध्यात्म की पीठ पर प्रस्थापित होता है । अतः राष्ट्र के निर्माण में अर्थव्यवस्था और राज्य संस्था की अपेक्षा अध्यात्म तत्त्व और उस पर आधारित समाजोत्कर्ष और सहयोगिता का अत्यधिक महत्त्व है ।

१९वीं शताब्दी के बाद 'राष्ट्र' की संकल्पना नए अर्थ में सामने आई । व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसकी सुरक्षा के लिए राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव को जाने लगी । जिस प्रकार हर आदमी को उचित उद्देश्य प्राप्ति का अवसर मिलना चाहिए उसी तरह समाज-समूह को भी यह अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, इन्हीं विचारों के साथ नये ढंग से राष्ट्र की संकल्पना सामने आई । देश अर्थात् स्वदेश की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्रता या सार्वभौमत्व माना जाने लगा । क्योंकि स्वतंत्रता ही राष्ट्र के ऐहिक वैभव की जीवनी शक्ति है । अतः वह राष्ट्र का महत्वपूर्ण तत्त्व है । गांधीजी का भी राष्ट्र से अभिप्राय स्वतंत्र देश ही था । स्वातंत्र्य वीर वि.दा. सावरकर ने भी मानव्य की अत्युच्च पूर्णता प्राप्ति का व्यक्ति से अधिक सबल हथियार के रूप में राष्ट्र संकल्पना को ग्रहण किया है । माखनलाल चतुर्वेदी जी

को मत है कि -"हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त के भू-भाग तथा हिमालय की सभ्यता से प्रसार-स्थल तक राष्ट्र है "[३८] यहाँ चतुर्वेदी जी भारत की स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण मानते हैं ।

विद्यानाथ गुप्त राष्ट्र निर्माण में जनसमुदाय की एकानुभूति को महत्वपूर्ण मानते हुए लिखते है कि - "राष्ट्र की पदवी उस राज्य के निवासियों में परस्पर एक होने की भावना न पाई जाए ।"[३९] इस प्रकार राष्ट्र के निर्माण में भूमि, उस भूमि में निरन्तर निवास करती आ रही जनता, उसकी संस्कृति-सभ्यता, धर्म, भाषा, जाति, परम्पराएँ इतिहास, प्रभुसम्पन्नता तथा सार्वभौव सत्ता, अर्थव्यवस्था इत्यादि तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान है । भूमि और जन के बीच बिखरे इन सभी तत्वों में समानता अथवा संगठन को और भी महत्वपूर्ण माना गया है । इन सबमें 'एकात्मभाव आवश्यक माना गया है । परन्तु सभी जगह मोटे तौर पर समानता एवं ऐक्य भावना नहीं पायी जाती । यद्यपि - "मोटे तौर पर कोई भी जनसमूह जाति, धर्म, भाषा, राजनीतिक निष्ठा, मातृभूमि आदि कतिपय तत्वों के आधार पर अपने आप को राष्ट्र मान सकता है ।"[४०]

तथापि किसी निश्चित भू-भाग में बसे जनसमुदाय के अन्तर्गत वंश, जाति, धर्मगत समानता अथवा समान भाषा का प्राप्त होना सर्वत्र सम्भव नहीं है । ऐसे राष्ट्र की कल्पना जिसमें इन सभी तत्त्वों का पूर्ण रूपेण समावेश हो, एक पुराणकथा ही मानी जा सकती है । विविधता में एकता भिन्नता में सम्पन्नता देश के लिए होनी चाहिए ।

चतुर्वेदी जी राज्य के निवासियों के - ''उस वचन अथवा कृति को राष्ट्र मानते है जो उनके जीवन से निकली है उन्मेष बनकर आती है और इतिहास बनकर ठहर जाती है ।''[४१]

इस प्रकार आधुनिक सन्दर्भों में 'राष्ट्र' एक व्यापक बृहत और चेतनाशील संकल्पना है जिसमें निश्चित भूमि, निश्चित जनसंख्या, संस्कृति, सभ्यता, सार्वभौमत्व, इतिहास-परम्पराएँ, धर्म, दर्शन, अध्यात्म और साहित्य इत्यादि में समानता अथवा समन्वय विविधता में एकता की भावना आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । यहाँ आकर राष्ट्र, पहाड़, पत्थर, पेड-पौधों से संयुक्त भूमि और उसकी सीमा रेखाओं के अंदर खींचा गया मानचित्र नहीं रह जाए, वह एक शक्ति, बन जाती है, चेतना संयुक्त भावना बन जाती है जो मानवीय भावनाओं से सम्बद्ध होने के कारण परिभाषा से परे हो जाती है ।

५.३ राष्ट्रवाद का स्वरूप एवं संकल्पना

'नेशनलिज़्म' का हिन्दी पर्याय 'राष्ट्रवाद' किया जाता है । यह कहा जाता है कि राष्ट्रीयता के विचार की जड़े इतिहास में निहित हैं, परंतु वर्तमान राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद का जन्म १७वीं और १८वीं शताब्दियों में हुआ था और २०वीं शताब्दी की घटनाओं ने राष्ट्रवाद की भावना को गति प्रदान की । विश्व में राष्ट्रवाद सबसे शक्तिशाली भावना है । एशिया एवं आफ्रिका में परिवर्तन की सबसे बड़ी ताकत है । इस भावना से संस्थानवाद एवं प्राचीन साम्राज्यवाद का सफाया हो गया था ।

फ्रांस की राज्यक्रांति राष्ट्रवाद के विकास में अत्यन्त प्रभावक बल रही, किन्तु वह राष्ट्रवाद की जन्मतिथि नहीं हैं । अन्य ऐतिहासिक आंदोलनों की भाँति इसके भी मूल इतिहास में निहित है । १९वीं शताब्दी में लोगों की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जागृति के कारण सांस्कृतिक राष्ट्रवाद 'राष्ट्र राज्य' निर्मित करने की भावना में परिणत हो गया । जनसमूह की एक ही प्रभुसत्ता में ए कताबद्ध रहने की प्रक्रिया ही राष्ट्रवाद का विकास है । राष्ट्रवाद केन्द्रीय प्रभुसत्ता की आवश्यकता पर बल देती है ।

राष्ट्रवाद ने अपने रूप को संवारने के लिए प्राचीनतम एवं सबसे प्राथमिक मानव भावनाओं का उपयोग किया । मनुष्य की प्रकृतदत्त मनोवृत्ति है अपने जन्मस्थान के प्रति प्रेम अथवा अपने बचपन की भूमि, उसका वातावरण उसकी आबहवा एवं प्राकृतिक उपादानों के प्रति गहरी प्रेम भावना । मनुष्य अपनी भाषा के प्रति सहज ही आकर्षित होता है । अपनी मातृभाषा में ही वह अपने को पाता है । वह अपने रीति-रिवाजों एवं परंपराओ के प्रति विशेष अनुरागी होता है । वह अपने देश के चरित्रों पर गौरव करता है और उसे सबसे श्रेष्ठ मानता है । देशप्रेमी के लिए 'राष्ट्र-राज्य' एक महती देवी है, जिसकी पूजा की जाए, प्रेम किया जाए, सेवा की जाए - उसकी सेवा के लिए किए गए त्याग उदात्त एवं वीरतापूर्ण होते है राष्ट्र-माता हमारे जीवन-देश के नाजुक क्षणों में हमें उत्साह प्रदान करती है, अगर हम भ्रमित हो जाते हैं तो वह हमें ऊपर उठाती है, और अगर हम विजयी होते हैं तो वह हमसे गले मिलती है ।

'राष्ट्रवाद' का सामान्य अर्थ : राष्ट्रीय स्वाभिमान, शक्ति, प्रतिष्ठा से लिया जाता है । राष्ट्रवाद अनेकों तत्त्वों का नाम है । वह राष्ट्रीयता की भावना

को संगठित रूप से अभिव्यक्त करने का एक भावात्मक माध्यम है । वह एक मनोवैज्ञानिक भावना है, जो जाति या समुदाय के लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना सिखलाती है एवं देश पर जब बाह्य विदेशी आक्रमण होता है तो इसके विरूद्ध अधिकारों एवं स्वाधीनता को सुरक्षित रखने का आह्वान करती है । राष्ट्रवाद वह शक्ति है जो राष्ट्रीयता को राष्ट्र के रूप में संगठित होने को प्रेरित करती है । राजनीतिक आकांक्षाओं से विकसित वे प्रेरित करती है । राजनैतिक आकांक्षाओं से विकसित होने पर भी राष्ट्रवाद केवल कोरी राजनीतिक वस्तु नहीं है, वह एक राष्ट्रीय समुदाय की पूजा-भावना है ।

राष्ट्रवाद उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का प्रतिपादन करता है जिसके माध्यम से विभिन्न राष्ट्रीताएँ सूत्र में फूलों की तरह जुड़ जाती है और अंततः राजनीतिक एकता का रूप धारण कर लेती है । इस भावना से प्रेरित होकर सशक्त राष्ट्रीयताएँ संसार में अपना विशिष्ट स्थान बना लेती है । "यह एक भावात्मक राजनैतिक मान्यता, जो सीधे शक्ति-संघर्ष से संबंध रखती है, राज्यों की व्यष्टिता को मानती है, शासन और कानून के अंतर को स्वीकार करती है और सामान्य आदर्शों तथा विश्वासों के आधार पर एक समूह को दूसरे समूह से पृथक करती है ।"[४२]

राष्ट्रवाद मनुष्य की प्राकृतिक प्रवृतियों में से एक नहीं है, बल्कि कई प्रवृत्तियों का परिणाम है । मनुष्य अपने जैसे अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर रहना चाहता है । वह आत्मरक्षा के लिए सदैव उत्कंठित एवं क्रियाशील रहता है । इसके हेतु कभी-कभार वह दूसरों से लड़ाई भी मोल लेता है । ये तमाम प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रवाद के अन्तर्गत समाविष्ठ हो जाती है । अतएव संक्षेप में – "जहाँ राष्ट्रवाद मनुष्य के लिए स्वतः प्रेरित नहीं है, वह आधुनिक समाज की भावात्मक और प्रेरणात्मक प्रवृत्तियों से पैदा होता है और इस रूप में अक्सर मनुष्य की बुद्धि से नहीं, प्रत्युत्त उसकी भावना से सम्बन्ध रखता है ।"[४३]

१९वीं शती मे राष्ट्रवाद एक प्रगतिशील शक्ति के रूप में विकसित हुआ था और उसके बल पर राष्ट्रीयताएँ एकत्रित होकर विदेशी शासन के जुते को उतार फेंकती थी । किन्तु २० वीं शती में यूरोप में इसका इतिहास अधिक गौरव पूर्ण नहीं रहा । राष्ट्रवाद के नाम पर लोगों को गुमराह किया गया । दूसरे देशों की स्वतंत्रता को अपहृत किया गया, लाखों व्यक्तियों की जानें गयी और करोड़ों रूपयों की बरबादी की गयी । आज का राष्ट्रवाद विभिन्न राष्ट्रों में घृणा का विष फैलाता है, आक्रमक प्रवृत्तियों को उकसाता है और इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अशांति के बीज बोता है । प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात जर्मनी, जापान, इटली में उग्र राष्ट्रवाद का जन्म हुआ । इन देशों के निवासियों में यह भावना भरी गयी कि वे संसार की श्रेष्ठत्तम जातियाँ हैं, उनके राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र हैं तथा वे संसार पर शासन करने हेतु अवतरित हुए हैं । इसी उग्र राष्ट्रीयता का ही परिणाम द्वितीय महायुद्ध था जिसमें असंख्य मनुष्यों एवं मानव-मूल्यों की आहुति दी गयी । सांस्कृतिक क्षेत्र में राष्ट्रीयता एक प्रगतिशील शक्ति के रूप में मानव-जीवन का संस्कार कर सकती है, परन्तु यही राष्ट्रीयता आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में फूट डालती है । जो राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न करते हैं, वे अपना अगला कदम साम्राज्यवाद और युद्ध की ओर बढ़ाते है ।ऐसी राष्ट्रीयता विशुद्ध रूप से मूढ़ कट्टरपन है, जो मनुष्य को अंधा बना देती है । मानवतावादी, अंतराष्ट्रीयतावादी एवं विश्वबंधुत्व में विश्वास

रखनेवाले प्रायः सभी विचारक राष्ट्रवाद को अपने मार्ग का रोड़ा मानते हैं । राष्ट्रवाद अपने उग्र रूप में राष्ट्र को ही समाप्त कर देता है ।

किन्तु शिष्ट एव संयमित राष्ट्रवाद मानवजाति के लिए वरदान है । वह एक देश के लोगों में उनकी संस्कृति, धर्म, सभ्यता, साहित्य, कला आदि के प्रति गर्व की भावना जगाता है । उनमें आत्म-सम्मान के भावों को जागृत करता है । अतीत की गौरवगाथाएँ भविष्य-निर्माण की प्रेरणाएँ बन जाती है । राष्ट्रवाद के अभाव में देश के निवासियों में हीन भावना आ जाती है और इससे देश प्रगति नहीं कर सकता । वह अपनी स्वतंत्रता भी अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रख सकता ।

राष्ट्रवाद का आदर्श होना चाहिए -'जियो और जीने दो ।' ऐसी राष्ट्रीयता में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति नहीं होती । वह कमज़ोर पिछडे-देशों को दबाने की प्रेरणा नहीं देती । ऐसी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के हित में होती है और उसका उद्देश्य विश्वशांति और विश्वकल्याण का होता है । जो राष्ट्रवाद मानवीय समूहों में घृणा, अविश्वास एवं विद्वेष की भावना जगाती है । जिसका लक्ष्य साम्राज्यवाद और युद्ध है, उससे हमें बचना चाहिए । राष्ट्रवाद का लक्ष्य विशुद्ध देशभक्ति का विकास होना चाहिए । आदर्श-राष्ट्रवाद राष्ट्रीय हित एवं मानवीय हित में मानवीय हित को ही ऊँचा और श्रेष्ठ समझता है ।

भारत और विश्व के अन्य राष्ट्रो की रीति-नीति में मौलिक अंतर है । भारत की नीति 'जियो और जीने दो' की है, किन्तु अन्य राष्ट्रों की नीति है हम अवश्य जिये, दूसरे लोग भी जियें, किन्तु वे हमारे लिए जियें ।' वे अपना स्वार्थ साधने हेतु आक्रमणकारी रूख अपनाते हैं और तत्पश्चात साम्राज्यवादी भूख कमजोर

राष्ट्रों को निगल जाने की ताक में रहती है, जबकि हमारी राष्ट्रीयता अहिंसात्मक है । श्री गुलाबराय के शब्दों में – "हमारी राष्ट्रीयता रंग-भेद, जाति-भेद, धर्म और संप्रदाय-भेद पर आश्रित नहीं है । वह सत्य और अहिंसा एवं समता और स्वतंत्रता की एकध्येयता पर आश्रित है । हमारी राष्ट्रीयता हमारे पंचशील का मूल सूत्र है । हमारी राष्ट्रीयता अनेकता में एकता लाने के लिए है, दूसरों को अपने से पृथक करने के लिए नहीं । हमारी राष्ट्रीयता ने 'सर्वेभद्राणि पश्यंतु' का पाठ पढ़ाया है और वह विश्वमैत्री पर आधारित है ।"[४२]

रवि बाबू दुषित राष्ट्रवाद के विरोधी हैं । उनका राष्ट्रवाद उदात्त है । राष्ट्रीय स्वार्थयुक्त एवं धर्म का अतिक्रमण करनेवाला युरोपीय राष्ट्रवाद रवि बाबू के लिए त्याज्य एवं निंदनीय है । रवि बाबू का उदात्त एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद विश्वबन्धुत्व का पर्याय है । महात्मा गांधी जी के मन में राष्ट्रवाद की बडी व्यापक भावना थी । उनका अभिमत था कि भारत की उन्नति से विश्व लाभान्वित होगा किन्तु अन्य राष्ट्रों को दबाकर नहीं । उनके लिए तो देश सेवा और मानवसेवा पर्याय है । भारतीय जनता की सेवा द्वारा वे समस्त मानवजाति की सेवा करते थे । श्री विनोबा जी के अनुसार – "सर्वोदय से किसी प्रकार भी हल्की चीज हिन्दुस्तान को बर्दाश्त न होगी । अपना परिशुद्ध स्वरूप ही पहिचानना और "मै व्यापक आत्मा हूँ" इस तरह की अनुभूति नित्य निरंतर चित्त में रखना, यही एक चीज हिन्दुस्तान को चाहिए... मैं भारतीय हूँ यह अभिमान भी हिन्दुस्तान के कल्याण का नहीं होगा । देश पर प्रेम रखें लेकिन अभिमान छोड़ें और हम मानव हैं, यहीं महसूस करें ।"[४५]

'राष्ट्रवाद' की भावना के दो पक्ष है – एक विधायक एवं रचनात्मक पक्ष जो राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता के लिए उत्कंठित करता है तथा दूसरा है

निषेधक एवं विनाशात्मक, जो अन्य राष्ट्रों के प्रति विद्वेष (धृणा), पूर्वाग्रह, अविश्वास एवं सर्वश्रेष्ठता की भावनाएँ जगाता है । अगर राष्ट्रवाद में संकुचितता स्वार्थ एवं अलगाव की वृत्ति न हो और सर्व के अभ्युदय पर दृष्टि रखी जाये तो वह बुरा नहीं है । शुद्ध, धार्मिक एवं विश्वबंधुत्व पर आधारित राष्ट्रवाद मानवजाति के कल्याण के हेतु सर्वोत्कृष्ट परिकल्पना हो सकता है ।

डॉ. सुधीन्द्र भी कहते हैं कि - ''राष्ट्रवाद (नेशनलिज़्म) एक व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत (सामुहिक) चेतना है जिसकी दृष्टि 'समूह' या 'सर्व' के अभ्युदय और प्रगति पर है और वह प्रगीतशील तत्त्व भी है । 'देशभक्ति', 'राष्ट्रीयता' का सनातन स्वरूप है और 'राष्ट्रवाद' उसका प्रगतिशील (ऐतिहासिक) रूप है ।''[४६]

इस प्रकार स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि 'राष्ट्रवाद' (नेशनलिज्म) एक ऐसी निष्ठापूर्ण देशभक्ति की भावना है जो विधायक एवं समष्टिगत स्तर तक जाती है । राष्ट्रवाद के नाम पर जो विकृतियाँ उत्पन्न होती है उनको अगर उसमें से बाद कर दें तो शुद्ध आध्यात्मिक राष्ट्रवाद बचा रह जाता है । यही सत्य, अहिंसा, धर्म एवं सर्वोदय पर आधारित आध्यात्मिक राष्ट्रवाद है और उसे ही हम राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रभावना कहते हैं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद ही सच्चा राष्ट्रवाद है और यह मानव जाति का नया युगधर्म बन सकता है, जिस में मानवता एवं राष्ट्रीयता के बीच कोई विसंगति या विरोध नहीं होगा और इस तरह उपरोक्त चर्चा से राष्ट्रवाद का अर्थ, स्वरूप एवं संकल्पना निर्धारित हो सकती है ।

५.४ हिन्दी कविता में राष्ट्रवाद

हिन्दी साहित्य आदिकाल से लेकर आज तक अनेक धाराओं में प्रवाहित होकर विकसित हुआ है, उस में अनेक विचारधाराएँ विकसित है । हिन्दी कविता में राष्ट्रवाद की विचारधारा आदिकाल से आजतक अनेक स्वरूपो में बहती रही है । आदिकालिन रासोकाव्य इसका उत्कृष्ट उदाहरण है । कुछ विद्वान उस समय के काव्य को सांप्रदायिक मानकर उसको निम्नस्तर की राष्ट्रवादी विचारधारा के अंतर्गत रखते हैं, क्योंकि उसमें अखण्ड भारत की नहीं अपितु अपने आश्रयदाता राज्य व राजा की निष्ठापूर्ण भक्ति के दर्शन होते हैं । हमें एक बात को मानकर चलना होगा कि उस समय भारतीय उपखण्ड अनेक रजवाड़ों में विभक्त था अत: स्वाभाविक ही हैं कि अपने राज्य की ही सीमाओं तक उनकी राष्ट्रीयता सीमित होकर रह गई हो । उस समय की राष्ट्रवाद की भावना ने निश्चय ही आधुनिक विकसनशील राष्ट्रवाद की नींव रखी ऐसा हमें मानना होगा । आदि काल के रासो कवियों ने राष्ट्रवाद की क्रांतिकारी भावना को अपने काव्य में स्थान दिया जिसमें वीरता के भाव दृश्यमान होते हैं । इस संदर्भ में चंदबरदाई का नाम उल्लेखनीय है ।

भक्तिकाल में राष्ट्रवाद की भावना धर्म एवं अध्यात्ममूलक बनी रही । रहीम, कबीर, तुलसी, मीरा, जायसी आदि कवियों ने शांति, अहिंसा, धर्म सदाचरण, राष्ट्रभक्ति को लिया उन सबके लिए केवल भारत ही नहीं पूरा ब्रह्मांड और समष्टि तथा जड़-चेतना सभी प्रकार के तत्त्वों में एकत्व स्थापित करना था क्योंकि वे सभी में एक ही चैतन्य का वास है ऐसा मानते थे । उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा आज की आधुनिक राष्ट्रवादी विचारधारा की सहायक एवं पोषक हैं ऐसा हम मानते हैं ।

रीतिकाल में शृंगारिक भावों का बाहुल्य कविता में रहा फिर भी भूषण जैसे कवि भी हुए जो रीतिमुक्त तरीके से अपनी विचारधारा में मस्त थे । भूषण ने राष्ट्रवादी कविताओं का आलेखन किया है । उन्होंने छत्र साल और शिवाजी को राष्ट्र के उन्नायक, महानायक, तारणहार बताकर विदेश मुस्लिम आक्रांताओं से भारत को बचाने और रक्षित करने के लिए उनकी प्रतिष्ठा की । अगर शिवाजी नहीं होते तो पूरा भारत इस्लाम धर्मी हो जाता ऐसा कहकर वे शिवाजी को राष्ट्रनायक के रूप मे प्रस्थापित करते हैं - "शिवाजी न होत तो सुन्नत होत सबकी ।" इस प्रकार रीतिकाल की हिन्दी कविताओं में राष्ट्रवाद की भावना भी दिखाई देती है । भूषण की क्रांतिकारी राष्ट्रवादी विचारधारा उनके ही शब्दों में देखिए जिसमें म्लेच्छों पर शिवाजी की विजय और उनके शौर्य के रूप में राष्ट्रवादी भावना के दर्शन होते है -

"दावा द्रुमदण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
भूषण बितुण्ड पर, जैसे मृगराज है ।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ।"[४७]

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से राष्ट्रवाद का उदय माना जाता है । यह राष्ट्रवाद अंग्रेजी शासन के विरूद्ध और भारत के प्रति पूर्ण निष्ठा के रूप में दिखाई देता है । भारतेन्दु हरिशचन्द्र, अंबिकादत्त व्यास, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि की कविताओं में राष्ट्रभावना के दर्शन होते हैं । भारतेन्दु की कविताओं में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रभाषा प्रेम के दर्शन होते है । भारतेन्दु के शब्द देखिए -

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय के सूल ॥''[४८]

भारतेन्दु की मुकरियों में अंग्रेजी और अंग्रेज़ीशासन के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट होता है । अंगेज़ी और अंग्रेज़ो के विरूद्ध भारतेन्दु की राष्ट्रभावना देखिए -

''भीतर-भीतर सब रस चुसै,
हँसि, हँसि कै तन-मन-धन मूसै ।
जाहिर बातन मैं अति तेज,
क्यों, सखि, साजन ? नहिं अंगरेज़ ॥''[४९]

माखनलाल चतुर्वेदी जी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता के ये शब्द देखिए जिसमें मातृभूमि के चरणों में शहीद होने बाले शहीदों के प्रति भक्तिभावना प्रकट हुई हैं -

''चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ
चाह नहीं, सम्राटों के शव, पर हे हरि, डाला जाऊँ
चाह नहीं, देवों के सिर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली ! उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ानें जिस पथ जाए वीर उनेक ।''[५०]

आधुनिक कविता में व्यक्त राष्ट्रवाद वैश्विक राष्ट्रवाद की कोटि का भी है । भारत एक स्थान-वाचक शब्द न होकर एक तत्त्व है जो समग्र समष्टि में व्याप्त है । 'दिनकर' की ''किसको नमन करूँ मैं'' कविता के ये शब्द देखिए -

"भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है ।
एक देश का नहीं, शील यह भू-मण्डल भर का है ।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित जहाँ प्रेम का स्वर हैं,
देश-देश में वह खड़ा भारत जीवित भास्वर है ।
निखिल विश्व को जन्मभूमि-वन्दन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ।"[५१]

आधुनिक हिन्दी कविताओं में एकता की भावना उजागर होती है । हिन्दु-मुसलमान में एकता स्थापित हो ऐसा उद्देश्य भी रहा है । भारत की विविधता में भी एकता है यह उसकी विशेषता है । भारत की एकता को दृढ़ करती हुई यह राष्ट्रवाद की भावना नरेन्द्र शर्मा के शब्दों में देखिए -

"जन-क्रान्ति जगाने आई है, उठ, हिन्दु ! उठ ओ मुसलमान !
संकीर्ण भेद-संदेह त्याग, उठ महादेश के महाप्राण !
क्या पूरा हिन्दुस्तान न यह ? क्या पूरा पाकिस्तान नहीं ?
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान : पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?"[५२]

भारत पर अतिक्रमण किसी भी देशभक्त के लिए सहनीय नहीं हो सकता क्योंकि मातृभूमि का कण-कण उनकी निष्ठा से उसकी आत्मा से जुड़ा हुआ होता है । जब तक प्राणों की अंतिम साँस रहे तब तक कोई भी मातृभूमि पर किसी भी दुश्मन के नापाक कदम नहीं पड़ने देंगे । भारतभूषण अग्रवाल की "ब्रह्मपुत्र का फूल न देंगे" कविता के ये क्रांतिकारी शब्द देखिए -

''जब तक अन्तिम बूँद रक्त की जब तक अन्तिम शस्त्र हाथ में -
मिट जायेंगे, लेकिन माँ के सिर का शुभ्र दुकूल न देंगे ।
मत सोचो संख्या में कम हैं,
पुरखों के सदेह विक्रम हैं,
सवा लाख से एक लड़ाये
उन सिंहों के बंसज हम हैं ।''[५३]

अंग्रेज़ी शासन की गुलामी में सड़ते हुए भारत देश को स्वतंत्रता मिले इस लिए कवि निराला माँ सरस्वती को प्रार्थना करते हैं कि हे माँ मेरे भारत में स्वतंत्रता का मंत्र भर दे, अंधकार दूर करके जागृति ला दें । निराला की प्रार्थना कविता के शब्द देखिए -

''वर दे, वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव, अमृत मन्त्र नव
भारत में भर दे ।''[५४]

भारत ने, इस मातृभूमि ने हमें पाला-पोसा हैं, हमें जीवन दिया है तो हमें सर्वप्रथम उऋण होना चाहिए और फिर स्वजीवन के मार्ग को देखना चाहिए ऐसी सीख रामनरेश त्रिपाठी अपनी कविता 'जीवन-संदेश' में हमें इन शब्दों में दे रहे है; 'पथिक से' कृति में से ली हुई ये पंक्तियाँ देखिए -

''पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला पोसा ।
किये हुए हैं वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा ।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्तव्य तुम्हारा ।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा ॥''[५५]

कवि भारत देश के प्रति अपनी भक्तिभावना प्रकट करते हुए उनकी प्रशस्ति अपनी कविता के माध्यम से गा कर अपनी राष्ट्रवादी भावना को प्रकट करते हैं । यह देश भारत एक मधुमय देश है, जहाँ हर अनजान क्षितिज को सहारा मिलता है । प्रसाद की 'मधुमय देश' कविता के ये शब्द देखिए –

''अरूण यह मधुमय देश हमारा ।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।''[५६]

वर्षों से-सदियों से भारत की रक्षा करता आ रहा सजग प्रहरी ऐसा भारत का सुरक्षा कवच हिमालय है । भारत उस हिमालय के प्रति सदैव नतमस्तक रहेगा । दिनकर 'हिमालय के प्रति' कविता में हिमालय को भारत का गौरव, पौरूष, हिम-किरीट और भारत के दिव्यभाल कहकर अपनी राष्ट्रवादी भावना इन शब्दों में प्रकट कर रहे है –

''मेरे नगपति ! मेरे विशाल
साकार, दिव्य गौरव विराट !
पौरूष के पुँजीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !''[५७]

भारत को स्वतंत्रता दिलाने में अनेक नेताओ ने, अनेक नामी- अनामी हस्तियों ने अपना बलिदान दिया है । अनेक लोगों की कुरबानी के कारण स्वतंत्रता प्राप्त हुई है । राष्ट्रवाद अपने महान नेताओं और लोगों के प्रति पूर्ण निष्ठा प्रकट करता है । भारत के महान नेता और राष्ट्रपिता ऐसे महात्मा गांधी

के प्रति अनेक कवियों ने निष्ठापूर्ण शब्दों में श्रद्धांजली दी है । गांधी सचमुच एक युगावतार थे जिसके दो कदमों के पीछे कोटि-कोटि पग चल पड़ते थे, ऐसे गांधी के प्रति सोहनलाल द्विवेदी जी के 'युगावतार गांधी' कविता के ये शब्द देखिए -

''चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
गड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गए कोटि दृग उसी ओर ।''
हे युग-द्रष्टा हे युगस्रष्टा, पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मन्त्र ?
इस राजतन्त्र के खँडहर में, जगता अभिनव भारत स्वतन्त्र ।''[५८]

इस प्रकार हिन्दी काव्य साहित्य में आदिकाल से लेकर आज के आधुनिककाल तक राष्ट्रवाद की धारा अनवरत गति से चली आ रही है । अनेक कवियों ने अपनी राष्ट्र भावना प्रकट की है । ऐसे राष्ट्रवाद में देश के प्रति समर्पण आत्मबलिदान, देशगौरव-राष्ट्राभिमान और राष्ट्रनायकों के प्रति प्रेम आदि अनेक विषय शामिल हैं । ऐसे अनेक कवियों में शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक ऐसा नाम है जिसकी कविताओं में राष्ट्रवादी धारा प्रभावशाली रूप में प्रवाहित हुई है । यहाँ इस अध्याय में हम 'सुमन' काव्य के राष्ट्रवादी विचार-पक्ष का अध्ययन करेंगे ।

५.५ 'सुमन' के काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष

'सुमन'जी के काव्य में राष्ट्रवादी विचार-पक्ष पूर्ण रूप से प्रकट हुआ है । राष्ट्रवादी विचार पक्ष के अंतर्गत 'सुमन' जी ने राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गौरव का गान किया है तो राष्ट्रद्रोही तत्वों का विरोध करके क्रांतिकारी भावना को उजागर किया है । राष्ट्र के प्रति आत्म-समर्पण एवं

बलिदान की भावना को उजागर करते हुए राष्ट्रनायकों के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा के भी दर्शन कराएँ है । 'सुमन' की राष्ट्रवादी विचार-पक्ष इस प्रकार है -

५.५.१ माँ भारती की प्रशस्ति और प्रेम

हर कोई व्यक्ति अपनी माँ और मातृभूमि से प्रेम करता है इसलिए हर बार उसके लिए कुछ न कुछ करने की इच्छा होती है तो उसका गौरव बढ़े इसके लिए प्रयत्नशील एवं कार्यशील भी रहता है । देश प्रेमी व्यक्ति या कोई भी कवि अपनी मातृभूमि की प्रशंसा के गीत गाता है । उनका राष्ट्रीय प्रेम राष्ट्र की प्रशंसा के रूप में शब्दों के रूप में उमड़ पड़ता है । अनेक कवियों और साहित्यकारों ने माँ भारती की प्रशस्ति के गीत गाए हैं । माँ भारती की प्रशस्ति अपने काव्यों के माध्यम से व्यक्त की है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' भी ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने माँ भारती की प्रशस्ति गाई है । इस धरती की महिमा ही कुछ और है । यहाँ की प्रकृति सदाबहार है । इस सश्यश्यामला धरती पर कोयलिया कूकती है । यहाँ मधु-अभाव में प्यार छिपा हुआ है तो फ़िजा में ही बहार है, कवि के शब्दों में मातृभूमि की प्रशस्ति के रूप में राष्ट्र प्रेम देखिए -

''इस सुषमा का अन्त नहीं है
पतझड़ यहीं वसन्त यहीं है
यहीं कोयलिया कूक कूक कर
कर देती हैरान
अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ
अपने जीवन - गान ।

मधु-अभाव में छिपा प्यार है
यहाँ खिजाँ में ही बहार है
यहाँ दशहरा और मुहर्रम
दोनों की है शान ।''[५९]

भारत देश हिम्मतवालों का, कठ़ोर परिश्रमियों का देश है । यह देश सदियों से अड़िग है । इस धरती पर हजारों वर्षो से अनेक प्राकृतिक एवं मानवीय तूफ़ान आए, यहाँ की सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने का अनेक-बार प्रयत्न किया गया फिर भी यह नष्ट नहीं हुई बल्कि ओर तेजस्वी और दृढ़ हुई । क्योंकि इसके मूल में साधनों एवं तपस्या है । इस लिए 'सुमन' जी कहते हैं कि झंझावातों से मत घबराओ, तूफानों का सामना करो, हिम्मत न हारो क्योंकि यह साधना का देश है, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''हिम्मत न धरो ऐ हृदय,
यह साधना का देश है ।

हावी यहाँ है मृत्यु पर
निर्माण का प्रहरी अभय
वरना न जाने हो चुकी होती
कभी की सृष्टि लय
रूकना न तुम जब तक
तुम्हारे श्वास का लवलेश है
हिम्मत न हारो ऐ हृदय
यह साधना का देश है ।''[६०]

यह मातृभूमि भारती पूरे देश की जान है । करोड़ों जनों का नायक भारत ही है, जिसकी छत्रछाया के नीचे हम विकसित और पल्लवित होते हैं । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''भारत मेरे !
चालिस कोटि जनों के नायक
देश देश की मूक-पंगु,
जनता की आशा, भाग्य विधायक ।''[६१]

भारत देश एक अहिंसक देश है । हज़ारो वर्षो की यहाँ की अहिंसक वृत्ति एवं नीति ही उसको उन्नत बनाती है । लेकिन यहाँ के लोगों को हिंसक कहकर उसका अपमान किया जाता है । कवि 'सुमन' कहते हैं कि अहिंसा ही हमारा धर्म है, हम अहिंसक ही हैं -

''कौन कह रहा हमको हिंसक
आपत् धर्म हमारा,
भूखों नंगो को न सिखाओ
शांति शांति का नारा ।''[६२]

यह देश महान है, यहाँ की धरती समृद्ध एवं फलदायी है, बारहों महीने यहाँ मधु ऋतु के कंगन खनकते रहते हैं, पानी, पवन, प्रकृति अखूट एवं अपार है, यहाँ की धरती स्वर्ग-सी ऐश्वर्यवान है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''बरसात शरद बेमानी है
यह देश बड़ा सेलानी है
बारहों महीने यहाँ खनकते हैं
मधुऋतु के कर-कंगन ।''[६३]

ऐसी मातृभूमि अपनी जनता पर अखूट प्यार बरसाती है ऐसे प्यार को कभी-भी भुलाया नहीं जा सकता । 'सुमन' जी मधुर-परस 'मिट्टी की उंगलियों को कभी नहीं भूल पाते । उनके मातृभूमि के प्रति प्रेम को इन शब्दों में देखा जा सकता है -

''कैसे भूल पाऊँगा
जनम - जनम
मधुर परस
मिट्टी की उँगलियों की ।''[६४]

इस माँ भारती की गोद में अनेक संस्कृतियाँ पलकर विकसित हुई है । इस धरती ने जो भी आया उसका सहर्ष स्वागत किया एक माता की भाँति इस देश ने सबको अपनाकर अपने आँचल में समा लिया यह देश अनेक जातियों, धर्मो, संस्कृतियों, सभ्यताओ का संगम स्थल है, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''वैदिक, पौराणिक
जैन-बौद्ध मौर्य-शुंग
शंको-हूणों, यवनों-आभीरों
गुप्तों मौखरियों, सातवाहनों-गुर्जरों

प्रतिहारों-परमारों
खिलजी, मोगल, मरहठों के
दुर्दम दुरंत दौरों
फिरगियों के दुहरे व्यापारों से
अहिंसा के मसीहा के
आतुर आह्वानों तक
अंगों-तरंगो में
बिम्बित-प्रतिबिम्बित
अगणित आख्यानों को
कह रही है
शिप्रा बह रही है ।''[६५]

कोई भी देश जब नई-नई उपलब्धियाँ प्राप्त करता, विजय प्राप्त करता है या नई सिद्धियाँ प्राप्त करता है तब वह उस देश के लिए गौरवपूर्ण घटना होती है । भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण और महानत्तम ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होकर भारत की महानता में अभिवृद्धि कर चुकी हैं फिर वह बँग्लादेश की विजय हो पोखरन का अणुविस्फोट हो या फिर भारत के आर्यभट्ट की वैज्ञानिक सिद्धियाँ हो, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''बड़ी-बड़ी घटनाएँ
घट रही हैं देश में
बँगला देश की विजय
अणुविस्फोट पोखरन का,

सागर-सम्राट का
अहिरावण मर्दन
औ' दर्पित मेघनाद को
ललकारना आर्यभट्ट का ।''[६६]

भारत ने सैंकड़ों वर्ष विदेशियों की गुलामी सहन की है । अंग्रेज़ों ने अपने नापाक कदमों और इरादों से भारत को कूचला । लेकिन भारतीय जनता की जागृति एवं बलिदानों के फलस्वरूप पंद्रह अगस्त १९४७ ई. के दिन भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई । इस स्वतंत्रता दिवस के राष्ट्रीय पर्व पर भारत का हर नागरिक गौरवान्वित हो यह स्वाभाविक है । शांति-प्रेम-अहिंसा से भी स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है ऐसा सफल उदाहरण एवम् प्रयोग भारत में सफल हुआ और विश्वशांति की ओर ऐसा महत्वपूर्ण कदम उठा कि ऐसा सिद्धा ही गया कि केवल रक्त बहाकर हिंसक क्रांति के द्वारा ही स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती, अपितु अहिंसक एवं शांति और प्रेम से भी स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है । इसलिए भारत का पुण्य राष्ट्रीय पर्व पंद्रह अगस्त की गरिमा बढ़ जाती है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''युग-युग की शांति अहिंसा की,
लेकर प्रयोग गरिमा समस्त,
इतिहास नया लिखने आया,
यह पुण्य पर्व पन्द्रह अगस्त ।
पन्द्रह अगस्त त्यौहार,
राष्ट्र के चिरसंचित अरमानों का
पन्द्रह अगस्त त्यौहार
अनगिनत मूक-मुग्ध बलिदानों का ।''[६७]

परंतु यह पन्द्रह अगस्त का पर्व और भारत की स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है जब संपूर्ण जनता में विश्वास का वातावरण निर्माण हो, दरिद्रता, दैन्य, बेकारी, बेरोज़गारी, अकाल, भुखमरी-गरीबी, विवशता, निरक्षरता, भेदभाव आदि विद्वेषों का शमन करके भारत में सच्चे अर्थो में विकास एवं प्रगति लाएँ । शोषण-चक्र भारत में रहे ही नहीं और समानता का तत्त्व हर क्षेत्र में व्याप्त हो, 'सुमन' के राष्ट्रीय प्रेम आपुरित शब्द देखिए -

''इतिहास दे रहा आमंत्रण
बज रहे बिगुल विश्वासों के
बलिदानों ने बाँधे कंकण
रण है, दरिद्रता, दैन्य, निपीड़न,
बेकारी, बेहाली से
रण है, अकाल, भुखमरी विवशता
तन मन की कंगाली से ।
रण जाति धर्म के नाम
विष वमन करनेवाले नारों से ।
रण शान्ति प्रेम के विद्वेषी
मानवता के हत्यारों से ।
जब तक जन-गण-मन जीवन में
शोषण तन्त्रों का लेष रहे
जब तक भारत माँ के आँचल में

एक दाग भी शेष रहे
हम विरत न हो संकल्पों से
पल भर भी पथ पर नहीं थमें
पन्द्रह अगस्त की शपथ यही
तब तक आराम हराम हमें ।''[६८]

भारत की भूमि मूल धर्मों की भूमि है, संस्कृति एवं सभ्यता की जननी है, ऐसी महान भारत की भूमि की जय होनी चाहिए, सचमुच भारतभूमि की जय हो, विजय हो, यहाँ के महावीरों की जय हो । 'सुमन' के शब्दों में राष्ट्रीयप्रेम की भावना और माँ भारती की प्रशस्ती देखिए -

''कर्म-कर्म की धाय मूल धर्मों की धरती,
जय भारत की भूमि, महावीरों की जननी ।''[६९]

इस प्रकार 'सुमन' जी की कविताओं में माँ भारती की प्रशस्ति और माँ भारती के प्रति प्रेम की भावना निष्ठापूर्वक और उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है । 'सुमन' जी ने भारत के इतिहास गौरव का गान किया है तो, सांस्कृतिक चेतना का भी गौरव गाया है । भारत के महापुरुषों, प्रकृति का ऐश्वर्य, महान विचार-धारा, महानतम उपलब्धियाँ, भारत का ऊर्ध्व विकास, शस्यशामला धरती, जन-गण-मन-गण का आदि का गान किया है । उनकी प्रशस्ती गाई है । यह 'सुमन' जी की राष्ट्रीयभक्ति एवं माँ भारती के प्रति निःस्वार्थ एवं निष्ठापूर्ण स्नेहप्रेम का ही परिचायक है ।

५.५.२भारतीय संस्कृति और इतिहास का गौरव

भारतीय संस्कृति हज़ारों वर्षो से टिकी हुई है । उनकी ताक़त का परिचय इसी से ही मिल जाता है कि हज़ारों वर्षो से कुदरती और मानवनिर्मित तूफ़ानों के बावजूद भी इस संस्कृति का नाश नहीं हुआ है । भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास का वैभव इतना भव्य और समृद्ध है कि उस पर कोई भी भारतीय गर्व कर सकता है । भारतीय संस्कृति और इतिहास भव्य और गौरवमय है । यह वैभव वैचारिक वैभव है । हमारी वैचारिक विरासत किसी भी देश की संस्कृति की वैचारिक विरासत से कई गुना अधिक है । शिवमंगल सिंह सुमन ने भारतीय संस्कृति और उसके इतिहास के गौरव का गान भी किया है । 'सुमन' जी ऐतिहासिक तथ्य को उजागर करते हुए लिखते हैं कि -

''इतिहास बता सकना मुश्किल
बींधे-अन बींधे मर्मोंका,
विन्ध्य का वैभव साक्षी
अगणित पुण्य-पुलक उत्सर्गों का ।''[७०]

भारत की नदियाँ, ऋषि-मुनि, ग्रंथ, भवन, प्रकृति सबमें एकरूपता के ही दर्शन होते हैं । हमारी भव्य ऐतिहासिक वैचारिक ऐश्वर्यशीलता ही हमारी भारतीय संस्कृति को उच्चतम शिखर पर बिठाती है । 'सुमन' जी के शब्दों में इस सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एकत्व को देखिए -

''तमसो मा ज्योतिर्गमय तपस्या के वितान-सी तनती है
भगवान भास्कर मुग्ध, उच्चता विनय किस तरह बनती है

निर्धूम जातवेदस् ज्वलंत शिवरता अर्पिता गौरी से,
उत्तर-दक्षिण को बाँध दिया जिसने किरणों की डोरी से ।"[७१]

भारत के कण-कण और जन-जन में सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है । यहाँ के नगरों में सांस्कृतिक ऐश्वर्य बिखरा पड़ा है । ऐसी ही अवंतिका नगरी के वैभवशाली सांस्कृतिक विरासत के दर्शन 'सुमन' जी के इन शब्दों में देखिए -

"जिसके गृह-गृह में संस्कृति की निधि बिखरी
जिसके छौने थे इतिहासों के प्रहरी ।
उसके अतीत को वर्तमान करने में
सौ 'सुमन' मिटें पर जिए अवंती-नगरी ।"[७२]

किसी भी देश की संस्कृति में वहाँ की प्रकृति का भी बडा ही योगदान होता है । पर्वत, नदी, तालाब, समुद्र, वृक्ष वनस्पति आदि सबका अपना एक सांस्कृतिक महत्त्व भी है । भारत की भव्य एवं गौरवमय संस्कृति का साक्षी ऐसा हिमालय पर्वत सदियों से अडिग खडा है और भारत की रक्षा कर रहा है । हिमालय हमारी संस्कृति की जननी ऐसी महान और विशाल जलनीधि पूर्ण नदियों का उद्गम स्थान है तो वैचारिक निधि के उद्गाताओं ऋषि-मुनियों की तप:स्थली भी है, भारतीय संस्कृति हिमालय के कारण भी विकसित और भव्य हुई है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए जो हिमालय को संबोधित है -

"बड़ा सौभाग्य है मेरा
कि प्रात: नित्य खिड़की से
तुम्हारा रूप पीता हूँ,
अलौकिक लोक के उन्मान का क्षण एक जीता हूँ

युगों से योगियों के सार्थवाहों के समुन्नत पग
भटकते फिर रहे अहरह
उसी उपलब्धि के पीछे
जिसे तुमने सँजोया
शुभ्र शिवता के तुषारों से
गगन की शून्य अभिलाषा
टिकी जिसके कँगूरों पर ।
निपट आश्चर्य में रन पार्वती
बैठी पार्श्व में रत पार्वती कुछ भी नहीं कहती
कि केवल देखती रहती
युगों से सहज पुंजीभूत
साधक की अचल मुद्रा ।''[७३]

स्थान-स्थान की सांस्कृतिक विशेषता होती है । वह सांस्कृतिक विशेषता उस स्थल के सांस्कृतिक प्रतिक एवं वहाँ ही कोई न कोई वस्तु से झलकती है । वह चाहे गंगोत्री का गंगाजल हो, अवंतिका का कुंकुम हो - काशी का पीताम्बर हो या चाहे कश्मीर का केशर ही क्यों न हो ! सभी में एक ही भारतीय सांस्कृतिक चेतना का संचार होता है । कवि के शब्द देखिए -

''शौर्य आर्यपुत्रों का पुनः जगमगाया है,
ऐसे त्यौहार पर पुजारी महाकाल का
प्यार-मनुहार की सौगात लिए आया है
पुंगीफल कामरूप, गंगोत्री गंगाजल
कुंकुम अवंतिका का, काशी का पीताम्बर, केशर कश्मीर की ।

दही चिउरा मिथिला का, सत्तू तीर्थराज का
चंदन रामेश्वर का, भात जगन्नाथ का,
जीवटों के दीवटों में नव-जीवन-ज्योति जले ।''[७४]

यहाँ के हर व्यक्ति में एक आंतरिक सांस्कृतिक चेतना प्रवाहित है । अपने इतिहास और संस्कृति के प्रति वह गौरवमय भावना एवं दृष्टि से गर्व अनुभव करता है इसलिए ही तो 'सुमन' जी अस्मितायुक्त वाणी में कह उठते हैं कि -

''मैं शिप्रा-सा ही तरल सरल बहता हूँ,
मैं कालिदास, की शेष कथा कहता हूँ ।
मुझको न मौत भी भय दिखला सकती है
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूँ ।''[७५]

यहाँ की संस्कृति को अनेक लोगों, वीरों, गुरूजनों, साहित्यकारों, लेखकों, तत्त्वज्ञानियों ने निर्माण किया है । 'भगवद्‌गीता' जैसे सघन ग्रंथ का निर्माण भी इसी धरती पर हुआ है । 'सुमन' उसको प्रणाम करते हुए लिखते हैं कि -

''मैं कुमुदती से राम-राम करता हूँ,
कालीदह के दह को सलाम करता हूँ,
जिसकी रज से उपकृत गीता का गायक,
उस सांदीपनि गुरू को प्रणाम करता हूँ ।''[७६]

भारत ऐसा सांस्कृतिक संगमस्थल है कि जहाँ अनेक संस्कृतियों का मिलन होता है । यहाँ इसी के कारण स्नेह और सौहार्द्र की फुहारें

मुक्त रूप से बरसती है । अनेक संस्कृतियों के सम्मिश्रण एवं मिलन के कारण ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी घोषणा यहाँ की संस्कृति की महानता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''नवयुग का आह्नीय अग्नि हो प्रदीप्त यहाँ
यज्ञवेदियों से उठें अचियाँ ऋचाओं की
गूँजे संस्कृतियों के समन्वय की सामध्वनियाँ
स्नेह सौहार्द्र की फुहारें मुक्त बरसें
सिद्ध 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की साधना हो ।''[७७]

संस्कृति में उत्सवों का अपना एक महत्त्व होता है । उत्सवों से भी सभ्यता और संस्कृति का स्वरूप बनता है । भारतीय संस्कृति में उत्सवों का मेला लगता ही रहता है । यहाँ हर प्रांत में अपन-अपने क्षेत्र के अनुसार उत्सव मनाए जाते है । 'पाप पर पुण्य और असत्य पर सत्य और अंधकार पर प्रकाश की विजय का पर्व विजयादशमी मनाया जाता है । यह पर्व मानवता का है विजय का पर्व है । 'सुमन' जी के शब्दों में -

''आता प्रतिवर्ष पर्व विजयादशमी का जब
राम और रावण का युद्ध हम रचाते हैं
दुहराते रूढ़ियाँ सगर्व रामलीला की
गौरव-गुमान भरे विजय-गान गाते हैं
रावण का भीमकाय पुतला बनाते हम
पेट में पटाखे, सर गधे का लगाते हैं,
उत्सव उल्लास बीच बच्चे बन जाते सब
हल्ला मचाते खूब आग जब जलाते हैं ।''[७८]

नये संवत्सर में यहाँ नई शुरूआत की जाती है । नये विचारों,नये कार्यों की शरूआत होती है । समय का बदलाव और परिवर्तन की लहर आज के नये संवत्सर के दिन ही होता है ।

''फूट-फूट फैली है
आभा अरूणोदय की
द्विजों की चहचहाट में
धीरे से पन्ना पलट दो
काल-पत्र का
आज नयी तिथि है
नये संवत्सर की ।''[७९]

यहाँ के ज्योति-पर्व प्रमाद, आलस्य को दूर करके उत्साह और अस्मिता लानेवाले हैं । ज्योति पर्व जीवन की जड़ता और अंधकार को मिटानेवाले हैं । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जलना है, जलना है
अमा का अँधेरा तो
छलना है, छलना है
लाभ उठा गाफिली का
चोरी से पैठा है
किंतु दीप द्वार-द्वार
प्रहरी-सा बैठा है
दुहरी सजगता में
पिछले प्रमाद की

प्रताड़ित विकलता में
जीवन की जड़ा में
ज्वार कसमाया है
ज्योतिपर्व आया है ।''[८०]

भारतीय संस्कृति की पहचान उसकी सभ्यता, व्रत, उत्सव और मेले से हैं । मेले लोगों को आपस में एकसूत्रता के स्नेहयुक्त बंधन में बांधकर रखते हैं ।गंगादशहरा का उत्सव और उसका दशहरा से पूर्णिमा तक का सांस्कृतिक मेला एकता और प्यार का अनूठा संगम एवं प्रतीक हैं -

''गंगा दशहरा से
पूर्णिमा तक
उमड़ पड़ा था मेला
नवव्याहीं साधों का,
रथों में बिठाकर
भगा ले जाने की
कंवारी रोमांचकता
सार्थक-सी लगती थी ।
सौ-सौ प्रदर्शनियों से
कहीं अधिक मोहक था
मेला महावीरन का
भीरन-अभीरन में
बरगद के पत्तों में

पुए औ बताशे बाँध
झूल-जूल रहटों में
फूल बन जाती थीं
गंध की सवारियाँ ।"[८१]

भारतीय सांस्कृतिक मूल्य चैतसिक, जागतिक और वैश्विक हैं । भारतीय संस्कृति के सत्य, अहिंसा, मानवता, विश्वमानवता आदि के कारण सांस्कृतिक तत्वज्ञान को पूरे विश्व में मान एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है । 'सुमन' जी के काव्यों में अहिंसा सत्य, मानवता और विश्वमानवता के सांस्कृतिक मूल्य एवं गुण दृश्यमान होते हैं । 'सुमन' जी मनुष्य बनकर मानवता के लिए मिट जाने का आह्वान करते हैं वे कहते हैं कि -

"कहता हूँ मानव बन मानवता
के हित मिट जाओ
चाहे मुझको मत अपनाओ ।"[८२]

वैभव, धन, दौलत आदि हवाईमहलों के जैसे हैं । मृगजल जैसा यह वैभव कोई काम का नहीं । 'सुमन' मानवता का क्रन्दन अपनी आहों के वेगों में भर देने की बात करते हैं । वे कहते हैं कि -

"ये महल हवाई वैभव के
क्षण-भर में चकनाचूर करो
जिनमें मैं भूला फिरता था
मुझ से वे सपने दूर करो
मेरी आहों के वेगों में मानवता का क्रन्दन भर दो
मेरे स्वरे में जीवन भर दो ।"[८३]

भारतीय संस्कृति में ऐक्यभावना के दर्शन होते है । भिन्नतायुक्त समाज के होते हुए भी इस संस्कृति ने सबको अपनाकर अपना बनाने की रीत-रसम हैं । यहाँ की मानसिकता बड़ी ही मतवाली है, यहाँ सब अपने और पराये को एक बनाने का श्रम करते हैं । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''हम अपने और पराये को मिल एक बनानेवाले हैं,
हम बड़े विकट मतवाले हैं ।''[८४]

इसी अपनाने की रीत-रसम के पीछे यहाँ की प्रेम-भावना का सांस्कृतिक मूल्य है । इसलिए ही 'सुमन' जी प्रेम-पीयुष रूपी सांस्कृतिक मूल्य की माँग करते हुए कहते हैं कि -

''जिसका न आदि न अंत हो, वह प्रेम-पारावार दो
मुझको न सुख-संसार दो ।''[८५]

इस संस्कृति में केवल और केवल प्रेम का ही वातावरण स्वीकार्य है । यहाँ कौमी और मज़हबी फ़सादों को दफ़नाया जाता है, फ़िसके बाज़ों को पराजय मिलती है, यहाँ स्नेह और सौहार्द का दिया जलाया जाता है, इस संस्कृति में स्नेह और सौहर्द का दिया जलाकर ही दीपावली मनायी जाती है । कवि के शब्द देखिए -

'क़ौमी औ' मज़हबी फ़सादों को दफ़नाएँगे
फ़िरकेबाजों का गुमा गिरह से गुमाएँगे
स्नेह सौहार्द का ऐसा दिया जलाएँगे
अमा की छाती पै दीपावली मनाएँगे ।''[८६]

भारतीय संस्कृति में आरती, कीर्तन, पूजन-अर्चन का बड़ा महत्त्व है । इस संस्कृति में निष्काम कर्मयोग और आस्तिकता की निष्ठा सजीव रहती है । कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''हम बड़े पुजारी, घण्टा-घडी बजाते है
आरती उतारा करते, कीर्तन गाते हैं
अक्षत-रोली, फल-फूल-पत्र, दूर्वा नवीन
मधु-धूप-दीप-नैवेद्य चढ़ाने में प्रवीन

कहने को तो हम
आत्मशक्ति विश्वासी, अस्तिक्ता की निष्ठा सजीव
निष्काम कर्म के अभ्यासी ।''[८७]

ऐसी महान संस्कृति पर हर किसी को गर्व होता है । सांस्कृतिक प्रतीकों, ऐतिहासिक विरासतों पर गर्व अनुभव होता है । यह भूमि राम और कृष्ण की भूमि है, कृष्ण और सुदामा के संस्कारो की जननी हैं । ऐसी उज्जैन की धरती भारत में हैं । आर्यों और अनार्यों की पावन संगम स्थली है, यह भूमि सांस्कृतिक महातीर्थ हैं 'सुमन' जी के शब्दों में भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का गौरवगण देखिए -

''बारह वर्षों में
दिन फिरते घूरे के भी
फिर तो यह तीर्थ है
शकों-हूणों-आभीरों

आर्यो-अनार्यो की
पावन संगमस्थली

त्रिपुर पर विजय की
अभूतपूर्व गाथा से
उत्कर्षित उज्जयिनी
कृष्ण और सुदामा के
संस्कारों की जननी ।
यहीं से चलाया था
साका कभी विक्रम ने
आर्यों के शौर्य का ।''[८८]

ऐसी महान संस्कृति ही वहाँ की जनता का बल होती है । अपनी संस्कृति का बल और उस पर गर्व हर व्यक्ति को होता है । हर भारतीय को अपनी भारतीय संस्कृति पर गर्व है और उसका बल है - 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''हमें हमारी संस्कृति का बल
देश हमारा, पर्व हमारा ।''[८९]

५.५.३ राष्ट्रनायकों की प्रशस्ति, पूर्णनिष्ठा और सम्मान की भावना :

राष्ट्रवादी विचार-पक्ष की एक मुख्य भावना राष्ट्रनायको की प्रशस्ति करके उनके प्रति पूर्ण निष्ठा एवं सम्मान भावना भी है । जिन-जिन व्यक्तियों ने राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पित भावना व्यक्त करते हुए राष्ट्र के विकास एवं प्रगति मे अपना सहयोग दिया है । वह राष्ट्र

नायक बन जाता है । भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में अनेक व्यक्तियों ने अपना समर्पण एवं योगदान दिया था । उनमें महात्मा गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, शिक्षा क्षेत्र में मदन मोहन मालवीय जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर जो संस्कृति एवं साहित्यक्षेत्र के महानायक थे उन सबके प्रति पूर्ण निष्ठा एवं सम्मान की भावना के साथ-साथ उनकी प्रशस्ति भी 'सुमन'जी ने की है । महात्मा गांधी जी जो सत्य एवं अहिंसा के पूजारी थे जिन्होंने अहिंसात्मक आंदोलन से भारत को स्वतंत्रता दिलायी ऐसे राष्ट्रपिता गांधी जी के प्रति 'सुमन' जी शब्द पुष्प एवं भावना रूपी 'सुमन' व्यक्त किए हैं । ऐसे गांधी का अवतरण हुआ वह सदियों के पुण्य का ही परिणाम था, सुमन के शब्द देखिए -

''कितनी सदियों के पुण्य फले
तब तुम आए
धरती के जागे भाग
मुक्ति के धन छाए ।''[९०]

गांधी जी की दृष्टि से सभी धर्म समान है । उन्होंने गीता, कुरान, बाईबिल सबका अध्ययन किया, सबको उचित मान दिया । सभी धर्मो का पठन-पाठन करके समाज को और भारत को मानवता का संदेश दिया, उसके फलस्वरूप ही अहिंसा और सत्य का पाठ पढ़ाया । ऐसा मानवतावादी विचारधारा, मानवता के अवतार गांधी के प्रति 'सुमन' जी की भावनाएँ इन शब्दों में देखिए -

''धड़कन विराट की
साँसों के स्वर में झलकी
गीता, कुरान, बाइबिल
सब तुमने लिखी दिखी
विचरे, विहवल मानवता को
पावन करके
करूणा के गंगाजल से
मंगल-घट भरने
अनगिनत निरीहों की आशा
मूकों की भाषा बन जाए
मानवता की खोई आस्था
लौटा लाए ।''[९१]

महावीर और गौतम बुद्ध का मानो साकार और मूर्तिमंत रूप सदियों बाद गांधी के रूप में उतर आया है । एक निर्भीक सत्य गांधी के रूप में दुनिया ने देखा है । उन्होंने चाहे दक्षिण आफ्रीका हो या भारत सबको जागृत किया पूरे विश्व में शांति का संदेश सुनाया । ऐसे गांधी ने पूरी दुनिया को शांति का संदेश दिया, इस जगत के लिए वे शांतिदूत बनकर आए थे । इस संदर्भ मे देश की वर्तमान परिस्थिति में गांधी की याद आए यह स्वाभाविक है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''घटित हुई फिर से सौ वर्ष पूर्व अनायास
महावीर गौतम की संवदेन अवतरणी

धन्य हुई यह धरणी
निर्मल निर्भीक सत्य मूर्तिमान
दक्षिण अफ्रिका हो, भारत हो,
सबको सुनाई पड़ा उद्बोधक आह्वान
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत का
शाश्वत संदेश गान ।''[९२]

गांधी जी शांति और समता के पूजारी थे । इस दम्भी और पशुता के युग मे जीवंतता और प्रकाश की मशाल लेकर वे अटलता से चले हैं । उन्होंने दुनिया के गरल को नीलकंठ की तरह पीकर हिंसा, ईर्षा, छल और दंभ रूपी प्रदुषण से दुनिया को बचाया है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''हे अमर कृती, दृढ़व्रती
शांति-समता के मुक्त उसास विफल,
दाम्भिक पशुता के खण्डहर में
तुम जीवन-ज्योति-मशाल लिये
चल रहे युगों की सीमा पर धर चरण अटल ।
हे नीलकंठ
पी गए गरल
हिंसा, ईर्ष्या, छल, दंभ, अंध-दानवता के
दुधिया हँसी
धो रही पाप मानवता के ।''[९३]

गांधी जी अफ्रीका से जब भारत आए तो उन्होंने सर्वप्रथम भारत भ्रमण किया और उस समय भारत की जनता की दयनीय स्थिति एवं दरिद्रता देखकर द्रवित हो गए । प्रण किया कि जब तक गरीबी दूर नहीं होगी और जनता को वस्त्र नहीं मिलेंगे तब तक अंग पर ढाई गज़ के कपड़े के सिवा नंगे बदन रहेंगे । फिर इस महामानव ने वस्त्रों का त्याग कर दिया, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''नंगे फकीर,
नग्नता निरीहों की ढक दी
ले ढाई गज़ की धूवल चीर ।''[९४]

ऐसे गांधी दलितों, निरीहों के आँसू पोछनेवाले व्यक्ति थे । 'सुमन' जी के शब्दों में दलितों के इस मसीहा को देखें -

''दलितों की आर्त गुहारों पर
घर-घर दौड़े आँसू पोंछे
क्या-क्या न सहा, क्या-क्या न किया ?''[९५]

गांधी जी ने पूरे विश्व के समक्ष एक उदाहरण रखा कि रक्त रंजित स्वातंत्र्य से महान है अहिंसक लड़ाई से स्वतंत्रता प्राप्त करना भारत को अहिंसात्मक मार्ग से स्वतंत्रता दिलाई । गांधी ने गति एवं मति दी । 'सुमन' जी के शब्दों में स्वतंत्रता प्राप्ति के इस महामानव की पूजा देखिए, जिसमें बलिदानी गांधी जी के दर्शन होते हैं -

''हे पिता, तुम्हीं ने हम सबको
गति दी, जीवन का ज्ञान दिया

हँस-हँस स्वतन्त्रता की वेदी पर
मिटने का अभिमान दिया ।
युग-युग से शोषित मानवता की
मुक्ति-हेतु आहवान किया,
समता-स्वतन्त्रता-शान्ति स्नेह हित
जीवन तक बलिदान किया ।''[९६]

इस महान राष्ट्रनायक एवं महान संत का निर्वाण भी हिंसा से हुआ । बापू को गोडसे नामक व्यक्ति ने प्रार्थना सभा में गोली मारी । मानवता के खातिर इस महामानव ने गोली खा ली । इस महामानव के वध ने पूरे राष्ट्र और दुनिया को हिलाकर रख दिया । लेकिन यह वध अहिंसा, शांति, मानवता, समता, श्रद्धा, क्षमा, तप, दया का वध था, यह आदर्शो का वध था, विश्व के सच्चे प्रेम-पूजारी का वध था । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''यह वध है शान्ति, अहिंसा,
श्रद्धा, क्षमा, दया, तप, समता का
यह वध है करूणामयी
सिसकती दुखिया माँ की ममता का ।
यह वध है उन आदर्शों का
जिन पर मानवता बिकी हुई,
यह वध है उन उत्कर्षों का
जिन पर यह दुनिया टिकी हुई
यह वध, संस्कृति के मूर्तिमान

आराधक औ अधिकारी का
कुछ साधारण वध नहीं
विश्व के सच्चे प्रेम-पूजारी का ।''[९७]

गांधी का खून फासि़स्टवादी विचारधारा, आसुरीवृत्ति ने किया है । गांधी को किसी व्यक्ति ने नहीं मारा नाजीवादी ताकतों ने उसका खून किया है, यह एक विचारधारा की मौत है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए जिसमें गोडसे पापपुंज, रावण, नीरो, कंस, दुर्योधन, हिरण्यकश्यप और जार का प्रतिक है –

''वह मानवता का पापपुंज
कल्मष – भागी,
वह नहीं व्यक्ति जिसने
तुम पर गोली दागी
वह उस परम्परा का जिसमें
रावण, नीरो औ कंस हुए,
जिसमें दुर्योधन, हिरणाकश्यप
औ जारों के वंश हुए ।''[९८]

ऐसे महामानव का निर्वाण समग्र भारत के लिए असहनीय था । ऐसे जन-जन और युग-युग के बापू जब नहीं रहे तब यह समाचार पूरे भारत के आँसूओं का सैलाब बन गया था । 'सुमन' जी के शब्दो में महात्मा गांधी का महा-निर्वाण देखिए –

''क्या सुना आज इन कानों ने
मेरे बापू तुम नहीं रहे ?
युग-युग के बापू नहीं रहे ?
जन-जन के बापू नहीं रहे ?''[९९]

ऐसे बापु सभी अवतारों का समन्वय थे । राम-कृष्ण-मुहम्मद पयगंबर, बुद्ध और ईसा की विचारधारा का संयुक्त रूप है । 'सुमन' जी के शब्दों में -

''तुम कहाँ आज ?
हे राम, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध, ईसा मेरे ।''[१००]

भारत के स्वतंत्रता सेनानी और प्रथम प्रधानमंत्री तथा गांधी के दाहिने हाथ ऐसे जवाहरलाल नेहरू मुहब्बत के मसीहा, शांतिदूत क्रांतिकारी नेता थे, 'सुमन' जी के शब्दों में नेहरू की प्रशस्ती देखिए जो कमला के शब्दों में है -

''तुमने तो शत्रु से भी
कपट कभी किया नहीं ।
तो फिर तुम गए कहाँ ?
आओ वीर, आओ वीर ।''[१०१]

नेहरू ने सब कुछ अपना मातृभूमि को सौंप दिया था । ऐसे मातृभूमि भारत माता के सपूत नेहरू जी के प्रति 'सुमन' जी के भावनामय शब्द देखिए -

''मैं जो था रहा कहाँ ?
सब-कुछ सौंप आया हूँ
प्यारी मातृभूमि को ।''[१०२]

ऐसे नेहरू जी चीन की गद्दारी के कारण हृदयरोग से मृत्यु प्राप्त करके इस दुनिया से चले गए थे । पंचशील के सिद्धांत देनेवाले शांतिदूत नेहरू को 'सुमन' वापिस माँग रहे है वे कहते है कि -

''मैं पूँजी की प्राचीरों से माँग रहा हूँ ।
मैं दिल्ली की मीनारों से माँग रहा हूँ
लाल किले की दीवारों से माँग रहा हूँ
मेरा वीर जवाहर मुझको वापस कर दो ।''[१०३]

वीर जवाहरलाल नेहरू को अंग्रेजी आवारों, अमरिकी अभिसारों और कामनवेल्थी सरकारों ने छीना है । उससे 'सुमन' जी उनको वापस माँग रहे हैं क्योंकि राजनीतिक षड्यंत्रों का ही वह परिणाम था, जिसमे नेहरू चले गए थे, 'सुमन'जी के शब्द देखिए -

''मैं अंग्रेजी आवारों से माँग रहा हूँ
मैं अमरीकी अभिसारी से माँगरहा हूँ
कामनवेल्थी सरकारों से मांग रहा हूँ
मेरा वीर जवाहर मुझको वापस कर दो ।''[१०४]

छोटा कद लेकिन हौंसले बुलंद और विराट व्यक्तित्व के धनी थे भारतमाता के सच्चे सपूत लालबहादुर शास्त्री, वे ऐसे राष्ट्रनायक थे जिन्हों ने 'जय जवान', 'जय किसान' सूत्र देकर भारत की भूख और

भय दोनों को मिटाया था । वह राष्ट्र के सच्चे पहरेदार थे । वे शांति के संतरी थे, 'सुमन' जी के शब्दों में –

''बहादूर शब्द, ऐसा सार्थक
शायद ही कभी हुआ हो
लाल उपसर्ग भी
विरासत में खूब मिला
शौर्य और धैर्य के शास्त्री
सिपाही का बाना तुमने पाया था,
राष्ट्र के पहरेदार
डाकुओं ने कभी तुम्हें बेखबर नहीं पाया
शांति के संतरी, तुम्हारे साये में
अँधेरी आधी रात
हमने खुलकर गाया था,
नेपोलियन – सा कद था तुम्हारा
जिसे कभी वाटरलू नहीं देखना पड़ा
तुमने हमारे लिए
एक और तीर्थ बना दिया
ताशकंद ।''[१०५]

हमारे देश में शिक्षा क्षेत्र में ऐसे राष्ट्रनायक हुए हैं जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र की शिक्षण की ज्योत जलाकर भारत को शिक्षित बनाया । भारत की वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षणिक नींव को

मजबूत किया । महामना मदनमोहन मालवीय जी ऐसे ही राष्ट्र पुरूष थे जिनके कारण शिक्षा व्यवस्था दुरूस्त हुई । यह भी उनकी एक राष्ट्र सेवा ही है । उनकी सम्मान में 'सुमन' जी के शब्द में देखिए -

''हे विराट
चारों ओर तुम ही दिखते हो
रंगों - रेखाओं में, अनहट झंकारों, मूर्च्छनाओं, ऋचाओं में
भवनों, क्रीड़ांगणों, प्रयोगशालाओं में
अयुत स्नातकों की आतुर आशाओं में
राष्ट्र की धमनियों के उमड़े रक्त ज्वार में
भारत के भावी शौर्य, साहस-संचार में,
भरद्वाज गौतम के गुरूकुल की यज्ञशिखा
फिर प्रदीप्त तुममें हुइ हिन्दु विश्वविद्यालय में
तक्षशीला, नालंदा दिखते हैं मूर्तिमान
भारत की साधना समुज्ज्वल हो उठी है आज ।

ज्योतिर्मय स्वर्ण वर्ण, भव्य मदनमोहन तुम...
राष्ट्र उन्नायक, वरदायक, मुक्तिगान के
साधना के ऐसे प्रतिमान गढ़ गए हो तुम ।''[१०६]

यही महामना जब इस जगत से चले गए, उनका निर्वाण हुआ तब मानो शिक्षाजगत में शून्यावकाश छा गया । 'सुमन' जी के शब्दों में राष्ट्रनायक महामना का महाप्रयाण देखिए -

''हम अनाथ हो गए हाय यह कैसा दुर्दिन आया
आज हट गई हम सबके सिर से कुलपति की छाया

कहाँ गया जो दीन राष्ट्र के लिए फिरा ले झोली ।
विद्यालय की ईंट-ईंट जिसके दर्शन की प्यासी

अब भी गूँज रहे कानों में शब्द तुम्हारे अभिनव
''देशभक्तयात्मऽत्यागेन सम्मानार्ह सदाभव''
देश जाति की व्यथा तुम्हारी साँस-साँस में बोली
मरते-मरते भी न भूल पाए तुम नोआखोली ।''[१०७]

भारत में अनेक वीरांगनाएँ हुई हैं जिन्होंने भारत को महान बनाया । भारतीय नारियाँ वीरांगनाएँ होती हैं । अपने गुणो से भारत की समाज व्यवस्था को सुदृढ बनाती हैं । परंतु कुछ नाम वीरत्व के गुणों से भरे होते हैं, उसमें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई है जो क्रांतिकारीता एवं वीरत्व की प्रतिमा थी। ऐसी ही एक वीरांगना भारत की राजनीति में आयी थी जिसका नाम है इंदिरा गांधी । इंदिरा जी ने भारत को सुरक्षा प्रदान करके भयमुक्त बनाया था । पाकिस्तान को धूल चटा दी थी । 'सुमन' के शब्द देखिए -

''इंदिरा नाम है राष्ट्र चेतना के
प्रलयंकर कल्पों का
इंदिरा नाम है नये राष्ट्र के
अप्रतिहत संकल्पों का
जो कीर्तिमान बन गई
राष्ट्र के शौर्यों औदार्यों की
इंदिरा हिंद की शान
आन आर्यों की ।''[१०८]

ऐसी विरांगना इंदिराजी ने आतंकवाद को मिटाया था । भारत को आंतरिक एवं बाह्य दोनों स्तरों पर सुरक्षित बना दिया था । लेकिन उनको गोलियों से भून दिया गया । आतंकियों ने इंदिराजी को एक के बाद एक चौबिस गोलियों से छलनी कर दिया । इंदिरा जी का उत्सर्ग 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए -

''आस्थाविहीन पीढ़ी को आश्वस्त कर गई,
खुद को मिटा के मौत का भय ध्वस्त कर गई ।

उत्सर्गशील राष्ट्र की लक्ष्मी बिखर गई ।

आतंक के अंतक को बूँद-बूँद सौंपकर
शोणित की, स्वर्ण वर्ण सी काया निखर गई ।

चौबीस गोलियों की दग्ध धार झेलकर
दरकी हुई दीवार के सूराख भर गई ।

बापू की वेदना को अर्ध्यदान कर गई ।
नेहरू के साथ गाँधी की गरिमा को जोड़कर
दोनों कुलों की आन बान बन सँवर गई ।''[१०९]

इस प्रकार 'सुमन' जी ने अपनी कविताओं में राष्ट्रनायकों के प्रति पूर्ण निष्ठा और सम्मान की भावना प्रकट करके राष्ट्रीयचेतना को व्यक्त किया है । 'सुमन' जी इस प्रकार राष्ट्रनायकों की प्रशस्ति से अपनी राष्ट्रीयभावना के विचार पक्ष को सुदृढ रूप में व्यक्त किया है ।

५.५.४ राष्ट्र के प्रति आत्मसमर्पण एवं बलिदान की भावना

किसी भी राष्ट्र का इतिहास जाँचें तो पता चलता है कि आत्म समर्पण एवं बलिदान की भावना देखने मिलती है । भारत अंग्रेजी शासन और विदेशी ताकतों की गिरफ़्त में से आज़ाद हुआ था । इस आज़ादी की जंग में अनेकों ने अपना आत्मसमर्पण करके बलिदान दिया था । कितनी ही कुरबानीयों के बल पर आज़ादी मिली थी अतः 'सुमन' जी इस आज़ादी को संभालकर रखने की सलाह देते है । क्रांति केवल द्वार तक आकर दस्तक देकर लौट न जाए इसका ध्यान रखने की सलाह देते है वे कहते हैं कि -

''कितनी कुरबानी के बल पर
नया सवेरा लाए,
ग़ाफिल मत हो क्रांति
द्वार तक आकर लौट न जाए ।''[११०]

आज़ादी के बाद भी देश में विकास नहीं हुआ । दलितों और वंचितों की दशा वैसी की वैसी थी । आज़ादी के बाद देश की सच्ची परीक्षा शुरू हुई थी नयी-नयी चुनौतियाँ देश के समक्ष खड़ी थी ऐसे दौर में ही कुरबानी की आवश्यकता थी, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''आज़ाद देश की नयी परीक्षा हुई शरू
कुरबानी का फिर नया जमाना आया है,
फिर नयी चुनौती वहशी हूणों की आई
फिर नये राष्ट्र ने भैरव राग गुंजाया है ।''[१११]

'सुमन'जी का मानना है कि बलिदानों और आत्मसमर्पण से ही देश की नींव मज़बुत होती है । जिस देश के वीर अपने राष्ट्र के लिए, उनकी सुरक्षा के लिए मौत का वरण करने के लिए तैयार रहते हैं वह राष्ट्र युगों-युगों तक अमर हो जाता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''चामुण्डा के मुण्डों की माल अधूरी है
काली के कर का खप्पर अब भी रीता है ।
जो हौंस हुमस से वरण मौत को करता है
वह राष्ट्र अमर हो जाता, युग-युग जीता है ।''[११२]

शहीद वीर राष्ट्र के ऊपर संकट आने पर बलिदान देने के लिए तैयार ही रहते हैं, शहादत तो वीर अपना सौभाग्य समझते हैं । और यही शहीदी का जज़्बा ही राष्ट्र उन्नति का मूल है । 'सुमन' की कलम से -

''राष्ट्र पर संकट है, मेरे समान ही सहस्त्रों
बलि होने को, होड़ कर रहे हैं यहाँ
ऐसा सौभाग्य, बड़ी मुश्किल से मिलता है ।''[११३]

इंदिरा गांधी की जब हत्या हुई तब पूरा देश आँसूओं के सैलाब में बह गया था । देश बलिदान पर बलिदान दिए जा रहा है, आतंक को मिटाने वाली इस विरांगना ने अपना आत्मसमर्पण कर दिया । इस मौक़े पर 'सुमन' जी देश की बलिदान की भावना के संदर्भ में लिखते हैं कि -

''बलिदान पै बलिदान दिए जा रहा है देश,
गुरू तेगबहादुर की शहादत किधर गई ।''[११४]

आत्मसमर्पण और बलिदान की भावना एक ऐसी भावना है कि उसके कारण ही देश सुरक्षित एवं भयमुक्त होता है । स्वतंत्रता बलिदान और आत्मसमर्पण की भावना के कारण ही जीवित रहती है । अनेक स्वतंत्रता सेनानियों का ही परिणाम स्वतंत्रता है । सैनिकों की शहादत के कारण ही देश की सरहदें सुरक्षित रहती हैं ऐसे बलिदानियों को श्रद्धांजलि देना हर देशवासी का कर्त्तव्य है । सर्वस्व समर्पण से ही नवनिर्माण होता है । 'सुमन' जी के शब्दों में आत्म समर्पण एवं बलिदान की भावना का आह्वान देखिए –

''स्वतंत्रता पर बलि हो
आँसू से अपनी अंजुलि भर
आओ उनको श्रद्धांजलि दो ।

यह निर्माणों की वेला है ।
यह क्षण है आत्म निरीक्षण का
यह उत्सर्गों का मेला है ।
प्रण है सर्वस्व समर्पण का
जर्जर जड़ता की छाती पर
आत्माहुति चिन्गारी धर दो
आओ अपने सेनानी के
संकेतों पर न्यौछावर हो
जागरण चुनौती देता है ।''[११५]

रणक्षेत्र में जब सैनिक उतरते है तो वह सिर्फ और सिर्फ मातृभूमि की लाज़ बचाने के लिए ही । शहीदों की टोलियों से कोई भी देश

गौरवान्वित होता है । विप्लव की वेला में शहादत के लिए और दुश्मनों से लड़ाई के लिए 'सुमन'जी तैयार हो जाने का आह्वान करते हैं -

''आओ, उठो, चलो, जल्दी
समरांगण में कुहराम मचाने
पीकर जिसका दूध खड़ी हैं
उस माता की लाज बचाने
वह देखो लग रहा समर में आज शहीदों का मेला है
यह तो विप्लव की वेला है ।''[११६]

'सुमन' जी आगे बढ़कर चलने, निर्भर होकर विजयगान करने और राष्ट्र के लिए बलिदान होने के लिए आह्वान करते हैं । वे देश के लिए जौहर की ज्वाला को जलने देने के लिए और मातृभूमि के लिए केसरिया बाना पहन लेने के लिए राष्ट्रभक्तों को निमंत्रित कर आह्वान करते है, 'सुमन' जी के शब्दों में आत्मसमर्पण और बलिदान की भावना देखिए -

''अब बढ़े चलो, अब बढ़े चलो
निर्भय हो जय के गान करो
सदियों में अवसर आया है
बलिदानी, अब बलिदान करो
फिर माँ का दूध उमड़ आया
बहने देती मंगल फेरी
लो कआज बज उठी रणभेरी !
जलने दो जौहर की ज्वाला
अब पहनो केसरिया बाना

आपस का कलह डाह छोड़ो
तुम को शहीद बनने जाना
जो बिना विजय वापस आए
मॉ ! आज शयप उसको तेरी
लो आज बज उठी रण भेरी !''[११७]

भारत ने कई युद्ध देखे हैं, उसमें पाकिस्तान के साथ तीन युद्ध और चीन की गद्दारी के कारण उनके साथ एक युद्ध शामिल होता है । इन युद्धों में अनेक सैनिक शहीद हो गए । अपने प्राण मातृभूमि के लिए न्यौछावर कर उन्होंने अपने परिवार की भी परवाह किए बिना हँसते-हँसते कुरबान कर दिए । ये सैनिक जब जंग में जाने के लिए तैयार होते हैं तब उनको कुंकुम से तिलक किया जाता है । ऐसे वक्त में महाकाल की माला में ऐसे वीर शहीदों के मुंड चढ़ते जाते हैं किन्तु वह केवल और केवल राष्ट्र के लिए अपनी मातृभूमि के लिए । ऐसे ही क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता के संग्राम में अपने परिवार और अपनी जान का बलिदान और आत्मसमर्पण कर दिया था । ऐसे अनेक वीरों में शहीद भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, वीर सांवरकर आदि सम्मानित वीरों के नाम आते हैं । उन लोगों ने हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहुती स्वतंत्रता संग्राम रूपी यज्ञ में दे दी । उन वीरों की और सरहद पर शहीद होने वाले वीर सैनिकों की शहादत का जज़्बा 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए

''रणभेरी सुन कह़ 'विदा, विदा' !
जब सैनिक पुलक रहे होंगे

हाथों में कुंकुम थाल लिये
कुछ जलकण ढुलक रहे होंगे
कर्तव्य प्रणय की उलझन में
पथ भूल न जाना पथिक कही !
वेदी पर बैठा महाकाल
जब नर बलि चढ़ा रहा होगा
बलिदानी अपने ही कर से
निज मस्तक बढ़ा रहा होगा
तब उस बलिदान प्रतिष्ठा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !
कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे
जब महाकाल की माला में
माँ माँग रही होगी आहुति
जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में
पल भर भी पड़ असमंजस में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !''[११८]

मातृभूमि पर बलिदान का अवसर सौभाग्यशाली होता है । वह वेला एक शहीद के लिए शुभ होती है । ऐसी बलिदानी वेला पर बलिदान की कसौटी पर खरा उतरने की सलाह देते हुए 'सुमन'जी कहते हैं कि –

''बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ बेला आ पहुँची ।''[११९]

ऐसे स्वतंत्रता के अवसर पर अनेक वीर शहीद मानो अपनी हथेली में अपना सिर रखकर माँ भारती के गौरव और सम्मान के लिए अपना बलिदान और आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार रहते हैं । ऐसे शहीदों का मानो मेला लगा रहता है । 'सुमन' जी के शब्दों में –

''स्वतन्त्रता की आई बेला –
    गली-गली में, डगर डगर में
लिए हथेली पर सिर
    आगे बढ़ा शहीदों का जन मेला ।''[१२०]

५.५.५ राष्ट्रीय क्रांतिकारी भावना एवं राष्ट्रद्रोही तत्त्वों का विरोध

राष्ट्रवादी विचार-पक्ष का एक प्रकार है राष्ट्रीय क्रांतिकारी भावना एवं राष्ट्रद्रोही तत्त्वों का विरोध । 'सुमन' जी की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना की क्रांतिकारी भावन के दर्शन प्रखर एवं प्रबल रूप में होते हैं । इन्कलाब का ज्वालामुखी और स्वतंत्रता संग्राम का दावानल प्रलयंकारी एवं परिवर्तनकारी होता है । जल-स्थल और अम्बर, इन चारों दिशाओं में इन्कलाबी ज्वाला फैल रही है, अंग्रेजी शासन और अभिजात्य वर्ग के शोषण के विरूद्ध में यह इन्कलाबी लहर क्रांतिकारी रूप में फैली हुई है । 'सुमन' जी के शब्दों में यह क्रांतिकारी भावना देखिए –

''जल-थल-अम्बर में फैल रहा
यह कैसा हाहाकार प्रबल ?

किसका विनाश करने निकला
यह इन्कलाब का दावानल ?"[१२१]

जब सिर पर दुश्मन दस्तक दे रहा हो, देश पर संकट के बादल मंडरा रहे हो, देश मुसिबत में हो, और चारों ओर से दुश्मनों और हमलावरों का जाल बिछा हुआ हो तब मातृभूमि की आर्त पुकार स्वाभाविक है । तब हर देशवासी रणबांकुरों का कर्त्तव्य बनता है कि अपना सर्वस्व त्याग कर देश की सुरक्षा के लिए रणमैदान मे कूद पड़े। देश का पहरेदार हिमालय भी तब पुकार-पुकार कर आह्वान करता है, जब दुश्मन की ललकार कानों पर बार बार पड़ती हो तब देश का कण-कण पुकारता है । ऐसे समय में मातृभूमि की अवहेलना नहीं करनी चाहिए और मातृभूमि का कर्ज़ उतारने का अवसर प्राप्त कर लेना चाहिए । कवि के शब्द देखिए

"देखो कब से वृद्ध हिमालय
सर पर खड़ा पुकार रहा है
और उधर दुश्मन भी तनकर
बार-बार ललकार रहा है
आज न आगे बढ़ना करना अपनी माँ की अवहेला है
यह तो विप्लव की वेला है ।"[१२२]

स्वतंत्रता देवी का संदेशा सभी के घरों में पहुँच गया है । ऐसे स्वतंत्रता की लडाई के समय सच्ची परीक्षा देश के सपूतों और सैनिकों की होगी ऐसे अवसर पर सच्चा माता एवं मातृभूमि का सपूत वही है जो हँस हँसकर लड़ाई लड़ता है और वह भी निडरता से क्योंकि, यही

सच्चा अवसर विप्लव का होता है, कवि के शब्दों में राष्ट्रीय क्रांतिकारी भावना देखिए -

''आज संदेशा स्वतंत्रता का
पहुँच गया सब के घर घर है
किसमें कितना दम खम देखें
आज परीक्षा का अवसर है
माँ का पूत वही जो अपने प्राणों से हँस-हँस खेला है
यह तो विप्लव की वेला है ।''[१२३]

मातृभूमि अपने सच्चे सपूतों को सहायता के लिए पुकार रही होती है । और उसकी पुकार में आह्वान होता है और एक आदेश होता है कि अपने हाथों में शस्त्र पकड़ो और युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । सेनापति तैयार रहने के लिए कहता है, स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए अब देरी नहीं करनी चाहिए । लड़ने के लिए पूर्ण रूप से तैयार रहना चाहिए । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''माँ कब से खड़ी पुकार रही
पुत्रों ! निज कर में शस्त्र गहो
सेनापति की आवाज़ हुई
तैय्यार रहो, तैय्यार रहो
आओ तुम भी दो आज विदा
अब क्या अड़चन, अब क्या देरी
लो आज बज उठी रणभेरी !''[१२४]

'सुमन' जी अपने साथी को आह्वान करके कह उठते है कि तुम भी क्रांतिकुमारी की अनुचर बनकर रणचंडी बन जाओ । प्रलय का प्रबलराग गाकर राष्ट्रभक्ति का मन्त्र फूँक दो । यह कार्य ऐतिहासिक होगा क्योंकि तुम्हारी कुरबानी अमर बन जायेगी, इस लिए मेरा पथ नहीं रोको, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''तुम भी रणचंडी बन जाओ
मैं क्रांतिकुमारी का अनुचर
हो ध्वंस प्रलय का राग प्रबल
दो मन्त्र फूँक ऐसे सत्वर
इतिहासों के भी पन्नों में
हो जाय अमर यह कुरबानी
मेरा पथ मत रोको रानी ।''[१२५]

भारत स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा तब देश में चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ होगी । उपवनों में पुष्प खिल जायेंगे उसी समय ही हम मिलेंगे । 'सुमन' जी स्वतंत्रता के लिए अपनी व्यक्तिगत ज़िदंगी की कुरबानी देना चाहते हैं, 'सुमन' स्वतंत्रता संग्राम के लिए जेलवास भोग रहे है और प्राण करते हैं कि अपने प्रिय पात्र से स्वतंत्रता के बाद ही मिलन करना हैं, 'सुमन' जी की राष्ट्रीय भावना उनके ही शब्दो में देखिए -

''सुमन उपवन में खिलेंगे
और फिर हम तुम मिलेंगे
किन्तु जब हो जायगा हिन्दोस्ताँ आज़ाद
जेल में आती तुम्हारी याद ।''[१२६]

भारत के मुश्किल दौर में 'सुमन' जी भारतवासियों को जलती हुई मशाल बन जाने के लिए कहते है, वह मशाल जो राष्ट्रभक्ति की जागृति की होती है । वह मशाल बनने की सीख देते हैं जो दुश्मनों की छाती को हला दे । फ्रेक्टरीयों से फौलाद ढलने का आह्वान कर रहे हैं । ऐसा कार्य करो कि हिमालय की शीतल उच्छवासों से लावा उगले ऐसी क्रांतिकारी भावना 'सुमन' जी के शब्दों में -

''हम भारतवासी जलती हुई मशाल बने
हर क़दम-क़दम पर दुश्मन की छाती दहले
फ़ौलाद ढले, फैक्टरियों से फौलाद ढले ।

जय-हिन्द-हिमालय की शीतल उच्छ्वासों से
विस्फोटक, ज्वालामुखी दग्ध लावा उगले ।
फ़ौलाद ढले, फैक्टरियों से फ़ौलाद ढले ।''[१२७]

स्वतंत्रता की लड़ाई में बलिदान देनेवाले शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि देनी चाहिए । यह श्रद्धांजलि नवनिर्माण के रूप में हो यह आवश्यक है, क्योंकि आज़ादी के बाद नवनिर्माण ही देश की प्रमुख आवश्यकता एवं प्राथमिकता है । यह समय आत्म-निरीक्षण कर सर्वस्व समर्पण का है, जड़ता को उखाड़ कर फेंक दो यह क्रांतिकारी भावना 'सुमन' जी के शब्दों में -

''स्वतंत्रता पर बलि हो
आँसू से अपनी अंजुलि भर
आओ उनको श्रद्धांजलि दो ।
यह निर्माणों की वेला है ।

यह क्षण है आत्म निरीक्षण का
यह उत्सर्गों का मेला है ।
प्रण है सर्वस्व समर्पण का
जर्जर जड़ता की छाती पर
आत्माहूति चिन्गारी धर दो
आओ अपने सेनानी के
संकेतों पर न्यौछावर हो,
जागरण चुनौती देता है ।''[१२८]

एक क्रांतिकारी विचार यह भी है कि भारत की समग्र जनता में भयमुक्त वातावरण निर्माण हो, भारत में शोषणरहित समाज व्यवस्था स्थापित हो, भारत माँ का आँचल कलंक और दागरहित हो, जब तक भारत में समानता स्थापित न हो और उपरोक्त सभी संकल्प सिद्ध न हो जाय तब तक पल-भर भी आराम हराम करना चाहिए पंद्रह अगस्त के राष्ट्रीय पर्व पर ऐसा ही संकल्प करके क्रांतिमार्ग के वाहक बनना चाहिए, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जब तक जन-गण-मन जीवन में
शोषण तन्त्रों का लेष रहे,
तब तक भारत माँ के आँचल में
एक दाग भी शेष रहे
हम विरत न हो संकल्पों से
पलभर भी पथ पर नहीं थमें
पन्द्रह अगस्त की शपथ यही,
तब तक आराम हराम हमें ।''[१२९]

शान्ति, स्नेह, समानता घर-घर में हो और पूरे देश में श्रमण संस्कृति का बोलबाला रहे, तथा श्रम का मूल्य बढ़े जिसकी वज़ह से ही देश में विकास संभव है । भारत की मूल विचारधारा ओर गांधीवादी विचारधारा सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह से बड़ा कुछ नहीं है और भारत में उसकी विचारधारा सुदृढ़ हो यह आवश्यक है । इसके लिए भारत देश को वीर नहीं अपितु महावीर बनना पड़ेगा । 'सुमन' जी के शब्दो में यह क्रांतिकारी राष्ट्रीय भावना देखिए -

''शान्ति स्नेह-समता की घर-घर में पुकार हो
श्रम का मूल्य श्रमण संस्कृति का मूल सार हो ।
सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह से बड़ा वेष क्या ?
महावीर बन सके देश तो और शेष क्या ।''[१३०]

किसी भी राष्ट्र को अपने दुश्मनों से अधिक विश्वासघाती देशद्रोहियों से खतरा है । भारत को सोने की चीड़ीया कहा जाता था, भारत ऐश्वर्य से भरा पूरा देश था किन्तु राष्ट्रद्रोही और विश्वासघाती तत्त्वों के कारण विदेशी यहाँ आए और यहाँ के ऐश्वर्य को लूट गए । स्वर्ग समान इस देश को नर्क बना दिया । 'सुमन' जी के शब्दों में राष्ट्रद्रोहियों का विरोध देखिए -

''भूखी-सूखी स्वयं
शस्य-श्यामला बनी प्रतिपाला,
तन का स्नेह निचोड़
अँधेरे घर में किया उजाला ।

किन्तु कपूतों ने सब सपने
नष्ट-भ्रष्ट कर डाले,
स्वर्ग नर्क बन गया
पड़ गए जीने के भी लाले ।"[१३१]

भारत विभिन्नताओं से भरा देश है । यह भिन्नताएँ भाषा, धर्म, जाति आदि सभी में हैं इसलिए राष्ट्रद्रोही तत्त्व इसका फ़ायदा उठाकर लोगों में एक दूसरे के प्रति विषवमन करते हैं अतः आपस में कलह का निर्माण होता है । इस कलह के कारण ही भारत के बँटवारे की समस्या उत्पन्न हुई थी । लोगों के बीच आग लगाकर राष्ट्रद्रोही अपना स्वार्थ सिद्ध करके तमाशबीन बनकर देखते हैं, इन राष्ट्रद्रोहियों का विरोध 'सुमन' जी करते हैं, देश विद्वेषों की आग में जल रहा है, तब भी भारत की इस आग को बुझानेवाला कोई भी नहीं है । और इस आग को लगाने वाला अपना स्वार्थ सिद्ध करके दूर बैठकर तमाशा देख रहा है, यह करूणता और राष्ट्रद्रोही तत्त्वों का विरोध 'सुमन' जी के शब्दों में -

"दूर बैठकर ताप रहा है, आग लगाने वाला
मेरा देश जल रहा है, कोई नहीं बुझाने वाला ।"[१३२]

आज भाई-भाई आपस में लड़कर मर रहे हैं । हिन्दु और मुसलमानों के बीच विषवमन करनेवाले नेता राष्ट्रद्रोही हैं, ऐसे राष्ट्रद्रोही तत्त्वों के कारण ही बँटवारा भारत का हुआ था और इस बँटवारे में ही धार्मिक विद्वेष की समस्या पड़ी हुई है । ऐसे राष्ट्रद्रोही है नेता और वही लोग उॅच्च पदों पर बैठे है, वे ही न्याय करनेवाले बनकर बैठे हैं, ऐसे राष्ट्रविरोधी तत्त्वों का विरोध 'सुमन' जी के इन शब्दों में देखिए -

''पंच बना बैठा है, घर में, फूट डालने वाला
मेरा देश जल रहा कोई नहीं बुझाने वाला ।''[१३३]

जिस धरती की देखभाल की, जिस धरती को हराभरा बनाया उसी धरती पर कौन ऐसे राष्ट्रद्रोही हैं, जिन्होंने जहर उलीचा है ? 'सुमन' जी के शब्दों में राष्ट्रद्रोहियों के प्रति आक्रोश देखिए -

''जिस धरती को तन की
देखर खाद, खून से सींचा
अंकुर लेते समय, उसी पर
किसने जहर उलीचा ।''[१३४]

ऐसे राष्ट्रद्रोही तत्त्व कसाई के समान होते हैं, महात्मा गांधी जी की हत्या करने वाला राष्ट्रद्रोही गोड़से सचमुच ही एक कसाई ही था जिसने महामानव और मानवता के पूजारी ऐसे एक संत की गोली मारकर हत्या की थी, उस समय गांधी की हत्या एक गौ-वध के समान ही थी और उसको हम केवल देखते ही रहे, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''आश्चर्य पितामह की हत्या
कैसे सह ली तरूणाई ने !
हम खड़े देखते रहे
और गौ-वध कर दिया कसाई ने ।''[१३५]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' इस अराजकतापूर्ण वातावरण में राष्ट्र जागृति एवं जनजागृति का संदेश देते हैं । चारों ओर राष्ट्रद्रोही असुरों रूपी गिद्ध मँडरा रहे है । ऐसे विद्रोही भेड़िए घात लगाए बैठे हैं अपना

स्वार्थ साधने के हेतु इसलिए ऐसे तत्वों के प्रति राष्ट्र को सजग हो जाना चाहिए, राष्ट्र जागरण आवश्यक है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''गीध मँडरा रहे है इर्द–गिर्द घेरे में
मेड़िए घात लगाए हैं इस अँधेरे में,
बटोही एकबार खोके नहीं खोता है
जागकर एकबार राष्ट्र नहीं सोता है ।''[१३६]

राष्ट्रद्रोही तत्त्वों से हमे 'सुमन' जी सजगता की सीख देते हैं । राष्ट्र की भारत गिर न जाय इसलिए राष्ट्रद्रोहियों से सावधान रहना चाहिए क्योंकि लालबहादुर शास्त्री जैसा भगीरथ भी अब राष्ट्र के पास नहीं है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''रूष्ट शिव हो गए तो सृष्टि कौन रेलेगा ?
उमड़ी भागीरथी की धार कौन झेलेगा ?
चेतों जिससे न गिरे राष्ट्र कहीं गारत में
अब तो शास्त्री–सा भगीरथ भी नहीं भारत में ।''[१३७]

राष्ट्रद्रोहियों का उग्र विरोध करते हुए 'सुमन' जी अपनी राष्ट्रीय चेतना को इस प्रकार व्यक्त करते है, जिसमें वे राष्ट्रद्रोहियों के प्रति घृणा बताते हुए कहते हैं –

''बन गया माहौल सब अंधा बधिर, गूँगा
हाय, मेरे राष्ट्र को किस सांप ने सूँघा ?''[१३८]

अगर राष्ट्र में विश्वासघाती और देशद्रोही तत्त्व हैं तो यह हमारे लिए शर्म की बात है । जब तक देश में देशद्रोही–विद्रोही और

विरोधी तत्त्व मौजुद हैं तब तक देश विकास नहीं कर सकता और सुरक्षित नहीं रह सकता । ऐसे समय हमारी दिखावे की आन-बान और शान को लानत है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''लानत हमारी आन को
विश्वासघाती शान को
अपनी सभी को पड़ रही
किसकी करें हम भर्त्सना
उत्तेजना-उत्तेजना ।''[१३९]

५.५.६राष्ट्रीय ऐक्य की भावना

विभिन्नता वाले देश में एकता का होना आवश्यक है । विविधता में एकता हमारे देश की विशिष्टता है । और इस एकता की भावना को प्रेम, स्नेह और आपसी मतभेदों को मिटा देना चाहिए । 'सुमन' जी इस राष्ट्रीय ऐक्य की भावना को छोटे-मोटे भेद त्याग कर गंगा जी में बहा देने की सीख एवं संदेश देते हुए कहते है कि -

''छोटे-मोटे मतभेदों को
गंगा जी में बारो ।

जाति वर्ग की छोटी-मोटी
दीवारों को तोड़ो,
मानवता का फ़ार्म बनेगा
गोड़ो मिट्टी गोड़ो ।''[१४०]

इस ऐक्य की भावना को सुदृढ़ करने के लिए भेदभाव विमुक्त समाज की व्यवस्था आवश्यक है । 'सुमन' जी इसका संदेश देते हुए कहते है कि -

''युग के अगस्त्य को हिमालय दे राह और
महावीर की छलाँग हिमवान लाँघ जाय,
ऊर्ज्वसित भारत का भेदभावना विमुक्त
उत्सर्गी नया कौल नया सेतु बाँध जाय ।''[१४१]

'सुमन' जी संदेश देते हुए कहते हें कि प्रांतीयता, जातीयता, धार्मिकता और भाषायी भेदभाव मिटाकर अगर देश में ऐक्य की भावना नहीं लायी गई । अगर सभी देशवासी एक नही हुए तो नये संसार का निर्माण कैसे कर सकोगे ? 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''प्रांत, जातीयता, भाषा के भेद बस होंगे
अगर न आज हुए एक तो फिर कब होंगे
क्योंकि संसार नये सिरे से फिर बसाना है
मिटेंगे आज क्योंकि मिटने को मिटाना है ।''[१४२]

राष्ट्रीय एकता की भावना को सुदृढ़ करने के लिए उत्सवों और मेलों का महत्व है । और हमारा देश मेलों का और उत्सवों का है, देश है इसलिए उनसे ऐक्य की भावना सुदृढ़ होती है, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''बहुत बड़ा महात्म्य
होता इन मेलों का
दिखता है देश एक
अपनी अनेकता में ।''[१४३]

५.५.७प्रगतिवादी राष्ट्रीयता

'सुमन' जी एक प्रगतिवादी कवि भी है । उनकी कविताओं में 'सुमन' जी के प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन भी होते हैं । प्रगतिवादी विचार राष्ट्रीय विचारधारा के साथ दिखाई देते है । 'सुमन' आम आदमी, दलित, पीड़ित, व्यक्ति को खुशहाली में राष्ट्र की खुशहाली मानते हैं । अगर राष्ट्र का एक भी नागरिक पीड़ित एवं शोषित है , जब तक देश में शोषण का चक्र विद्यमान हो तब तक विकास, प्रगति, खुशहाली नहीं आ सकती । 'सुमन' जी अपने प्रगतिवादी विचारों की शक्ति से शोषणमुक्त राष्ट्र बनाना चाहते हैं यही उनकी प्रगतिवादी राष्ट्रीयता है । हमारा भारत कोटि- कोटि लोगों का नायक है, संपूर्ण देश की मूक, पंगु और आम जनता की आशा एवं भाग्य विधायक है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''भारत मेरे !
चालिस कोटि जनों के नायक
देश देश की मूक-पंगु
जनता की आशा, भाग्य विधायक ।''[१४४]

'सुमन'जी मिलकर, हाथ बढ़ाकर, हाथ बँटाकर देश के दलितो और मज़दूरो का विकास करना चाहते हैं । इन लोगों को आजतक असंख्य रूप में अपमान के घूँट पीने पड़े है । भूख, गरीबी, परवशता का जो पाप है वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ही तरह हैं, वह दूर होगा तभी देश प्रगति एवं विकास करके खुशहाल बन सकेगा । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''हाथ बढ़ाओ, लो मशाल, आगे बढ़ जाओ
दुनिया भर के पददलितों का हाथ बटाओ
तुम सा कुचला गया
विश्व में कौन दूसरा ?
तुम सा अपमानित
दुनिया में कौन दूसरा ?
ध्यान रहे -
सब पाप तुम्हारे ही सिर होगा
दलित विश्व की भूख, गरीबी, परवशता का,
क्योंकि आज तुम केन्द्र-बिन्दु हो
उसी तरह जिस तरह ब्रिटिश साम्राज्य यह ।''[१४५]

जब देश के लोग आपस में लड़ रहे थे तब देश बाहर जावा-सुमात्रा में जागृति का ब्युगुल बज चुका था, वहाँ प्रगतिवादी युद्ध में विजय प्राप्त हो रही थी; दलितों, पिछड़ों ओर मज़दूरों को अपना अधिकार प्राप्त हो रहा था । अगर इस तरह देश के लोग आपस में लड़ते रहे तो समाजवादी उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकेंगे । कल स्वतंत्रता के सैनिक इसका जवाब मांगेंगे, कि जब समाजवादी जागृति का आन्दोलन चल रहा था तब तुम लोग आपस में क्यों लड़ रहे थे ? 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''कल स्वतंत्रता के सैनिक
संकेत करेंगे
यही कहेंगे
जब नव-जीवन ज्योति जगी थी

घर-घर भीषण आग लगी थी
आपस में लड़त ही ये रह गए अभागे
सोते ही रह गए, जिस समय जावा और सुमात्रा जागे ।''[१४६]

गुलामी की जो कालिख है उसको लाल रंग से धोने की सलाह देते 'सुमन'जी कहते हैं कि सदियों के इस कलंक को ढोते आए हैं, उसको लाल रंग से अर्थात् प्रगतिवादी और समाजवादी विचार जागृति से धो देना चाहिए । 'सुमन' जी के शब्दों में प्रगतिवादी राष्ट्रीयता देखिए -

''आज गुलामी की कालिख को
अपने लाल रक्त से धो दो
सदियों का यह मैल पुराना हो
पानी से धुल न सकेगा, धुल न सकेगा
बुरा दाग़ है, बुरा दाग़ है ।''[१४७]

इस प्रकार सुमन'जी ने राष्ट्रवाद में भी प्रगतिवादी विचारधारा को सम्मिलित करके, प्रगतिवादी राष्ट्रीयता की नई राह दिखाई है । 'सुमन' जी समाजवाद, प्रगतिवाद और राष्ट्रवाद का सुमन समन्वय करके अपनी राष्ट्र भावना और राष्ट्रवादी विचार-पक्ष में सुवर्ण में सुगंध भर देने का कार्य किया है ।

५.६ 'सुमन' काव्य के राष्ट्रवाद विचार-पक्ष की प्रासंगिकता

विश्व का कोई भी साहित्य हमेशा प्रासंगिक रहता ही है, उनमें व्यक्त विचार हर काल में हर समय हर व्यक्ति और समाज के लिए मार्गदर्शन का कार्य करते रहते है । साहित्य और साहित्यकार तथा उनमे व्यक्त विचारधारा जब तक शोषणमुक्त समाज न बन जाए तब तक और समाज में समानता, शांति

और समृद्धि न आ जाए तब तक प्रासंगिक बने रहते हैं । 'सुमन' जी का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष इस दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है जितना उनके समय में था ।

आज भी जातिवादी, भाषावादी, प्रांतवादी लड़ाई-झगड़े चल रहे है, उसका रूप अवश्य बदला है । इसमें भ्रष्ट राजनेता और भ्रष्ट राजनीति साथ दे रहे हैं । स्वार्थ, अहम् और ईर्षा की राजनीति के कारण तथा सबसे खतरनाक ऐसी वोट बेंक की राजनीति के कारण देश में वैमनस्य फैल रहा है । भारत की चारों दिशाओं पर दुश्मनों की गश्त लगी रहती है । आंतकवादी हमले आए दिन हो रहे हैं और उसमें निर्दोष जनता मर रही है, इन सबके बावजूद भी आंतकवाद के विरूद्ध कोई ठोस कदम नही उठाए जा रहे, क्योंकि मूल में है वोटबैन्क की गंदी राजनीति । सभी राजकीय दलों को लगता है कि आतंकवाद के विरूद्ध ठोस कदम उठाने से अल्यसंख्यक समुदाय नाराज़ हो जाए । और उनका जनाधार एवं वोटबेंक खिसक जाएगा, जिसके कारण सभी राजनेता और राजकीय दल कुछ गुन्हेगार अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के कारण आतंकवाद के खिलाफ़ कोई बोलता नहीं है, न तो कड़े कदम उठाये जा रहे हैं । संसद पर हमला करनेवालों को सर्वोच्च न्यायालय में फाँसी की सज़ा सुनाई जाती है । लेकिन सरकार में बैठे राजकीय दलों के दबाव के कारण उसे फाँसी नहीं दी जा रही है । ऐसे घोर अंधकारपूर्ण समय में देश की अखंडता और सुरक्षा दांव पर है, लोग और पूरा देश मानो लग रहा है कि भगवान के भरोसे ही चल रहा है । ऐसे समय में सुमन के राष्ट्रवादी विचार-पक्ष में व्यस्त राष्ट्रवादी भावना एवं विचारधारा मील का पत्थर बन सकती है । इसमें से मार्गदर्शन एवं जागृति का संदेश मिल सकता है । 'सुमन' जी के राष्ट्रवादी विचारों से राष्ट्रीय भावना को ओर भी मज़बुत बनाया जा सकता है, इस दृष्टि से आज भी 'सुमन' जी के काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष प्रासंगिक है ।

'सुमन' जी ने देशद्रोही, राष्ट्रविरोधी तत्त्वों, भ्रष्टाचारियों की खूब प्रताड़ना की है, उनका जमकर विरोध किया है । उनके ऐसे विचारों की आज अधिक आवश्यकता है क्योंकि आज गरीब और मध्यवर्ग की स्थिति अत्यंत, दयाजनक है । धनिक वर्ग ओर धनिक होता जा रहा है जिसके कारण समाज में अनैतिकता का दूषण अधिक बलवती रूप में समाज और देश में घुस कर देश और समाज को खोखला बना रहा है । भोगवादी सभ्यता के कारण लोगों को धनोपार्जन के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता जिसके कारण लोग अधिक से अधिक धनोपार्जन के लिए भ्रष्टाचारी एवं अनैतिक धंधा करने से जरा भी शर्म या संकोच नहीं अनुभव करते । व्यापारी अधिक मुनाफा कमाने के लिए संग्रहखोरी करते हैं, कालाबाज़ारी करते हैं, उसमें गरीब, मध्यवर्गीय जनता पिसी जा रही है । समाज में जानबुझ कर जीवनावश्यक चीजों की अभावग्रस्त स्थिति का निर्माण करके भ्रष्टाचार एवं कालाबाज़ार किया जा रहा है । सरकार इसको रोकने के लिए कुछ भी नहीं करती क्योंकि सरकार में बैठे नेताओं का ऐसे लोगों को सहकार प्राप्त होता है । इसलिए महंगाई दिनोदिन बढ़ रही है । ऐसे समय में रोज़गार घट रहा है, लोगों की आय घट रही है । किसानों को उसका उचित मूल्य नहीं मिलता दलालों के पास गाढ़ी कमाई चली जाती है । ऐसे वातावरण के कारण देश की आर्थिक परिस्थितियाँ डाँवा-डोल हो रही है । ऐसी स्थितियों के बिच 'सुमन' जी के राष्ट्रवादी विचार हमारा मार्गदर्शन करके हमारे जीवन में, समाज में देश के प्रति प्रेम भावना को दृढ करके देश को ओर मज़बुत बना सकते हैं । 'सुमन' जी के काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष इस दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है ।

इस प्रकार 'सुमन'जी की कविताओं में व्यक्त राष्ट्रवादी विचार-पक्ष भारत की वर्तमान अराजकता, अव्यवस्थापूर्ण स्थिति में खारे जल में शीतल जल की बावड़ी जैसा कार्य कर सकता है । देशभक्ति की भावना को दृढ़ बनाकर लोगों में राष्ट्रीयभाव एवं ऐक्य उत्पन्न कर सकते हैं । धार्मिक लड़ाई-झगडों के इस दौर में 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त राष्ट्रीय विचार हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं । इस तरह 'सुमन' जी के काव्य का राष्ट्रवादी विचार-पक्ष आज भी प्रासंगिक है ।

५.७ निष्कर्ष

शिवमंगल सिंह 'सुमन' साहित्यकारो की पंक्ति में ऐसे कवि हैं जिनकी कलम हमेशा दीन, दलित एवं सामान्यजन के पक्ष में ही रही है । प्रगतिवादी, सामाजिक एवं अन्य विचारों के साथ-साथ राष्ट्रवादी विचार-पक्ष के लिए भी 'सुमन' जी की कलम प्रभावशाली रूप से चली है । 'सुमन' जी एक राष्ट्रवादी कवि भी हैं । 'सुमन' जी ने भारत की संस्कृति सभ्यता और भारत के गौरवपूर्ण इतिहास का गौरवगान गाया है । भारत की सत्य, अहिंसा भारत के उच्चतम मूल्य एवं गुण आदि का गौरवपूर्ण उल्लेख करके भारत के भव्य भूतकाल का गौरव गाया है । भारत की ऐतिहासिक धरोहर का गौरवपूर्ण गान करके अपने राष्ट्रवादी विचार-पक्ष को दृढ़ता से प्रस्तुत किया है । 'सुमन' जी ने भारत को परंपराओं, सांस्कृतिक विचारों और भारत के इतिहास का सम्मान करके मा भारती के प्रति सम्मान प्रेमपूर्ण भावना को व्यक्त किया है, इसे वे सुंदर भावनामय शैली से प्रस्तुत करके सफल हो सके है ।

राष्ट्र के महामानवों, राष्ट्रनायकों, राष्ट्रनेताओं एवं भारत के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के कारण भी राष्ट्र को विकास का अवसर मिलता हे । राष्ट्रनायकों के द्वारा विश्व मंच पर राष्ट्र को गौरवान्वित स्थान मिलता है, इस तरह वे राष्ट्र निष्ठा को उजागर करते हैं । ऐसे महामानवों की प्रशस्ति करके भी राष्ट्र के प्रति निष्ठा प्रदर्शित की जा सकती है । 'सुमन' ने भी महात्मा गांधी जी की विचारधारा और उनका सम्मान करके उनके द्वारा देश हित के विचार अपनी कविताओं में रखे है । नेहरू जी की प्रशस्ति भी की गई है । भारत को मज़बुती प्रदान करने वाले महान राष्ट्रनेता ऐसे भारत माता के सपूत लालबहादुर शास्त्री के प्रति सम्मान की भावना प्रकट करके राष्ट्रभक्ति पूर्ण भावना को प्रकट किया है । भारत की निरक्षरता को दूर करने में और शिक्षा क्षेत्र में योगदान के लिए मदन मोहन मालवीय जी के प्रति भी सम्मान की भावना प्रकट करके 'सुमन' जी ने राष्ट्रभावना प्रदर्शित की है ।

कोई भी राष्ट्र आत्म समर्पण एवं बलिदान की भावना के बिना विकास नही कर सकता अगर राष्ट्र को दृढ़ता प्रदान करनी है तो राष्ट्र के जन-जन के हृदयों में राष्ट्रभक्ति और राष्ट्र के प्रति आत्म सम्मान, आत्म समर्पण एवं बलिदान की भावना को जागृत करना होगा । ऐसा राष्ट्रीय निष्ठापूर्ण संदेश 'सुमन' जी ने अपनी कविताओं में दिया है । इसके साथ-साथ राष्ट्रद्रोही तत्त्वों का विरोध करके उनके प्रति सावधान रहने की भी सीख दी है, इसके लिए क्रांतिकारी भावो को उजागर करके भारत की सुरक्षा को सृदृढ़ करने का संदेश भी दिया है । प्रगतिवादी विचारों के माध्यम से जन-साधारण को खुशहाल बनाकर भारत को खुशहाल बनाने का स्वप्न सुमन ने देखा है, यह उनकी

प्रगतिवादी राष्ट्रीयता हमारे जनतांत्रिक देश के विकास और उसकी खुशहाली के लिए मददगार सिद्ध हो सकती है । प्रगतिवादी राष्ट्रीयता की भावना से भारतीय समाज में समानता का लाकर भारत को मज़बुत बना सकते हैं, ऐसा 'सुमन' जी का मानना है । इस प्रकार 'सुमन' जी राष्ट्रवादी विचार-पक्ष की प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं ।

संदर्भसूची

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१.	'मनुस्मृति'	गीता प्रेस, गोरखपुर	०९-२५
२.	'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी'	एस. मोनियर विलियम्स	४२६
३.	'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी'	वामन शिवराम आप्टे	४६९
४.	'यजुर्वेद' (दशमाध्याय)	शारदापीठ प्रकाशन्, द्वारका	०२
५.	'यजुर्वेद' (दशमाध्याय)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	०३
६.	'श्री सूक्तम्'	'पांडुरंगशास्त्री आठवले	१८६
७.	'अथर्ववेद'	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	३.४
८.	'ऋवेद'	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	१०.१७४
९.	'यजुर्वेद'	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	२.७.११.१३
१०.	'संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना'	हरिनारायण दीक्षित	०३-०४
११.	'यजुर्वेद' (२२.२२ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
१२.	'अथर्ववेद' (६.७८.२ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
१३.	'बृहत् हिन्दीकोश'	संपादक, कालिकाप्रसाद	११५२
१४.	'मानक हिन्दी कोश'	संपादक, आ. रामचन्द्र वर्मा	५०५
१५.	'राजनीति-विज्ञान के सिद्धांत' (द्वितीय खण्ड)	पुखराज जैन	२१
१६.	'राजनीति-विज्ञान के मूलतत्व'	जी.डी. तिवारी	६९
१७.	'नालंदा विशाल शब्दसागर'	संपादक - नवल जी	११२
१८.	'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' - पत्रिका	१८, अगस्त, १९६३	०६
१९.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	२२९
२०.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	२३२
२१.	'साहित्य शोध समीक्षा'	डॉ. विनयमोहन शर्मा	०४
२२.	'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध'	आ. नंददुलारे वाजपेयी	०२
२३.	'हमारी राष्ट्रीयता'	श्री मा.स.गोलवलकर जी	३२

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
२४.	'आक्सफर्ड इंग्लिश डिक्शनरी'	आक्सफर्ड प्रेस	०९
२५.	'पोलिटिक्ल साइंस एण्ड कॉन्स्टिट्युशनल लॉ. (वोल्यु.०१)	प्रा. बर्गेस	०१
२६.	'जे.के.:थियरी ऑफ मॉर्डन स्टेट'	ब्लुंटश्ली	९०
२७.	'दि प्रॉस्पेक्ट्स ऑफ डेमोक्रेसी एण्ड अदर एस्सेज़'	जिमर्न ऑल्फ्रेड़	८४
२८.	'इम्प्रेशन ऑफ साउथ अफ्रिका'	ब्राइस	३२
२९.	'फ्रॉम एम्पायर टु नेशन	रूपर्ट एमर्सन	९५
३०.	'जे. मार्क्सिज़म एण्ड क्वेशन ऑफ नेश्नालिटिज़'	स्टालिन	०६
३१.	'राष्ट्रीयता की अवधारणा और पं. श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य'	डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य	१९
३२.	'कविन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर'	श.प्र. कानिटकर	१२०
३३.	'हिन्दी राष्ट्रभाषाभारती' ('कल्पवृक्ष' निबंध वा. श. अग्रवाल)	संपादक शशिशेखर	५५-५९
३४.	'नया हिन्दी काव्य'	डॉ. शिवकुमार मिश्र	४३
३५.	'भारत की मौलिक एकता'	वासुदेवशरण अग्रवाल	७६
३६.	'मानक हिन्दी कोश' (एफ.सेल)	प्र. संपा. रामचन्द्र वर्मा	५०५
३७.	'सरस्वती' (पत्रिका) (न.वि. गोडगिल के विचार) मई-१९६३	संपा. श्रीनारायण चतुर्वेदी	४२१
३८.	'साहित्य देवता'	माखनलाल चतुर्वेदी	१०-११
३९.	'हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना' (अ. ०१)	विधानाथ गुप्त	०२
४०.	'धर्मयुग' (पत्रिका), ०१ से १५	मार्च - १९९२	१५
४१.	'हिन्दुस्तान' (पत्रिका) 'राष्ट्र की आवश्यकता'	चतुर्वेदी जी ०८, अक्तूबर १९६१, रविवार	

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
४२.	'पोलिकिटल आइडियल्स'	सी.डी. बर्न्स	१७९-१८१
४३.	युरोपियन आइड्योलोजिस	थर्स्टन वी.कालिजरी	५४४
४४.	'राष्ट्रीयता'	श्री गुलाबराय	१५
४५.	'राष्ट्रीयता'	विनोबाभावे	८३
४६.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	१७०
४७.	काव्य मंजूषा	संपादक कन्हैयालाल वर्मा	१६
४८.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	४३
४९.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	४४
५०.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	५७
५१.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	८०
५२.	'काव्य मंजूषा'	संपादक कन्हैयालाल वर्मा	५६
५३.	'काव्य मंजूषा'	संपादक कन्हैयालाल वर्मा	६७
५४.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	६७
५५.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	६३
५६.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	६४
५७.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	११६
५८.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	१४७-१४९
५९.	'सुमन समग्र' ०१ जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३७
६०.	'सुमन समग्र' ०१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७६-१७८
६१.	'सुमन समग्र' ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३६
६२.	'सुमन समग्र' ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४८
६३.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९२-९३
६४.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१११

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
६५.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४०
६६.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६३-२६४
६७.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२२-३२३
६८.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४-३२५
६९.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३१
७०.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३१
७१.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२
७२.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३
७३.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८८-८९-९०
७४.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८८
७५.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२
७६.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३
७७.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८८
७८.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९७
७९.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०१
८०.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०२
८१.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५७
८२.	'सुमन समग्र-०१' 'जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२३
८३.	'सुमन समग्र-०१' 'जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२५
८४.	'सुमन समग्र-०१' 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६३
८५.	'सुमन समग्र-०१' 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	४७
८६.	'सुमन समग-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१३

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
८७.	'सुमन समग-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६७
८८.	'सुमन समग-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१८
८९.	'सुमन समग्र' ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४३
९०.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६५
९१.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६६
९२.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६८
९३.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५०-३५१
९४.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५२
९५.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५७
९६.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५७
९७.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३६०
९८.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५९
९९.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५६
१००.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३६१
१०१.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२८
१०२.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३१
१०३.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२८
१०४.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२९
१०५.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७५
१०६.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७८-१७९
१०७.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२१-३२२

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१०८.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०५
१०९.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९९
११०.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६१
१११.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९१
११२.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९२-१९३
११३.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९५-१९६
११४.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९९
११५.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४
११६.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९४
११७.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९५-९६
११८.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९९-१००
११९.	'सुमन समग्र' ०१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८९
१२०.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३६
१२१.	'सुमन समग्र-०१' 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	७६
१२२.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९४
१२३.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९४
१२४.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९५
१२५.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११५
१२६.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३६
१२७.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९२-१९३
१२८.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१२९.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४-३२५
१३०.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३१
१३१.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५१
१३२.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५३
१३३.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५४
१३४.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५५
१३५.	'सुमन समग्र ०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३६०
१३६.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१५
१३७.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१७
१३८.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३९
१३९.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४८-२४९
१४०.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्धय हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६२
१४१.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९८
१४२.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१६
१४३.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२२०
१४४.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३६
१४५.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३७

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१४६.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३८
१४७.	'सुमन समग्र ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३९

षष्ठ अध्याय

''सुमन'' के काव्य का प्रगतिवादी विचार-पक्ष''

६.१ भूमिका

६.२ प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि

६.३ प्रगतिवाद का स्वरूप और विकास

६.३.१ 'प्रगतिवाद' का नामकरण और व्याख्या

६.३.२ प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन और उद्देश्य

६.३.२.१ प्रथम अधिवेशन

६.३.२.२ द्वितीय अधिवेशन

६.३.२.३ तृतीय अधिवेशन

६.३.२.४ चतुर्थ अधिवेशन

६.३.२.५ पंचम और षष्ठ अधिवेशन

६.३.३ प्रगतिवादी आंदोलन का कालविभाजन

६.३.३.१ प्रथम चरण

६.३.३.२ द्वितीय चरण

६.३.३.३ तृतीय चरण

६.३.३.४ चतुर्थ चरण

६.३.४ प्रगतिवाद की विशेषताएँ

६.३.५ प्रगतिवाद : उपलब्धियाँ एवं परिसीमाएँ

६.४ हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा

६.५ 'सुमन' के काव्य का प्रगतिवादी विचार-पक्ष

६.५.१ सृष्टि की उत्पत्ति और ईश्वरीय सत्ता संबंधी विचार

६.५.२ नाश एवं निर्माण संबंधी मान्यताएँ

६.५.३ रूढ़ीवाद और वर्ण-वर्ग विषमता का विरोध

६.५.४ अर्थोधार, सामाजिक चेतना और कला

६.५.५ साम्यवादी शासन प्रणाली की प्रशंसा एवं समर्थन

६.५.६ साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का विरोध

६.५.७ शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति संवेदनशीलता एवं जागृति का संदेश

६.५.८ समसामयिक समस्याओं का आलेखन

६.५.८.१ बंगाल का भयानक अकाल

६.५.८.२ महात्मा गांधी की हत्या

६.५.९ आस्था और विश्वास का स्वर

६.५.१० क्रांति चेतना

६.५.११ आधुनिकता, नवीनता एवं परिवर्तन का समर्थन

६.६ 'सुमन' काव्य के प्रगतिवादी विचार-पक्ष की प्रासंगिकता

६.७ निष्कर्ष

❍ संदर्भ सूचि

६.१ भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् १९०० ई.स. आज तक का समय 'आधुनिक काल' के नाम से जाना जाता है । आधुनिक काल सही रूप में हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाना चाहिए । क्योंकि इसी काल के समय अनेक साहित्यिक विद्याओं का प्रणयन हुआ और परंपरित साहित्य विधाओं का विकास हुआ । काव्य विधा खड़ी बोली हिन्दी के साथ और विकसित हुई तो गद्य की अनेक विधाओं का प्रणयन हुआ गद्य में कहानी, नाटक उपन्यास, निबंध, रीपोताज, पत्र साहित्य आदि विधाओं का प्रणयन हुआ । काव्य विधा में भी अनेक नई-नई विचार धाराओं का प्रणयन हुआ । विज्ञान एवं तकनीकी विकास के कारण मुद्रणकला का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप अनेक पत्र-पत्रिकाओ का जन्म हुआ और इसके कारण नई-नई साहित्य विधाओं का आगमन एवं विकास हुआ ।

हिन्दी साहित्य में काव्य विधा ऐसी विधा है कि जो आदिकाल से लेकर आज तक अधिक विकसित रही है । वृहद साहित्य सृजन काव्यविधा में रहा है । काव्य हर साहित्यकार की पसंदीदा साहित्य विधा रही है । साहित्य में काव्य की अपभ्रंष पाली प्राकृत आदि भाषाएँ रही, साथ में व्रज, अवधि आदि काव्य भाषाएँ भी रही है । बाद में खड़ीबोली का प्रणयन हुआ । खड़ीबोली के कारण काव्यविधा जन-जन तक पहुँची ।

काव्यविधा के अंतर्गत अनेक कवियों ने अनेक विचारधाराएँ अपनायी और उनके माध्यम से जनजागरण हुआ । काव्य ने नवजागरण काल में भारत की जनता में जागृति और आस्था के बीज बोए । स्वतंत्रता संग्राम में कविता

के माध्यम से जनता का जागरण हुआ । इस समय के दौरान काव्य में अनेक विचारधाराएँ आयी । छायावाद, गाँधीवाद, हालावाद, अध्यात्मवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, वास्तववाद, आदर्शवाद, राष्ट्रवाद इत्यादि अनेक धाराओं से कविता समृद्ध हुई ।

सन् १९१८ ई.स. आजतक काव्यविधा परिवर्तनशील एवं प्रयोगशील रही है । इस समय के दौरान काव्यविधा में अनेक आंदोलन चले हैं । नवजागरण का प्रभाव भी इनमें परिलक्षित होता है । छायावादी काव्यांदोलन बीस साल तक चला और उसके बाद प्रगतिवादी काव्यांदोलन आया ।

प्रगतिवादी काव्यांदोलन एक वैचारिक आंदोलन था । मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित यह आंदोलन जनसमाज की नब्ज़ को पहँचाननेवाला यथार्थवादी वास्तविक धरातल का आंदोलन था । प्रगतिवादी काव्यांदोलन न केवल काव्यविधा मे ही आया बल्कि उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि सभी विधाओं में आया । प्रगतिवाद वास्तविक धरा पर स्थित था ।

इस अध्याय में हम शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में व्यक्त प्रगतिवादी विचार-पक्ष के संदर्भ में चर्चा करेंगे । शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य के प्रगतिवादी विचार-पक्ष को समझने से पहले यह आवश्यक है कि प्रगतिवाद का पूर्ण परिचय प्राप्त हो । इस हेतु यहाँ हम सर्वप्रथम प्रगतिवाद का तर्कसंगत और तलस्पर्शी अध्ययन करके चर्चा करेंगे और उसके आधार पर 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त प्रगतिवादी विचार-पक्ष के संबंध में अध्ययन करके चर्चा करेंगे ।

६.२ प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि

हिन्दी के आधुनिककाल का इतिहास अनेक विचारधाराओं, अनेक वादों से भरा पड़ा है । सन् १९१८-२० ई. चला और सन् १९३८-४० में समाप्त हो गया । छायावाद की कल्पना की उड़ाने जनसमाज को रास नहीं आयी क्योंकि देश में गरीबी, बेरोज़गारी, अराजकता, शोषणचक्र अपनी मर्यादा को पार कर रहा था । देश की आधे से अधिक जनसंख्या जीवन के वजूद के लिए संघर्ष कर रही हो ऐसे वातावरण में केवल कल्पनाजनित भावना से भरपुर जो वास्तविक जीवन, ज़मीनी हकीकत से कोसों दूर हो वह कैसे स्वीकार्य हो सकता है ।

छायावाद ज़मीनी हकीकत से दूर था । केवल कल्पना की उड़ान थी । छायावाद की वास्तविकता से दूर विचारधारा जनसामान्य को रास न आयेगी देश आज़ादी की लड़ाई में जुलस रहा था, देश में अनेक सामाजिक समस्याएँ थी ऐसे वातावरण में केवल 'कविता कविता के लिए ही है', - यह सिद्धांत गलत साबित हो गया । भूखमरे की स्थिति के बीच शोषण की अमर्यादित प्रवृत्ति से लड़नेवाली विचारधारा की आवश्यकता थी, इसकी पूर्ति लोगों को केवल प्रगतिवादी विचारधारा में ही दिखाई दी । मार्क्सवादी विचारधारा ही समाज की सही दिशा तय करेंगे । ऐसा वातावरण बनने लगा । पंत की 'युगान्त' रचना ने छायावादी युग के अंत की घोषणा कर दी थी । सन् १९३६ ई. मे प्रगतिशील लेखक संघ ने भारत मे प्रगतिवादी युग की नींव रख दी थी । बच्चनसिंह इस संबंध में लिखते है कि "स्वतंत्र भारत में समाजवाद के मिथक और पूँजीवादी शिकंजे में पिसता हुआ व्यक्ति अजनबीयत का शिकार हो गया । किन्तु एकबार फिर नव्य-प्रगतिवादी साहित्य जिसे जनवादी साहित्य भी कहा जा सकता है,

उभर कर सामने आया है । जनता को महसूस होने लगा है कि इस बदलाव के अभाव में निज़ाद नहीं मिल सकती ।"[१]

डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का मत है कि - "छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं के ज़रिये सांस्कृतिक परिवेश में युग-जीवन को उद्‌घाटित तो किया, लेकिन उसकी आधार-भूमि मुख्य रूप से कल्पनात्मक, आदर्शात्मक, भावनात्मक एवं रहत्यात्मक ही अधिक रही । साहित्य किसके लिए ? इसका वह कहीं उत्तर नहीं देता । सत्य तो यह है कि व्यक्तिवादिता कविता पर इस कदर हावी हो गयी थी कि उसी के घेरे में घिरी कविता दिनो-दिन सामान्य जनता से कटती चली जा रही थी ।**...** सामान्य जनता तथा उसकी समस्याओं से दूर, युगीन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ कल्पना और व्यक्तिवादिता के नशे मे चूर, रहस्य एवं अध्यात्म की खाल ओढ़े, सामान्य जनता से कही छायावादी कविता को युग की जागरूक चेतना स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी फलतः प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक ही था । और हुआ भी यही । कहना न होगा कि छायावाद के अवसान के यही प्रमुख कारण भी बने ।"[२]

छायावादी कविता आम जनसमाज के विरूद्ध थी । अपने अंतिम समय में छायावादी कविता चरमोत्त्कर्ष पर थी । लेकिन उसके पाँव धरती पर न होकर आसमान में थे । डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय इस संबंध में लिखते हैं कि "अपने अंतिम समय में छायावादी कविता की कल्पना एव उसकी रूपायितता अपनी अतिवादिता के चरमोत्त्कर्ष पर पहुँच गयी थी । जीवन एवं समाज की बाह्य वास्तविकताओं से उसका सम्बन्ध-विच्छेद सा हो गया था । कविता यथार्थजीवी न होकर कल्पनाजीवी हो गयी थी । कवि वस्तुस्थिति का पूर्ण रूप न प्रकटकर

उसे कल्पना के आवरण पहनकर उद्‌घाटित करता था । उसमें भी उसकी स्व-अनुभूतियों एवं भावनाओं की ही प्रधानता रहती थी ।''[३]

छायावादी कविता आम जनसमाज से दूर होती गई । साहित्य जनसमाज का आईना होता है । उसका सरोकार समाज से होना चाहिए, पर यह कविता बिल्कुल समाज से दूर होती दिखाई दी । छायावादी कविता की इस कमी को प्रगतिवाद ही पूरी कर सकता था । प्रगतिवाद में लोगों को उस कमी की पूर्ति दिखाई दी । पन्त जी ने 'युगान्त' से छायावादी युग के पतन और प्रगतिवादी कविता के उदय को दिखाया था । निराला जी ने 'बादलराग' के माध्यम से और 'भिक्षुक' कविता जैसी कविता के माध्यम से प्रगतिवादी कविता के बीज बो दिए थे । महादेवी जी मे भी प्रगतिवाद के उदय का संकेत दिया था ।

शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि - ''सन् १९३६ के आसपास फैलनेवाला समाजवादी प्रभाव, दूसरा महायुद्ध उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न आर्थिक - राजनीतिक संकट, महँगाई, बेकारी, सन् १९४२ की क्रांति, उसका दमन, मजदूरों की ऐतिहासिक हडतालें, किसानों के जागृत अभिमान और सबसे बढ़कर बंगाल का अकाल आदि वे कारण हैं जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को नयी गति देकर, उसे अधिक सचेष्टता से मात्र राजनीतिक ही नहीं प्रत्युत आर्थिक स्वाधीनता के लिए भी सक्रिय रूप से प्रयत्नशील होने को बाध्य किया ।''[४]

ये विषम परिस्थितियाँ भी प्रगतिवाद के उदय का कारण बनी । साहित्यकार इसके प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता था ? डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय लिखते हैं कि मार्कसवादी विचारधारा प्रमुख रूप से प्रगतिवादी काव्य के मूल में सन्निहित थी । उनके शब्द देखिए - ''सन् १९३० के आसपास

मार्क्सवादी-समाजवादी विचारधारा का प्रभाव भारत ही नहीं अपितु समूचे विश्व पर व्यापक रूप से पड़ा । एक तरफ उसने राष्ट्रीय आन्दोलन एवं नेताओं को प्रभावित किया तो दूसरी ओर सामान्य जन-जीवन पर भी अपना प्रभाव छोड़ते हुए उनमें नयी चेतना जगायी तथा उन्हें नयी दिशा का संकेत दिया । युग की परिवर्तित परिस्थितियों एवं घटनाओं के बीच यह विचारधारा इतनी वैज्ञानिक एवं प्रभावशाली प्रतीत हुई कि देश या ज्ञान का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा, जो इससे प्रभावित न हुआ हो । फिर साहित्य कैसे अप्रभावित रहता ? कल्पना एवं रूमानियत को इस विचारधारा ने त्याज़्य माना और यथार्थ उसका प्रिय बना । परिणाम स्वरूप साहित्य में भी यथार्थ का आगमन हुआ । 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना का मूल आधार भी यथार्थ का आग्रह रहा है । प्रगतिवादी काव्यधारा का मूल उद्देश्य भी सामाजिक यथार्थ का अंकन रहा है । काव्य के क्षेत्र में पंत एवं निराला तथा गद्य के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद इस विचारधारा से सर्वाधिक प्रभावित हुए और इस विचारधारा के प्रगतिशील तत्त्वों को ग्रहण कर उसे काव्य के माध्यम से रचनात्मक रूप प्रदान कर समाज-विकास एवं नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में अपना योग दिया ।''[५]

पेरिस में सन् १९३५ ई. में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई । प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ई.एम. फॉर्स्टर इसके प्रथम अधिवेशन के सभापति था । इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था से भारत के डॉ. मुल्कराज आनन्द, भवानी भट्टाचार्य तथा सज्जाद जहीर आदि प्रभावित हुए और उन्होंने लन्दन में ही 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की नींव डाली । इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सन् १९३६ ई. में मिला और उनके सभापति थे मुंशी प्रेमचन्द उन्होंने समाज की प्रगति में बाधक ऐसे कल्पनाजनित साहित्य का विरोध किया और समाज

सापेक्ष तथा समाज के लिए उपयोगी साहित्य को श्रेय दिया । उन्होंने कहा कि - ''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है ।''[६]

सन् १९३८ ई. में द्वितीय अधिवेशन हुआ और उसके घोषणा-पत्र में देश एवं समाज की साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया । साहित्यकारों को अपने साहित्यिक कर्त्तव्य के प्रति जागृत किया गया । और आगे होनेवाले अधिवेशनों में भी प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता पर बल दिगा गया । इन सब से कवि एवं अन्य साहित्यिक समाज प्रभावित हुआ और प्रगतिशील साहित्य की रचना का दौर प्रारंभ हो गया । छायावादी कवि प्रगतिवादी बन गये । उनमें प्रमुख ये पंत और निराला । पंत जी ने 'रूपभ' संपादकीय में स्पष्ट रूप से लिखा कि - ''इस युग में जीवन की वास्तविकताओं ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं - अतएव इस युग की कविता स्वपनों में नहीं पल सकती । उसकी जड़ों को अपनी पोषक सामग्री ग्रहण करने के लिए धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है । हमारा उद्देश्य उस इमारत से थूनियाँ लगाने का कदापि नहीं है, जिसका कि गिरना अवश्यभावी है । हम तो चाहते है उस नवीन के निर्माण में सहायक होना, जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है ।''[७]

प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि के हेतु रेखा अवस्थी का कथन दृष्टव्य है - ''स्वाधीनता और सामाजिक क्रांति का जिन मांगों के दबाव में सन् '३६ में

अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की गई, सांस्कृतिक और बौद्धिक स्तर पर लगभग उन्हीं मांगों के ऐतिहासिक कार्यभार की पूर्ति के लिए 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की गई थी । 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के पहले के सृजनात्मक साहित्य को यदि ध्यान से देखें तो पता चलता है कि सन् '३० के आसपास किसान समस्या और स्वाधीनता का प्रश्न लगभग यथार्थ के संपूर्ण द्वंद्व के साथ अंकित करने की प्रवृत्ति बलवती हो जाती है । हिंदी के मध्यवर्गीय लेखक सहसा किसानों के प्रति इतना गहरा लगाव क्यों अनुभव करने लगे ? किसानों के प्रति 'बौद्धिक सहानुभूति' अथवा 'क्रांतिकारी एकात्मता' का यह भाव अचानक सुसंगत रूप में क्यों व्यक्त होने लगा ? जैसे इन प्रवृत्तियों के मूल कारण तत्कालीन परिस्थितियों में निहित हैं, उसी तरह 'प्रगतिशील लेखक-संघ' के गठन की भावना भी उन्ही परिस्थितियों से पैदा हुई थी ।''[८]

सन् १९३६ ई. से हिन्दी साहित्य में ही प्रगतिवादी कविता का प्रारंभ नहीं हुआ था । अपितु भारतीय सभी भाषाओं के साहित्य में भी इसी वर्ष में प्रगतिशील कविता का दौर शरू हुआ था । मतलब यह कि मार्क्सवादी विचारधारा-समाजवादी विचारधारा या प्रगतिवादी विचारधारा ने सम्पूर्ण विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया था । इस संबंध में डॉ. रणजीत लिखते हैं कि - ''हिन्दी में ही नहीं अधिकांश भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी प्रगतिशील आन्दोलन का वास्तविक और विधिवत प्रारंभ १९३६ से ही होता है । हिन्दी में यही वह वर्ष है, जिसमें स्वयं छायावाद के एक प्रमुख स्तंभ ने 'युगान्त' लिखकर छायावादीयुग के अन्त और नये युग के प्रारम्भ की विधिवत घोषणा की । हिन्दी कविता और साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारम्भ १९३६ से मानने के कई ओर भी कारण हैं । इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण यह हैं

कि 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का निर्माण इसी वर्ष हुआ और उसका पहला अधिवेशन भी, जो समसामयिक साहित्य-संसार की एक महत्वपूर्ण घटना थी, इसी वर्ष सम्पन्न हुआ ।''[९]

इस प्रकार प्रगतिशील कविता की पृष्ठभूमि में तत्कालिन साहित्यिक एवं राष्ट्रीय तथा सामाजिक परिस्थितियाँ, 'प्रगतिशील लेखक संघ' और छायावादी कविता का पतन रहा है । इस प्रवृत्ति के बाद प्रगतिवादी कविताओं के युग का प्रारंभ हुआ और प्रगतिवादी कविताएँ आम आदमी, आम समाज और दलितों-पीडितों, मज़दूरो की मार्गदर्शक, पथदर्शक एवं सहायक बनी जिसके कारण क्रांति की शरूआत हुई । इसकी विचारधारा मार्क्सवाद एवं समाजवाद की भूमि पर स्थित थी ।

६.३ प्रगतिवाद का स्वरूप और विकास

प्रगतिवादी कविता के विचारों एवं उसके चिंतन का आरम्भ हमारे आलोचक भारतेन्दु काल को स्वीकार करते है । समसामयिक राष्ट्रीय, सामाजिक, साहित्यक तथा सांस्कृतिक एवं आर्थिक चेतना में जो पुर्नमूल्यांकन की प्रवृत्ति थी, उसे ही आरम्भ बिंदु स्वीकार करते हैं । डॉ. शिवकुमार मिश्र यथार्थवाद का यथार्थ प्रस्थान बिन्दु सन् १९३०-३१ ई. को मानते हैं । मिश्रा जी मार्क्सवादी विवेक की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करते हैं । उनका मानना है कि माकर्सवादी विवेक से अनुप्राणित साहित्यिक एवं कलादृष्टि की सर्वप्रमुख स्थापना साहित्य एवं कला के ठोस सामाजिक एवं लौकिक आधार पर बल देते हुए सामने आयी थी । साहित्य एवं कला की प्रत्येक प्रकार की अलौकिक व्याख्या का इसके अंतर्गत निषेध था ।

छायावादी कविता के मूल में सन् १९३० ई. के आस-पास नवीन सामाजिक चेतना का उद्भव हुआ जिसे सन् १९३६ ई. मे प्रगतिवादी साहित्य अथवा प्रगतिशील कविता या प्रगतिवाद के नाम से पहचाना जाने लगा । प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का नाम है, जिसके मूल तत्त्व हैं -

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद - केवल भौतिक विज्ञान की मान्यता, ईश्वर और आत्मा की सत्ता की अस्वीकृति ।

साम्यवाद - जिसके मूल में मानवतावाद भी समाविष्ट है, साम्यवाद का समर्थन, पूँजीवाद और उससे सबद्ध राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और साहित्यक रूढियों के विरूद्ध क्रान्ति ।राष्ट्रीयभावना प्रगतिवाद के अन्तर्गत समाविष्ट हैं । जिन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । प्रगतिवाद में प्राचीन रूढ़ियों, परंपराओं, मान्यताओं और रूढ मानव मूल्यों के स्थान पर नवीनता की स्थापना की गई । प्रगतिवाद के प्रारंभ के समय हमारा देश गुलाम था । हमारे देश की आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी । पाश्चात्य विचारों का प्रभाव धीरे धीरे भारतीय साहित्य पर पड़ रहा था ।

प्रगतिवाद और प्रगतिवादी साहित्य अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का ही हिन्दी अनुवाद है । अंग्रेजी साहित्य में इस शब्द का प्रचार सन् १९३५ ई. के आसपास विशेष रूप से हुआ, जब ई.एम. हम फार्स्टर के, सभापतित्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ तब से प्रगतिवाद की नींव पडी ।

प्रगतिवाद के साहित्य में कार्ल मार्क्स की विचारधारा का समावेश है । कार्ल मार्क्स का मानना है कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग की आर्थिक उत्पादन प्रणाली और उससे उत्पन्न होनेवाली समाज व्यवस्था ही उस युग के राजनैतिक और बौद्धिक इतिहास का आधार है । इसलिए आजतक का सारा इतिहास वर्गो-संघर्षों का सामाजिक विकास की विविध अवस्थाओं में शोषक और शोषित तथा शासक और शासित ऐसे दो-दो वर्गो के संघर्षो का इतिहास है । डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का कथन है कि - ''मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों से प्रभावित प्रगतिवादी काव्यधारा की कविताओं में यथार्थ का आग्रह मिलता है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें रूमानियत और कोमलता का भाव नहीं है । वस्तुतः रूमानियत को वह अपने काव्य में स्थान देता है लेकिन यथार्थ से दूर करके नहीं । यही कारण है कि प्रगतिवादी कविताओं में एक ऐसे यथार्थ का चित्रण मिलता है जो संघर्ष की प्रेरणा देता है तथा उच्च मानवादर्शों को स्थापित करता है । यह बात दूसरी है कि कहीं-कहीं भाषणबाजी तथा नारेबाजी का स्वर भी देखने को मिलता हैं । यों भी प्रगतिवादी काव्यधारा में कवियों की दृष्टि शिल्प की अपेक्षा वस्तु-केन्द्रित अधिक रही है ।प्रगतिवादी कवि को वस्तु के मूल्य पर शिल्प का महत्त्व कदापि ग्राह्य नहीं है । वह वस्तु की अवहेलना इसलिए नहीं करता क्योंकि वह समझता है कि शिल्प को प्रधान स्थान देनें का मतलब है 'रूपवाद' (फार्मलिज्म) को बढ़ावा देना । लेकिन वह वस्तु के प्रकाशन हेतु शिल्प की आवश्यकता को पूरी तरह से नज़र अन्दाज़ भी नहीं करता इस प्रकार वह दोनों की एकता स्थापित करना चाहता है ।''[१०]

प्रगतिवादी आंदोलन एक क्रांतिकारी कदम था । स्वतंत्रता संग्राम के समय में औद्योगिक क्रांति और सदियों से शासकों की गुलामी प्रवृत्ति इससे

पीड़ित एवं शोषित समाज में जागृति आयी और यही जागृतता धीरे धीरे एक परिवर्तन का कारण बन गई । प्रगतिवादी कविता के मूल में पेरिस के 'प्रोग्रेसिव राईटर्स ऐसोशिएशन अर्थात् प्रगतिशील लेखक संघ का अहम योगदान है । इससे प्रभावित भारत में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना और इसका शोषको का विरोध और शोषितों के हितो का समर्थन यह मूल उद्‌श्य रहा है । प्रगतिवादी विचारधारा के मूल में आम आदमी, उनके अधिकारों की रक्षा, पूँजीवादीयों की प्रवृत्तियों और मानसिकता का विरोध एवं शासकों की कार्यप्रणाली एवं उनकी शोषक प्रवृत्तियों का विरोध करना मूल उद्देश्य रहा है । ऐसा करके वे शोषण मुक्त समानतासभर समाज का निर्माण करना चाहते हैं । इसके लिए प्रगतिवादी समाज का निर्माण करना चाहते है । इसके लिए प्रगतिवादी कवियों और साहित्यकारों का समर्थन किया और सहायता भी की ।

६.३.१प्रगतिवाद का नामकरण और व्याख्या

सन् १७३० ई. में भारत में अंग्रेजों के प्रभाव के कारण कोई भी बात अंग्रेजी भाषा में ही बोली जाती थी । इसका कारण था कि अंग्रेजी उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे । इन उपर्युक्त बातों के कारण जब सज्जाद जहीर ने नया साहित्य संघ बनाया तो उसका ढाँचा अंग्रेजी में था, उसके कर्ता-धर्ता पढ़े-लिखे लोग थे । संघ का नाम था 'प्रोग्रेसिव राइटर्स ऐसोसिएशन' इसका हिन्दी में अनुवाद है - 'प्रगतिशील लेखक संघ'। कसन् १९३५ ई. के आस-पास का साहित्य समाज और मानव तक ही केन्द्रित था । मूल उद्देश्य रहा पूँजीवादी विकृतियों के प्रति विद्रोह और उसके स्थान पर एक स्वस्थ संस्कृति का निर्माण यह मार्क्स

का भी मूल उद्देश्य रहा था लेकिन उससे भी अधिक उनके अनुयायियों ने मार्क्सवादी विचारों को एक व्यापक जीवनदायी सिद्धांत बना लिया ।

सन् १९३५-३६ ई. के 'प्रगतिशील लेखक संघ' जो पेरिस में था उससे सज्जाद ज़हीर, मुल्कराज आनंद भारत में स्थापित करते हैं और प्रेमचन्द की अध्यक्षता में उसका प्रथम अधिवेशन मिलता है । यहाँ से प्रगतिवाद की शुरूआत होती है । प्रगतिवाद को स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद कहा गया । 'प्रगतिवाद आधुनिक साहित्य' नामक पुस्तक में आ नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने प्रगतिशील साहित्य के संक्षिप्त रूप में तीन सूत्रों का उद्धरण किया है (१) जीवन आस्था, (२) परिवर्तन की पहचान और उपचार (३) कलात्मक स्वरूप का नियोजन । मूलतः 'प्रोग्रेसिव राईटर्स एसोसिएशन' का हिन्दी अनुवाद ही प्रगतिशील लेखक संघ है । 'प्रोग्रेसिव मतलब प्रगतिवादी, प्रगतिशील आदि । रेखा अवस्थी लिखती हैं कि - ''प्रगतिशील, साहित्यिक आंदोलन का इतिहास 'प्रगतिशील लेखक संघ' के संगठन संबंधी पहलुओं की उपेक्षा करके नहीं लिखा जा सकता । प्रगतिशील आंदोलन पर प्रकाशित चाहे स्वतंत्र समीक्षा-कृतियों हो अथवा अनुसंधानपरक ग्रंथ हो, सभी इस दुर्बलता के कारण वैज्ञानिक विवेचन की वस्तुगत दृष्टि से रहित हैं । प्रगतिशील आंदोलन को सही ऐतिहासिक संदर्भ और प्रगतिशील लेखक संघ के संगठन की संचालक भूमिका के सुसंबद्ध पाश्र्वपट में रखकर देखा जाए ।''[११]

प्रगतिवादी आंदोलन ने फ़ासीवाद का, साम्राज्यवाद का विरोध किया क्योंकि इससे शोषण चक्र को प्रोत्साहन मिलता है । साम्राज्यवाद पूँजीपतियों का समर्थन करता है क्योंकि उन्हीं के कारण ही साम्राज्यवाद

टिक सकता है । रेखा अवस्थी का कथन है कि - ''प्रगतिशील आंदोलन विश्व के फासीवाद विरोधी आंदोलन का भी एक अंग था । उन दिनों नाजी जर्मनी महायुद्ध की घनघोर तैयारियों में लगा हुआ था । चीन पर जापानी साम्राज्यवादियों ने आक्रमण कर दिया था । युद्धवादी शक्तियों अपने देश की सांस्कृतिक शक्तियों को कुचलकर, प्रगतिशील पुस्तकों की होली जलाकर फासीवाद विरोधी लेखकों को अनेक यातनाएँ देकर खूनी आतंक कायम कर रही थी । युद्ध की तैयारियों के कारण मानवता का भविष्य संकट में था, मनुष्य ने अपने सुदीर्घ विकास में जो मानवमूल्य संचित किए थे, लगता था कि वे मिटने को हैं । भारत के लेखको की सहज सहानुभूति शांति की रक्षा करनेवालों के प्रति थी ।''[१२] ऐसी स्थिति में पूँजीपतियों और शोषकों को साम्राज्यवादियों का समर्थन प्राप्त था । इसलिए प्रगतिवाद इनका विरोधी रहा है ।

डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का मत है कि प्रगतिवाद मार्क्सवादी दर्शन तथा समाजवाद पर अवलंबित है । उनका कथन है कि - ''यह सत्य है कि प्रगतिवाद का सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवादी दर्शन तथा वैज्ञानिक यंत्र के नये विकास से काफी हद तक प्रभावित है फिर भी प्रगतिवादी काव्यधारा का विकास अपनी ही राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों के चलते अधिक हुआ है ।''[१३] प्रगतिवाद ईश्वर, नियति, भाग्यवाद, अकर्मण्यता, धर्म आदि में विश्वास नहीं रखता । उसमें डारविन के विकासवाद का भी प्रभाव है । इस संदर्भ में डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का कथन है कि - ''प्रगतिवादी काव्यधारा का चिंतन डारविन के विकासवाद से अत्यन्त प्रभावित है । यह धारा

नियति, ईश्वर, भाग्य तथा कर्मफल पर कतई विश्वास नहीं करती । प्रगतिवादी काव्यधारा की नियति, ईश्वर, भाग्य, कर्मफल पर अविश्वास मुख्य प्रवृत्ति रही है ।''[१४]

रमाकांत शर्मा जी प्रगतिवाद के संदर्भ में भारतीय चिंतन एवं विचारधारा की तुलना करते हुए लिखते हैं कि - ''प्रगतिवादी काव्यधारा मार्क्सवादी दर्शन और नये राजनीतिक विचार-प्रवाहों से प्रभावित होकर भी उसी प्रकार भारतीय है, जिस प्रकार पश्चिमी रोमांटिक साहित्य से प्रभावित होते हुए भी छायावादी साहित्य भारतीय है ।''[१५] प्रगतिवादी काव्यधारा की मूलभूमि वास्तव, यथार्थ पर अवस्थित है । यह कभी कल्पना प्रस्तुत जगत की बात ही नहीं करता इस संदर्भ में डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का कथन है कि - ''मार्क्सवादी समाजवादी विचारों से प्रभावित प्रगतिवादी काव्यधारा की कविताओं में यथार्थ का आग्रह मिलता है ।''[१६] प्रगतिवाद यथार्थ की भूमि पर अवस्थित होने के बावजूद भी रूमानियत को अपने काव्य में स्थान देता है किन्तु वह यथार्थ की भूमि से हट कर नहीं । प्रगतिवाद ने सामाजिक सापेक्षतावाद का ही समर्थन किया है । समाज से पृथक व्यक्ति का वजूद ही नहीं हो सकता । इसलिए व्यक्ति जीवन के लिए आवश्यक हर विचार का समर्थन करता है । काम को भी इसलिए ही वह स्वीकार करता है लेकिन अश्लिलता का विरोधी है । राहुल सांस्कृत्यायन का मत है कि - ''समाज-सापेक्ष व्यक्ति की ही वह कल्पना करता है । एकाकी व्यक्ति का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं । इस प्रकार वह व्यक्तिवादी भावधारा का विरोध करता है । व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी वह समान-सापेक्ष रूप में ही स्वीकार करता है ।

वस्तुतः प्रगतिवादी कवि एवं रचनाकार व्यक्ति की स्वतंत्रता की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी व्यक्तिवादी और अहंवादी जीवन-दर्शन का प्रबल विरोध करता है । इस प्रकार वह समष्टिवाद की स्थापना करता है और कला के क्षेत्र में अनैतिकता, अश्लीलता अथवा अति नग्नता का यह प्रबल विरोधी है । साहित्य का स्म्बन्ध समाज-निर्माण से देता है । क्योंकि एक और वह समाज से प्रभावित होता है तो दूसरी ओर से उसे प्रभावित भी करता है । इसलिए साहित्य में अश्लीलता अथवा अनैतिकता का अर्थ है, समाज की सारी व्यवस्था का भ्रष्ट होना । अतः वह स्वस्थ समाज की स्थापना में स्वच्छता यथार्थता और नैतिकता को प्रश्रय देता है । लेकिन 'काम' जो कि मानव-जीवन का एक प्रमुख अंग है - का तथा यौन-सम्बन्धों की अवहेलना करना वह उचित नहीं समझता ।''[१७]

प्रगतिवादी कविता में विरोध और विद्रोह की भावना तीव्र रूप में दिखाई देती है । इसमें ही क्रांति के बीज छूपे है । डॉ. रणजीत का कथन है कि - ''प्रगतिशील कविता में विद्रोह के तीन स्तर देखे जा सकते है : जनवादी विरोध कुछ जिम्मेदार विद्रोह और एक दुस्साहसिकता पूर्ण समग्र विद्रोह ।''[१८] छायावाद में केवल कल्पनालोक का विचरण कराने की प्रवृत्ति के कारण वह जनसामान्य से दूर होता गया इसलिए ही सन् १९३७ ई. में शिवदान सिंह चौहान ने प्रगतिशील समीक्षा के पहले निबंध में लिखा था कि - ''इस छायावाद की धारा ने हिंदी साहित्य को जितना धक्का पहुँचाया उतना शायद ही हिंदू महासभा या मुस्लिमलीग ने पहुँचाया हो ।''[१९] इसी विकास विरोधी प्रवृत्ति एवं मानसिकता का

विरोधी मार्क्सवाद था । मार्क्सवाद केवल समाजवादी एवं विकासवादी विचारो को मानता था और प्रगतिवाद के मूल में इसी समाजवादी एवं जनवादी तथा विकासशील चिंतन था । डॉ. रामविलास शर्मा ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धांतिक आलोक में लिखा है - ''प्रगतिशील साहित्य जनता की तरफदारी करनेवाला साहित्य है, इसलिए वह उसकी जातीय विरासत उसकी साहित्यिक परंपराओं की रक्षा करने के लिए भी लड़ता है । साम्राज्यवाद न सिर्फ जनता की स्वाधीनता का अपहरण करता है, उसके जनवादी अधिकारों को कुचलता है बल्कि उसकी जातीय संस्कृति, उसके राष्ट्रीय अभिमान, उसके पूर्व पुरूषों के अर्जित ज्ञान को भी झुठलाता और दबाता है । इसलिए जनता की जातीय संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए संघर्ष उनकी स्वाधीनता और जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष का अभिन्न अंग है । हिंदीभाषी जनता की एक प्राचीन और गौरवशाली परंपरा है । इस परंपरा पर अभिमान करने में एक तरफ तो भारतीय रूढ़िवाद बाधक होता है जो हर सांस्कृतिक निधि का उपयोग महंतो और जागीरदारों के हित में करना चाहता है । उस सांस्कृतिक निधि के निर्माण में भारत की जनता का कितना हाथ है, इस बात को वह छिपाता है । दूसरी तरफ़ पश्चिमी पूँजीवाद का नस्ल-सिद्धांत है जिसके अनुसार वह निधि हमारे पूर्वजों की रचना नहीं, किसी विश्वव्यापी नस्ल की रचना है जिस पर औरों का अधिकार भले हों, हमारा अधिकार अवश्य नहीं हैं ।''[२०]

प्रगतिवाद नारीजागरण का समर्थक है, नारियों के शोषण का विरोध करता है । मानवीयजीवन की मूलभूत आवश्यकता काम का

समर्थन है लेकिन उसके लिए नारी के मानवीय अस्तित्व को भूलाकर उसे केवल काम का उपभोग का साधनमात्र समझा जाए और उपभोग करके त्याग दिया जाय उसका विरोध करता है । यह उपभोक्तावादी प्रकृति पूँजीवाद की है इसलिए उसका विरोध करना चाहिए । बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में यूरोप के नौजवान बुद्धिजीवियों पर फ्रायड का असर था और रूस के नौजवानो पर भी वह असर पड़ रहा था । ये नौजवन 'मुक्त प्रेम' की पूँजीवादी नैतिकता की मांग कर रहे थे । इसके लिए तरह-तरह के आकर्षक तर्क दे रहे थे । लेनिन ने ऐसे युवकों को लक्षित कर कहा था कि ''सभी पीली चोंचवाले चूजे जो अभी मुश्किल से पूँजीवादी ख्याल के अंडे में से निकले हैं, भयानक रूप से बुद्धिमान हैं ।''[२१]

प्रगतिवाद के संदर्भ में प्रसिद्ध नारायण चौबे का मत है कि - ''प्रगतिवाद हिन्दी में मार्क्सवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति या साहित्य संबंध मार्क्सवादी दृष्टिकोण का नाम है।''[२२] स्वयं शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रगतिवाद के संदर्भ में लिखते हैं कि - ''प्रगतिवाद अवश्य एक सामयिक धारा है - उसी प्रकार जिस प्रकार भक्तिवाद रीतिवाद तथा छायावाद । दूसरे, प्रगतिवाद ने यह कभी नहीं कहा कि प्रेम, विरह, तृष्णा, वासना आदि का जीवन में कोई मूल्य नहीं है अथवा इन भावों का उन्मुलन करके ही कोई प्रगतिवादी हो सकता है ।... आज आपके प्राचीन जीवन के मूल्यों में जो परिवर्तन हो रहे हैं और जो जीवन के नवीन मूल्य निर्धारित किए जा रहे हैं उनका आप कुछ नाम तो अवश्य ही देंगे । मैं कहता हूँ उसे आप गतिशीलवाद, नवयुगवाद आदि कोई संज्ञा प्रदान कीजिए, मुझे आपत्ति न होगी ।''[२३] वस्तुतः प्रगतिवाद जीवन

का नया द्रष्टिकोण हैं जो हमारे जीवन को, समाज को प्रगति की नयी दिशा प्रदान करता है, जो हमारे अन्दर ही है । प्रगतिवाद एक यथार्थवादी जीवनदर्शनयुक्त नया विकासवादी द्रष्टिकोण हैं । 'सुमन'जी लिखते हैं कि - ''प्रगतिवाद हमारे बीच में कहीं बाहर से नहीं कूद पडा है वरन् हमारे समाज में जो असंगतियाँ उपस्थित हुई हैं उन्हीं के अन्दर से यह फोयनिक्स का बच्चा विश्व की अश्वत्थ डाल पर चहक उठा है ।''[२४]

डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र प्रगतिवाद के संदर्भ में लिखते हैं कि - ''प्रगतिवाद के अन्तर्गत प्राचीन रूढ़ी एवं मान्यताओं के स्थान पर नवीन मानवमूल्यों की स्थापना की गई ।''[२५] इन्हीं विचारों को और दृष्टिकोण को सामने रखकर प्रगतिवादी साहित्य की रचना हुई जिन्होंने समाज को एक प्रगतिकारक नयी दिशा दिखाई । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र लिखते है कि ''प्रगतिवादी साहित्य अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है । अंग्रेजी साहित्य में इस शब्द का प्रचार सन् १९३५ ई. के आसपास विशेष रूप से हुआ, जब ई. एम. फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स ऐसोसिएशन' नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ ।''[२६] प्रगतिवाद क्षुद्र मानसिकताओं, प्रवृत्तियों का विरोध करता है जो मानवता एवं समाज से कोसों दूर हैं । डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र लिखते है कि - ''प्रगतिवाद के अन्तर्गत क्षुद्र प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाली बातों का उल्लेख नहीं किया गया है, इसका आधार ठोस वैज्ञानिक बातों के ऊपर निर्भर है ।''[२७] प्रगतिवाद की स्पष्ट परिभाषा देते हुए इसके साथ डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र करते हैं कि - ''प्रगतिवाद को और अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं यह कहूँगा कि प्रगतिवाद जीवन और

साहित्य का नया दृष्टिकोण है ।''[२८] इस प्रकार जीवन, जगत, साहित्य और समाज की नवीन मूल्यों की, नयी मानसिकता की और विकासोन्मुख विधेयक परिवर्तन का नाम ही प्रगतिवाद है ऐसा कहा जा सकता है ।

प्रगतिवाद के संबंध में उपर्युक्त चर्चा में बहुत कुछ कहा गया । इसके बावजूद भी उस पर मिथ्या आरोप लगते रहे है । इस संबंध में यह कथन दृष्टव्य है - ''प्रगतिशील साहित्य को राजनीतिक 'प्रचार' अथवा 'प्रोपगंडा' कहकर कुख्यात करने की चेष्टा प्रतिक्रियावादी लेखकों और समीक्षकों की ओर से की गई इसका मुख्य कारण यही था कि वे साहित्य की वर्गीय अंतर्वस्तु से दूर भागते थे, बल्कि उनमें से कुछ तो वर्ग सहयोग का साहित्य लिखते थे । अतः प्रगतिशील समीक्षा के सामने यह मुख्य दायित्व था कि वह आरोप-प्रत्यारोप गाली-गलौच और आक्रमण-प्रत्याक्रमण के उस साहित्यिक परिवेश में प्रगतिशील साहित्य को सैद्धांतिक आधार पर खड़ा करे । प्रगतिशील समीक्षा ने एक हद तक इस दायित्व को पूरा किया । वह मार्क्सवाद के इस बुनियादी उसूल को लेकर चली कि दार्शनिकों ने विभिन्न विधियों से विश्व की केवल व्याख्या ही की है, लेकिन प्रश्न विश्व को बदलने का है ।''[२९] इसलिए साहित्यकारों ने ही नहीं अपितु समग्र समाज ने एसी प्रवृत्ति से ऊपर उठकर दूष्प्रचार का विरोध करके समाज के विकास एव प्रगति वाले इस साहित्य को उपनाया और वह भी प्रभावशाली रूप में । प्रगतिशील होना कोई एक सीमित वृत्त में बंधना न होकर एक विशाल दृष्टिकोण का द्योतक है । प्रगतिवाद इसी अर्थ में एक विशाल और समग्र स्वीकार्य का नाम है वह किसी सीमित वृत्त में बंधा नहीं है । जब किसी भी विचारधारा

का साहित्यकार जन सापेक्ष बनता है, जनवादी बनता है, आम जनता का पक्षधर बनता है तो वह प्रगतिशील ही है । कोई भी साहित्यकार स्वभावत: प्रगतिशील नहीं होता वह तभी प्रगतिशील कहलाएगा जब वह जन साधारण का पक्ष लेता है । यही प्रगतिवाद का मूल लक्ष्य है । इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कथन दृष्टव्य है ''न तो साहित्यकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है न आलोचक । वे प्रगतिशील तभी होंगे जब वे जनसाधारण का पक्ष लेते हैं । ''[३०]

६.३.२ प्रगतिशील लेखक-संघ के अधिवेशन और उद्देश्य

औद्योगिक क्रांति के बाद भारत ही नहीं अपितु समग्र विश्व में कृषि की जगह उद्योगों को अधिक प्रोत्साहन मिलने लगा था । भारत में औद्योगिक क्रांति के श्रीगणेश यूरोप के बाद हुआ । समाज में उच्च और निम्न वर्ग जैसे दो गुट आर्थिक आधार पर बने हुए थे लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद मध्यवर्ग अस्तित्व में आया । उच्च वर्ग में धनिक लोग थे निम्न वर्ग के अंतर्गत मज़दूर, किसान आदि आते थे जो आर्थिक एवं सामाजिक दोनों रूपो से पिछड़े थे । मध्यवर्ग दोनों ओर से पिछड़ा था । मध्यवर्ग समाज में पिसा जा रहा था । मध्यमवर्ग समाज में संघर्ष कर रहा था । कार्ल मार्क्स ने उच्च वर्ग के पूँजीपतियों, मिल मालिकों के शोषणचक्र का विरोध किया 'दास केपीटल' के माध्यम से क्रांति का आरंभ किया । इनके प्रभाव में मध्य एवं निम्न वर्ग एकजूट होने लगा । साहित्य में इसका प्रभाव पड़ा । सन् १९३० ई. के आसपास मार्क्सवादी और समाजवादी विचारधारा का प्रभाव भारत सहित पूरे विश्व में व्यापक रूप में पड़ा । सन् १९३५ ई. में पेरिस में हेनरी बारबूज के नेतृत्व में

'वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ राइटर्स फॉर दि डिफेंस आफ कल्चर' का अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में संयोजक थे मैक्सिम गोर्की, रोमा रोला, आंद्रे मालरो, टामस मान, वाल्डे फ्रेंक जैसे विश्वविख्यात साहित्यकार थे । इसमें विश्वभर में स्थाई समितियाँ चुनी गई । जिसके अध्यक्ष अंगेजी कथाकार ई. एम. फोर्स्टर थे । इसके पहले, सोवियत संघ में मैक्सिम गोर्की के नैतृत्व में सन् १९३४ ई. में 'सोवियत लेखक संघ' का अधिवेशन मिला था । सन् १९३५ ई. में ही लंदन प्रवासी भारतीयों में से कुछ समाजवादी विचारधारा वाले बुद्धिजीवियों ने लंदन में चीनी रेंस्त्रा के तहखाने में अपनी बैठक की और 'भारतीय प्रगतिवादी लेखक संघ' (इंडियन प्रोगैसिव राइटर्स एसोसिएशन) की स्थापना करने तथा उसे 'संस्कृति की रक्षा के लिए विश्व लेखक अधिवेशन' से अंगीभूत कराने का निश्चय किया । इसका दायित्व सज्जाद ज़हीर और मुल्कराज आनंद का था । मुल्कराज आनंद इसके अध्यक्ष और सज्जाद ज़हीर सेक्रेटरी बने । इसके घोषणापत्र की प्रतियाँ भारत की पत्र-पत्रिकाओं में भेजी गयी । मुंशी प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका में सन् १९३६ ई. जनवरी में सारांश प्रस्तुत किया । सन् १९३६ ई. के जनवरी में हिंदुस्तान एकेडेमी का सालाना जल्सा हुआ । प्रेमचंद ने इसमें भाषण दिया । सज्जाद ज़हीर के भारत लौटने पर २२-२३ फरवरी सन् १९३६ को पूर्णिमा में हिंदी साहित्य सम्मलेन में भाषण देकर प्रेमचंद घर लौटे तो इकबाल की जनवादी चेतना पर कविता लिखी । इस प्रकार विश्वमंच से भारत में प्रगतिवादी युग की पृष्ठभूमि तैयार हुई । 'प्रगतिशील लेखक संघ' के माध्यम से भारतीय हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का प्रारंभ हुआ ।

'प्रगतिशील लेखक संघ' अंग्रेज़ी के 'प्रोग्रेसिव राइटर्स असोसिएशन' का अनुवाद है । हम इसके अधिवेशनों के संबंध में विस्तृत चर्चा करेंगे ।

६.३.२.१ प्रथम अविधेशन

सन् १९३६ ई. में प्रथम अधिवेशन लखनऊ में मुंशी प्रेमचंद्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । उन्होंने सभापति पद से भाषण देते हुए साहित्य के उद्देश्यों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए अकर्मण्य और कुण्ठित कला तथा साहित्य की तीव्र शब्दों में भर्त्सना की तथा साहित्य की वास्तविक कसौटी का निर्देश किया । डॉ. शिवकुमार मिश्र ने प्रेमचन्द जी द्वारा कहे गये कुछ अंशो का उल्लेख, अपनी पुस्तक 'नया हिन्दी काव्य' में किया । उनका मानना है कि - ''हमारे कविता के वे भाव निरर्थक हैं, जिनसे संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे दृश्य पर और दृढ़ हो जाए, जिनसे हमारे दृश्यो पर नैराश्च छा जाए । हमें उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का सन्देश हो ।''[३१] प्रेमचन्द जी ने कल्पना और नश्वरता की तीव्र भर्त्सना की है । साहित्य में उन्होंने यथार्थ और कर्म को ही प्रधानता दी है ।

६.३.२.२ द्वितीय अधिवेशन

सन् १९३८ ई. मे द्वितीय अधिवेशन कोलकात्ता के आशुतोष मेमोरियल हॉल में हुआ । इस सम्मेलन के अध्यक्ष गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर थे, पर अस्वस्थता के कारण वे उपस्थित न हो

सके । इसलिए उनके सन्देश को पढ़कर ही सुना दिया गया, जिसमें देश की तत्कालीन आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों पर अधिक स्पष्टता से प्रकाश डाला गया ।

६.३.२.३ तृतीय अधिवेशन

प्रगतिशील लेखक संघ का तृतीय सम्मलेन दिल्ली में मई सन् १९४२ ई. में हुआ । यह सम्मलेन अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी लेखक सम्मेलन के साथ जुड़ा था । इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र मुं कहा गया कि - "हर देश में फासिज्म की जीत ने सारे प्रगतिशील आन्दोलनों और विचारधाराओं को ठेस पहुँचायी है, सांस्कृतिक आत्माभिव्यक्ति के मूल स्रोत को बन्द किया है, जनता के उत्तराधिकार का मनमाना नृशंस विनाश किया है ।"[३२] प्रगतिशील आन्दोलन को फैशिज्म से अलग रखा गया । तृतीय अधिवेशन में जातीय एकता और सांस्कृतिक एकता पर विशेष बल दिया गया ।

६.३.२.४ चतुर्थ अधिवेशन

प्रगतिशील लेखक संघ का चतुर्थ अधिवेशन मुंबई में सन् १९४३ ई. में श्री डाँगे की अध्यक्षता में हुआ था । इस अधिवेशन में केवल सिद्धांतो और कर्तव्यों का मौलिक आग्रह ही नहीं किया अपितु रचनात्मक कार्यों के लिए प्रगतिशील लेखक संघ के लेखको का ध्यान भी आकृष्ट किया गया ।

६.३.२.५ पंचम और षष्ठ अधिवेशन

प्रगतिशील लेखक संघ का पंचम् अधिवेशन मुंबई के पास किसी संघर्ष (Suburb) में हुआ था, क्योंकि मुंबई नगर में इस पर रोक लगा दी थी । यह अधिवेशन सन् १९५० ई. के लगभग हुआ था । इसके निर्देशक डॉ. रामविलास शर्मा जी थे ।

प्रगतिशील लेखक संघ का छठवाँ अधिवेशन दिल्ली में सन् १९५३ ई. में हुआ था । यहाँ श्री कृष्णचन्द्र नये मंत्री निर्वाचित हुए । इस अधिवेशन के द्वारा यह निश्चय किया गया था कि संघ को व्यापक रूप प्रदान किया जाय । इस अधिवेशन के पश्चात् प्रगतिशील लेखक संघ का कोई भी अधिवेशन नहीं हुआ । प्रगतिशील लेखक संघ के उद्देश्य इस प्रकार रहे है -

(१) भारत के तमाम प्रगतिशील लेखकों की संस्थायें संगठित करना और साहित्य छापकर अपने उद्देश्यों का प्रचार करना ।

(२) प्रगतिशील लेखको और अनुवादकों को प्रोत्साहित करना और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरूद्ध संघर्ष करके देशवासियों के स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाना ।

(३) प्रगतिशील लेखकों की सहायता करना ।

(४) स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र विचार की रक्षा करना ।

६.३.३ प्रगतिवादी आंदोलन का कालविभाजन

प्रगतिवादी आंदोलन का विकासक्रम चार भागों में विभाजित किया जा सकता है । उसके विकास का काल विभाजन इस प्रकार हैं ।

६.३.३.१ प्रथम चरण

प्रगतिवादी आंदोलन का प्रारम्भिक काल सन् १९३६ ई. से सन् १९४२ ई. के मध्य का माना जाता है । इस प्रारंभिक काल के प्रमुख लेखक मुंशी प्रेमचंद थे । उनके उपन्यासों लेखो और कथा साहित्य में प्रगतिवादी विचार सन्निहित है । प्रेमचन्द के अतिरिक्त पंत, यशपाल, शिवदानसिंह चौहान, निराला, नरेन्द्र शर्मा इत्यादि आते हैं । इसी काल में 'हंस', 'रूपाभ', 'जागरण', 'विप्लव' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया ।

६.३.३.२ द्वितीय चरण

सन् १९४२ ई. से सन् १९४७ ई. तक के समय को प्रगतिवाद का द्वितीय चरण स्वीकार किया जाता है । साम्राज्यवादी शक्तियों का घोर अनीतिपूर्ण कालखण्ड रहा है । इसमें बंगाल का अकाल, देश की राजनीतिक समस्याएँ आदि पर साहित्यकारों ने कलम चलायी । इस काल का साहित्य ओजस्वी और प्रभावशाली तथा प्रखरतापूर्ण साहित्य रहा ।

६.३.३.३ तृतीय चरण

सन् १९४७ ई. से सन् १९४७ ई. तक का समय तृतीय चरण है । यह काल आंदोलन का विघटनकाल है । इसमें एक दूसरे पर साहित्यकारों ने आरोप-प्रत्यारोप किये । इसके कारण प्रगतिवादी आन्दोलन दुर्बल हुआ । प्रगतिवादियों पर अनेक

आरोप लगाये गए । इस काल में यह आन्दोलन क्षीण होता गया ।

६.३.३.४ चतुर्थ चरण

सन् १९५० ई. के पश्चात् प्रगतिवाद का चतुर्थचरण प्रारंभ होता है । प्रगतिवादी आंदोलन को दृढ़ बनाने का इस काल में पुनःप्रयास हुआ । जनवादी और स्वस्थ लेखकों का संयुक्त मोर्चा बनाया गया । लेखकों ने मैत्री भावना स्थापित करने की कोशिश की । किन्तु प्रगतिवादी आंदोलन में स्थायित्व न आ सका । सन् १९५३ ई. के पश्चात् प्रगतिशील लेखक संघ का कोई अधिवेशन नहीं हुआ ।

इसी प्रकार जनवादी, विकासवादी और क्रांतिकारी होने के बावजूद भी प्रगतिवादी आंदोलन और प्रगतिशील लेखक संघ टिक न सके और इतने अल्पकाल में ही इसका समापन हो गया ।

६.३.४ प्रगतिवाद की विशेषताएँ

प्रगतिवादी आंदोलन की विशेषताएँ उनके लेखकों, कवियों की साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से जान सकते हैं उनकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है -

(१) मार्क्सवादी विचारधारा ।

(२) समाजवादी विचारधारा ।

(३) गरीबों, दलितों, मज़दूरो, किसानों और मध्यवर्ग की दयनीय अवस्था का चित्रण और उनके प्रति सहानुभूति ।

(४) क्रांति के स्वर ।

(५) जनवादी आंदोलन ।

(६) धर्म, अंध विश्वास आदि का विरोध ।

(७) रूढ़िवादिता परंपराएँ आदि का विरोध ।

(८) वर्ण-वर्ग वैषम्य का खण्डन ।

(९) नाश एवं निर्माण सम्बन्धी विचारधारा ।

(१०) राष्ट्रीय चेतना का चित्रण ।

(११) सामाजिक चेतना परिवर्तन की पहचान और उपचार ।

(१२) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या ।

(१३) सभी समस्याओं का मूल अर्थ को माना ।

(१४) सामाजिक और आर्थिक समानता एवं समरसता ।

(१५) पूंजीपतियों की मानसिकता का विरोध ।

(१६) विद्रोह की भावना । बाह्य संघर्ष की अपेक्षा वैदिक एवं मानसिक संघर्ष ।

(१७) शोषणचक्र का विरोध, शोषितों के उद्धार की भावना ।

(१८) रूस और साम्यवादी, शासन प्रणाली की प्रशंसा ।

(१९) साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद के विरूद्ध विद्रोह की भावना ।

(२०) क्षुद्रता पर प्रहार और श्रृंगारोन्मुख प्रवृत्तियाँ प्रगति के विरूद्ध है ।

(२१) शोषितों को जागृत करने का संदेश ।

(२२) सामयिक समस्याओं का विवेचन और सामाजिक यथार्थवाद ।

(२३) आस्था और विश्वास का स्वर ।

(२४) युग यथार्थ एवं विद्रोह की अभिव्यक्ति ।

(२५) भोगवादी चिंतन एवं दर्शन और उदासीन प्रवृतियाँ प्रगतिमूलक नहीं ।

(२६) जीवन दर्शन और जीवन आस्था ।

(२७) आधुनिकता और नवीनता का स्वीकार ।

(२८) ग्रामीण चेतना का चित्रण ।

(२९) नारीवादी विधेयात्मक दृष्टिकोण ।

(३०) आम आदमी को महत्त्व ।

(३१) कलात्मक स्वरूप का नियोजन । 'कला कला के लिए नहीं' अपितुं कला जीवन के लिए है' - सिद्धांत ।

६.३.५. प्रगतिवाद की उपलब्धियाँ एवं परिसीमाएँ

प्रगतिवाद की उपलब्धियाँ अनेक हैं उनमें से प्रमुख और सर्व सामान्य सर्वस्वीकृत इस प्रकार कही जा सकती है -

(१) प्रगतिवादी आंदोलन की प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि साहित्य में लक्ष्य और प्रयोजन से सम्बन्ध रखती है । सच पूछा जाए तो प्रगतिवादी लेखकों ने ही सर्वप्रथम साहित्य किसके लिए ? जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न को सबके समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया ।

(२) निराशा, पराजय, क्षय तथा अनास्था के स्थान पर सप्राण, सजीव तथा आशा और आस्थाप्रद साहित्य की सृष्टि का आह्वान

किया । प्रगतिवादी लेखकों ने इस प्रकार का साहित्य रचकर समाज को एक नई दिशा एवं गति दी ।

(३) प्रगतिवादी आंदोलन ने साहित्य को यथार्थ की भूमि पर अवतरित किया । अतिशय कल्पनावादिता से उसका सम्बन्ध विच्छेद कर उसे जीवन की वास्तविकताओं के बीच प्रतिष्ठित किया ।

(४) प्रगतिवादी आंदोलन की ही देन है कि साहित्य को कोरी भावुकता से निकालकर बौद्धिक आधार प्रदान किया ।

(५) प्रगतिवादी आंदोलन द्वारा सर्वप्रथम साहित्य जनसाधारण की आशाओं, आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करने योग्य बना सका ।

(६) आम आदमी को महत्त्व देकर उसका स्वर बुलंद किया और सामाजिक जागृति से नये प्राण फूँके ।

(७) नारी मुक्ति, दलितोत्कर्ष, सर्वहारा को महत्त्व और सामन्तवादी व्यवस्था के विरोध के कारण गरीबी उन्मुलन, श्रमकानून में सुधार मज़दूरो को महत्व मिला ।

(८) सामाजिक समरसता तथा नवीनता, आधुनिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्थान दिलाया और उसका सूत्रपात करने में मदद की ।

(९) समाज में विजीगीशु वृत्ति का संचार किया ।

(१०) 'कला केवल कला या मनोरंजन के लिए नहीं अपितु कला जीवन के लिए हैं - इस सिद्धांत को महत्व देकर 'सहितस्य

भाव: साहित्य' की विभावना को यथार्थ साबित कर साहित्य में यथार्थ रूप से सन्निहित एवं प्रविष्ट करके दृढ़ कराया ।

(११) साहित्य को जनवादी आधार प्रदान किया ।

प्रगतिवाद की उपरोक्त उपलब्धियों के बावजूद कुछ मर्यादाएँ या परिसीमाएँ भी हैं । उन पर आक्षेप भी लगे । उनकी प्रमुख मर्यादाएँ या परिसीमाएँ इस प्रकार रही -

१. इतनी जनवादी प्रखर विचारधारा के बावजूद भी इसका समय अल्पकालीन रहा ।

२. प्रगतिवादी जीवनदर्शन संकुचित है, जीवन की केवल आर्थिक व्याख्या संगत नहीं और इतिहास का निर्धारण केवल आर्थिक आधार पर नहीं किया जा सकता ।

३. साहित्य अपने मूल रूप में सामाजिक या सामूहिक चेतना नहीं है वह तो वैयक्तिक चेतना ही हो सकती है । मनुष्य पहले पीछे समाज की इकाई और उसका पहल रूप है मौलिक एवं व्यक्तिगत रूप है ।

४. साहित्य वस्तुत: आत्माभिव्यक्ति है यह प्रगतिवाद भूल गया ।

५. भावजागृत भी एक महत्त्वपूर्ण है उसकी अवहेलना की गई । आदर्श भी अपना महत्त्व रखते है अत: उसकी अधिक अवहेलना की गई ।

प्रगतिवाद की अनेक मर्यादाएँ भी हैं लेकिन उनकी उपलब्धियों को नज़रंदाज नहीं किया जा सकता, उनकी मर्यादाओं को दूर करके समरसता एवं समानता की आत्मा को स्वीकार करके उसको समाज की प्रगति के लिए स्वीकार करके यथार्थ रूप में प्रामाणिकता पूर्ण ढंग से प्रस्तुत करके सामाजिक स्वस्थता का निर्माण किया जा सकता है ।

६.४ हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा ही एक मात्र ऐसी विचारधारा है कि वह केवल कविता में ही नहीं अपितु साहित्य की दूसरी सभी विधाओ में कोई न कोई रूप में दिखाई देता है । कविता के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, कथासाहित्य, निबंध, आत्मकथा, जीवनी, रीपोर्ताज आदि में भी प्रभावशाली रूप में प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं ।

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम निराला और पंत के काव्यों में प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं । निराला की 'बादल राग' और 'भिक्षुक' कविताएँ इसको उदाहरण हैं । पंत की 'युगान्त' रचना में छायावादी विचार धारा का अंत और प्रगतिवादी काव्यधारा का उन्मेश दिखाई देता है । 'युग पथ', 'युगवाणी' आदि में पंत की प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते है । उनकी 'ग्राम्या', 'गुंजन' इस दृष्टि से दृष्टव्य एवं उल्लेखनीय है।

हिन्दी साहित्य में नागार्जुन, शैलेन्द्र, सुदर्शन, निराला, पंत, केदारनाथ, त्रिभोवन, राम-विलास शमशेर बहादुर, नीरज, अचल, नवीन, दिनकर आदि कवियों ने प्रगतिवादी विचार व्यक्त किए है । इसके अतिरिक्त शिवमंगल सिंह

'सुमन', गंगाराम पथिक, उदय शंकर भट्ट, वीरेन्द्र मिश्र, मुक्तिबोध, नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र, भारतभूषण अग्रवाल, वीरेन्द्र कुमार जैन, दुष्यन्तकुमार, रामदरश मिश्र, हरिनारायण व्यास, नेमिचन्द जैन, रणजीत, राजीव, धूमिल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश आदि कवि प्रगतिवादी रूझान वाले कवि हैं ।

केदारनाथ अग्रवाल सच्चे अर्थो में जनवादी कवि कहे जा सकते हैं । उनकी कविताओं में पहले रोमानियत, दुसरो में आशा और यथार्थ तथा तीसरे में ओज से भरा प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है । उनके प्रगतिवादी स्वरापन्न शब्द देखिए –

''देश नाश का ताण्डव बर्बर,
एक बोध से
धन गरजे जन गरजे ।''[३३]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविताओं में एक तरफ जन-जागरण और क्रान्ति का स्वर है तो दूसरी तरफ़ अडिग आस्था, सुन्दर भविष्य की कल्पना तथा सामाजिक नव-निर्माण की अदम्य आकांक्षा है । कवि सड़ी-गली व्यवस्था एवं पुरातन रूढ़ियों को ध्वस्त कर एक नए स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहता है ।

''सब जर्जर-जर्जर ध्वस्त करो !
चिर जीर्ण पुरातन ध्वस्त करो !
मिटती संस्कृति में नूतन बल,
प्राणों का जीवित वेग भरो !''[३४]

कविता के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि में भी प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते है । प्रेमचन्द प्रमुख प्रगतिवादी लेखक है । उनके 'गोदान', 'रंगभूमि', 'गबन', 'निर्मला' आदि उपन्यासों में प्रगतिवाद के दर्शन होते हैं तो प्रसाद भी प्रगतिवाद से अछुते नहीं थे । प्रसाद का 'कंकाल' उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । प्रेमचन्द की कहानियों में प्रगतिवाद के दर्शन होते है । वृंदावनलाल वर्मा, प्रसाद का 'तितली' पं. शेरसिंह कश्यप, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, देवनारायण द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, कौशिक की कहानियाँ, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, बालदत्त पांडेय, ब्रजकृष्ण गुप्त, तेजरानी दीक्षित, जगदीश झा, विमल आदि लेखकों की रचनाओं में प्रगतिवादी विचारधारा दिखाई देती है । इन सभी के साहित्य में किसान, मज़दूर, नारी, दलित एवं ग्रामीणों की समस्याओं का चित्रण करके पूंजीवादी शोषण व्यवस्था का विरोध दिखाई देता है ।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में न केवल कविता में बल्कि साहित्य की अन्य गद्य विधाओं में भी प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते है । उल्लेखनीय बात यह है कि प्रगतिवादी विचारधारा से किसी भी वाद या विचारधारावाले साहित्यकारों की रचनाओं में प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते है, इसका कारण यही है कि जब तक शोषण चक्र है तब तक प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होंगे क्योंकि यह विचारधारा शाश्वत अमर और प्रासंगिक है । अब हम 'सुमन' जी के काव्य के प्रगतिवादी विचार-पक्ष पर चर्चा करेंगे ।

६.५ 'सुमन' के काव्य का प्रगतिवादी विचार-पक्ष

शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रमुख प्रगतिवादी कवियों में से एक हैं । उनके काव्य में प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं के दर्शन होते हैं । उनकी कविताएँ

प्रगतिवादी विचार-पक्ष से भरपुर है और उनकी कविताओं का प्रगति वादी विचार-पक्ष आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था । यहाँ विभिन्न विचार-बिंदुओ के माध्यम से 'सुमन' जी की प्रगतिवादी कविताओं के विचार-पक्ष पर चर्चा करेंगे ।

६.५.१ सृष्टि की उत्पत्ति और ईश्वरीय सत्ता संबंधी विचार

कार्लमार्क्स ने इतिहास निर्धारण का मानदण्ड आर्थिक आधार माना है, सृष्टि की समस्त क्रिया प्रतिक्रिया में अर्थ ही मूल कारण है, न कि अलौकिक सत्ता । इस विचार से 'सुमन' जी भी सहमत दिखाई देते हैं । मार्क्स की तरह 'सुमन' जी भी इस दृष्टि की उत्पत्ति अथवा जगत के मूल में ईश्वर, अलौकिक सत्ता या किसी अदृश्य शक्ति की लीला को स्वीकार नहीं करते । वे पंच तत्त्व पर ही अधिक विश्वास करते है । अग्नि की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि -

''मूल शक्ति अग्निस्फुलिग यह
विश्व-विधात्री, चिर-अनियारी
आदिकाल से सृष्टि गर्भ में
छिपी हुई थी यह चिन्गारी

इसी अग्नि से धरती झुलसी
इसी अग्नि से वृष्टि हुई थी
इसी अग्नि से प्रलय मचा था
इसी अग्नि से सृष्टि हुई थी

इसी अग्नि से ग्रह उपग्रह
नक्षत्र, सौरमण्डल आलोकित
इसी अग्नि से काम भस्म हो गया
हो गए शंकर मोहित ।''[३५]

'सुमन' जी एक भारतीय प्रगतिवादी कवि है । मार्क्सवादियों की तरह वे अलौकिक सत्ता का विरोध नहीं करते क्योंकि यह आस्था से जुड़ा हुआ है । इस लिए उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता । इसी कारण से 'सुमन' जी ऐसी चर्चा मे न पड़कर श्रम, त्याग, कर्मवाद जैसे मानवीय मूल्यों एवं आदर्शो पर ही अपने विचारों को केन्द्रित करते है । प्रकृति की भौतिक तत्त्वों की महत्ता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वीकारते है ।

'सुमन' जी ईश्वर या अलौकिक सत्ता की चर्चा के बजाय जीवन की वास्तविकता पर ध्यान देते है । हमारी धार्मिक भावनाएँ केवल दिखावा मात्र है, हमारा दंभ है । हमारी धार्मिक भावनाएँ व्यक्ति के कल्याण के लिए नहीं अपितु, बाह्याडम्बर मात्र है । पूजा, नमाज़, प्रार्थना, मात्र अमीरों की शान के लिए ही है, उसमें गरीबो के लिए समय का अपव्यय मात्र हैं । वह धन अगर उनके कल्याण के लिए लगाया जाय तो कितना विकास हो सकता है । उनके लिए रोजी-रोटी की व्यवस्था कर सकते है । 'सुमन' जी के शब्दों में जीवन की वास्तविकता देखिए -

''जीवन भाग गया है,
मंदिरों, मस्जिदों और गिरजों से
जम-सी गई है
अर्चना की अर्चियों में
ठिठुरी राख,
भक्तों से अधिक
घंटो की टन-टनाहट में
हरारत है ।''[३६]

इस सृष्टि में जबसे प्रारम्भ हुआ है तब से लेकर आजतक निम्नस्तरीय लोगो के साथ केवल और केवल अन्याय ही होता आ रहा है । 'सुमन' जी विचार करते हैं कि सृष्ट्रि में अन्याय और शोषण इतना अधिक है कि उसमे असहायों, गरीबों और श्रमिकों की कराह तक सुनाई नहीं देती । अगर ईश्वरीय सत्ता का वजूद है तो इन लोगों के साथ इतना अन्याय क्यों ? अतः 'सुमन' जी ईश्वरीय सत्ता पर ही आशंका प्रकट करने पर बाध्य हो जाते है । 'सुमन' जी का दर्द इन शब्दों में देखिए -

''फटता है क्यों आकाश नहीं
सुनकर इनकी कर्कश कराह
कुत्तों से बदत्तर मौत मिली
ये किसी स्वदेश के गर्व आह ।''[३७]

गरीबों और मूखों की कराह और व्यथा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । वह तो जो भोग रहा होता है उसे ही पता होता

है । जब रसोई घरों में रसोई की गंध बाहर जाती है तो भूखे लोगों को वह अत्यधिक पीड़ा पहुँचाते है । ऐसी कष्ट पूर्ण ज़िंदगी से तो मृत्यु ही अच्छी भी कितना क्रूर है कि ऐसे दु:खियों की कराह भी नहीं सुनता । 'सुमन' जी सन् १९७४ ई में लिखी गई 'वाह री वाग्मिता' नामक कविता में ईश्वर को कोसते हुए लिखते हैं कि -

''कौन अनुमाने व्यथा
विह्वल बुभुक्षा की
पकती पड़ौस में

रसोई की सौंधी गंध
आँतो को मरोड़ती जब
मार्मान्तिक दाह सी ।
ऐसे में मौत ही
नियामत है सबसे बड़ी
उससे बड़ी राहत
नहीं विरची विधाता ने ।''[३८]

इस प्रकार कवि 'सुमन' जी सृष्टि की उत्पत्ति में ईश्वरीय सत्ता की बजाय केवल पंचमहाभूतों और भौतिक कारणों को ज़िम्मेदार मानते हैं और ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्त्व में अपनी आशंका भी प्रकट करते हैं ।

६.५.२ नाश एवं निर्माण संबंधी मान्यता

किसी विचार, वस्तु या पदार्थ तथा तत्व का विनाश उसके अस्तित्व के संबंध मे शंकाएँ उत्पन्न करता है । किन्तु प्रगतिवादी

विचारधारा सम्पन्न कवि इस बात से पूर्णतः सहमत नहीं हैं । विनाश में से ही सृजन आरंभ होता है, ध्वंस से ही नवसृजन होता है । अर्थात् विनाश में ही नवनिर्माण के बीज विद्यमान है । इसी प्रकार मृत्यु नये जीवन का द्वार ही है । इसी सिद्धांत के आधार पर 'सुमन' जी पूँजीवादी समाज में क्रान्ति का आह्वान करते हैं । वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करके नवीन प्रगतिवादी समानता सभर नए समाज की स्थापना की जा सकती है । 'सुमन' जी 'सोवियत रूस के प्रति' शीर्षक कविता में इस प्रकार अपना प्रगतिवादी विचार-पक्ष प्रकट करते हैं -

''एक एक कर याद आ रहे
वे अपूर्व बलिदान
देकर जिन्हें किया था तुमने
नव-जीवन निर्माण ।''[३९]

'सुमन' जी प्रगतिवादी क्रांति पर विश्वास प्रकट करते हैं, सोवियत रूस में भी इसी प्रकार प्रगतिवादी क्रांति के फलस्वरूप नवसर्जन हुआ था और नये युग का प्रारम्भ हुआ था ।

परिवर्तन सृष्टि का नियम है । प्रकृति में नित्य ही नवीनतम परिवर्तन होते रहते हैं । परिवर्तन रहित प्रकृति और सृष्टि ही कल्पना नहीं की जा सकती । नाश एवं निर्माण की विचारधारा को प्रकृति से अवश्य ही जोड़कर देखना चाहिए परिवर्तन के कारण ही प्रकृति सुंदरता धारण करती है । नाश और निर्माण की विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है । प्रगतिवादी कवि पतन में ही निर्माण देखते है । 'क्या

आज मैं असफल हुआ, शीर्षक कविता में इस विचारधारा के दर्शन दृष्टव्य है -

''थी राह बीहड़ गिर पड़ा
पर झाड़ कर फिर हूँ खड़ा
मेरा पतन ही आज उन्नति
का सबल संबल हुआ
क्या आज मैं असफल हुआ ।''[४०]

आधुनिक काल में विज्ञान और तकनीकी का अपेक्षाकृत विकास हुआ । शिक्षण का प्रसार-प्रचार हुआ । सन् १९६० ई के आसपास विज्ञानीकरण की प्रक्रिया बढ़ी । लोगों ने आशंका जताई थी कि इसके कारण विनाश की सहारलीला आरंभ होगी परंतु इसके दूरगामी अच्छे परिणाम भी मिलेंगे । 'सुमन' जी दग्ध भट्टियों की दाह में ब्रह्म के तेज का अनुमान करते हैं । 'नया मोड़' कविता में 'सुमन' जी की इसी विचारधारा के दर्शन होते हैं -

''इसी ब्रह्म के तप से पिघलेगी
हिमगिरि की चोटी,
यही ब्रह्म बाँटेंगा घर - घर
फिर से माखन-रोटी ।
इसी ब्रह्म की बाँसुरिया पर
युग का राग ढलेगा,
जिसकी लय पर उजड़ा ब्रज
फिर दूधों - पूत फलेगा ।''[४१]

वैज्ञानिक विकास के कारण नाश भी होगा और निर्माण भी होगा । विकास की नई सम्भावनाएँ खुलेगी । 'सुमन' जी विज्ञान में नाश और निर्माण दोनों देखते हैं । विज्ञान के प्रभाव के कारण भले ही गृह-उद्योग नष्ट हो जाए परन्तु भविष्य सुनहरा होगा यह निर्विवाद है । इससे सामाजिक प्रगति होगी 'सुमन' जी की 'छोटे मोटे आघातो से हार नहीं सकता मेरा मन' कविता के शब्द देखिए -

''नित्य नया जीवन पाने की
इच्छा का ही नाम मरण है
पतझर का आना वसंत के
आवाहन का प्रथम चरण है ।''[४२]

सृष्टि में नित्य ही प्रलय होते रहे हैं और इसी प्रलय के पश्चात एक नयी सृष्टि का सृजन होता है । वर्तमान समाज व्यवस्था जर्जरित हो गई है इसलिए उसे उखाड़ फेंकना चाहिए । इसके लिए आवश्यक है क्रांति की क्रांति के पश्चात् ही नव-निर्माण हो सकता है । संसार में जहाँ भी क्रांति हुई है वहाँ नव-युग का प्रारंभ हुआ है । कवि 'सुमन' जी सड़ी-गली इस समाज व्यवस्था को नष्ट करके क्रांति का आह्वान करते हैं, 'जागरण' कविता के ये शब्द देखिए -

''यह क्रांति-क्रांति की प्रतिध्वनि से
क्यों गूँज उठी जगती सारी ?
क्या सचमुच घर-घर सुलग गई
नव-निर्माणों की चिनगारी ?''[४३]

वियतनाम की क्रांति के बाद एक नये युग का आरंभ हुआ । क्रांति के गर्भ में सृजन का बीज दबा हुआ है । जहाँ पर भी शोषण, अन्याय के विरूद्ध क्रान्तियाँ हुई है, वहाँ धन-धान्य से पूर्ण सुखी, शांतिमय, समृद्ध समाज का निर्माण हुआ है । वियतनाम इसका ज्वलत उदाहरण है । 'सुमन' जी इस तथ्य को 'विजय का वर्चस्व' कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं -

"पचा गई जुल्मों की ज्वाला को
बलिदानी आग
सरमायादारों को
बुझ गए चिराग
धरती के बेटों ने पाया फिर
अपना धन-धाम,
वाह रे आवाम ।"[४४]

सृष्टि के मूल में भौतिक तत्त्व हैं । प्रतिदिन इसका अनुभव संसार करता है । आत्मा या ब्रह्म के स्थान पर पंचमहाभूतों का महत्त्व है, जिसे हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं । मार्क्स की इस विचारधारा से 'सुमन' जी बिलकुल ही सहमत दिखते हैं ।

६.५.३ रूढ़ीवाद और वर्ण-वर्ग विषमता का विरोध

भारतीय समाज में रूढ़िवादिता और पाखण्ड विद्यमान है । प्रगतिवादी रूढ़ीवाद, दुकियानुसी विचार, परंपराएँ आदि का विरोध करते हैं । क्योंकि वे सब समाज की प्रगति एवं विकास के लिए बाधक

हैं । इसलिए प्रगतिवादियों की लालसेना ने प्रगतिवादी क्रांति से युगों से सड़ी रूढ़ियों को कूचलना ही मुनासिब माना । 'सुमन' जी की 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना' कविता के शब्द देखिए -

''युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती
ज़हर की लहर सी लहरती मचलती
अँधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली जा रही है बढी, बाल सेना

हुई मौन गिरजों की टन-टन पुकारें
कँपी मन्दिरों की पुरानी दिवारें
ठगी सी खड़ी मस्जिदों की मीनारें
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना ।''[४५]

'सुमन' जी मन्दि्रों की पुरानी रूढ़ियों, मस्जिदों के दकियानुसी विचारों और गिरजों की पुरानीयत की अनावश्यकता को मानते हैं इसलिए उसको ढहाकर नयेपन को स्थापित कर स्वतंत्रता के वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं ।

भारतीय समाज में वर्ण और वर्गभेद के कारण मानव-मानव के बीच एक बड़ी खाई बन गई है । इसी वर्ण और वर्गभेद के कारण ही समाज में ऊँच-नीच का वैमनस्य दिखता है और समाज में दुःख एवं पीडा दिखाई देती है, अतः इस सडी-गली वर्ण-वर्ग भेद वाली, रूढ़ीवादी समाज व्यवस्था को उलटकर ही इस दुःख से, दर्द से मुक्ति पा सकते हैं । कलकत्ते का अकाल कविता में 'सुमन' जी के ये शब्द देखिए -

''उलट तुम्हारी सड़ी व्यवस्था
डालेंगे वह नींव
फिर न बिसूर-बिसूर कर मरे
नर-तन धारी जीव
वर्ग भेद शोषक - शोषित के
फिर न पडेंगे देख
आगे के कवि को न पड़ेगा
लिखना ऐसा लेख ।''[४६]

हमारी समाज व्यवस्था वर्गभेद के कारण जर्जरित हो गई है । चारों ओर मानो भूख का ही तांडव दिखाई दे रहा है । पूँजीवादी धनिक लोग श्रृंगार और भौतिक सुखों मे अनगिनत धन व्यय करते हैं तो दूसरी ओर भूखे, नंगे, भिखमंगों की कतारे दिखाई पड़ती है । मानो चलते फिरते कंकाल की कतारे हैं । पेट की ज्वाला बुजानें का जुगाड़ तक लोग नहीं कर पाते । एक ओर रास-रंग के साज सजते हैं तो दूसरी ओर हजारों दानें-दानें के लिए मोहताज हैं । 'असमंजस' कविता में 'सुमन' जी का दर्द देखिए -

'आगे, पीछे, दायें, बायें
जल रही भूख की ज्वाला यहाँ
तुम एक ओर, दुसरी ओर
चलते-फिरते कंकाल यहाँ
इस ओर रूप की ज्वाला में

जलते अनगिनत पतंगे हैं
उस ओर पेट की ज्वाला से
कितने नंगे भिख मंगे हैं
इस ओर सजा मधु-मदिरालय
है रास-रंग के साज कहीं
उस ओर असंख्य अभागे हैं
दाने तक को मोहताज कहीं ।''[४७]

समाज में धनी वर्ग देवतुल्य स्वर्गानंद का भोग करते हैं और उसकी दुनिया हरी-भरी और खुशहाल है तो समाज का दूसरा, बहुसंख्यक एक ओर वर्ग हैं जिसके जर्जरित शरीर हैं और जो अभाव की स्थिति में नर्कागार में सड़ रहे हैं । 'सुमन' जी की 'मैं गान करूँ भी तो किसका ?' कविता के ये शब्द हमारे समाज की इस दोहरी वर्गभेद की अन्यायी व्यवस्था को बयां कर रहे हैं -

''मैं ध्यान करूँ भी तो किसका ?
जो जगती के देवता बने
जिनकी दुनिया है हरी भरी
अथवा जिनके जर्जर तन पर
रह गई शेष केवल ठठरी
मैं ध्यान करूँ भी तो किसका ?
सन्मान करूँ भी तो किसका ?
जिनके पथ पर पलकों ने बिछ

सादर स्वागत सत्कार किया
अथवा जिनको दो टूकडे दे
कुत्ता कह कर दुत्कार दिया
सम्मान करूँ भी तो किसका ।''४८

गरीबों के लिए सुख-आनंद, प्यार आदि मृगजल जैसे होते हैं । उनके लिए मधुबाला का प्यार कोई माइने नहीं रखता । उनके स्वप्नों का कोई संसार ही नहीं होता क्योंकि अपनी अभावग्रस्त ज़िंदगी के अभावों को पूर्ण करने के लिए उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती । 'अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ अपने 'जीवन-गान' कविता के 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

'मधुबाला का प्यार उन्हें क्या ?
स्वप्नों का संसार उन्हें क्या ?
चिर-अभावमय जिनका जीवन
जलता हुआ मसान
अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ
अपने जीवन-गान ।''४९

पूँजीवादी समाज हंमेशा ऊपर ही रहता है । उनकी जीवनप्रणाली और जीवन जीने का तरीका उच्च ही रहता है, जबकि गरीब, मध्यवर्गीय समाज हमेशा नीचे और निम्नस्तर पर ही रहता है । शोषित जनता का स्वर हमेशा मंद और दबा हुआ ही रहता है । ऐसी विषमता हमारे इस समाज मे सामाजिक दूराव को ओर बढ़ावा देती है और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करती है । 'सुमन' जी इसके विरोधी हैं, इसलिए ही वे 'अपने कवि से' कविता में लिखते हुए कहते हैं कि -

''ऊपर पूँजीवादी समाज
नीचे शोषित जनता का स्वर
तुम आँखे ऊपर कर चलते
मिट्टी जाती है खिसक इधर
इस तरह प्रतिक्रिया और क्रांति
दोनों के बीच त्रिशंकु बने
तुम बना मिटाया करते हो
अपनी आशाओं के खंडहर ।''[५०]

ऐसे विषमतापूर्ण समाज में सुख-शांति मृगजल की भांति ही होती है । ऐसी अवदशा और अव्यवस्था देख किसी भी भावनाशील हृदयी का दिल भी कठोर हो सकता है और वह ऐसी व्यवस्था को ढहाने की फिराक में लगने के लिए बाध्य बन जाता है । आखिरकार विषमता के अन्याय और अत्याचार की सहनशीलता की भी मर्यादा होती है । लोगों में ऐसी आग जलने का कार्य ऐसी विषमपूर्ण स्थिति ही पैदा करती है । माओवादी आंदोलन और नक्सली आंदोलन इसके उदाहरण हैं । कवि 'सुमन' जी भी ''मैं समझा था मर गया, अभी तो ज़िदा हूँ' कविता में कुछ ऐसी ही भावनाएँ लिखते है -

''वाणी की चौकीदारी से इस्तीफ़ा दूँ
या इन्कलाब़ के शोले फिर से सुलगाऊँ
या कलम डुबाऊँ फिर सूरज की सुर्खी में
फिर अंधकार को दागूँ, लंका धधकाऊँ ?
इन झुलसी झोंपड़ियों का कायाकल्प करूँ

या अर्थी ढोऊँ मीनारों की, ताजों की
या धरती की धमकन हुमसाऊँ, उलटाऊँ
काली नकाब वोटों के सहेबाजों की ?
हर उजड़ी बस्ती की वीरानी वादी में
मरघट की चिंगारी ने दिया जलाया है
जल जले तभी जन्में जगती की कोखों में
भीतर ही भीतर जब आतप अकुलाया है ।''[५१]

अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, जैसे वर्ग भेद और जातिभेद, धर्मभेद आदि विषमताओं को मिटाना चाहिए । इसके लिए स्नेह और सौहार्द का दीपक जलाकर समाज में समतापूर्ण शीतलता का वातावरण निर्माण हो ऐसे प्रयत्न होने चाहिए । 'सुमन' जी के ऐसा परिवर्तन करके वर्ण-वर्ग भेद की विषमता को मिटाने के हौंसले को उनकी 'जिसको मज़िल समझ रहे हो वह बसेरा है जरा मशाल जलाओ, बड़ा अँधेरा है इस कविता के शब्द देखिए -

''हौंसले थे कि जुल्म की जड़ें हिलाएँगे
जंगखोरों का जहर धूल में मिलाएँगे
धनी-गरीब के सब भेद-भाव ढाएँगे
शांति-समता की नयी बस्तियाँ बसाएँगे ।
कौमी ओ, मज़हबी फ़सादों को दफनाएँगे
फिरकेबाजों का गुमा गिरह में गुमाएँगे
स्नेह-सौहार्द का ऐसा दिया जलाएँगे
अमा की छाती पै दीपावली मनाएँगे ।''[५२]

धनिक-पूँजीपति एवं सत्ताधारी वर्ग शोषण करके धनोपार्जन और शक्ति सम्पन्नता प्राप्त करके फिर विजय मनाते हैं ऐसे अभिजाती मूल्यों से समाज में विषमता कायम रहती है । 'सुमन' जी ऐसी अभिजाती मानसिकता को द्रोणाचार्य और हस्तिनापुर की उपमा देते हैं और ऐसे विजयोल्लास को महाभारत का थोथा गान कहकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और व्यंग्य भरे शब्दों में उनका विरोध करते है । कवि 'सुमन' जी की 'कटे अँगूठो की बन्दनवारें' कविता के ये शब्द देखिए -

''कटे अंगूठों की बन्दनवारें बाँधे
सर-सन्धानों के जलसे मनाते तुम
बिके द्रोणाचार्यों के अभिजाती मूल्यों पर
दुर्धर महाभारत के थोथे गान गाते तुम
जीवित है जिजीविशा सौ-सौ अभावों के बीच
सदियों को रौंद रौंद रेख की छाती पर ।''[५३]

इस प्रकार शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता, दकियानुसी मानसिकता और वर्ण तथा वर्ग विषमता का पूरज़ोर विरोध करके उसका नाश करने का प्रगतिवादी विचार अपनी प्रगतिवादी कविताओं में रखा है । उनके ये विचार निश्चय ही क्रांतिकारी और समाज को नयी राह दिखाने वाले है । वे समाज में शांति-स्नेह-सौहार्द से समानतापूर्ण स्थिति को बहाल करके वर्ण, वर्ग मुक्त रूढ़िवाद मुक्त समाज की स्थापना करना चाहते है । उनकी यह भावना निश्चय ही समाज की उन्नति एवं प्रगति की द्योतक बनेगी ।

६.५.४ अर्थाधार और कला

मार्क्सवादी विचारधारी एक क्रांतिकारी विचारधारा है । मार्क्स ने दर्शन के क्षेत्र में व्यक्ति के स्थान पर समाज को स्थापित करने का युगान्तकारी परिवर्तन ला दिया है । मार्क्सवाद ने जीवन, समाज एवं समष्टि को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या में ढाला है और उसकी भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की है । मार्क्सवादी विचारधारा ने सभी का आधार अर्थोधार को माना है वह चाहे फिर समाज हो, धर्म हो, संस्कृति-सभ्यता हो या फिर साहित्य एवं कला ही क्यो न हो ? कला को मार्क्सवादी विचारों की सहायिका होनी चाहिए अर्थात् साहित्य, चित्र, संगीत, शिल्प-स्थापत्य आदि सभी सभ्यता के प्रचारक के रूप में होने चाहिए ऐसी लेनिन और स्टालिन की व्याख्या थी किन्तु मार्क्स ने इसी बात को नहीं स्वीकारा । समाज के विकास में प्रथम आर्थिक और द्वितीय वैचारिक धरातल है, जिसमें कि आर्थिक धरातल मौलिक है और वह वैचारिक धरातल को प्रभावित करता है । काव्य कला भी वैचारिक धरातल के अंतर्गत आती है, मार्क्स और एंगिल्स मानते हैं कि आर्थिक और वैचारिक दोनों धरातल एक दूसरे के प्रभाव को ग्रहण करते है । काव्यकला का जन्म, भौतिक अथवा आर्थिक धरातल के अनुरूप होता हैं तथा उनका प्रयोजन भी सामाजिक जीवन होता है । वैचारिक धरातल से सामाजिक क्रांति लाई जा सकती है ।

'सुमन'जी इस बात से सहमत है कि कवि अपने विचारों के द्वारा समाज में हरित-क्रांति ला सकता है । अपने-आप को समझने -

बूझने की वैसी ही चेतना उनके गीतों में व्याप्त है । अनुभूति की भूमि पर ही उनकी कविता अपना वैभव विस्तार करती है । उनकी 'मैं सूने में मन बहलाता' कविता में 'सुमन' जी की इस दृष्टि को देखिए -

''मेरे उर में जो निहित व्यथा
कविता तो उसकी एक कथा
छन्दों में रो-गाकर ही मैं, क्षण-भर को कुछ सुख पा जाता
मैं सूने में मन बहलाता ।''[५४]

इसी वेदना और व्यथा का साहित्य में अनूठा स्थान है, मीरा का काव्य वेदना और व्यथा से भरपूर है तो प्रसाद का 'आँसू' काव्य इसका उत्तम नमूना है । महादेवी वर्मा को आधुनिक मीरा कहा जाता है । उन्होंने वेदना एवं व्यथा को कविता में उजागर किया है । 'सुमन'जी भी कविता को निजी व्यथा के रूप में ही देखते है । करूणा और वेदना की बात को 'सुमन' जी ने आदि कवि वाल्मीकि से भी ग्रहण किया है । उस करूणा और वेदना को 'सुमन' जी समाज के संदर्भ में लेते हैं । उनकी 'मैं बढ़ा ही जा रहा हूँ' कविता के ये शब्द देखिए -

''सोचता हूँ आदिकवि क्या दे गए हैं हमे थाती
क्रौञ्चिनी की वेदना से कट गई थी हाय छाती
जब कि पक्षी की व्यथा से आदि कवि का व्यथित अंतर
प्रेरणा कैसे न दे कवि को मनुज-कंकाल जर्जर ।''[५५]

उपरोक्त पंक्तियों में 'सुमन' जी के कहने का आशय यही है कि क्रौंच और क्रौंचिनी में एक के वध से आदि कवि वाल्मीकि के

अन्दर करूणा का संचार हुआ था और उन्होंने उस करूणा से द्रवीभूत होकर ही रामायण की रचना की थी । जिसमें उन्होंने करूणा और वेदना को हर जगह स्थान दिया था । आज कवियों के अन्दर समाज में फैले हुए नर कंकालों को देखकर दया, करूणा, वेदना का अनुभव होना चाहिए । यदि ऐसा होता है तो अवश्य ही वाणी द्वारा, साहित्य द्वारा, कविता द्वारा या यों कहें कि कला द्वारा समाज में नई क्रांति का संचार होगा । दूसरे विश्व युद्ध के समय में भारत में स्वतंत्रता की एक लहर सी दौड़ गई थी । इसके प्रभाव में समग्र भारत था, अंग्रेजों की दूषित नीतियों के कारण ही समाज का आर्थिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो गया था । इस विषम-सी परिस्थितियों में शिक्षा और दीक्षा के प्रति लोगों में एक प्रकार की अरूचि-सी उत्पन्न कर दी । समाज की असमान आर्थिक व्यवस्था को देखकर 'सुमन' जी शिक्षा व्यवस्था के प्रति रोष प्रकट करते हुए 'मुझको यह पाठ नहीं भाते' कविता में लिखते हैं कि -

''क्या शिक्षा का उपयोग यहाँ
है हाय हाय का शोर जहाँ
मेरी आँखों के आगे तो
जगती के सुख दुख मँडराते
मुझको यह पाठ नहीं भाते ।''[५६]

जहाँ पर अभावग्रस्त स्थिति हो वहाँ शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं रहता, वहाँ तो केवल अभावग्रस्तता को पूर्ण करना ही एक मात्र लक्ष्य हो जाता है । प्रगतिवादी और मार्क्सवादी आर्थिक आधार को ही कला की ठोस भूमि के रूप में ही स्वीकार करके आगे बढ़ते है । समाज की

जर्जरित और त्रस्त व्यवस्था देखकर ही कवि शिक्षा में अरूचि पैदा करता है । अगर समाज व्यवस्था अभावरहित और स्वस्थ होती तो ही वैचारिक भावना का स्वरूप व्यापक और स्वस्थ तथा विशाल स्तर का होगा । इस प्रकार कला का समाज के आर्थिक आधार पर गहरा प्रभाव पड़ता है । कला से ही हम देश और समाज की भूत, भविष्य और वर्तमान की स्थिति से अवगत होते है । सन् १९७४ ई. में कवि 'सुमन' जी 'वाह री वाग्मिता' कविता में कवियों के ऊपर अपना आक्रोश प्रकट करके कहते हैं कि -

''भावों के ठेकेदार
भूल गए शायद हम
आदि कवि का आक्रोश
अथवा अब
दृश्य और द्रष्टा में
नाता नहीं रहा शेष
क्योंकि मैं
लिख रहा खिड़की से देखकर
और तुम पढ़ रहे सोफे पर विराजमान
वाह री वाग्मिता !
वाह री अस्मिता !''[५७]

'सुमन' जी समाज की विकृतियों, विषमताओं और समाज की बदतर हालत को देखकर क्षुब्ध होकर कवियों और साहित्यकारों को फटकारते है । उनका कहना है कि करूणा से ही वाल्मीकि ने महाकाव्य

की रचना की थी वही करूणा, पीड़ा, दर्द आज पूरे समाज में व्याप्त है, समाज दु:खी, त्रस्त एवं पीड़ित है । फिर भी हमारे साहित्यकार सुंदर भवनो में बैठकर साहित्य सृजन मे लिप्त हैं । शिवमंगल सिंह 'सुमन' चाहते है कि जब तक साहित्यकार जनवादी और समाजवादी नहीं होगा तब तक साहित्य की सही विभावना साकारीत नही होगी । समाज को सशक्त साहित्य देने की आवश्यकता है । कवि की कविता के माध्यम से समाज में जनक्रांति आनी चाहिए । इसलिए मूक वेदनाओं को मूक जनों की पीड़ा को स्वर देने का कार्य साहित्यकारों और कवियों का है । 'सुमन' जी जन कवि है, वे इस धरा के कवि हैं, वे जमीनी कवि हैं । साहित्य जीवन के लिए सदैव होता है और होना चाहिए और जीवन को 'सुन्दरम्' की स्थिति की ओर ले जाता है । वह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का समन्वय एवं समुच्चय है, वही साहित्य सच्चा साहित्य, सत् साहित्य है । कवि 'सुमन' जी की 'विडम्बना' कविता के शब्द देखिए -

''सोने की सुन्दर देह आत्मा जर्जर
सागर में प्यासी मीन, मेघ आडंबर
है 'कला कला के लिए' व्यंग्य जीवन का
ऊँपर चमकीला कलश, नींव में खँडहर
कलकल, मरमर अथवा जगमग अंबर का
कुछ अर्थ नहीं यदि मन का मनका सरका
भूखी कल्पना त्रिशंकु, गाधिसुत विस्मित
जीवन ही एक, प्रतीक सूक्ष्म अंतर का ।''[५८]

कवि 'सुमन' जी की विचारधारा यह है कि कला जीवन के लिए है अन्यथा नींव ही खंडहर हो जायेगी । कला के लिए एक

विडम्बना और जीवन के साथ खिलवाड़ है । जीवन को उच्चतर मानवीय मूल्यों की ओर उन्मुक्त करना ही कला का लक्ष्य है । उसमें लोकमंगल को प्रधानता अति आवश्यक है । अन्यथा हम शरीर को भले ही चमकीला बना ले किन्तु हमारी आत्मा जर्जर ही रहेगी ।

'सुमन' जी अपनी वाणी में शोभित, निरीह और अभावग्रसित लोगों को उतारना चाहते हैं, उनका कथन है कि अगर मैं इन लोगों को स्वर न दे सका तो हमारी सारी पूजा, अर्चना, साहित्य साधना व्यर्थ जाएगी । ऐसे लोगों में मानवीय मूल्यों की स्थापना करके ही मैं अपने जीवन को सार्थक बना सकूँगा । अगर ऐसा न कर सका तो हमारी सारी साधना निरर्थक बन जायेगी । कवि 'सुमन' युग की कसौटी पर अपने को कसते हुए 'कसौटी' कविता में लिखते हैं कि -

''युग की कसौटी पर चढ़ी है
आज मेरी साधना ।
जो लिख रहा हूँ आज मैं
जो दिख रहा हूँ आज मैं
उसमें अगर झलके न तुम
तो व्यर्थ सब आराधना ।''[५९]

इस प्रकार कला का मुख्य उद्देश्य समाज के रूग्ण, अभावग्रस्त, गरीब, मुक लोगों को वाणी देकर उनको समाज में उनका उचित स्थान दिलाने का होना चाहिए । मार्क्सवादी कला को सामाजिक क्रांति में 'एक माध्यम बनाकर उनको सामाजिक एवं प्रगतिवादी क्रांति की वाहक

एवं प्रचारिका बनाना चाहते है । अत: 'कला केवल कला या मनोरंजन के लिए ही है - यह सिद्धांत गलत है लेकिन 'कला जीवन के लिए है' यह सिद्धांत सही है । 'सुमन' जी अपनी कविताएँ जीवन के लिए समाज के लिए हो इसलिए प्रयत्नशील रहे हैं और उन्होंने अपनी कविताओं में इसे स्थान भी दिया ।

६.५.५ साम्यवादी शासन प्रणाली की प्रशंसा एवं समर्थन

औद्योगिक क्रांति के बाद आय का मुख्य साधन फ़ैक्टीयों में मज़दूरी ही था । अधिक से अधिक लोग मज़दूर थे । फ़ैक्टीयों के मालिक इन मज़दूरो का और ज़मीदार किसान एवं खेत मज़दूरो का शोषण करते थे । इसी शोषण की आग की लपटों में पूँजीवादी व्यवस्था की शासन प्रणाली ध्वस्त हो गई । मार्क्स और लेनिन की वैचारिक आग की चिंगारियों में अभिजात्य शोषक व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया और साम्यवादी शासन प्रणाली का प्रारंभ हुआ । सोवियत रूस इसका प्रमाण रहा है । सोवियत रूस साम्यवादी शासन प्रणाली का मुख्य स्तंभ है । कवि 'सुमन' जी ने इस सोवियत रूस और उसकी साम्यवादी शासन प्रणाली की प्रशंसा की है क्योंकि इस शासन प्रणाली में समानता, सुख, शांति आनंद सभी के घरों में आया है । यह रूस पद दलितो, मज़लूमो, शोषितों, गरीबों और मध्यवर्ग का अग्रदूत बनकर उनके अधिकारो को दिलवाने का भगीरथ कार्य करता है । कवि 'सुमन' ने 'सोवियत संघ' के प्रति कविता जो कि सोवियत-जर्मन युद्ध के प्रारम्भ होने के एक माह पश्चात् लिखी गई थी में साम्यवाद, साम्यवादी एवं

साम्यवादी-शासन प्रणाली की प्रशंसा की है । उनके शब्दों में यह प्रशस्ति देखिए -

"नव-संस्कृति के अग्रदूत है
पद-दलितों की आश
एक तुम्हारी गति पर अटकी
मानवता की खास ।"
युग युग की शोषित-जनता के
ओ नव-स्वर्णिम भोर
लगी हुई है अगणित आँखें
आज तुम्हारी ओर ।"[६०]

सोवियत रूस की सेना के अड़िग चरण है, हौसले बुलंद हैं, उन्नत मस्तक हैं और विजयोल्लास लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति की ओर आगे बढ़ती लाल सेना को देखकर पूँजीवादी-साम्राज्यवादी ताकते जो मानवता की दुश्मन है, जर्मनी-हिटलर इनके प्रतीक है । वे बेहाल एवं त्रस्त हैं । जर्मनी के पास किराये के पगारदारी सैनिक हैं, जबकि रूस के पास देश हित के लिए आत्मबलिदानी ऐसे समर्पित सैनिक है ऐसे साम्यवादी कार्यकर्ता हैं । कवि 'सुमन' के शब्द देखिए -

"अडिग चरण उन्नत मस्तक
क्या इन्क़लाब की चाल
देख तुम्हारा साहस
दुश्मन मौन त्रस्त बेहाल

उधर किराए के सैनिक हैं
ध्येय हीन म्रिय माण
उन्हें सिखा तो दो
कैसे रक्खी जाती है आन ।''[६१]

साम्यवादी शासन में समानता की नीति है, सुख है, शोषणमुक्त व्यवस्था है । मजदूरों और किसानों की अजेय शक्ति साम्यवादी सरकार की है । 'सुमन' जी इस साम्यवादी शक्ति के दर्शन पूरी दुनिया को कराना चाहते है । हाँसिया और हथोड़ा क्रमशः किसानों और मज़दूरों का प्रतीक है । और लाल रंग जो कि क्रांति का प्रतीक है वह साम्यवादी सरकार के ध्वज का रंग है । ऐसी दीनतामुक्त आन-बान और शान जो मज़दुर-किसान की शक्ति से है ऐसी साम्यवादी सरकार के गुणगान कवि 'सुमन' जी गाते हैं, उनके शब्दों में साम्यवादी शान और आन को देखिए -

''अच्छा हुआ परीक्षा आई
लेगी दुनिया जान
इन मजदूर किसानों का
होता क्या महाप्रयाण
हाँसिया और हथौड़ा अब तक
हुआ नहीं पामाल
यह पानी से नहीं
खून से ही था झण्ड़ा लाल

लाल तुम्हारा झण्डा वीरो
लाल तुम्हारा सैन्य
लाल तुम्हारा जीवन
तुमको क्या चिन्ता, क्या दैन्य ।''[६२]

जब रूसी सेना जर्मन सैन्य पर भारी पड़ रही थी और रूसी साम्यवादी सरकार की विजय पताका फहराने ही वाली थी तब जुल्मी जर्मन-दल के पतन की घड़ियाँ शुरू हो गई थी । इसी विजय बेला की साक्षी 'सुमन' जी की 'मॉस्को अब भी दूर है' कविता की इन पंक्तियों में दुखिए -

''रातों-रात बढ़े उलूक-गण
रही सृष्टि सब सोती
वरना दो-सौ मील जमीं
आसानी से सर होती
आज वही बाईस जून फिर
धुमधाम कर आई
जिस दिन जुल्मी जर्मन-दल की
शुरू हुई पहुनाई ।''[६३]

रूसी साम्यवाद ने स्वतंत्रता क्या है उसकी अनुभूति करायी है, जनता की शक्ति में कितनी फ़ौलादी ताकत होती है इसका सबूत दुनिया को दे दिया । शोषक पूँजीपति एवं, साम्राज्यवादी शासन का पूरा घमंड चकनाचूर कर दिया और बेबस, निःसहाय लोगों में शोषितों

में दृढ़ विश्वास का संचार कर दिया । रूसी साम्यवादी शासन प्रणाली की प्रशस्ति और उसका समर्थन 'सुमन' जी इन शब्दों में करते हैं -

''तुमने सिखा दिया दुनिया को
क्या स्वतन्त्रता की अनुरक्ति
तुमने दिखा दिया दुनिया को
क्या होती जनता की शक्ति
तुमने मिटा दिया शोषक
वर्गो का सारा गर्व हुलास
तुमने बढ़ा दिया मज़लूमों
की दुनिया का दृढ विश्वास ''[६४]

ऐसी साम्यवादी और प्रगतिवादियों की लाल सेना अपनी विजय की ध्वजा लहराती हुई, लुटेरों और शोषकों पर तूफान बनकर आगे विजय प्राप्त करती हुइ चली जा रही है । 'सुमन' जी की चली जा रही बढ़ी लाल सेना की ये पंक्तियाँ देखिए -

''तना वक्ष, ज्वाला मुखी श्वास में भर
लूटेरों की दुनिया पै बनके बवंडर
समय की डगर पर प्रलय के कदमधर
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना ।''[६५]

शोषकों की सरकारों का पतन और गुलामी की मानसिकता रखने वाली पूँजीवादी शासन व्यवस्था के विरूद्ध समुचे विश्व में स्वतंत्रता की आग भड़क उठी थी । यही आग अमरिका की स्वतंत्रता

में थी, और अफ़्रीका में भी यही आग सुलग रही थी तो इसी आग की चिन्गारियाँ धीरे-धीरे ग्रीस, हंगेरी, रूमानिया, फ्रांस, बर्लिन आदि में लगती हुई समूचे विश्व में फैल गई । सन् १८५७ ई. की क्रांति में भी भारत में यहीं आग फैली हुई थी तो 'चौरा-चौरी' में भी यही क्रांतिकारी आग ही थी । 'सुमन' के शब्दों में 'नई आग है नई आग है' कविता के ये शब्द देखिए -

''यही अग्नि तो मई दिवस को
चमक उठी थी अमरीका में
यही अग्नि तो धीरे-धीरे
सुलग रही है अफरीका में

इसी अग्नि ने तपा तपा कर
उस नगरी का रूप निखारा
जिसकी चमक देख सब बोले
'लाल-सितारा' 'लाल-सितारा'
चिन्गारियाँ इसी की बिखरी
ग्रीस, हंगेरी, रूमानिया में
फ्रांस और बर्लिन ने खोली आँख
दूसरी ही दुनिया में
सन सतावन में यह चमकी
चौरा चौरी में भी दमकी
और अगस्त क्या लिस में भी
इसकी अंतर्ज्वाला धधकी ।''[६६]

महान साम्यवादी शासक लेनिन मज़दूरों और किसानों के मसीहा थे, वे जीवनभर उनके अधिकारों के लिए लड़ते रहे थे । उसके साथ पूरा युग था, अनाथों का वह नाथ था । उसका केवल एक ही मानवतावाद का धर्म था, वे मुक्तिदूत, अग्रदूत थे । लेनिन की प्रशस्ति 'सुमन' जी की कविता 'लेनिन की समाधि पर' की इन पंक्तियों में देखिए -

''दुनिया के दलितों, प्रपीड़ितो और शोषितों का
रक्षक, उद्धारक, मसीहा यहाँ सोता है....
श्रमिकों का श्रमिक वह, अनाथों का नाथ था
कोई एक देश नहीं, सारा युग साथ था

उसका न कोई धर्म, जाति या बिरादरी,
वह था मानवता का मुक्तिदूत, अग्रदूत ।''[६७]

ऐसा ही दूसरा साम्यवादी नेता मार्क्स था । जोडी मानो योगिराज श्रीकृष्ण और धनुधारी मार्क्स और लेनिन की 'सुमन' जी मार्क्स और लेनिन को इन शब्दों में श्रद्धांजलि देते हुए लिखते है -

''योगिराज कृष्ण और
धनुर्धारी अर्जुन सी
जोड़ी मार्क्स - लेनिन की ।''[६८]

इन दोनों ने 'सोवियत रूस' के निर्माण में महत्त्व की भूमिका निभाई । ऐसे सोवियत रूस की महिमा होटल युक्रेन और शेव्हचेन्को' कविता में 'सुमन' जी की कलम से -

''होटल तीस मंज़िला यह शाही ठाट
फिर भी है सर्वसुलभ, सोवियत की महिमा ।''[६९]

इस प्रकार 'सुमन' जी की कविता में सोवियत रूस और साम्यवादी शासन व्यवस्था साम्यवादी नेता आदि की प्रशंसा चित्रित हुई है, यह प्रशंसा केवल प्रशंसा नहीं है लेकिन इस प्रणाली से समता, शांति, सुख, न्याय और मज़दूर एवं किसानों का हित इससे जूड़ा है इसलिए समर्थन योग्य है । 'सुमन' जी इसमें पूर्णतया सफल सिद्ध हुए है ।

६.५.६ साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का विरोध

सदियों से इस संसार में शोषण-चक्र विद्यमान है । पुराने समय में भी यह था और आज भी नये रूप में शोषण चल रहा है । यह शोषण सत्ता, साम्राज्य और धन के बल पर होता है । साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, पूँजीवाद इसका पोषण है । पुराने समय में महाभारतकाल से लेकर आज तक शोषण के मूल में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद रहा है । महाभारतकाल में श्रीकृष्ण ने साम्राज्यवाद के विरूद्ध मुहिम चलाकर जरासंघ, कंस, शिशुपाल, कालयवन की शोषण युक्त साम्राज्य की नींव हिलाकर उसका अंत किया था । तब भी साम्राज्यवाद ही शोषण और अत्याचार का मूल था । मध्ययुग में सामंतवाद और जमीदारी प्रथा इसके मूल में थी तो आधुनिक युग में पूँजीवाद उसके मूल में है । 'सुमन' जी ने शोषण के इस मूल का विरोध किया है । साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का विरोध करके उसे शोषण और अन्याय

का उद्‌गम स्थल बताया है । ऐसे अत्याचारीयों की हार और प्रगतिवादी विचारधारा की जीत को 'सुमन' जी जागरण कविता के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते है -

''जय हो मजदूर किसानों की''
कहता तूफान उठा भारी
लो उल्टे रस्ते भाग चले
कल के शोषक अत्याचारी ।''[७०]

पूँजीवादी और शोषक ऐसी साम्राज्यवादी ताकतों ने सदियों से गरीबों और निम्न वर्गो का शोषण किया है । युगों तक शोषण करते गरीबों का खून चूस कर भी उसकी प्यास आज तक नहीं बुझ पायी है । 'सुमन' जी के शब्दों में 'मेरे स्वर में जीवन भर दो' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए -

''जीन नीवों के निर्माणों में
कितनी लाशों पर लाश ढहीं
युग-युग तक शोषण कर फिर भी
बुझ पाई जिनकी प्यास नहीं
उन प्रासादों की ईटों में जर्जर खंडहर खंडन भर दो
मेरे स्वर में जीवन भर दो ।''[७१]

शोषक वर्ग में तनिक भी दया की बुँद तक नहीं होती, शोषित वर्ग शोषकों के सम्मुख रो-रोकर दया की भीख माँगे फिर भी जिसका दिल दहलाता नहीं ऐसे शोषकों का विरोध ही तर्कसंगत है । उनकी

ऐसी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना ही सही है । 'सुमन' जी के शब्दों में हाय ! नहीं, यह देखा जाता कविता की पंक्तियाँ देखें -

''निर्मम शोषक के ही सम्मुख
अपने हाथ पसारा करता
शेष न जिनमें दया हया कुछ
उससे रो-रो आहें भरता

बलि बकरे-सा क्रूर कसाई
को अपने पहचान न पाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''७२

ऐसे अत्याचारियों का नाश ही करना चाहिए तभी समाज में समता और सुख शांति का संचार होगा । मज़दूर-किसानों की संगठित शक्ति से इसका विरोध करके उन पर विजय प्राप्त करनी होगी । 'सुमन' जी शोषक वर्ग पर मजदूरो और किसानों की विजय की आशा 'मज़दूर किसानों बढ़े चलो' कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

''तुम गरजो आज प्रलय होगी
शोषक वर्गो की क्षय होगी
दुनिया के कोने-कोने से
मजलूमों की जय-जय होगी
अत्याचारी की छाती पर तुम चढ़े चलो तुम चढ़े चलो
मजदूर-किसानों बढ़े चलो ।''७३

ऐसी ताक़तों को चुनौतीपूर्ण शब्दों में 'सुमन' जी कहते हैं कि अब समाज मे जागृति आ गई है अतः तुम्हारी धमकी नहीं चलेगी । अब जमाना बदल रहा है । तुम्हारे जुल्मों के साम्राज्य का अंत होनेवाला है क्योंकि क्रांति तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रही है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''अब न तुम धमकी दिखाना
अब न उसके पास जाना
अब बदलता है जमाना
था यही जुल्मी तुम्हारे जुल्म का सब राज
सुन रहे हो क्रांति की आवाज
बज रहा है विजय बाजा
है यही युग का तकाजा
संभल जाओ अब निरोगी इन्कलाबी गाज
सुन रहे हो क्रांति की आवाज ।''[७४]

बेरोज़गारी और भूखमरी के मूल में अन्यायी और अत्याचारी अनीतिपूर्ण व्यवस्था है । गरीबी के कारण लोग भूख मरे की स्थिति में मुश्किल से गुज़ारा करते है । जीवित कंकाल-सी-देह लिए हज़ारो लोग कूपोषण की समस्या से ग्रसित होकर अपना जीवन ढो रहे हैं । ऐसे ही किसी कंकाल को देख 'सुमन' जी द्रवित होकर पूँजीवादी व्यवस्था की क्रूर नीति का विरोध करते हुए 'यह किसका कंकाल पड़ा है । कविता में इस प्रकार लिखते हैं -

"किसी दैव का है प्रकोप यह
या अजगर ने चूस लिया है
या मानव की दानवता ने
इसका जीवन लूट लिया है

यह पूँजीवादी समाज के
जूल्मों का जंजाल पड़ा है
यह किसका कंकाल पड़ा है !
उफ कितना भयावना लगता
सजल पुतलियाँ फिरा रहा है
आगे के दो दाँत निकाले
यह हम सब को बिरा रहा है
निश्चय ही यह शोषक वर्गो का
चिर प्रतिशोधी काल पड़ा है
यह किसका कंकाल पड़ा है ।"[७५]

जब दुनिया में नाज़ीवाद, फासिस्टवाद और अत्याचारी साम्राज्यवाद की शोषण की मर्यादाओं का अंत हुआ तो पूरे विश्व में मार्क्सवादी प्रगतिवादी आंदोलन चल पड़ा । मानो दुनिया ने इस अन्याय के कूचक्र का अन्त कर देने की ठान ली थी । रूस इस क्रांति का वाहक बना । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

"यहीं नाज़ियों ने पहचाना, कहते किसे समर कर
एक-एक पग पर लेने के, देने पड़े यहाँ पर

यहाँ पाँचवा दस्ता कायम, करना हुआ असम्भव
यहाँ हिटलरी भूछ पूँछ गई, गया विनय का गौरव ।[७७]

ऐसी सड़ी गली जर्जरित और अन्यायपूर्ण व्यवस्था के कारण ही समाज में दुःख और दैन्य का तांडव चल रहा है, पूँजीवाद इसका पोषक है, पूँजीवाद को साम्राज्यवाद का पोषण मिलता है अतः इसका नाश एवं ध्वंस एक मात्र उपचार है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''ये हिंसक भेड़िए उड़ाने, चले सिंह का द्वार
क्षय रोगी साम्राज्यवाद का, शेष यही उपचार ।''[७६]

हिटलरी अभिमानी साम्राज्यवाद ने रूस के हाथो मुहकी खाई और उसका अंत हुआ । साम्राज्यवाद का अंत और मज़दूर-किसानी सभ्यता के रूप में प्रगतिवादी विचारधारा की विजय इन शब्दों में देखिए -

''अभिमानी साम्राज्यावाद ने
पग पग मुँहकी खाई
सब ने कहा आज देखी
जनता की प्रथम लडाई ।''[७८]

औद्योगिक क्रांति अवश्य ही हुई थी यह क्रांति अवश्य ही आवकार्य थी किन्तु इसका लाभ मुट्ठीभर पूँजीवादियों को ही मिला जब कि इसके पूर्ण अधिकारी मज़दूर-किसान थे । इसलिए पूँजीवादियों की इस अन्यायी नीति का अंत अवश्य ही होना था और रूस के द्वारा यह हुआ भी, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''दो सौ वर्षों की औद्योगिक
उन्नति काम न आई
बीस वर्ष के पट्ठे ने जब
निज तलवार उठाई
लाशों से पट़ गई धरित्री
वही खून की नदियाँ
कभी सोवियत रूस लड़ा था
याद करेंगी सदियाँ ।''[७९]

जागृति का परिणाम यह हुआ कि फासिस्ट ताकतों का क्षय हो गया । किसी भी परिवर्तन के लिए जागृति और संगठन आवश्यक है । इसके साथ-साथ ताक़त आ ही जाती है । प्रगतिवादी आंदोलन के फलस्वरूप फासीवाद के विरूद्ध की जागृति ही उसकी ताकत बन गई और लूटेरे फासिस्तों का सफाया हुआ । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जगे वीर, जागी वसुन्धरा
जागी युग की ज्वाला
यहाँ लूटेरे फासिस्तो को
पड़ा मौत से पाला ।''[८०]

इस साम्राज्यवादी फासिस्ट मानसिकता ने सदियों तक शोषण, अन्याय और अत्याचार का कूचक्र चलाकर जनता का खून चूसा था । इसके प्रतीक हैं हिटलर, ताजो और मुसोलिनी । लेकिन इस जागृति की अग्नि को कितने भी अत्याचारों, अनाचारों से बुझा नही पाये और उसका साम्राज्य ध्वंस हो गया । कवि 'सुमन' के शब्दों को देखिए -

"हिटलर, तोजो, मुसोलिनी ने
अंजुलि भर भर रक्त उलीचा
पर न बुझी यह
पर न बुझी यह
स्वयं बुझे वे, जिन हाथों ने

मानवता का हृदय चीर कर इसको सींचा ।
छिन्न-भिन्न फासिस्तवाद की चर्बी चर्चित
जीर्ण-शीर्ण साम्राज्यवाद की रूई जर्जरित
इसे मिल गई, फिर क्या कहना,
फड़के अधर, नासिका फूली, आँखे तमकी ।"[८१]

इस प्रकार सभी समस्याओं का मूल साम्राज्यवाद, पूँजीवाद है । आज तक के इतिहास का लेखा-जोखा देखें तो सामान्य जनता की समस्याओं के मूल में यही है । अतः मूलभूत परिवर्तन इसमें होना चाहिए । साम्राज्यवाद, फ़सिस्तवाद और पूँजीवाद का नाश करके ही इन समस्याओं से निपटारा पा सकते है । 'सुमन' जी गरीबी और शोषण का मूल इन्हीं साम्राज्यवाद और पूँजीवादी व्यवस्था को मानते है । अतः ये ऐसी व्यवस्था का विरोध करते है ।

६.५.७ शोषितवर्ग के प्रति सहानुभूति, संवेदनशीलता और जागृति का संदेश

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के परिणाम स्वरूप समाज में मज़दूर किसान और आम आदमी जो धनिक नहीं हैं, वह पीड़ित है । शोषक

वर्ग जिसमें फैक्ट्री के मालिक, सेठ-साहुकार, ज़मीदार, उद्योगपति, शक्तिमान एवं सत्तावान राजनेता आदि आते हैं वे अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए मज़दूरों, किसानों और मध्यवर्गीय आम आदमी का शोषण करते हैं, उनके कारण ही बेरोज़गारी बढ़ती है और उनमें से ही गरीबी बढ़ती है । भूखमरे की स्थिति के लिए भी यही पूँजीवादी और जमाखोरी एवं कालाबाज़ारी करके मुनाफा कमानेवाले मुनाफ़ाखोर सेठ-साहुकार आते हैं । उद्योगपति कम वेतन में अधिक काम करवा के मज़दूरो का शोषण करते हैं, तो बड़े-बड़े ज़मीदार किसान एवं शक्ति सम्पन्न राजनेताओं की अनीतियों एवं शोषक मानसिकता के कारण किसानों, मज़दूरो एवं आम मध्यवर्गीय आदमी का शोषण होता है । मज़दूरों, किसानों एवं आम मध्यवर्गीय आदमी की स्थिति अत्यंत दयनीय है और बद से बदत्तर स्थिति में उन्हें जीवनयापन करना पड़ता है । 'सुमन' जी ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति रखते हुए संवेदनशीलता की भावना व्यक्त करते हैं और उन शोषितों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत होने का संदेश भी देते हैं । शहरों में ऐसे असंख्य लोग हैं जिन्हें घर नहीं हैं । वे लोग मेहनतकश ऐसे श्रमिक हैं जो इतनी कड़ी मेहनत के बावजूद दो वक्त की रोटी तक नहीं कमा सकते और अपने परिवार का गुजारा करने में कठिन संघर्ष करते हैं । ऐसे असंख्य परिवारों को कपड़ भी उचित मात्रा में नसीब नहीं होते, वे स्वच्छ भी नहीं रह पाते क्योंकि स्वच्छ पानी और नहाने की प्राथमिक आवश्यकता भी उन्हे नसीब नहीं होती । ऐसी मूलभूत आवश्यकताओं की वंचितता के कारण ये लोग गंभीर बीमारियों के भी शिकार बन जाते है । उनकी

इस दयनीय दशा के प्रति 'सुमन' जी की सहानुभूति एवं संवेदनशीलता 'बेघरबार' कविता की इन पंक्तियों में देखिए -

''इस ओर पड़ी खाना-बदोश
मेहनतकश मानव की पाँते
फुटपाथों की चट्टानों पर
जो काट रही अपनी रातें
रक्षित हैं आज लँगोटी पर
हैं कण्ठ बोलते घरर घरर
आ रही असह दुर्गन्ध पसीने
और चीथड़ों से झर-झर
कुछ दमा तपेदिक से बेदम
कुछ खाँस रहे हैं पड़े-पड़े
सम्पत्ति फटी मिरजँई और
अधजली बीड़ियों के टुकड़े ''[८२]

ऐसे वंचित शोषित और भिखारी सदृष मानव की हालत अत्यंत शोचनीय एवं दयनीय होती है । इसके कारण और अर्थाभाव के कारण समाज में ऐसे मनुष्यों को उचित स्थान मान एवं प्रतिष्ठा नहीं मिल पाते, उन्हें भूख-प्यास मिटाने के लिए अपने हाथों को दूसरों के समक्ष फैलाना पड़ता है । लोग उनकी ओर तिरस्कार एवं घृणा की दृष्टि से देखते है । ऐसी स्थितिवाले लोगों के प्रति 'सुमन' जी की सहानुभूति एवं संवेदनशील 'हाय ! नहीं यह देखा जाता' कविता की इन पंक्तियों में देखिए -

''हाथ पैर गल गए चाटते
खून पीप मिश्रित खाने को
लोग फेर लेते मुख जब
धिधियाकर वह निज कर फैलाता
हाय नहीं यह देखा जाता
अपने ही भाई जिसको नित
थू थू कह कर दूर हटाते
नर-पशु जिसे समझ कुत्ते भी
भोंक-भोंक कर दूर भगाते
तिरस्कार अपमान घृणा सब
सह वह फिर भी जीता जाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[८३]

भूख की आग ज्वलंत होती है और इसी भूख की आग में मनुष्य के सम्बन्ध-नाते-रिश्ते और संवेदनशीलता नष्ट हो जाते हैं । भूख के शमन के लिए व्यक्ति कुछ भी कर सकता है और अच्छे-बूरे का, नीति-अनीति का ख्याल भी उन्हे नहीं रहता अपने ही बच्चों की रोटी छीनने के लिए बाध्य बन जाता है । 'सुमन' जी की 'हाय ! नहीं यह देखा जाता' काव्य की इन पंक्तियों में गरीब की और भूख पीड़ित व्यक्ति की दीन-दशा का चित्रण देखिए -

''जिसके बच्चे दूध-दूध रट
बारी-बारी स्वर्ग सिधारे
फटे चीथड़ों में लिपटी
बैठी जिसकी रानी मन मारे

छाती पर पत्थर धर पापी
पेट के लिए जब मिल को जाता
हाय नहीं यह देखा जाता
उससे भी भीषण जब मानव
व्याकुल भूख-भूख चिल्लाता
अपने ही बच्चे की रोटी छीन
उदर की ज्वाल बुझाता
बच्चा बेबस रोता रोता
भूखा तड़प तड़प मर जाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[८४]

कुपोषण गरीबी और भूखमरी की स्थिति में व्यक्ति की भरी जवानी हो तो भी उसका चेहरा अकाल ही वृद्धावस्था प्राप्त कर चुका हो ऐसा प्रतीत होता है । उनका पूरा शरीर मानो जीवित कंकाल हो ऐसा प्रतीत होता है । 'सुमन' जी की 'यह किसका कंकाल पड़ा है' कविता की इन पंक्तियों में सहानुभूति एवं संवेदनशीलता की भावना देखिए -

''भरी जवानी में ही इसके
चेहरे पर पड़ गई झुरियाँ
पीब पिचपिचाती शरीर में
भनन भनन कर रहीं मक्खियाँ
क्या मानव, इस तरह निराश्रित
धरती पर बेहाल पड़ा है
यह किसका कंकाल पड़ा है ।''[८५]

ऐसे गुलाम, शोषित किसानों, मज़दूरों, पीडितों और मज़लूमो को अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति जागृत होकर उनके लिए लड़ने की, एक होने की सीख एवं संदेश भी 'सुमन'जी देते हैं । 'मास्को अब भी दूर है' कविता की इन पंक्तियों द्वारा 'सुमन' जी एकता का संदेश देते हुए कहते हैं -

''बोले बच्चे आओ मिलकर
फिर वह गाना गाओ
दुनिया भर के मज़लूमों अब
आज एक हो जाओ ।''[८६]

दुनियाभर के शोषितों को एक बनकर बलिदान के लिए तैयार हो जाने का संदेश 'सुमन' जी देते हैं क्योंकि जागृति के बिना अत्याचार एवं अन्याय के विरुद्ध युद्ध नहीं हो सकता अतः ऐक्य एवं जागृति आवश्यक है । इसके लिए बलिदान भी आवश्यक है । 'सुमन' जी के शब्दों में उनकी 'परीक्षा दो' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए -

''फूँको जय श्री का शंख आज
बलि की शुभ बेला आ पहुँची
बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ बेला आ पहुँची...
जर्जरित अमाँ का अन्धकार
प्रस्फुटित उषा की अरूण किरण
युगमानव, आज हथेली पर

सर धर कर डालो मरणवरण...
युग की वाणी बन ललकारो
बली की शुभ बेला आ पहुँची
बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ बेला आ पहुँची ।"[८७]

दुनियाभर में प्रगति का शंख फूँका जा रहा है, चारों ओर क्रांति की, प्रगति की और विकास की गंगा-यमुना बह रही हो तब सोना कहाँ तक उचित है ? इसी आलस्य के कारण पद-दलित पीछे रह गए है । इसलिए ऐक्य भावना से जागृत बनकर, हाथ से हाथ मिलाकर, ज्ञान की मशाल जलाकर दुनियाभर के पददलितों का हाथ बढ़ाना होगा । उसमें जागृति का संदेश, फैलाना होगा । कवि 'सुमन' की 'नई आग है नई आग है' कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

"तुम पीछे रह गए
बहा गंगा-यमुना में कितना पानी
गति वाले बह गए...
आओ, उट्ठो, करो तैयारी
बाकी अभी तुम्हारी बारी
आहुति लाओ
आज दीप से दीप जलाओ
हाथ बढ़ाओ, लो मशाल, आगे बढ़ जाओ
दुनिया भर के पददलितों का हाथ बटाओ ।"[८८]

इस प्रकार 'सुमन' जी शोषितों, पददलितों, पीडितों, गुलामों, किसानों, मज़दूरों और आम आदमी एवं मध्यवर्ग के प्रति संवेदनशील है और उनके प्रति सहानुभूति की भावना प्रकट करते है, उनके प्रति ऐसी कोरी भावना न रखकर उसमें अपने अधिकारों के प्रति जागृति लाकर उनको ऊपर उठाने का जागृति का संदेश भी वे देते हैं। 'सुमन' जी का यह विचार-पक्ष निश्चित ही शोषितों मे चैतन्य जागृति का उत्तम और सबल माध्यम है ऐसा हम निर्विवादरूप से कह सकते हैं ।

६.५.८ समसामयिक, समस्याओं का आलेखन

कोई भी कवि या साहित्यकार अपनी समकालीनता को नज़रदाज़ नहीं कर सकता । समसामयिक परिवेश उस पर अवश्य ही प्रभाव डालता है । अपने समय की समस्याओं का आलेखन उन्हें करना ही पड़ता है । 'सुमन' जी भी समकालीनता से अछूते नहीं रह पाए हैं । उन्होंने समसामयिक समस्याओं का आलेखन किया है, यहाँ हम 'सुमन' जी की समसामयिक समस्याओं के आलेखन पर चर्चा करेंगे ।

६.५.८.१ बंगाल का भयानक अकाल

बंगाल में सन् १९४३ ई. का भयानक अकाल प्राकृतिक आपदा का भयावह रूप था । बंगाल इस अकाल की चपेट में आकर जुलस गया था । इस अकाल में कितने ही लोग मृत्यु को प्राप्त हो गए । गलियों, सड़कों, फूटपाथों पर भूख से तड़पते हुए लोग बेहाल होकर जीवित कंकाल की तरह इधर-उधर भटक रहे थे । एक-एक अन्न के दानें के लिए लोग

मोहताज हो गए थे । 'कलकत्ते का अकाल-१९४३' नाम 'सुमन' की कविता की इन पंक्तियों में अकाल की भयावहता देखिए -

''हाय, सुन रहे कलकत्ते में
फैला घोर अकाल
काल-गाल में समा गए
कितने माई के लाल

गलियों सड़कों फुटपाथों पर
क्षुधा-ग्रस्त बेहाल
जगह-जगह तड़प रहे हैं
मानव के कंकाल
आँखें एक-एक दाने का
स्वप्न देखतीं मौन
हृदय पूछता दुर्दिन के दिन
लानेवाला कौन ?''[८९]

यह अकाल भी कुदरती प्रकोप तो था ही किन्तु पूँजीवादी समाज की करतूतों के कारण ओर भी भयावह बन गया था । इस अकाल में पूँजीवादी समाज के जूल्मों के अवशेष देखे जा सकते हैं । मुनाफाखोरी, कालाबाज़ारी और अनीतिपूर्ण व्यवहार के कारण हज़ारों पीड़ितो और मज़लूमों को मृत्यु के मुख मे जाना पड़ा था । बच्चे और बुढ़े सभी लोग भूखमरे की भयानक

स्थिति में सूखी लकड़ियों को मुँह पर लाकर दम तोड़ रहे थे । 'सुमन' जी की 'कलकत्ते का अकाल-१९४३' की इन पंक्तियों को देखें -

''फटी फटी आँखों से सबको
देख रह अनिमेष
ये पूँजीवादी समाज के
जुल्मों के अवशेष

सूखी लकड़ी से हाथों को
लाकर मुँह के पास
बच्चे बूढ़े तोड़ रहे हैं
अपनी अन्तिम साँस ।''[१०]

इस अकाल में सेठ-साहुकारों, व्यापारियों ब्याजखोरों, उद्योगपतियों, राजनेताओं और पूँजीपतियों तथा जमाखोर व्यापारियों, भ्रष्टाचारियों और मुनाफ़ाखोंरों ने बेशर्मी से और अत्याचार की मर्यादाएँ लाँघकर मुनाफ़े की लालच में और अधिक धनोपार्ज़न हेतु जमाखोरी, कलाबाज़ारी और मुनाफ़ाखोरी निर्दयतापूर्वक की थी और उन्हें पूँजीपति समाज एवं सत्तानशीनों का समर्थन था, उनकी मिली भगत थी । सरकार तथा पूरा देश अनाथ की तरह इस तमाशे को सिर्फ़ देख रहा था । 'सुमन' जी ऐसे लूटेरों की करतूतों को सिर्फ देखकर मौन सम्मति प्रदान करनेवाली देश की सरकार और पूँजीपति समाज पर लानत बरसाते हुए लिखते हैं

''पूँजीवादी युग ने सजा
है कुछ ऐसा साज
घर बाहर सब जगह लुटेरों
का दिखता है राज़
लानत है उस हीन राष्ट्र पर
जो इस तरह अनाथ
बैठा देखा करे तमाशा
धरे हाथ पर हाथ ''[९१]

६.५.८.२ महात्मा गांधी की हत्या

महात्मा गांधी मानवता के मसीहा थे । ऐसे आधुनिक संत गांधी जी की हत्या हुई और फाज़िस्ट शक्तियों ने अपने षडयंत्रों में सफलता पायी । जिस महात्मा ने पूरे राष्ट्र को और विश्व की शांति, अहिंसा और सत्य का सच्चा प्रगतिवादी मार्ग दिखाया और राष्ट्र को आज़ाद एवं आबाद बनाया वह मसीहा चला गया इसका दुःख पूरे विश्व में था । इस घटना का प्रभाव 'सुमन' जी के मानस पर गहरा पड़ा था । 'वह चला गया' कविता की ये पंक्तियाँ दखिए -

''जिसने हमें जीवन दिया सोते से जगाया
जिसने अंधेरी रात में पथ हमको दिखाया
जिसने हमें हैवान से इन्सान बनाया
आज़ाद बनाया

आबाद बनाया
वह शांति-अहिंसा का पुजारी चला गया
वह चला गया ।''[९२]

गांधी जी ने क्रोध, ईर्षा, जलन के हलाहल को पीया था वह इस लिए कि जगत को अमृत मिलता रहे । समग्र मावनता जीवित रहे इस हेतु गांधी जी ने द्वेष, घृणा और बदले की भावना का हलाहल पी लिया । 'सुमन' जी की 'महात्माजी के महा-निर्वाण पर' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए -

''पी गए हलाहल जिससे
सदियों तक जग अमृत पिया करे,
दे गए आयु बाकी
जिससे मानवता युग-युग जिया करे ।''[९३]

गांधी जी के निधन से पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गई थी । कानों पर विश्वास नही हो रहा था । युग-युग के युगपुरूष बापू की हत्या पर कान और आँख विश्वास नहीं कर रहे थे । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''क्या सुना आज इन कानों ने
मेरे बापू तुम नहीं रहे ?
युग-युग के बापू नहीं रहे ?
जन-जन के बापू नही रहें ।''[९४]

नाथुराम गोडसे ने गांधी जी पर द्वैष, घृणा एवं जातिवादी, सांप्रदायिक राजनीति के शिकार होकर गोली दागी और

उसकी हत्या कर दी । 'गोडसे' फासिस्ट शक्तियों का केवल हथकंडा मात्र था । लेकिन उन्होंने जो घृणित कार्य किया यह नींदनीय है । वह नीरो, रावण और कंस की परम्परा तथा दुर्योधन एवं हिरण्य कश्यप तथा जारों के वंश का प्रतीक बन गया । सदियाँ और मानवता उन्हें माफ नहीं करेगीं । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''वह उस परम्परा का जिसमें
रावण, नीरो औ कंस हुए
जिसमे दुर्योधन, हिरणाकश्यप
औ जारों के वंश हुए
मैं नाम नहीं लूँगा उसका
वाणी कलुषित हो जाएगी,
लेखनी मुझे धिक्कारेगी
जिह्वा कट कर गिर जाएगी
जिस पामर क्रूर कसाई पर
धूकेंगी सदियों पर सदियों
जिसके कारण इस देश-जाति की
धृणा करेगी सब दुनिया ।''[९५]

इस प्रकार 'सुमन' जी पर समसामयिकता का प्रभाव परिलक्षित होता दिखाई देता है जो कि हर साहित्यकार पर होता है । 'सुमन' जी ने समकालीन समस्याओं का चित्रण करके उसे वाणी प्रदान की है और उनका यथार्थ चित्रण करने में सफलता भी प्राप्त की है ।

६.५.९ आस्था और विश्वास का स्वर

हर विचारधारा में अपनी-अपनी प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ रहती हैं । प्रगतिवादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है 'आस्था और विश्वास का स्वर' 'सुमन' जी इस प्रवृत्ति के समर्थक रहे हैं । मानवीय शक्ति पर 'सुमन'जी की पूर्ण आस्था है । वे मानते है कि जीवन संघर्ष करके मनुष्य को अपनी जीवनीशक्ति के बल पर अपना स्वयमेय मार्ग प्रशस्त करना चाहिए । पलायनवृत्ति का त्याग करना चाहिए । समाज में व्याप्त जड़ एवं जर्जर परंपराएँ, रूढ़ियाँ, असमानता को दूर करके समाज की आवश्यकतानुसार समाज में क्रांति करनी चाहिए अर्थात नवपरिवर्तन का शंख फूँकना चाहिए । मनुष्य में ऐसी शक्ति है और 'सुमन' जी को मनुष्य की इसी शक्ति पर पूर्ण आस्था एवं विश्वास है इस लिए 'सुमन' जी अपनी शक्ति पर विश्वास करते हुए लिखते हैं कि -

''गति प्रबल पैरों में भरी
फिर क्यों रहूँ दर-दर खड़ा
जब आज मेरे सामने
है रास्ता इतना पड़ा
जब तक न मंजिल पा सकूँ,
तब तक मुझे न विराम है,
चलना हमारा काम है ।''[९६]

कवि 'सुमन' में आस्था और विश्वास का स्वर दृढ से दृढ़त्तर होता गया है । उनकी मनुज अस्मिता के बल पर ही वे अपनी आस्था

और विश्वास की शक्ति को दृढ बनाते हैं । वे मानते हैं कि जीवन एक संग्राम है, फिर भी नष्ट हो जाएँगे पर किसी से दया की भीख नहीं माँगेंगे । वे कभी भी कर्तव्य पथ से किसी भी विषम स्थिति में भी डिगेंगे नहीं । कवि 'सुमन' जी की 'वरदान मॉगूँगा नहीं कविता की ये पंक्तियाँ देखिए –

''यह हार एक विराम है
जीवन महासंग्राम है
तिल तिल मिटूँगा पर दया की भीख मैं लूँगा नहीं
वरदान मॉगूँगा नहीं ।
चाहे हृदय को ताप दो
चाहे मुझे अभिशाप दो
कुछ भी करो कर्तव्य-पथ से किन्तु भागूँगा नहीं
वरदान मॉगूँगा नहीं ।''[९७]

'सुमन' जी भाग्यवाद के विरोधी और कर्मवाद के समर्थक रहे हैं । वे कर्मयोगी बनकर विकास करने की सीख देते है । 'सुमन' का जीवन के प्रति सही, यथार्थ और स्वस्थ दृष्टिकोण है । जीवन में कष्ट कितने ही क्यों न हो, कितने ही दुःख, पीड़ा और संघर्ष क्यों न आए किन्तु कर्त्तव्यपथ से विचलित नहीं होना चाहिए । इस उपरोक्त भावना को व्यक्त करती हुई 'सुमन' जी की कविता 'मैं तो निराश न हो सका' आस्था और विश्वास की एक मज़बूत कड़ी है । इस कविता की इन पंक्तियों को देखिए –

''मैं एक नौसीखिया निरा
गिर गिर उठा उठ उठ गिरा
बन बन मिटा, मिट मिट बना
पर निज विकास न खो सका
मैं तो निराश न हो सका ।''९८

उद्देश्य की प्राप्ति में अनेक, बाधाएँ और अवरोध उत्पन्न होते है अपितु 'सुमन' जी उससे निराश न होने की सलाह देते है । संसार में सुख-दुःख, उत्थान पतन, नाश-निर्माण, प्रलय-सृजन प्राकृतिक नियम के अंतर्गत होते ही रहते हैं । उनमें निराश न होकर आशावादी बनना चाहिए । हार में ही जीत निहित होती है वैसे ही निराशा में ही आशा अंतर्निहित होती है । यह उसी प्रकार होती है जिस प्रकार 'धूप और छाँव' होती है । इसी विचार को ध्यान में रखकर जीवन मार्ग में द्रुतगति से अग्रसर होना चाहिए । कवि 'सुमन'जी के ये भाव उपरोक्त पंक्तियों में व्यक्त हुए हैं । इसी आस्था और विश्वास संबंधी विचारों की अगली कड़ी में 'सुमन' जी कहते हैं कि जीवनमार्ग में आनेवाली छोटी मोटी अड़चने विकास में बाधक नहीं बन सकती । क्योंकि उन्हें मानवीय जीवनी शक्ति पर पूर्ण आस्था एवं विश्वास है । इसी शक्ति को वे सामुहिक रूप प्रदान करके जनशक्ति के रूप में परिवर्तित रूप प्रदान करके जनशक्ति के रूप में परिवर्तित करके परिवर्तन का बाना उसे पहनाना चाहते हैं, इसी परिवर्तन के फलस्वरूप नवीन क्रान्ति का सृजन होगा । 'सुमन' जी इसलिए ही समग्र मनुष्य जाति को कर्मपथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं । कवि 'सुमन' की पंक्तियाँ देखिए -

''विश्व, तुम्हारे आँगन में
होते हैं सृष्टि, प्रलय परिवर्तन
मैं भी एक तुम्हारा ही कण
करता रहता प्रतिपल नर्तन
रूक कर करूँ विराम एक क्षण
ऐसा कहीं विधान नहीं हैं
एक गूँज हूँ जिसकी लय का
आदि नहीं, अवसान नहीं हैं
जब तक हाथ-पैर चलते हैं
जक तक वाणी बोल रही है ।
अथ-इतिहीन कर्ममय पथ पर
भार नहीं बन सकता जीवन ।
छोटे-मोटे आघातों से -
हार नहीं सकता मेरा मन ।''[९९]

कवि 'सुमन' जीवन में कितने भी संकट और संघर्ष की आँधियाँ आए फिर भी अपनी आन्तरिक शक्ति एवं भुजाओ में बल है तब तक विश्वास को, जीवनीशक्ति को अटल ही रखना चाहिए । ऐसा मानते हैं, उनके शब्द देखिए -

''आँधी आई, तूफान उठा
काँपे दिग्गज, दहला अम्बर
मेरे तरू की डाली टूटी
नीड़ो के तिनके गए बिखर

भय क्या, जब तक यह नीला नभ
जब तक मेरे डैनों में बल
फिर भी मेरा विश्वास अटल....
जिह्वा पर ताला हो अथवा
छाती पर वज्र प्रहार प्रबल
फिर भी मेरा विश्वास अटल ।''[१००]

कभी-कभार जीवनपथ सरल जानकर हम निश्चिंत होकर चलते हैं तभी कही से बीच में हिमालय सी जीवन-संघर्ष की बेला आ जाती है परंतु कवि 'सुमन' इससे भयभीत नहीं होते क्योंकि उन्हें अपने पग के अथक-अभ्यास पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए ही उनका विश्वास बढ़ता ही जाता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''पथ की सरलता देखकर
दो चार डग जब बढ़ गया
तब दृष्टि-पथ के सामने
आकर हिमालय अड़ गया
पग के अथक-अभ्यास पर
विश्वास बढ़ता ही गया ।''[१०१]

'सुमन' जी ने जीवन में कभी भी मुसीबतों, संघर्षो, दुःखों और कष्टों से घबराकर निराश न होने की सीख दी है । ऐसी स्थिति में निराश न होकर आस्था और विश्वास के साथ कर्मपथ पर अटल रहकर अपने विश्वास को अड़िग रखकर अग्रसर रहना चाहिए, आगे बढ़ते रहना चाहिए । जीवन में से यदि आशावादी दृष्टिकोण चला गया तो

जीवनीशक्ति ही खत्म हो जाएगी । इसलिए जीवन में कभी भी निराशावादी नहीं बनना, हमेशा आशावादी ही रहना ऐसी सीख 'सुमन' जी हमे देकर पूर्ण आस्था एवं विश्वास की विचारधारा को उजागर करते हैं । निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी आस्था और विश्वास के विचार-पक्ष को उद्घाटित करने में सफल हुए हैं ।

६.५.१० क्रांति चेतना

कवि 'सुमन' क्रांति को आवश्यक मानतें हैं क्योंकि - समाज में युगों की जड़ता के कारण शिथिलता छा जाना स्वाभाविक हैं अत: युग की जड़ता एवं शोषणमुक्त समाज के निर्माण के लिए क्रांति चेतना आवश्यक है । वह क्रांति फिर रक्तरंजित हो या रक्तवीहिन हो, आवश्यक है, इससे ही परिवर्तन आएगा । क्रांति की अनिवार्यता कवि 'सुमन' के शब्दों में देखिए -

''अनिवार्य क्रांति लगती मुझको, फिर मत-कहना
कवि ने सोते शार्दूलों को भड़काया था ।''[१०२]

सामाजिक क्रांति के लिए और परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि जन-जन की जागृति हो । सभी विजय की आशा और परिवर्तन की अस्मिता से परिवर्तनशील वैचारिक मशाल लेकर खड़े हो जाए यह आवश्यक है । इसके लिए शक्तिपूजन हो यह आवश्यक है । यह पूजन वाणी पुष्प से ही हो सकता है । अष्टभूजा नव-दुर्गा माँ शक्ति का और वाणी की देवी सरस्वती का पूजन करके उनका आह्वान करना चाहिए और अपने पौरूषबल को याद करके क्रांति चेतना की मशाल लेकर परिवर्तन की लहर में मिल जाना चाहिए । कवि 'सुमन' के शब्द देखिए -

''जन-जन जागे, हुंकार उठी
जलती मशाल
तम काँप रहा
पौ फटने में थोड़ी देरी
इसलिए शक्ति-पूजन हो फिर
नव-दुर्गा अष्टभूजा काली का आवाहन
अपना बल पौरूष याद करो
अवरूद्ध कण्ठ को वाणी दो
घर-घर में रण का आमन्त्रण ।''[१०३]

क्रान्तिकारिता की आवश्यकता हर समय और हर समाज में रही है । जब क्रांति आती है तो तूफान बनकर आती है या भूचाल सी परिवर्तनकारी आँधी बनकर आती है । 'सुमन' जी के शब्दों में क्रांति चेतना के स्वर देखिए -

''हो रहा अभिनय भयंकर
काँपता संसार थर थर
डम डमा डमरू उठा
फिर क्रांति के स्वर बम्म हर हर
इस प्रबल भूचाल का तुम वेग-भार उठा सकोगी ?
आज मेरे गीत, ओ स्वरसाधिके ! तुम गा सकोगी ?''[१०४]

प्रगतिवादी विचारधारा एक क्रांतिकारी विचारधारा है । प्रगतिवाद शोषितों का समर्थक एवं शोषकों का विरोधी है । इसी

पूँजीवादी शोषक समाज को क्रांति चेतना की चेतावनी 'सुमन' जी देते हैं । शोषक समाज ने आज तक दगाखोरी, शोषण, षड्यंत्रो के माध्यम से समाज का खून चूसा है, लेकिन अब जागृति आ गई है । क्रांति का आरंभ हो चूका है । इस प्रगतिवादी क्रांति की ज्वाला से अब वे बच नहीं सकेंगे । 'सुमन' जी के शब्दों में 'सुन रहे हो क्रांति की आवाज़' कविता की क्रांति चेतना देखिए -

''बच नहीं सकते दगा कर
कान में ऊँगली लगा कर
यह विषम ज्वाला जगाकर
ध्वंस होगा तख्त भू-लुंठित तुम्हारा ताज
सुन रहे हो क्रांति की आवाज़ ।''[१०५]

इस प्रकार 'सुमन' जी की कविताओं में क्रांति चेतना प्रभावशाली रूप में चित्रित हुई है । 'सुमन' जागृति, वैचारिक शक्ति, विकास और परिवर्तन के रूप में क्रांति चेतना को देखते हैं । क्रांति समाज विकास के लिए आवश्यक हैं ऐसा उनक़ा स्पष्ट मत एवं दृष्टिकोण है, अतः समाज में क्रांति की हरदम आवश्यकता को वे महसूस करते हैं और उसका स्वागत करते हैं, समर्थन करते हैं । यह क्रांति परिवर्तनकारी विकासशील, प्रगतिशील और नाविन्यकरण वाली हो यह आवश्यक है । क्रांति चाहे वह रक्तरंजित हो या अहिंसक हो समाज के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य है ।

६.५.११ आधुनिकता, नवीनता एवं परिवर्तन का समर्थन

कवि 'सुमन' आधुनिकता के पक्षधर हैं । आधुनिक विचारधारा, आधुनिक युग का वे समर्थन करते है । विज्ञान के कारण आधुनिक युग की नींव पडी थी । इसी आधुनिकता में विकास के बीज छिपे हैं । इसी आधुनिकता का स्वीकार एवं समर्थन तथा उनसे भविष्य के गर्भ में छिपे विकास की संभावना को लेकर 'सुमन' जी आश्वस्त है । 'नया मोड़' कविता की पंक्तियाँ देखें -

''अणु की शक्ति प्रकट होती है
जड़ चेतन होता है ।
इस विज्ञान भगीरथ ने
कुछ ऐसा अनुमाना है,
नभ से नहर निकाल
दूध की गंगा को लाना है । ''[१०६]

इसी आधुनिकता के कारण नवीनता का आरंभ होता है । जीवन में, सृष्टि में, समाज में, विचारों में और समग्रता में नवीनता का संचार होना चाहिए । नवीनता का स्वागत करना चाहिए । 'सुमन' नवीनता के समर्थक है । सृष्टि, समाज, विचार, शिक्षण, उपनिषद, शास्त्र आदि सभी में नवीनता का संचार होना चाहिए इस नवीनता की अनुभूति करने के लिए 'सुमन' जी इस प्रकार लिखते हैं -

''नयी सृष्टि का संयोजन है
असुरों को ललकारो,
नयी मानवी के अंतस की
श्रद्धा-सुधा सँवारो ।
उपनिषदों का नया संस्करण
मुद्रित आज कराओ,
जगा सको तो बंधु
मशीनों का अध्यात्म जगाओ ।
फैक्टरियों की उर्ध्व चिमनियों की
दग्ध भट्टियों की दहकन में
ब्रह्म तेज अनुमानो ।''[१०७]

कवि 'सुमन' नवीनता को अपनाकर परिवर्तनकारी बनने की सलाह देकर कहते हैं कि यह परिवर्तन का युग है । इतिहास नया मोड़ ले रहा है तो इसके लिए अग्रगामी बनो, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''नया मोड़ इतिहास ले रहा
आगे कदम बढ़ाओ ।''[१०८]

जब इस नवीनता के गर्भ में परिवर्तन की लहर उठती है तब विकास के नये द्वार खुलते हैं । इसी के कारण जो नवपरिवर्तन आता है उसका परिणाम यह होता है कि असंभव भी संभव बन जाता है, धरती में नये विश्वास की लहर दौड़ जाती है । 'सुमन' जी की 'और कब तब ?' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए -

''चाँद धरती के नये रिश्ते जुड़े जब
हर असंभव आज संभव दिख रहा है
ग्रह उपग्रह और आते जा रहे हैं पास
जग रहा फिर आज
धरती में नया विश्वास ।''[१०९]

शिक्षण और वैज्ञानिक विकास के कारण नयी दिशाएँ खुली हैं । अब धरती से उस पार भी नज़र दौड़ाई जा रही है । ऐसे वातावरण में आधुनिकता, नवीनता और परिवर्तन की हवा सी चल रही हो ऐसा प्रतीत होता है । मनुष्य ने अप्रतिम विकास किया है और नये मानदण्ड विकास पथ और मनुष्य जीवन में गाड दिए है । ऐसी लहरो के बीच प्रगति की यह आधुनिक, नवीन एवं परिवर्तनकारी भागीरथी में स्नान करके खुद को इस लहर का सहभागी बनाना होगा । 'सुमन' जी की 'दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए -

''अब मंगल ग्रह में मंगल कलश धरो
चंदा की चूनर सजने वाली है,
ध्रुव में मण्डप बनने की बारी है
शुक्र में शहनाई बजनेवाली है ।
सप्तर्षि सगुन पढ़ने को आतुर हैं
घावा-पृथ्वी की आज सगाई है,
गुरू की आज्ञा से समधी सुरपति ने
इस पुटनिक की पालकी मँगाई है ।

रसमयी रसा फिर दिव की दयिता बन
नव-मुग्धा सी नादान हो गई है,
दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से
सारी थकान हैरान हो गई है
अब बाँध बँधेंगे ब्रह्मसरोवर में
स्वर्गंगा से भी नहरें छूटेंगी,
पुष्कर आवर्त्तक जल-विद्युत गृह से
रेगिस्तानों में फसलें फूटेंगी ।''[११०]

अंततः ऐसा कहा जा सकता है कि 'सुमन' जी की कविताएँ प्रगतिवादी स्पर्श से संतप्त है । प्रगतिवाद हमेशा आधुनिकता का समर्थक रहकर उसमें से उत्पन्न नवीनता को स्वीकार करता रहा है । इसी आधुनिकता और नवीनता के गर्भ में परिवर्तन छुपा होता है । परिवर्तन के कारण ही आधुनिकता और नवीनता को प्रवेश मिलता है । इसे ही प्रगति विकास या ऊर्ध्वगमन कहा जा सकता है । प्रगतिवाद का मूल उद्देश्य भी तो यही है । 'सुमन' जी इसलिए ही आधुनिकता, नवीनता और परिवर्तन के समर्थक रहे हैं ।

६.६ 'सुमन' काव्य के प्रगतिवादी विचार-पक्ष की प्रासंगिकता

कोई भी साहित्यकार जब साहित्यसृजन करता है तब वह भूत, वर्तमान और भविष्य को नज़र समक्ष रखकर ही आगे बढ़ता है । प्रारंभ में वह केवल निजानंद के लिए ही सृजन करता है परंतु बाद में उनका वह साहित्य सृजन परानंद में परिवर्तित हो जाता है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' भी ऐसे ही साहित्यकार

है। 'सुमन' जी ने एक कवि के रूप में जिस साहित्यक सृष्टि की रचना की है वह केवल तथाकथित एवं उसके समय तक ही सीमित न होकर समसामयिकता को साथ लेकर भविष्य को नज़र समक्ष रखकर की गई है ऐसा प्रतीत होता है ।

'सुमन' जी के प्रगतिवादी काव्यों का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि उनकी प्रगतिवादी कविता का विचार-पक्ष आज भी उतना ही प्रासंगिक है जब उस समय था । उन्होंने अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरूद्ध तथा पूँजीवादी सभ्यता, मानसिकता एवं व्यवस्था के विरूद्ध अपनी कलम चलायी और आम आदमी, मध्यवर्ग, दलित, पीड़ित, शोषित वर्ग की मूक वाणी को मुखरता प्रदान की । उस समय धनपति, उद्योगपति एवं सत्ता केन्द्रित शक्तियों से सम्पन्न वर्ग की प्रभुसत्ता में समाज का आम वर्ग पिसा जा रहा था, धनिक वर्ग अपने धन एवं बल के माध्यम से शोषण का चक्र अनवरत गति से चला रहा था उनके विरूद्ध 'सुमन' जी ने प्रगतिवादी विचारधारा के माध्यम से उनका पर्दाफाश करके एक मुहिम चलायी । उसमे वे सफल भी रहे हैं ।

आज की परिस्थितियों का अध्ययन करें तो आज भी वह शोषण चक्र चल रहा हैं । इस शोषणचक्र के स्वरूप में उनके साधनों में, माध्यमों में परिवर्तन हुआ है । आज मध्यवर्ग, गरीब, मज़दूर और किसान की हालत दयनीय होती जा रही है । किसानों को उनकी फसलों के उचित दाम नहीं मिल रहे है । किसान बैंको और ऋण देनेवाली कम्पनियों के ऋण के बोझ से दब गया है अत:उन्हें आत्महत्या करनी पड़ती है । एग्रीकल्चर की दवाई कम्पनियाँ किसानों को लूँट रही है, उद्योगों, कल-कारखानों में काम करनेवाले मज़दूरो से अधिक समय कम वेतन में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है । बेरोजगारी की ज्वलंत समस्या के कारण मध्यवर्ग और यह मज़दूर वर्ग त्रस्त हैं ।

उनकी इसी मज़बूरी का फायदा उठाकर उससे अमानवीय तरीके से कार्य करवाया जाता है । पेट की भूख को मिटाने के लिए वह मजबूरन कम वेतन एवं अधिक समय में काम करने के लिए बाध्य हो रहा है ।

सत्ता के दलाल नेता एवं उद्योगगृहों के मालिकों की मिलीभगत के कारण शोषण चल रहा है । आम आदमी की आवाज़ उसमें दब जाती है। समाज में जागृति का अभाव है । शिक्षण और विज्ञान तकनिकी के लाभ केवल ऊच्च वर्ग तक सीमित होकर रह गए हैं । धनिक अधिक धनिक हो रहा है और गरीब अधिक गरीब, मध्यवर्ग इन सब में सेन्डवीच की तरह दबकर पिसा जा रहा है । भ्रष्टाचार और अनीति का बोलबाला है, भष्ट्राचार ही केवल एक शिष्टाचार बन गया है । ऐसे माहौल में 'सुमन' जी की प्रगतिवादी विचार-पक्ष की कविताएँ और उसमें प्रस्तुत विचारधारा एवं चिंतन जो आम आदमी की मूक वाणी की मुखरता का माध्यम बन सकती है वह आज भी प्रासंगिक है । अतः 'सुमन' जी के प्रगतिवादी विचार-पक्ष की आज भी प्रासंगिकता अनिवार्य रूप से हम स्वीकार कर सकते हैं । इस शोषणचक्र, अव्यवस्था और पूँजीवादी सभ्यता एव व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाकर समाज में वैचारिक जागृति के लिए 'सुमन' जी की प्रगतिवादी कविताएँ इस शोषण, अन्याय और अत्याचार के खारे समुद्र में मीठी बावड़ी का कार्य कर सकती है । दीप घर के समान मार्गदर्शक बन सकती है ।

इस लिए 'सुमन' जी की प्रगतिवादी कविताओं में व्यक्त प्रगतिवादी विचार-पक्ष आज भी उतना ही प्रासंगिक है जो उसके समय था । और तब तक इसकी प्रासंगिकता बनी रहेगी जब तक शोषण, अनीति, भ्रष्टाचार अन्याय और पूँजीवादी व्यवस्था समाज में विद्यमान है ।

६.७ निष्कर्ष

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कविताएँ हिन्दी जगत में एक वैचारिक उच्च आयाम तक जानेवाली कविताएँ हैं । 'सुमन' जी ने जो आम-आदमी मध्यवर्ग और पीड़ित, शोषित एवं दलित वर्ग के समर्थन में आपना चिंतन एवं विचारधारा को रखा है वह निश्चय ही समाज की जागृति के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है ।

'सुमन' की प्रगतिवादी कविताओं में व्यक्त सृष्टि की उत्पत्ति एवं ईश्वरीय सत्ता संबंधी विचार चिंतनीय है, तो नाश एवं निर्माण संबंधी विचारो में उनकी वैज्ञानिक दृष्टि भी सराहनीय एवं तार्किक है । 'सुमन' जी ने रूढ़िवाद एवं दकियानुसी मानसिकता तथा वर्ण एवं वर्गविषमता का विरोध करके समाज में समानता स्थापित हो इसके विरोध करके समाज में समानता स्थापित हो इसका लिए अपने चिंतन से समाज का मार्गदर्शन किया है ।

अर्थाधार सामाजिक चेतना एवं कला संबंधी उनके विचारों से अर्थ समाज चैतन्य एवं कला से उसके सरोकार को तर्क संगत एवं दृष्टिगम्य तरीके से देखकर पूनर्मूल्यांकन करने में सहायता प्राप्त होती है । साम्यवादी शासन प्रणाली निश्चित ही सामाजिक समरसता एवं सामाजिक स्वस्थता के लिए मददगार सिद्ध हो सकती है अतः उनकी प्रशंसा एवं समर्थन स्वीकार योग्य है । आज भी साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियाँ मानवतावाद के लिए खतरा बनकर विश्वशांति के वातावरण को कलुषित कर रही है अतः 'सुमन' जी के इस संबंध में व्यक्त विचार मददगार साबित होंगे तो शोषक वर्ग के प्रति सहानुभूति भी उत्पन्न कराने में सहायक सिद्ध होंगे । ज्वलंत समस्याओं का

चित्रण करके ऐसी समस्याओं के उपाय की और भी 'सुमन' जी अंगुलीनिर्देष करते हैं तो उनके आस्था एवं विश्वास के स्वर की प्रस्तुति अवश्य ही समाज के घावों पर मरहम का कार्य करने में सहायक सिद्ध होंगे । 'सुमन' जी ने आधुनिकता, नवीनता एवं परिवर्तन का हंमेशा समर्थन किया है । उनका यह विचार सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक भी है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी की प्रगतिवादी कविताओं में व्यक्त विचार पक्ष के वैचारिक बिंदुओं से हम मार्गदर्शन प्राप्त करके समाज में स्वस्थता का निर्माण कर सकते हैं । इस प्रकार 'सुमन' जी एक प्रभावशाली प्रगतिवादी कवि के रूप में सफल सिद्ध होते हैं । उनका प्रगतिवादि विचार-पक्ष निश्चय ही समाज के लिए मार्गदर्शक एवं सहायक सिद्ध होगा ।

संदर्भसूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१.	'मनुस्मृति'	गीता प्रेस, गोरखपुर	०९-२५
२.	'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी'	एस. मोनियर विलियम्स	४२६
३.	'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी'	वामन शिवराम आप्टे	४६९
४.	'यजुर्वेद' (दशमाध्याय)	शारदापीठ प्रकाशन्, द्वारका	०२
५.	'यजुर्वेद' (दशमाध्याय)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	०३
६.	'श्री सूक्तम्'	'पांडुरंगशास्त्री आठवले	१८६
७.	'अथर्ववेद' (३.४ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
८.	'ऋग्वेद' (१०.१७३ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
९.	'यजुर्वेद' (२.७.१०.१३ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
१०.	'संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना'	हरिनारायण दीक्षित	०३-०४
११.	'यजुर्वेद' (२२.२२ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
१२.	'अथर्ववेद' (६.७८.२ सूक्त)	शारदापीठ प्रकाशनम्, द्वारका	
१३.	'बृहत् हिन्दीकोश'	संपादक, कालिकाप्रसाद	११५२
१४.	'मानक हिन्दी कोश'	संपादक, आ. रामचन्द्र वर्मा	५०५
१५.	'राजनीति-विज्ञान के सिद्धांत' (द्वितिय खण्ड़)	पुखराज जैन	२१
१६.	'राजनीति-विज्ञान के मूलतत्व'	जी.डी. तिवारी	६९
१७.	'नालंदा विशाल शब्दसागर'	संपादक - नवलजी	११२
१८.	'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' - पत्रिका	१८, अगस्त, १९६३	०६
१९.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	२२९
२०.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	२३२
२१.	'साहित्य शोध समीक्षा'	डॉ. विनयमोहन शर्मा	०४
२२.	'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध'	आ. नंददुलोरवाजपेयी	०२
२३.	'हमारी राष्ट्रीयता'	श्री मा.स.गोलवलकरजी	३२

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
२४.	'आक्सफर्ड इंग्लिश डिक्शनरी'	आक्सफर्ड प्रेस	०९
२५.	'पोलिटिकस साईंस एण्ड कॉन्स्टिट्युशनल लॉ. (वोल्यु.०१)	प्रा. बर्गेस	०१
२६.	'जे.के.:थियरी ऑफ मॉर्डन स्टेट'	ब्लुंटश्ली	९०
२७.	'दि प्रॉस्पेक्ट्स ऑफ डेमोक्रेसी एण्ड अदर एस्सेज़'	जिमर्न ऑल्फ्रेड़	८४
२८.	'इम्प्रेशन ऑफ साउथ अफ्रिका	ब्राइस	३२
२९.	'फ्रॉम एम्पायर टुनेशन	रूर्पट एमर्सन	९५
३०.	जे. मार्क्सिज़म एण्ड क्वेशन ऑफ नेश्नालिटिज़	स्टालिन	०६
३१.	'राष्ट्रीयता की अवधारणा और पं. श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य'	डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य	१९
३२.	'कविन्द्र रविन्द्रनाथ टैगोर'	श.प्र. कानिटकर	१२०
३३.	'हिन्दी राष्ट्रभाषाभारती' ('कल्पवृक्ष' निबंध वा. श. अग्रवाल)	संपादक शशिशेखर	५५-५९
३४.	'नया हिन्दी काव्य'	डॉ. शिवकुमार मिश्र	४३
३५.	'भारत की मौलिक एकता'	वासुदेवशरण अग्रवाल	७६
३६.	'मानक हिन्दी कोश' (एफ.सेल)	प. संपा. रामचन्द्र वर्मा	५०५
३७.	'सरस्वती (पत्रिका) (न.वि. गोडगिल के विचार) मई-१९६३	संपा. श्रीनारायण चतुर्वेदी	४२१
३८.	'साहित्य देवता'	माखनलाल चतुर्वेदी	१०-११
३९.	'हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना' (अ. ०१)	विधानाथ गुप्त	०२
४०.	'धर्मयुग' (पत्रिका) ०१ से १५	मार्च - १९९२	१५
४१.	'हिन्दुस्तान' (पत्रिका) राष्ट्र की आवश्यकता	चतुर्वेदीजी ०८, अक्तूबर १९६१, रविवार	

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
४२.	पोलिकिटल आइडियल्स	सी.डी. बर्न्स	१७९-१८१
४३.	युरोपियन आटूड्पोलोजिस	थर्स्टन वी.कालिझसी	५४४
४४.	'राष्ट्रीयता'	श्री गुलाबराय	१५
४५.	'राष्ट्रीयता'	विनोबाभावे	८३
४६.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	१७०
४७.	काव्य मंजूषा	संपादक कन्हैयालाल वर्मा	१६
४८.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	४३
४९.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	४४
५०.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	५७
५१.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	८०
५२.	काव्य मंजूषा	संपादक कन्हैयालाल वर्मा	५६
५३.	काव्य मंजूषा	संपादक कन्हैयालाल वर्मा	६७
५४.	'पद्य पारिजात'	संकलन-प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी	६७
५५.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	६३
५६.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	६४
५७.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	११६
५८.	'काव्य सरिता'	संकलन - ललित एम.ए.	१४७-१४९
५९.	'सुमन समग्र' ०१ जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३७
६०.	'सुमन समग्र' ०१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	७६-१७८
६१.	'सुमन समग्र' ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३६
६२.	'सुमन समग्र' ०१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४८
६३.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९२-९३
६४.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१११
६५.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४०
६६.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२६३-२६४

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
६७.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२२-३२३
६८.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४-३२५
६९.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३१
७०.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३१
७१.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२
७२.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३
७३.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	८८-८९-९०
७४.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८८
७५.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२
७६.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३
७७.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८८
७८.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९७
७९.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०१
८०.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०२
८१.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५७
८२.	'सुमन समग्र-०१' 'जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२३
८३.	'सुमन समग्र-०१' 'जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२५
८४.	'सुमन समग्र-०१' 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६३
८५.	'सुमन समग्र-०१' 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	४७
८६.	'सुमन समग-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१३
८७.	'सुमन समग-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६७
८८.	'सुमन समग-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१८

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
८९.	'सुमन समग्र' ०१ 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४३
९०.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६५
९१.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६६
९२.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१६८
९३.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५०-३५१
९४.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५२
९५.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५७
९६.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५७
९७.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३६०
९८.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५९
९९.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३५६
१००.	'सुमन समग्र-०१' 'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३६१
१०१.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१२८
१०२.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३१
१०३.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२८
१०४.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२९
१०५.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७५
१०६.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१७८-१७९
१०७.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२१-३२२
१०८.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२०५

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१०९.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९९
११०.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्ध्य हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६१
१११.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९१
११२.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९२-१९३
११३.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९५-१९६
११४.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२९९
११५.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४
११६.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९४
११७.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९५-९६
११८.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९९-१००
११९.	'सुमन समग्र' ०१ 'प्रलय सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१८९
१२०.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३६
१२१.	'सुमन समग्र-०१' 'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	७६
१२२.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९४
१२३.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९४
१२४.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	९५
१२५.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	११५
१२६.	'सुमन समग्र ०१' जीवन के गान	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१३६
१२७.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९२-१९३
१२८.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१२९.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३२४-३२५
१३०.	'सुमन समग्र-०२' 'कटे अंगूठों की' बन्दनवारें'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३३१
१३१.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५१
१३२.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५३
१३३.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५४
१३४.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२५०
१३५.	'सुमन समग्र ०१' 'पर आँखें नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	३६०
१३६.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१५
१३७.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१७
१३८.	'सुमन समग्र-०२' 'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३९
१३९.	'सुमन समग्र-०२' 'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२४८-२४९
१४०.	'सुमन समग्र-०२' 'विन्धय हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६२
१४१.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९८
१४२.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२१६
१४३.	'सुमन समग्र-०२' मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२२०
१४४.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३६
१४५.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३७

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१४६.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३८
१४७.	'सुमन समग्र ०१' 'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	२३९

सप्तम् अध्याय

''शिवमंगलसिंह 'सुमन' का काव्य : विचार-पक्ष के विविध आयाम''

७.१ भूमिका

७.२ शिवमंगलसिंह 'सुमन' का काव्य :

विचार-पक्ष के विविध आयाम

७.२.१ जीवन-दर्शन

७.२.२ सांस्कृतिक-चेतना

७.२.३ नारी-चेतना

७.२.४ यौवन-चेतना

७.२.५ वैयक्तिक-चेतना

७.२.६ दलित-चेतना

७.२.७ ग्रामीण-चेतना

७.२.८ समसामयिक-चेतना

७.२.९ प्रेमभावना

७.२.१० प्रकृति-चित्रण

७.२.११ सौंदर्य बोध

७.२.१२ हालावादी विचार-पक्ष

७.२.१३ गांधीवादी विचार-पक्ष

७.२.१४ मानवतावादी विचार-पक्ष

७.२.१५ राजनैतिक विचार-पक्ष

७.२.१६ साहित्यक विचार-पक्ष

७.२.१७ धार्मिक विचार-पक्ष

७.२.१८ दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-पक्ष

७.३ 'सुमन' काव्य के विचार-पक्ष की प्रासंगिकता

७.४ निष्कर्ष

★ संदर्भसूचि

७.१ भूमिका

कोई भी साहित्यकार या लेखक अवश्य ही किसी न किसी वाद या विचारधारा से जुड़ा हुआ होता है । उनके साहित्य सृजन के अध्ययन के पश्चात् हम उसकी समीक्षा में उसके ऊपर किसी न किसी वाद या विचारधारा का थप्पा लगा लेते हैं । जैसे कि पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि को हम केवल छायावादी विचारधारा की परिधि में ही देखकर छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अज्ञेय को हम केवल प्रयोगवादी कहकर संतुष्ट हो जाते हैं । शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी भी एक ऐसे कवि हैं कि जिस पर काफी मात्रा में अध्ययनपूर्ण मूल्यांकन कार्य हुआ है । 'सुमन' जी के काव्यों का अध्ययन करके समीक्षक उन पर प्रगतिवादी होने की मुहर लगा देते हैं, परंतु विचारणीय बात यही है कि व्यक्ति भी किसी एक विचारधारा के बंधन में बंधना नहीं चाहेगा । पंत के काव्य का अध्ययन करें तो पता चलता है कि वे अवश्य छायावादी कवि रहे हैं किन्तु वे एक प्रकृतिवादी और प्रगतिवादी कवि भी हैं तो साथ-साथ एक अध्यात्मवादी कवि भी हैं । उसी प्रकार निराला अवश्य ही छायावादी है किंतु बाद में वे प्रगतिवादी बन जाते हैं । प्रसाद को शुद्ध छायावादी कह दिया जाता हैं, किन्तु उनके साहित्य सृजन में वैविध्य है । महादेवी के संबंध में भी यही बात सत्य प्रतित होती है; इसी प्रकार अज्ञेय के संबंध में भी यथार्थ सिद्ध होती है । इसलिए यही उचित रहेगा कि साहित्यकार को कभी संकुचित दायेर में न देखकर विशाल और विस्तृत दायरे में देखना चाहिए ।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी को समीक्षकों ने केवल प्रगतिवादी बताया, किन्तु उनके काव्य का गहनता से अध्ययन करने से पता चलता है कि वे

प्रगतिवादी कवि होने के साथ-साथ एक राष्ट्रवादी, समाज़वादी कवि भी हैं । उनके काव्य में विचार-पक्ष के अनेक विविध आयाम भी मिलते हैं, जैसे नारीचेतना यौवनचेतना उनका गहन जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक चेतना, दलित चेतना, ग्रामीण चेतना, प्रेम भावना, प्रकृति-चित्रण, राजनैतिक विचार-पक्ष, साहित्यिक विचार-पक्ष, धार्मिक विचार-पक्ष और आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचार-पक्ष । इस प्रकार 'सुमन' जी जी का काव्य विचार-पक्ष का बहुआयामी साहित्य है । इसलिए साहित्यकार कभी भी एक वाद या विचारधारा से बंधता नही है, समय के साथ-साथ उसमें भी परिवर्तन आता जाता है । 'सुमन' जी 'महादेवी की काव्य साधना' में इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि ''जिस प्रकार नदी के वेग के साथ-साथ उसका पाट भी चौडा हो जाता है उसी प्रकार युग की प्रगति के साथ-साथ साहित्य के तट भी विस्तीर्ण हो जाते हैं... आज के साहित्य में अनुभूति वेदना, यथार्थवाद की झलक, हृदय की सूक्ष्म माप तथा जीवन सम्पर्क का आनंद और क्षोभ है ... ।''[१] हम भी 'सुमन' जी की इस बात से पूर्ण सहमत हैं, उसी को ध्यान में रखकर इस अध्याय में 'सुमन' जी के काव्य में सामाजिक विचार-पक्ष, प्रगतिवादी विचार-पक्ष और राष्ट्रवादी विचार-पक्ष के अतिरिक्त उनका अन्य कौन-कौन-से विचारक्षेत्र में प्रदान हैं इसका अध्ययन इस अंतिम अध्याय में करेंगे अर्थात् हम इस अध्याय में 'सुमन' जी काव्य के विचार-पक्ष के विविध आयामों का विशेष रूप में अध्ययन करेंगे ।

७.२ शिवमंगलसिंह 'सुमन' जी का काव्य : विचार-पक्ष के विविध आयाम

'सुमन' जी ने अपने कवि व्यक्तित्व को समाज के अन्य अनेक क्षेत्रों में विस्तृत कर दिया था । उन्होंने नारी, दलित, संस्कृति, साहित्य-साहित्यकार, यौवन, गाँव, प्रेम, प्रकृति, राजनीति, धर्म, अध्यात्म व दर्शन तथा गहन जीवन-दर्शन के अनेक क्षेत्रों में अपनी नीजि अनुभूति का पुट देकर अपने विचारों को उपरोक्त विषयों के संबंध में अपनी कविता के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया । यहाँ हम उनके काव्य के विचार-पक्ष के विविध आयामों के संबंध में अध्ययन करेंगे ।

७.२.१ जीवन-दर्शन

हमारा जीवन अमूल्य है । सभी को अपने जीवन के प्रति भावात्मक प्रेम अवश्य ही होता है । जीवन के प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक पक्ष के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण जीवन-दर्शन कहलाता है । इस जीवन में जन्म और मरण एक शाश्वत सत्य है । इस जन्म-मरण के बन्धन मे से छुटकारा पाना कवि 'सुमन' जी का जीवन-दर्शन नहीं है । इसी संसार में जीते हुए कर्म करते रहना ही उनके जीवन का आदर्श है । 'सुमन' जी जन्म-मरण के चक्कर से छूटने को बड़ी उपलब्धि नहीं मानते । वे मानते हैं कि कभी जीने और कभी मरने में ही सच्चा आनन्द है । शाश्वत एवं स्थिर शांति के भ्रमजाल में फँसकर जीवन के गीने-चुने क्षणों को गुमाने की बेवकूफ़ी करनेवाले लोग मृत्यु पर्यंत भी पछताते होंगे । जीवन की इसी विराटता को कवि ने जड़चेतन के सूक्ष्म संबंधों द्वारा पकड़ने का प्रयत्न किया है । जन्म और मरण जीवन का सत्य है

और उसे 'सुमन' जी ने एक सहज घटना या सामान्य क्रिया के रूप में स्वीकार किया है । कवि 'सुमन' जी का जीवन-दर्शन मिट्टी का दर्शन है । इसी मिट्टी की महिमा का गायन ही उनके जीवन का आदर्श है । मिट्टी विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ती है । न जाने कितनी बार वह बनती है, बिगड़ती है फिर भी वह नष्ट नहीं होती । मिट्टी के अंदर जो अनश्वरता का तत्त्व है, उसी की ओर कवि हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए इन शब्दों में कहता है कि -

''निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी-पिटी
हर बार बिखेरी गई
किन्तु मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी....
सौ बार बने सौ बार मिटे लेकिन मिट्टी अविनश्वर है ।
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है ।''[२]

मिट्टी में अनश्वरता का तत्त्व रहते हुए भी मिट्टी का रूप तो नश्वर ही है । वह बार-बार अपना रूप बदलती रहती है । बार-बार बनने और मिटने में ही उसकी सार्थकता सिद्ध होती है । कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''मिट्टी की महिमा मिटने में
मिट-मिट हर बार सँवरती है
मिट्टी-मिट्टी पर मिटती है
मिट्टी मिट्टी को रचती है ।''[३]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कविताओं में 'मिट्टी' के जितने भी पर्यायवाची शब्द मिलते हैं उतने शब्द और किसी के नहीं हैं । इसका कारण यही है कि मिट्टी में ही कवि का जीवन-दर्शन मिलता है । यह स्थूल शरीर पंच महाभूतों के तत्त्वों से निर्मित हुआ है । वास्तव में, आत्मा ही मनुष्य या प्राणी है और शरीर उसके लिए ए क आवरण मात्र है । समस्त सांसारिक दु:ख-दर्द, इसी आवरण रूपी शरीर के लिए हैं न कि आत्मा के लिए जो ईश्वरांश हैं । परम्परा प्राप्त जीवन-दर्शन के अनुसार पंच महाभूतों से स्थूल शरीर का निर्माण इस प्रकार होता है - ''आकाश तत्त्व से काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और भय; वायुतत्त्व से चलना, बोलना, बल करना, संकोचन और प्रसरना, अग्नि तत्त्व से आलस्य, निद्रा, भूख, तृष्णा और जम्भाई; जलतत्त्व से रक्त, मूत्र, प्रस्वेद, लार और बिन्दु तथा पृथ्वी तत्व से अस्थि, मास, नाड़ी, चर्म और रोम का निर्माण होता है । ये पंचमहातत्त्वों की कच्ची प्रकृतियाँ है जो नियत समय के लिए स्थूल शरीर धारण करती है । उपर्युक्त मूल तत्वों का स्थूल शरीर धारण करना जीव का जन्म और पुनः स्थूल शरीर त्याग कर मूल तत्त्वों में मिल जाना मृत्यु कहलाता है ।''[४]

जीव की या आत्मा की नियत आयु के उपरान्त स्थूल शरीर की कच्ची प्रकृतियाँ स्वत्तः ही आकाश, अग्नि, वायु तथा जल में मिल जाती हैं । सिर्फ शरीर अर्थात् मिट्टी बच जाती है । दाह-संस्कार के पश्चात् यह भी अपने 'मूल तत्व में मिल जाती हैं । इसी कारण मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिलना कहा जाता है । जन्म और मृत्यु का यही

रहस्य कवि 'सुमन' जी का जीवन-दर्शन है । 'मिट्‌टी की बारात' में कवि ने जवाहरलाल नेहरू ओर कमला नेहरू के फूलों (अन्तिम अवशेषों) की बारात सजाकर इसी रहस्य का उद्‌घाटन किया है । वास्तव में, जवाहरलाल नेहरू और कमला नेहरू व्यक्ति विशेष नहीं रह गये हैं । वे सामान्य जीवों के प्रतिनिधि के रूप में दिखाई पड़ते हैं । यहाँ मिट्टी मिट्टी का, जीव-जीव का मिलन होता है कवि के शब्द देखिए -

''व्यक्ति की विशिष्टता का
व्यर्थ है बखान यहाँ
अर्घ्य दे रही समष्टि
अमर प्राणधारा को,
हम-तुम हैं ब्याज मात्र
यथाशक्ति काम किया
छुट्टी ली, चित्र-विराम
राम-राम ।''[५]

मानव की शक्ति की भी एक सीमा है, वह सब कुछ समझ नहीं सकता । जिस प्रकार जीव-जीव का स्पर्श होने पर स्पन्दन होता हैं, जरूर होता होगा क्योंकि दोनों के मूल तत्त्व एक ही हैं । 'सुमन' जी का स्पष्ट रूप में मानना है कि रोम न हो परंतु रोमरंध्र तो होते ही हैं हम चेतना हैं इसलिए तो अचेतन की अनुभूतियों के विषय में कुछ नहीं कह सकते । उसे जड़ कहने को 'सुमन' जी जी मना कहते हैं । कवि ने जवाहरलाल नेहरू और कमला नेहरू के फूलों को गंगा की धारा में एक साथ मिलाकर मिट्टी ने इसे सजीव-अनुभव-संसार को उद्‌घाटित

करने का प्रयत्न किया है । मिट्टी और मिट्टी का स्पर्श कितना, सजीव, ऐन्द्रिय और संवेदनशील होता है, उसी प्रकार जिस प्रकार नर और नारी का आलिंगन होता है । कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''मिट्टी-मिट्टी का स्पर्श
इतना सुखद होता है ?
मूक अश्रु - बिन्दुओं में
इतनी विशद व्यंजना ?
चेतन इस अनुभव को
कैसे जान पाएँगे ?''[६]

मिट्टी-मिट्टी का स्पर्श इतना सुखद क्यों होता है ? इसका उत्तर देते हुए इस प्रकार कहा गया है कि - जीवन की जो विराटता है उसमें जड़ और चेतना दोनों का हिस्सा समान है, बराबर का है । इस सृष्टि के अणु-अणु में प्रकृति-पुरूष विद्यमान है जो एक-दूसरे को आकर्षित करता है । 'सुमन' जी के शब्दों में -

''जीवन की विराटता में
जड़ चेतन दोनों का
बराबर का हिस्सा है,
पहले कभी समझी नहीं
अंकुर को फूटते और
फूलते भी देखकर,
कण-कण में सृष्टि सरस
अणु-अणु में प्रकृति-पुरूष !''[७]

'सुमन' जी के उपरोक्त विचार की पुष्टि हमें डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के इस कथन में मिल जाती हैं वे कहते हैं कि -"भारत के कई कोटि जनों को भी छोटा या असहाय महसूस नहीं करना चाहिए। हम सब अपने भीतर दैवीय शक्ति लेकर जन्में हैं। हम सबके भीतर ईश्वर का तेज छिपा है। हमारी कोशिश इस तेज-पुंज को पंख देने की रहनी चाहिए, जिससे यह चारों ओर अच्छाईयाँ एवं प्रकाश फैला सके।"[८]

मानव जीवन ईश्वर की देन हैं और ईश्वर ने यहाँ हमें किसी न किसी कर्तव्य की पूर्ति के लिए और उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेजा है। यहाँ आना और यहाँ से जाना सृष्टि का एक शाश्वत क्रम हैं। यहाँ अपना और पराया कुछ भी नहीं हैं केवल सृष्टि के विशाल रंगमंच पर अपने किरदार को निभाते हुए सृष्टि के बनाए ईश्वरीय नियमों के अनुसार अपना कर्तव्य निभाना है। इस ईश्वरीय लीला को 'सुमन' जी इस प्रकार समझाते हैं -

"हम इस नन्हीं-सी जगती में बन-बन मिट-मिट
करते अभिनय, हम दीवानों का क्या परिचय ?

शाश्वत यह आना-जाना है
क्या अपना और विराना है
प्रिय में सबको मिल जाना है
इतने छोटे-से जीवन में,
इतना ही कर पाए निश्चय,
हम दीवानों का क्या परिचय ?"[९]

मानवजीवन एक विशदप्रवाह-सा है । जीवन में सुख और दु:ख वसंत और पतझर की भाँति आते-जाते रहते हैं फिर उसके लिए विधाता को दोष देना व्यर्थ है, इस लिए आवश्यक है कि हम इस सुख-दु:ख को सहजता से स्वीकार करके चलते रहे और जीवन जीते रहें, 'सुमन' जी के शब्द देखिए

''इस विराट विश्व-प्रवाह में
किसको नहीं बहना पड़ा
सुख-दु:ख हमारी तरह
किसको नहीं सहना पड़ा,
फिर व्यर्थ क्यों कहता फिरूँ, मुझ पर विधाता वाम है,
चलना हमारा काम है ।''[१०]

यह जीवन एक भीषण रणभूमि सदृश है । इस जीवन की ज्वाला भीषण है । जीवन की अर्थात् भवसागर की प्यास अथाह है । इस जीवन को अपनी लय में सहजता से जी लेना चाहिए । कवि सुमन के शब्द देखिए -

''जो आह बन तपती कभी
जो ज्वाल बन जगती कभी
जो बुझ नहीं सकती कभी
वह प्यास, भी मेरे लिए
वरदान है, वरदान है ।''[११]

ऐसा यह संसार सुख-दु:खमय है जिसमें भीषण जीवन-संघर्ष के तूफान अनेक हैं और मँझधार में कभी अटकना भी है लेकिन जो वेदना मिली, कभी-कभी वह भी उपहार बन जाती है । कवि 'सुमन' जी के विचार इन पंक्तियों में देखिए -

''तूफान में, मँझधार में
सुख-दुख भरे संसार में
प्रिय-प्रीति के प्रतिकार में
मुझको मिली जो वेदना
उपहार है, उपहार है ।''[१२]

इसी तरह जीवन को 'सुमन' जी एक यात्रा के सदृश पर देखते हैं । इस भीषण जीवन-प्रवाह में निरंतर ही यात्रा करते रहना है । कहीं पर भी विराम नहीं मिलेगा । यहाँ तो हमें सही बनकर सिर्फ चलना है । इसलिए रूकना नहीं है केवल चलना है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''मुझको पथ पर अथ से इति तक
पल भर भी कहीं विराम नहीं
मैं राही बनकर आया हूँ
रूकने का मेरा काम नहीं ।''[१३]

यह मनुष्य जीवन एक साधना-पथ है इसमें हमें केवल तपते रहना है । जीवन-साधना के तप से तपकर ही हम अपने निश्चित जीवन-उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं । कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए

''इसका कहीं नहीं इति-अथ है,
जीवन अमर साधना-पथ हैं ।''[१४]

जीवन प्रलय और सृजन के वृत्त-सा है । जीवन में सुख और दु:ख तो आते-जाते रहते हैं अत: उनसे निर्भय हो कर मुकाबला करते हुए हँसते रोते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिए । क्योंकि इसको ही जीवन कहते हैं । जीवन की सभी उल्टी-सीधी परिभाषाओं से परे होकर उसको सहजतापूर्ण तरीके से आशा रहित जीते जाना चाहिए । कवि 'सुमन' जी के शब्दों में जीवन का स्वरूप देखिए -

''तुम हो प्रलय - सृजन के कर्ता
सुख-दु:ख तो होते रहते हैं
हँसते, रोते बढ़ते जाओ
इसको ही जीवन कहते हैं,
कुछ उल्टी-सीधी-सी तुम जीवन की परिभाषा रखते हो,
क्यों सबसे आशा रखते हो ?''[१५]

जीवन में उत्थान और पतन की क्रिया चलती रहती है । इस जीवन के उतार-चढ़ाव में भी जो व्यक्ति समताभाव से युक्त होकर जीवनयापन करे वही सच्चा मनुष्य है अत: सुख-दु:ख और उत्थान पतन में समता भाव ही जीवन का यथार्थ है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए

''गिरि गहन दुर्गम घाटियों के
घात सब सहता रहूँ
उत्थान और पतन सभी में
एक रस बहता रहूँ ।''[१६]

जीवनमार्ग बड़ा ही दुर्गम है । जीवन में अनेक पथ बाधाओं के रूप में मुसीबतें और संघर्ष आएँगे । साथ-साथ जीवनपथ पर लुभावने और फिसलन वाले आयाम भी आएँगे परंतु उन सभी में भी जो अपना मार्ग निकालकर मुसीबतों एवं संघर्षों का मुकाबला करता हुआ पथिक आगे बढ़े और सुंदरता की लुभावनी एवं फिसलन वाली मृगतृष्णा में न फँसे ऐसा दक्ष एवं दृढ़निश्चयी पथिक ही जीवनमार्ग को सरलता से पार कर जाता है । ऐसे जीवन पथिक को कवि 'सुमन' जी पथबाधाओं को दृढ़ता से पार करने और सुंदरता की मृगतृष्णा में न उलझने की सीख देते हैं और अपने पथ को न भूलकर जीवन मार्ग प्रशस्त करके आगे बढ़ने का संदेश इन पंक्तियों के माध्यम से देते हैं -

''पथ में काँटे तो होंगे ही
दूर्वादल, सरिता, सर होगे
सुन्दर गिरि, वन, वापी होंगी
सुन्दर सुन्दर निर्झर होंगे
सुन्दरता की मृगतृष्णा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं ।''[१७]

ऐसे कठिन जीवनमार्ग की पगडण्डी पर यात्री उन्मुख हो जाये और विफलताओं के कारण निराशा भी छा जाए तब अपने कर्तव्यमार्ग को सन्मुख देखकर अपनी प्रथम विफलता में पथ न भूले वही सच्चा जीवनपथिक है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जब कठिन कर्म पगडण्डी पर
राही का मन उन्मुख होगा
जब सब सपने मिट जाएँगे
कर्तव्य मार्ग सन्मुख होगा
तब अपनी प्रथम विफलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !
पग पग पर घोर निराशा के
काले बादल छा जाएँगे
तब अपने एकाकी पन में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं ।''[१८]

ऐसे कठिन जीवन मार्ग में सुख-दु:ख दोनो असह्य होते हैं किन्तु ये सुख एवं दु:ख दोनों जीवन का ही एक भाग है । सुख भी कभी कभार असह्य एवं दु:खकर होता है तो दु:ख भी असह्य होता है । दोनों से असंतोष स्वाभाविक हैं परंतु इससे भाग्य को दोष देना व्यर्थ है । 'सुमन' जी की सीख इन शब्दों में देखिए -

''सुख से भी जाते प्राण ऊब
दुख से भी जाते प्राण ऊब
मुझको दोनों ही अति असह्य
मुझको दोनों से असंतोष,
क्यों दूँ किस्मत को भला दोष ?''[१९]

इस सुख-दु:ख की पीड़ा हमें अपने तक ही सीमित रखनी चाहिए । कहीं हमारा दु:ख एवं पीड़ा देखकर दूसरे लोग दु:खी न हो जाये इसका ध्यान रखना चाहिए । पीडा एवं दु:ख की आग में हमे खुद ही जलना चाहिए । औरो को इससे तनिक भी आँच न आए इसका ख्याल रखना चाहिए । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''तुम अपने सुख-दु:ख की गाथा
अपने तक ही रखो सीमित
दो बूँद तुम्हारी देख कहीं
औरों का हृदय न भर आये
तुम जलो, जलन ही जीवन है
पर आँच न औरों को आये ।''[२०]

ऐसे सुख-दु:खमय जीवन की पगडंडी टेढ़ी-मेढ़ी एवं कठिन है । पग-पग पर फिसलन का डर है । हमारे जीवन पथ को रोकने और मार्ग में काँटे बिछाने वाले अनेक हैं, इन सब का ख्याल रखकर फूँक-फूँक कर कदम रखना चाहिए । जीवनमार्ग में सचेत रहने की 'सुमन' जी की सीख इन शब्दों में देखिए -

''जीवन की पगडण्डी टेढ़ी-मेढ़ी है
पग-पग पर फिसलन से गिरने का डर है,
खुँखार भेडिए रथ की राहें रोके
कान्तारों में फुफकार भरे गह्वरे हैं ।''[२१]

मनुष्य जीवन क्षणभंगुर है और मनुष्य जीवन का वैभव एवं सुख-दु:ख भी क्षणभंगुर है । अत: उसकी चिंता किए बिना ही सिर्फ

चलते रहने का नाम ही सच्चे जीवनपथ का अनुगामी बनना है । कवि 'सुमन' जी इसके लिए पवन का उदाहरण देकर समझाते हैं कि मारूत कभी नहीं रूकता और नहीं थकता । इस लिए हमें भी रूकना और थकना नहीं चाहिए, अनवरत चलते रहना चाहिए । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''मारूत कभी रूकता नहीं,
मारूत कभी थकता नहीं
झंझा लिए उद्‌गार में,
मैं क्यों थकूँ, मैं क्यों थकूँ ?
मैं क्यों रूकूँ, मैं क्यों रूकूँ ?''[२२]

इसलिए जीवन में कभी भी रूकना नहीं चाहिए । जीवन की जंजालों से डर कर कुछ लोग जीवन में पूर्णविराम ला देते हैं, परंतु हमें जीवन के पूर्णविराम की जगह जीवन में अल्पविराम का विचार करके चलते रहना चाहिए । सभी ऐसे पीड़ित हैं कि सबके हृदयों में शूल और पैरों में धूल है, परंतु यहाँ रूकना मतलब अंत । यह रूकना ही प्रगति और विकास को थमा देना हैं अतः यहाँ पर रूकना नहीं है । रूककर सोने से बेहतर है कि हम चलते रहे क्योंकि यह संसार है । 'सुमन' जी का संदेश इन शब्दों में -

''सबके हृदय में शूल है
सबके पग में धूल है
रूकना यहाँ पर भूल है
पथ पर कहीं विश्राम हित
सोना यहाँ अच्छा नहीं
संसार है, संसार है ।''[२३]

कुछ लोग जीवन के सुख में उन्मत्त हो जाते हैं और अपनी जीवनगति पर पूर्णविराम लगा देते हैं । कुछ लोग दु:ख से निराश होकर जीवन की गति को पूर्णविराम लगा देते हैं । परंतु जीवन का अटल नियम है कि सुख-दु:ख ऊषा और सन्ध्या की भाँति आते-जाते रहते है । क्योंकि जीवन के कण-कण, अणु-अणु में गति है, जो व्यक्ति बैठ गया सो गया, रूक गया वह मानों मिट गया । जीवन मानव उर के निर्झर के समान है इसलिए हमें निर्झर की भाँति चलते रहना चाहिए । 'सुमन' जी का जीवनसंदेश इन शब्दों में देखिए -

''हो पाते हैं थिर कभी नहीं,
मैं देख रहा ऊषा, सन्ध्या,
झंझाएँ रूकती कभी नहीं
जीवन के कण-कण में गति है
जीवन के अणु-अणु में गति है
मानव-जीवन के चिर-साथी
सुख-दु:ख भी टिकते कभी नहीं

संसृति है, आखिर सृति-हीनों का हो सकता अस्तित्व कहाँ ?
जो पथ पर बैठा वही मिटा चलने वालों का नाम यहाँ
मैं मानव-उर का निर्झर हूँ, बहना ही मेरा काम यहाँ ।''(२४)

यह जीवन गति है इसलिए चलना ही होगा । यह जीवन तप है इसलिए तपना ही श्रेयस्कर है । रूकना तो हमारे मन की कायरता मात्र है । इसलिए मन की कायरता और दुर्बलता छोड़कर चलते रहना ही स्वस्थ जीवन की निशानी है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जीवन गति है होगा चलना
जीवन तप है होगा तपना
यह हाय व्यर्थ की तो केवल
मेरे मन की कायरता है ।''[२५]

आज तक का इतिहास साक्षी है कि मानव जीवन की परंपरा में मनुष्य ने प्रलय-सृजन दोनों में कितनी ही मुसीबतों का सामना डँटकर किया है, कभी हार नहीं मानी । इसी जीजीविषु और विजीगीशु वृत्ति के कारण ही संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ टिकी हैं और आज की स्थिति तक पहुँच सकी है । इसलिए कभी भी रूकना नहीं हैं क्योंकि रूकना ही मृत्यु की निशानी है । इसलिए ही 'सुमन' जी तूफानों का सामना करके उनसे लडकर जीतने की अस्मितापूर्ण भाषा में कहते है कि -

''मिट्टी के पुतले मानव ने
कभी न मानी हार
तूफानों की ओार
घुमा दो
नाविक !
निज पंतवार !''[२६]

'सुमन' जी इसलिए ही अनवरत चलते रहने और प्रगति करने पर ज़ोर देते हैं। क्योंकि चलने से नया नया प्राप्त होता रहता है और हमारा विश्वास भी बढ़ता रहता है । जलने से, तप से तमिस्रा चूर होती है तो गलने से हृदय का बोझ हल्का हो जाता है और ढलने से समय का साथ मिलता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

'चल रहा हूँ क्योंकि चलने से थकावट दूर होती,
जल रहा हूँ क्योंकि जलने से तमिस्रा चूर होती,
गल रहा हूँ क्योंकि हल्का बोझ हो जाता हृदय का,
ढल रहा हूँ क्योंकि ढलकर साथ पा जाता समय का ।''[२७]

जीवन में कभी भी भूतकाल को याद करके रूक जाना नहीं चाहिए । रूकना एक तरह से मिटना ही है । इसलिए हरदम बढ़ते ही रहना चाहिए । क्योंकि जीवन एक सरिता की भाँति है जो हंमेशा अनवरत गति का प्रतीक है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''रूकना मिटने को कहते हैं
हम हरदम बहते रहते हैं
जो कुछ आता है सहते हैं
यह वह प्रवाह जो बीते पथ की कथा नहीं दुहराता है,
जीवन बहता ही जाता है ।''[२८]

जीवन में कर्मवाद का या कर्मयोग का बड़ा ही महत्त्व है । अगर जीवन में निरंतर चलना है तो अनवरत कर्मयोग करना पड़ेगा, इसलिए ही तो भगवान श्रीकृष्णने 'भगवद्‌गीता' में निरंतर कर्म और श्रम फल की आशा रखे बिना कर्म करते रहने का संदेश सुनाया है । वे कहते हैं कि – **''कर्मण्ये वा धिकारस्ते मा फलेशु कदाचन ।''** इसलिए जीवन में श्रम का अधिक महत्त्व एवं मूल्य है । जीवन में अनवरत गति से श्रम करते रहना ही जीवन का विकास है यही महान जीवन का सच्चा उद्देश्य है । 'सुमन' जी के शब्दों में श्रम के महत्त्व को देखिए –

''मलिन अश्रुकण अशुभ, यहाँ
श्रमकण की ही पूजा
स्वर्ग-नर्क के लिए
बनाया गया पथ न दूजा ।''[२९]

जीवन की जंजालों से भय लगता है, जीवन संघर्षों से हम अक्सर कतराते रहते हैं लेकिन इतना विचार हमारे मस्तिष्क में क्यों नहीं आता कि अगर जीवन सीधा और सपाट होता, अगर जीवन में कभी संघर्ष ही नहीं होते तो हमारे जीवन में क्या रस होता ? ताज़गी होती ? उत्साह होता ? अगर अवरोध नहीं होगा तो हम किसे ढहाएँगे ? अंगारे या आग की अनुपस्थिति में शीतलता का महत्व कैसे जानते ? विकास और गति-प्रगति का सुख और आनंद कैसे प्राप्त होता ? इसलिए जीवन को झरने और नदी की तरह चैतन्यपूर्ण, उत्साहित, आनंदित और रसपूर्ण रखने के लिए आवश्यक हैं कि जीवन में सुख के साथ दुःख हो, मिलन के साथ विरह भी हो, नवीनता के साथ पूरातनता भी हो, धूप के साथ छाँव भी हो, आराम के साथ श्रम भी हो । इन सबका जीवन में महत्त्व एवं आवश्यकता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जीवन के जंजालों से जी घबराता है,
औरों से क्या अपने से भी कतराता है ।
व्याकुल होता, रोता, गाता, चिल्लाता है,
संघर्षों की चिंता को चिता बताता है
मैं सोच रहा यदि पथ में न हो परेशानी

जीवन सीधा सपाट सुथरा-सा सैलानी
तो पग आगे बढ़ने को क्यो अकुलाएँगे ?
अवरोध नहीं होगा तो किसे ढहाएँगे ?
अंगारे किसकी शीतलता सुलगाएँगे ?
आँसू किसकी मीठी मुस्कान चुराएँगे ?
कैसे सागर का उमड़ा ज्वार जुटाएँगे ?
रेगिस्तानों में कैसे रस बरसाएँगे ?
नभ की नीली चुप्पी का मौन मिटाएँगे ?
चंदा के घर का राज किस तरह पाएँगे ?
मंगलग्रह में मंडप कैसे बनवाएँगे ?
संध्या के सिर कैसे सिंदूर सजाएँगे ?
शबनमी सितारे कैसे ढलवा पाएँगे ?
अनबींधे मोती कैसे गुहवा लाएँगे ?
सीधी बाँहों से कैसे गले लगाएँगे ?
सीधी राहों से कैसे मंजिल पाएँगे ?''[३०]

ज़िन्दगी में हंमेशा ही विजीगीशु वृत्ति रखनी चाहिए । ज़िन्दगी जीत का ही दूसरा नाम है । जीवन में विश्वास और आशा का दीपक हमेशा जलाए रखना चाहिए । मृत्यु केवल थोडे अंतराल के लिए विश्राम है तो संघर्ष हमारी ज़िन्दगी की एक लाचारी है क्योंकि बिना संघर्ष के जीवन सागर की नैया पार नहीं होगी । 'सुमन' जी का जीवनदर्शन इन शब्दों में देखिए -

''ज़िन्दगी जीत है,
विश्वास है, तय्यारी है,
मौत विश्राम है,
संघर्ष की लाचारी है ।''[३१]

जीवन ईश्वर की देन है, ईश्वर का दिया हुआ वरदान है । जीवन की साँसें लंबे समय तक चलती रहती है इसमें ईश्वर की कृपा है । ये साँसे शीतल हवा के जैसी है तो जलद वड़वानल सी भी है, ये साँसे मलयानिल-सी हैं तो दावानल जैसी भी हैं । इसलिए जीवन की इन साँसों को हमें सहजना चाहिए । इन साँसों को संजोना चाहिए । हमें गफ़लत में न रहकर जो भी खोया है, जो भी गिराया है उनको भूल जाना चाहिए, जीवन में जो भी गलतियाँ हुई उसको भूलकर उन्हें सुधार लेना चाहिए । जीवन में प्रगति-विकास और नवीनता के बीज बोकर भविष्य निर्माण की फसल सबकुछ भूलकर नवीन आशा के साथ लगानी चाहिए, 'सुमन' जी का जीवन संदेश इन शब्दों में देखिए -

''साँसें शीतल समीर भी, बड़वानल भी
साँसें हैं मलयानिल भी, दावानल भी
इसलिए सहेजो इनको तुम गिन-गिनकर
अब तक गफलत में जो खोया सो खोया
अब तक असर में जो बोया सो बोया
अब तो साँसों की फ़सल उगाओ भाई
अब तो साँसों के दीप जलाओ भाई ।''[३२]

जीवन में जो गलतियाँ और भूल रूपी गर्द जमा हुई हो उसे लज्जा समझकर उन्हें साफ़ कर लेना चाहिए । अब तक अगर हमने कुछ नहीं किया है तो अब जागृत हो कर उठना चाहिए, जितनी भी जिन्दगी बाकी हैं उन्हें सार्थक बनाकर पूर्ण रूप से जी लेना चाहिए पश्चाताप से कुछ न होगा, पश्चाताप करके बैठ जाना नहीं लेकिन आगे बढ़ना ही स्वस्थ जीवन की निशानी है । ऐसी अस्मिता के साथ जीना ही जीवन की सच्ची सार्थकता है और सम्मान भी है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''जीवन की लज्जा है तो अब भी चेतो
जो जंग लगी सको खराद पर रेतो,
जितनी बाकी है सार्थक उन्हें बना लो
पछताओ मत आगे की रकम भुना लो ।
अब काल न तुमसे बाजी पाने पाए,
अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाए ।
तब जीवन का सच्चा सम्मान रहेगा ।''[३३]

जीवन की एक वास्तविकता को साथ लेकर चलना है और जीवनमार्ग प्रशस्त करते जाना है कि हमें जीवन में कुछ भी हो लेकिन जीवन में चलना है और अनवरत चलना है । अँधेरों में भी बिना डरे चलते जाना है । हमें समय के साथ कदम-से कदम मिलाकर चलते जाना हैं । इसलिए हमें अपने आस-पास आशा-निराशा और सुख-दुःख के तथ्य बंधनों के किले नही गढ़ने हैं और सरहदें नहीं बनानी है। जीवन में सदा ही मुक्त मन से सहजता से, मौलिकता से और स्वतंत्रता से जीवन जीना है । 'सुमन' जी के शब्दों में जीवनदर्शन देखिए -

''मुझको तो चलना है
अँधेरे में जलना है
समय के साथ-साथ ढलना है
इसीलिए मैंने किले नहीं बाँधे
मीनारें नहीं गढ़ीं
सरहदें नहीं सांधी
जीवन में सदा मुक्त बहा, सहा
हवा आगपानी-सा
बचपन, जवानी-सा ।''[३४]

मनुष्य अपने जीवन में निरंतर अतृप्तता के वृत्त के घेराव में बंधा रहता है किन्तु सृष्टि का एक सनातन नियम यह भी है कि यहाँ सबकुछ क्षणभंगुर है कुछ भी नित्य नहीं हैं, सबकुछ अनित्य ही है । जीवन में अर्जित किया हुआ वैभव भी क्षणभंगुर है, केवल छलावा और स्वप्न है अतः 'सुमन' जी कहते हैं कि वैभव के पीछे अंधी दौड लगाना व्यर्थ है, 'सुमन' जी के शब्दों में वैभव की क्षणभंगुरता देखिए -

''वैभव क्या है ? सपना है, इस छोटे-से जीवन का,
अपना क्या है ? खो देना, जीवन में अपनेपन का ।''[३५]

'सुमन' जी जीवन का एक मात्र सत्य मृत्यु को मानते हैं । मृत्यु के कारण परमशांति प्राप्त होती है, जीवन के कष्टों से, जीवन के द्वन्द्वों से और जीवन के संघर्षों से । अतः मृत्यु अनिवार्य है और जीवन का एक मात्र सत्य है 'सुमन' जी के शब्दों में मृत्यु के संबंध में विचार

दृष्टव्य है, जिसमें वे मृत्यु और जीवन के हलाहल को हँसकर पी लेने की बात करते हैं और कहते हैं कि जीवन की कलुषिता के गरल को पी गया वही जी गया और हँसते-हँसते ऐसा जीकर मृत्यु का वरण कर गया वहा परमशांति को प्राप्त कर गया -

"मैं तो फक़्त यह जानता
जो मिट गया वह जी गया
जो बंद कर पलकें सहज
दो घूँट हँसकर पी गया
जिसमें सुधा-मिश्रित गरल,
वह साकिया का जाम है,
चलना हमारा काम है ।"[३६]

जीवन में जन्म-मरण से हम सब बँधे हुए हैं ।जीवन के एकमात्र सत्य जन्म और मृत्यु को हमें स्वीकार करके चलना चाहिए । यह संसार इस जन्म-मृत्यु की माया के अंचल में ही सिमटा हुआ है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

"चिर जन्म-मरण हैं बँधे हुए
माया के विस्तृत अंचल में
तुक माया का संसार छिपा,
लेती हो अपने कुंतल में ।"[३७]

यह जीवन और यह जगत अपूर्ण है, हम भी अपूर्ण है । हमें अपनी मर्यादाएँ पहचान लेनी चाहिए । इसलिए सभी को जीवन में

एक-सा समझकर नहीं चलना चाहिए । अभिलाषाएँ रखना व्यर्थ है । कभी-भी हमारी इच्छाओं और आशाओं के अनुरूप इस संसार में संभव नहीं होता । इच्छाओं, आकांक्षाओं और आशाओं की मृगतृष्णा में भटकना व्यर्थ है । तृप्ति हमारे अन्तर में ही है । हमारे अंदर ही चिर परम-शांति है, केवल उसकी अनुभूति मात्र की देरी है । इसलिए सबसे आशा रखना व्यर्थ है मृगजल के समान है । 'सुमन' जी के शब्दों में जीवन-संदेश देखिए -

''जग अपूर्ण है, तुम अपूर्ण हो
अपनी सीमाएँ पहचानो
जिस-तिस से मत नेह लगाओ
कुछ तो सोचो, समझो, जानों
सबको अपने-सा समझे हो,
नाहक अभिलाषा रखते हो ?
क्यों सबसे आशा रखते हों ?
मानव का मनचाहा जग में
कभी नहीं पूरा होता है
इच्छाओं की मृगतृष्णा में
क्यों तू अपने को खोता है ?
तृप्ति तुम्हारे ही अन्तर में क्यों कहते प्यासा रखते हो ?
क्यों सबसे आशा रखते हो ?''[३८]

जीवन क्षणभंगुर है, कब मृत्यु अपनी आगोश में सुला दे पता नहीं, आज तक का इतिहास गवाह है कि कोई भी, मृत्यु से बच नहीं

सका है । मृत्यु का क्रम निरंतर चलता रहता है, अतः अपनी लय में जग में अमर हो जाए ऐसा जीवन जी लेना चाहिए । मृत्यु कभी भी पूर्णविराम नहीं है । मृत्यु के बाद भी जीवन निरंतर है । मृत्यु के बाद भी जन्म होगा और नये शरीर रूपी वस्त्र फिर से पहन लेंगे । अतः पुनर्जन्म निश्चित है । मृत्यु के भय को इसलिए ही मन से निकालना चाहिए । मृत्यु की सत्यता और जन्म-मरण की निरंतरता का सृष्टि सिद्धान्त 'सुमन' जी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

''एक-एक चिनगारी में ही
कितने काल अशेष भरे हैं ?
कितनों के अरमान अधूरे
यहाँ राख का वेश धरे हैं

        नित प्रति नई नई आहुतियाँ
        धधक रही मरघट की ज्वाला

फूँक चुके कितने अपने ही
हाथों से जीवन-सुख अपना
बहा चुकी हैं दुनिया आँखें
कितनी गंगा कितनी यमुना

        पर न बुझी है, बुझ न सकेगी
        धधक रही मरघट की ज्वाला....

राम, कृष्ण, गौतम कोई भी
इन लपटों से बचे नहीं हैं ।
अजी हमारे जन्म-मरण के खेल
इन्हें कुछ नए नहीं हैं

भूख प्रबल है वैश्वानर की

धधक रही मरघट की ज्वाला ।''[३९]

मृत्यु से भय निरर्थक है क्योंकि मृत्यु के पश्चात भी जीवन है । जैसे साँप खाल उतारता है और फिर नयी खाल धारण करता है वैसे ही मृत्यु से हम अपना शरीर केवल बदलते है । जीर्णावस्था के कारण शरीर को नए रूपरंग की आवश्यकता रहती है वह नए रूप-रंग मृत्यु के बाद नए शरीर के रूप में मिलते हैं, आत्मा वही रहती है । अतः मृत्यु के बाद भी अमरता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

धन्य है, धन्य है, जीवन-प्रवाह यह....

मिट्टी कभी मिटती नहीं,

मिट्टी कभी मिटती नहीं

मृत्यु ने अमरता का प्याला पिला दिया ।''[४०]

'सुमन' जी का जीवन दर्शन गहन है, गंभीर हैं तो साथ-साथ सहज भी है। 'सुमन' जी ने जीवन की अनश्वरता, जीवन वैभव की अनश्वरता और जीवन की अभावग्रस्तता के साथ-साथ जन्म-मृत्यु संबंधी विचारों को जो वेदों और उपनिषदों में गंभीर विचारों में व्यक्त हुए हैं उन्हें सहजता से अपनी कविताओं में व्यक्त किया है । यह जीवन दर्शन कोई सिद्धांतों का परिणाम न होकर जीवन की सच्ची अनुभूतियों का फल है ऐसा हम निस्संदेह कह सकते हैं ।

७.२.२ सांस्कृतिक चेतना

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ 'डकृ' करणे धातु से 'वितन्' प्रत्यय और **'सम्पर्युपेभ्यः करोती भूषणे समवाये व नियम'** से संगम करने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ संस्कार, शुद्धता या परिष्कृत करना होता है । परम्पराओं से प्राप्त विचारधारा, मूल्य, आदर्श, गुण, कला, शिल्प, वस्तु, उत्सव, आदत, संस्कृति के ही अंग है । आदर्शों, मूल्यों, गुणों, स्थापनाओं, स्थापत्यों, विचारों का समूह ही संस्कृति है । इन सभी सम्मिंश्रण से ही किसी समाज की संस्कृति एवं जीवनशैली का निर्माण होता है । आदर्श आचार प्रणाली, आदर्शजीवन प्रणाली और आदर्श विचारप्रणाली का समन्वय संस्कृति है । संस्कृति में सभ्यता का समावेश हो जाता है । आदर्श सामाजिक व्यवहार या 'पैटर्न' इसमे समाहित है । अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा प्राप्त गुणों के समुदाय, मन और आत्मा की संतुष्टि के लिए किए जाने वाले प्रयासों को समन्वय, जीवन की पूर्णता का अध्ययन, जीवन को परिष्कृत और सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिए जीवनमूल्यों का अनुसंधान, अभिव्यक्ति की आन्तरिक शक्ति और आदर्श विकसित सभ्यता आदि सभी का संस्कृति में समावेश हो जाता है । 'संस्कृति' (संज्ञा-स्त्रीलिंग) शुद्धि, सफाई, पवित्रता, सुधार और संस्कार का पर्याय है । किसी भी व्यक्ति, जाति, समुदाय, समाज, संघ, राष्ट्र आदि की वे सभी बातें जो उसके मन, रूचि, आचार, विचार, कला, कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक संस्कृति होती है । 'संस्कृति' शब्द को अंग्रेजी के 'कल्चर' का भी पर्याय मान

सकते हैं । 'कल्चर' का अर्थ है - संवर्धन, संस्कृति आदि । रामचन्द्रराय के मतानुसार - ''किसी देश या जाति की संस्कृति का परिचय उसके साहित्य, कला, संगीत, उत्सव, अनुष्ठान, धर्म, सामाजिक रीति-नीति आदि में ही मिलता है ।''[४१] विश्व की अनेक संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति अद्वितीय हैं । सबसे प्राचीनतम संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति सबसे सर्वश्रेष्ठ है । उनकी आचार, विचार और आदर्श जीवनप्रणाली में भारतीय संस्कृति जितनी भव्य और महान संस्कृति अन्य कोई भी संस्कृति नहीं है । भारतीय संस्कृति का स्वरूप 'सुमन' जी की कविताओं में मिलता है । 'सुमन' जी का परिचय कराते हुए इन पंक्तियों के द्वारा बताते हुए लिखते हैं कि -

''जिसके गृह-गृह में संस्कृति की निधि बिखरी
जिसके छौने थे इतिहासों के प्रहरी ।
उसके अतीत को वर्तमान करने में
सौ 'सुमन' मिटें पर जिए अवंती-नगरी ।''[४२]

विन्ध्य और हिमालय दोनो पर्वतश्रृंखलाएँ भारतीय संस्कृति के आधार हैं । इन दोनों के बीच पनपी हमारी संस्कृति 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के आदर्श को चरितार्थ करती है । उत्तर और दक्षिण की भव्य संस्कृतियाँ इन से बंधी हुई विश्व में अपना वैभव तप एवं गुणशील से श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किए हुए है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''तमसो मा ज्योतिर्गमय' तपस्या के वितान-सी तनती है
भगवान भास्कर मुग्ध, उच्चता विनय किस तरह बनती है ।

निर्धूम जातवेदस् ज्वलंत विरता अर्पिता गौरी से,
उत्तर-दक्षिण को बाँध दिया जिसने किरणों की डोरी से ।''(४३)

अवंतिका की संस्कृति में वे सांदिपनि गुरू, शिप्रा नदी, कालिदास, भर्तृहरी, पीर मछंदर बाबा और प्राकृतिक सुन्दरता आदि विभिन्न संस्कृतियों का मिलन 'सुमन' जी कराते हैं ।

'सुमन' जी वातायन से हिमालय का दर्शन करते हैं । विन्ध्य और हिमालय से निकलने वाली गंगा भारतीयों के लिए सदियों से संस्कृति का प्रतीक रही है । इस संस्कृति की निधि के विषय में 'सुमन' जी के विचार इस प्रकार हैं -

''प्रतीक्षा की तितीक्षा में
उमस कर फूट पड़ती हैं
कहीं गंगा, कहीं जमुना
तरंगित कामनाओं की
सहेली सी अलकनंदा ।
हमारे पूर्वजों को
क्या मिला तुमसे
नहीं मालूम,
न उतनी साधना मुझ में
न उतना आत्मचिंतन ही
मगर मैं
नवस्फटिक की स्निग्ध सिहरन में

चमकते ऊर्ध्व कलशों को
निहारा नित्य करता हूँ
यही आशा लिए मन में
कि शायद तुम कभी बोली
हमारी अर्चना तोलो ।"[४४]

हमारे देश में अनेक महापुरूष हुए हैं और अनेक साहित्यकार हुए हैं जिसके विचारों ने और साहित्य ने संस्कृति को जीवंत रखा है । इन महापुरूषों में रवीन्द्रनाथ टैगोर हैं, वे शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे, जहाँ कि छात्र का सीधा संबंध प्रकृति से हो छात्र ऐसे परिवेश में विकास करके ही महान बन सकता है । रवीन्द्रनाथ टैगोर जो भारतीय संस्कृति के उन्नायक एवं गायक रहे हैं उनके प्रति 'सुमन' जी के भाव इन शब्दों में देखिए -

"आर्य संस्कृति के प्रतीक तुम
युग के संचित ज्ञान
भगीरथ की अमर तपस्या
गौतम के निर्वाण
वीणावादिनी की स्वर-लहरी
वाल्मीकि के छन्द
उदित अमानिशि में भारत की
तुम राका के छन्द .... ।
रण की विभीषिका से विह्वल
जब जग आठों याम
बना रहे थे तब तुम अपना
शान्ति-निकेतन धाम ।"[४५]

'सुमन' जी इस पृथ्वी पर सांस्कृतिक मूल्यों की आधारशिला को इतना मज़बूत रूप देना चाहते हैं, ताकि यह निरन्तर युगों-युगों तक विद्यमान जन-संस्कृति का ऐसा महल खड़ा हो जाय कि जिसको प्रलय के तूफान भी न हिला सके । करूणा, प्रेम, दया, परोपकार का समावेश कर इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कामना उनमें बलवती प्रतीत होती है । सांस्कृतिक नवीन मूल्यों का वे स्वागत करते हैं । इसलिए नवसंस्कृति के निर्माण के लिए आह्वान करते हैं । जन-संस्कृति को मजबूत करना चाहते हैं । 'सुमन' जी के विचार इन शब्दों में देखिए जिसमें वे हमारी जन संस्कृति के द्वारा स्वर्ग और धरती को एक बनाकर ऐक्य भावना का संचार वे करना चाहते हैं -

''नव-संस्कृति के निर्माण-प्रहर में
क्षमा न क्षणभर ढील
नव-संकल्पों से शेषनाग के
फन में गाढ़ो कील
जिससे न प्रलय भी हिला सके
जन-संस्कृति के प्रासाद
शिव के बीहड़ कैलाश -श्रृंग को
आज करा आबाद,
अबतक की अनजानी है
इनकी बुलन्दगी को टेक,
अब स्वर्ग और धरती को
मिलकर हो जाना है एक ।''[४६]

धार्मिक ग्रन्थों में तीन गुणों की विशेषता बताई गई है । जिस मनुष्य में सत्व गुण की प्रधानता होती है, वह अच्छे संस्कारवाला व्यक्ति माना जाता है । उसमें मानवता के सभी गुण विद्यमान होते हैं । रजस और तमस गुण में उपर्युक्त विशेषताएँ नहीं पाई जाती । इस प्रकार के गुणों का वर्णन 'सुमन' जी ने किया है । हमारी संस्कृति सत्त्वगुण को अधिक महत्त्व प्रदान करती है । परन्तु केवल सत्त्वगुण से काम नहीं चलेगा तीनो सत्व, रजस और तमस का समन्वित रूप ही आदर्श माना जाएगा । हमारी संस्कृति में गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों का संगम त्रिवेणी संगम कहा जाता है । यह त्रिवेणी संगम उपर्युक्त तीनों गुणों का भी होना आवश्यक है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''संगम है, संगम है
यहाँ सभी मिलते हैं
नारी–नर, पुण्य–पाप
वर और शाप
संगम है, संगम है
गंगा का, जमुना का
गत–आगत–अधुना का
सत्, रज औ' तम की
सम्मिलित हिलोर – सी
सरस्वती सिसक रही है
यहाँ विभोर – सी ।''[४७]

'सुमन' जी समग्र समाज में सुख-शांति की कामना करते हैं । वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श की स्थापना करना चाहते हैं । हमारी भारतीय संस्कृति का उच्चतम आदर्श भी यही है जो सदियों पूर्व हमारे ऋषियों ने दिया था । इसके लिए समग्र संसार एक परिवार की तरह है । इसलिए मानवमात्र की महत्ता होनी चाहिए । मानवता को सर्वोच्च स्थान देते हुए आपस में प्रेम, सहानुभूति, दया और मैत्री की खुशबू बिखेरना ही हमारी संस्कृति का उद्देश्य है । इसलिए 'सुमन' जी दूसरों की सुख-शांति की कामना करते हुए स्वयं विश्राम नहीं लेना चाहते । सम्पूर्ण विश्व की व्यथा समझकर तथा दुःखीजनों के आँसू पोंछकर चलना ही भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''औरों को सुख-शांति
        स्वयं विश्राम नहीं लेना
जो जितना विदग्ध
        उतना ही मूल्य उसे देना
यह समझो वरदान कि
        जग की व्यथा तुम्हारी भी
आँसू थाम हँसो
        जिससे पथ-पार्श्व उदास न हो ।''[४८]

हमारी संस्कृति में उत्सवों का अधिक महत्त्व है क्योंकि संस्कृति का वे एक अंग होते हैं । संस्कृति में भी कहा गया है कि - ''उत्सवप्रियाः

खलु मानवा ।'' मनुष्य मात्र को उत्सव प्रिय होता है । हमारी भारतीय संस्कृति में होली, दीवाली आदि अनेक उत्सव मनाये जाते हैं । होली तो विश्व के समक्ष हमारी संस्कृति की एक अलग पहचान देता हुआ उत्सव है । होली के उत्सव का वर्णन खुशियों का, रंगो का उत्सव है । 'सुमन' जी हमारी संस्कृति के परिचायक ऐसे होलिका उत्सव की इस प्रकार इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं-

''आज सुबह से अदली - बदली बोली है,
लोल कपोलों में अबीर है, रोली है,
होली- होली कहते तारे भाग गए
अम्बर की आँखों में शोख ठिठोली है ।''[४९]

'रंग-पंचमी' उत्सव एक ऐसा उत्सव है जिसमें रस की बदली-सी छायी रहती है । ऐसे रंग-पंचमी की रंगों की खुशियों की भावनायुक्त प्रस्तुति 'सुमन' जी जी के इन शब्दों में देखिए -

''बड़ी रंग ली रंग-पंचमी आई हो,
गली-गली में रस की बदली छाई हो ।''[५०]

'सुमन' जी की कविताओं में सांस्कृतिक चेतना प्रभावशाली ढ ंग से व्यक्त होती है । 'सुमन' जी हमारी संस्कृति के मूल्यों को विश्व समक्ष रखने में सफल भी हुए हैं । हमारी संस्कृति की एक अलग पहचान है और 'सुमन' जी ने इस पहचान को साहित्य के माध्यम से विश्व समक्ष रखा है।

७.२.३ नारी चेतना

सृष्टि में दो चेतनाएँ मुख्य रूप से विद्यमान हैं, एक हैं शिव तत्त्व और दूसरी हैं शक्ति तत्त्व इसी आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति में नर और नारी दोनों को मुख्य आधार है । हमारा समाज प्रारम्भ से आज तक पुरूषप्रधान समाज रहा है । हमारे मनु ने ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' कह कर नारी की पूजा एवं उसका सम्मान किया है । वेद काल में भी नारी को पुरूष समकक्ष और समग्र सृष्टि की निर्माणकारी शक्ति माना जाता था । नारी का सम्मान किया जाता था, उस देवी कहकर पुकारा गया है । हमारे यहाँ उसे समय नारी को शिक्षा का अधिकार था, गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी नारियाँ इसका प्रमाण हैं । किन्तु बाद में धीरे-धीरे नारी का स्थान गिरता गया, उसे तुच्छ समझने की शुरूआत हुई । नारी के मौलिक अधिकारों को छीन लिया गया । नारी का शोषण होने लगा । नारी केवल पुरूष की अहम संतुष्टि एवं वासना त्रुप्ति का साधन मात्र हो गई । नारी के साथ अन्याय होने लगा । नारी केवल एक वस्तु की तरह समझी जाने लगी । नारी को एक मानवीयचेतना न समझकर उसे विक्रय की वस्तु बना दिया गया ।

हमारे पुरूषप्रधान समाज में नारी का स्थान हेय एवं तुच्छ है । उन्हें मौलिक मानवाधिकार प्राप्त नहीं है । सहन केवल नारी को ही करना पड़ता है, सब नियम केवल नारी के लिए ही है । नारी सदियों से पीड़ित एवं दलित अवस्था में शोषणयुक्त जीवनयापन कर रही है । साहित्य समाज का प्रतिबिंब और दर्पण है । साहित्य समाज की

कलुषितताओं को उजागर करके उनका हल बताता है, उन्हें दूर करने की कोशिष करता है । साहित्य ने यह दायित्व नारी शोषण के संदर्भ में भी निभाया है । सन् १९५० के आस-पास सिमोन बुवर् आदि के प्रयत्नों से पश्चिम में नारीवादी आंदोलन का प्रारम्भ हुआ और उसके प्रभाव स्वरूप नारी चेतना, नारी विमर्ष की विचारधारा साहित्य में आयी नारी शोषणमुक्त कराना और उसकी नारी चेतना को जागृत करके उन्हें समाज में उसका वास्तविक स्थान दिलाना ही नारी चेतना या नारी विमर्श की विचारधारा का मुख्य उद्देश्य है और यह उद्देश्य साहित्य के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयत्न ही साहित्य में नारीवादी चिन्तन का आधार है । अनेक साहित्यकारों ने हिन्दी में नारी चेतना को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है । नारियों की समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान दिया है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी भी एक ऐसे कवि हैं कि जो नारी का पूर्ण सम्मान करते हैं । सृष्टि में और समाज में नारी को बराबर का हिस्सेदार वे मानते हैं इसलिए वे उन्हें एक वस्तु न समझकर पूर्ण मानवीय चेतना के संदर्भ में ही देखते हैं । 'सुमन' जी ने नारी चेतना को अपनी कविता में स्थान देकर उनकी समस्याओं को उजागर करके नारी चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया है ।

'सुमन' जी नारी को तप और त्याग की मूर्ति समझते है । नारी के तप और त्याग की उच्चतम भावना के कारण ही श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम कार्य एवं साधना सफल होती है । मानवीय जीवन और पुरूष समाज नारी की तप एवं साधना का ऋणी है । हमारे समाज में वीर

नारियाँ हुई हैं उसमे झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई है तो त्याग और तपस्या की मूर्ति ऐसी यशोधरा जैसी नारी भी हुई है जिसका सिद्धार्थ को बुद्ध बनाने में बड़ा योगदान है । अगर यशोधरा का त्याग न होता तो कदाचित बुद्ध बुद्धत्व प्राप्त न कर पाते । बहुजनहिताय हेतु यशोधरा ने व्यक्तिगत जीवन का त्याग किया यशोधरा एक मात्र 'सिद्धार्थ की पत्नी ही नहीं अपितु ऐसे सफल पुरूषों की पत्नियों की प्रतीक हैं जिसका तप और त्याग सफलता का मूल रहा है । 'सुमन' जी के शब्दों में यशोधरा के माध्यम से नारी का सम्मान, नारी-चैतन्य की पूजा देखिए -

''कभी - कभी सोचता हूँ
कौन तपा पंचाग्नि
तुम या यशोधरा ?
आग वह किसकी थी
जिसने इस जीवन की
नींद तुम से छीन ली,
राग वह किसका था
जिसने अपनाया कन-कन को
बहुजन हिताय चिर-विरही
संसृति के तुमने जिस वियोग का
संयोग दिया जग को
विह्वल बहुजन सुखाय ।''[५१]

नारी के जीवन के अनेक रूप हैं जैसे पत्नी, बेटी, बहन, प्रेयसी और माता । माता का नारीरूप ही इस सृष्टि की संचालिका

शक्ति है ऐसा हम कह सकते हैं । अगर माता न होती तो सृष्टि निर्माण का और सृष्टि एवं समाज विकास का कार्य ही रूक जाता । माता भगवान के बाद दूसरे स्थान की अधिकारिणी हैं । हमारे वेदों में तो भगवान से प्रथम माता की पूजा करने का आदेश दिया है । 'मातृदेवो भवः' कहकर उसका सच्चा सम्मान किया है । माता अपने पुत्र प्रेम में अपने पूरे अस्तित्व को, अपने सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्ति जीवन को त्याग देती है, वह भी खुशी-खुशी । माता को मातृत्व में आनन्द आता है । 'सुमन' जी अपनी माता के पति पूर्ण समर्पित एवं नतमस्तक है । मातृप्रेम के रूप में वे नारी का सम्मान करते हैं । अपनी मूर्तिमयी ममता का सम्मान उनकी इन पंक्तियों में देखिए -

''आज मुझे प्यार करें
कोई नहीं, कोई नहीं,
अब मैं दे सकता हूँ,
आंशिक सहानुभूति
जग के अनाथों को ।
सात साल बाद
पारसाल कातिक में
दो दिन को गया था गाँव
कोने में बैठी थी
मूर्तिमती ममता ।''[५२]

माँ के लिए अपना पुत्र ही सर्वस्व होता है अपने पुत्र के लिए वह, सर्वस्व न्यौछावर कर देती है । पुत्र का विरह उससे सहन नहीं होता है । 'सुमन' जी की माता के अपने पुत्र के प्रति अनहद प्रेम था । 'सुमन' जी उसे वह कभी भी अपने से अलग करना नहीं चाहती थी । 'सुमन' जी की 'माँ गयी' कविता नारी चेतना के रूप में मातृप्रेम का उत्तम उदाहरण है । उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए -

''रार अधिक की नहीं
उसका तो केवल मुझे ही
अधिकार था ।
चलते समय बोली
आ गए अच्छा हुआ
शायद दुबारा फिर
देख भी न पाऊँ तुम्हें ।''[५३]

ममता का सागर माँ जब जीवन में से चली जाए तब उनका महत्व समझमें आता है । माता हमेशा आशीष देती रहती है । माता के आँचल में स्वर्ग-सा सुख होता है । 'सुमन' जी की माता जब चली गई तो उसका का पुत्र प्रेम उसके लिए तरसता रह गया । 'सुमन' जी की माँ की आशीष के माध्यम से नारीचेतना देखिए -

''आज होश आया है
जब सब बेकार है
पत्र मिला

माँ गयी

कैसी थी ? कैसे बताऊँ आज

आशीषों आशीषों आशीषोंमयी ।''[५४]

मातृत्त्व धारण करना हर नारी का स्वप्न होता है । जब कोई नारी मातृत्व धारण कर लेती है तब वह सम्पूर्ण नारी बन जाती है । बिना मातृत्व के नारी अधूरी ही रहती है । अपना संपूर्ण सत्त्व अपने मातृत्व के पीछे अपर्ण कर देती है । इस सृष्टि का संपूर्णचक्र नारी के मातृत्व के कारण ही चलता रहता है । नारी के मातृत्व के बिना सृष्टि का अस्तित्व ही नही है । सृष्टि को मातृत्त्व के रूप में प्राणवायु प्रदान करने वाली नारी चेतना 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए -

''माता की बेटी

जब माता बन जाती है

तो निहाल हो जाता

सम्पूर्ण नारीत्व

खर्व कर देती वह

अपना आमूल सत्व

फिर धारण करने को

नया बीज, नयी सृष्टि

भूलो मत,

मिट्टी सदा कँवारी है ।''[५५]

सिद्धार्थ बुद्धत्त्व प्राप्त करने यशोधरा को छोड़कर चले गए, किन्तु उसने तनिक भी यशोधरा का विचार नहीं किया कि यशोधरा का सर्वस्व सिद्धार्थ ही थे उनके बिना यशोधरा का क्या होगा । नारी के त्याग की 'सुमन' जी भर्त्सना करते हैं, नारी का त्याग चाहे किसी भी प्रकार का क्यों न हो ! 'सुमन' जी के शब्दों में नारी चेतना देखिए –

''हाय रे विरागी
गृहत्यागी, वीतरागी वीर,
अनजाने
पुरूष से नारी तुम्हें कर गई,
ममतामयी जिसने
सहस्राब्दियों से पिलाया दूध
कोटि–कोटि त्रस्त ग्रस्त
दीन–हीन शिशुओं को,
काश तुम जान पाते
उस समय भी मस्तक पर
तना था झीना वीतान
भाग्यहीना विधुरा
यशोधरा के आँचल का ।''[५६]

नारी को केवल भोग का और उपभोग का माध्यम मात्र समझा जाता है । यह पुरूषप्रधान की मानसिकता है । 'सुमन' जी नारी को केवल उपभोग का साधन मानने की पुरूष मानसिकता का विरोध करते

हैं, इसलिए कहीं पुरूष होने के नाते अपने आप को भी वे दोषी समझते हैं, 'सुमन' जी की पंक्तियाँ देखिए –

''मैंने भी नारी के अंग-अंग तोड़े हैं
कटी डालियाँ-सी
जब छितराई छाती पै,
यद्यपि बट-पादप-सी
प्ररोह शक्तिमत्ता को
टूक-टूक होते देख कभी-कभी सिहरा हूँ ।''[५७]

हमारे पुरूषप्रधान समाज में नारियों को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है । घर में तो वे जिम्मेदारियाँ निभाती हैं परंतु व्यवसायिक क्षेत्र में भी वे ज़िम्मेदारियाँ निभाती है । वे तो दोनों ओर से पिसी जाती है । किसान और मज़दूर नारियों की दशा तो अत्यंत दयनीय है । खेत-खलिहानों में अपने शिशु को संभालते-संभालते भी उन्हें काम करना पड़ता है । 'सुमन' जी की नारी-चेतना इन पंक्तियों में देखिए –

''गुजरा हूँ सैंकड़ो बार
सुवासरा स्टेशन से
किंतु इस बार तो
मूठ सी मार दी
किसी मुठभेरे ने
खेतों – खलियनों में

छिपे हैं अहेरी कहाँ ?
औचक ही देखा
एक मक्के के खेत में
क्रोड़ शिशु लिए
माँ थी खड़ी बीचों-बीच ।''[५८]

प्रगतिवादी नारी के शोषण का विरोध करता है, वह शोषण चाहे मानसिक हो या शारीरिक । 'सुमन' जी भी एक प्रगतिवादी कवि हैं इसलिए नारीशोषण के विरोधी हैं । नारीयों के शरीर को भोगविलास और वासनापूर्ति की वस्तु मात्र समझा जाता है और फिर गरीब और बेबस नारी को अपना शरीर बेचना पड़ता है । धनिक वर्ग ऐसी बेबस नारियों के शरीर को चंद रूपयों में खरीदकर उसे अपने वासनापूर्ति और भोगविलास का ज़रिया बनाते हैं । ऐसे में नारी का शरीर नहीं बिकता, किन्तु नारीत्व बिक रहा है । नारी की ऐसी दयनीय दशा का 'सुमन' जी विरोध करते हुए कह उठते हैं -

''बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ
चाँदी के थोथे टुकडों में
कर्तव्य पालता धनिक वर्ग
मदिरा के जूठे चुकडों में ।''[५९]

नारी का एक ओर रूप है मृगनयनी का । नारी चाहे तो अपने यौवन के उफ़ान में सबकुछ बहाकर ले जा सकती है । नारी का आकर्षण

अधिक मादक होता है और मारक भी होता है । ऐसी नारी अपने आकर्षण की माया में किसी भी पुरूष को नचा सकती है । मानव-पुरूष नारी के अंदर छीपे प्रेमसागर की एक बुँद के लिए तरसते हैं । प्यार खोजने और पाने के लिए नारी के पास ही जाना पड़ता है । नारी ने पुरूष को प्रेम दिया है । 'सुमन' जी के शब्दों में नारी का यह रूप देखिए -

'यौवन की अँगड़ाई लेकर तुमने मानव को भरमाया
देकर अतृप्त तृष्णा उसको तुमने युग-युग से तरसाया
कहते हैं तुम तड़पानें में तरसाने में सुख पाती हो
पर तड़पन की विह्वलता पर कब कर लेती हो याद मुझे ?
माना मुझको अभिव्यंजन का आकर्षण का अधिकार मिला
पर और नहीं तो कम-से-कम मानव से तुमको प्यार मिला ।''[६०]

'सुमन' जी की कविताओं में नारी के प्रेयसी, पत्नी, माँ जैसे रूपों का चित्रण मिलता है । साथ ही अपनी प्रगतिवादी कविताओं में उन्होंने नारी के शोषण का विरोध करके नारीचेतना को जागृत करने का मूक संदेश भी दिया है ।

७.२.४ यौवन-चेतना

व्यक्ति के जीवन में युवावस्था के रूप में वसंत का आगमन होता है । युवावस्था मनुष्य जीवन की वसंत ऋतु है । बाल्यावस्था जीवन का प्रारंभ है तो वृद्धावस्था जीवन का अंत । मध्यभाग में दोनों के संधिकाल स्वरूप युवावस्था जीवन का विकास है । यदि वृद्धावस्था जीवन का पतझर है तो युवावस्था जीवन का वसंत है । युवानी को हर

कोई जी लेना चाहता है । युवानी एक दिवानापन है । दिवानगी का उफनता सागर है युवानी । युवावस्था शक्ति का भंडार है, यदि युवावस्था को सन्मार्ग पर मोड़ा जाय तो पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण किया जा सकता है । युवान चाहे ऐसा परिवर्तन ला सकता है, इसलिए ही हमारे शास्त्रों ने युवान को नमस्कार करके उसका गौरव बढ़ाया है । शास्त्रों ने 'नमों युवभ्यः' कहकर युवानी का सम्मान किया है । क्रांतियों के मूल में युवान ही होता है । यौवनचेतना का अर्थ है नवसर्जन, क्रांति, कुछ नयाकरने की ललक युवावस्था दीवानापन है । इसलिए 'सुमन' जी कहते हैं कि –

''हम दीवानों का क्या परिचय ?
कुछ चाव लिए, कुछ चाह लिए
कुछ कसकन और कराह लिए,
कुछ दर्द लिए, कुछ दाह लिए,
हम नौसिखिए, नूतनपथ पर चल दिए,
प्रणय का कर विनिमय
हम दीवानों को क्या परिचय ?''[६१]

युवान अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मिट जाता है, किसी भी कीमत पर कुछ कर गुजरने की अदम्य इच्छाशक्ति का ही नाम युवानी है । देश को स्वतंत्रता संग्राम में नयी ताज़गी और जागृति लाने का कार्य देशभक्त युवानों ने ही किया था । युवान मिट जाएगा, लूट जाएगा परन्तु अपने उद्देश्य की प्राप्ति के बिना पीछे नहीं रहेगा 'सुमन' जी के शब्दों में यौवन चेतना देखिए

"हम पीते और पिलाते हैं
हम लूटते और लूटाते हैं
हम मिटते और मिटाते हैं
हम इस नन्हीं सी जगती में
बन-बन मिट-मिट करते अभिनय,
हम दीवानों का क्या परिचय ?"[६२]

युवावस्था में मधुर स्वप्न और सुनहरे भविष्य की अदम्य चाह होती है । यौवन में मधुर उमंगे, कुछ बचपना और नादानी भी होती है । यौवन ऐसा ही बहती नदी जैसा और झरने जैसा होता है । 'सुमन' जी के शब्दों में यौवन चेतना देखिए -

"यौवन में मधुर उमंगे हैं
कुछ बचपन है, नादानी है ।"[६३]

युवावस्था बहुत ही चंचल होती है । युवान और युवावस्था को समझना कठिन है । इसमें प्रलय और नर्तन दोनों विद्यमान रहते हैं । इस युवावस्था में अगम जीवन सागर को पार करने की प्रबल शक्ति होती है, किन्तु संसार इसे समझने में असफल होता है । यदि युवाशक्ति को समय समझ लिया जाय तो काफी कुछ निर्माण किया जा सकता है, उसका सदुपयोग करके नवसृजन किया जा सकता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

"है यही यौवन, यही जीवन
रहे चिर-प्रलय नर्तन

आज कुछ-कुछ जान पाया हूँ
मधुर कितना विसर्जन
क्या समझ सकता इसे तट पर खड़ा संसार
कर सकूँगा अगम सागर अपार ।''[६४]

युवावस्था को जीवन का वसंत कहा गया है । जैसे वसंत के आने पर नवसृजन होता है वैसे ही युवावस्था आने पर भी नवसृजन होता है । बार-बार मिट-मिटकर फिर बनने का जज़्बा वसंत में ही होता है वैसा यौवन में भी होता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''आया वसंत कोयल फूटी
नव-सृजन शक्ति-सी लाल लाल...
अपना नवयौवन देख, सिहर,
नत, सोच रही जीवन-डाली
यह बार-बार मिट-मिटकर,
फिर बनने का क्रम कैसा माली ।''[६५]

यौवन को स्वतंत्रता प्रिय होती है, युवान कभी गुलाम, लाचार नहीं बन सकता, वे तो उन्मुक्त आकाश में स्वच्छन्द और स्वतंत्र विचरण करने वाले होते हैं । वे कभी भी वैभव की, विचार की, आत्मा की, धन की गुलामी में नहीं जी सकते क्योंकि स्वतंत्रता, मुक्तता, स्वच्छन्दता उसका स्वभाव ही नहीं है । वे मर जाएँगे, मिट जाएँगे पर गुलामी, बंधन सहन नहीं करेंगे । चाहे उसे आश्रय न मिले, चाहे स्थान न मिले तो ये अपना आश्रय और स्थान खुद बनाएँगे परंतु शर्त इतनी ही है कि उनकी

आकुल उड़ान में बन्धनरूपी विध्न न डाला जाय । 'सुमन' जी की यौवन चेतना उनके शब्दों में -

''हम पंछी उन्मुक्त गगन के
पिंजरबद्ध न गा पाएँगे,
हम बहता जल पीने वाले
मर जाएँगे भूखे-प्यासे,
नीड़ न दो चाहे, टहनी का
आश्रय छिन्न-भिन्न कर डालो
लेकिन पंख दिये हैं तो
आकुल उड़ान में विध्न न डालो ।
पागल प्राण बँधेंगे कैसे
नभ की धुँधली दीवारों में ।''[६६]

ऐसा वसंत जैसा और झरने जैसा नदी सा बहता हुआ यौवन बन्धन रहित होता है । यदि इसे योग्य दिशा न दी जाय तो यही यौवन भावि विनाश का भी कारण बन जाता है । अगर युवान पथभ्रष्ट हो जाय तो उसका जीवन नर्कागार बन सकता है । यौवन की उच्छृंखलता में इसलिए ही 'सुमन' जी पथ न भूल जाने की सलाह देते हैं, वे कहते हैं कि -

''जीवन के कुसुमित उपवन में
गुंजित मधुमय कण-कण होगा
शैशव के कुछ सपने होंगे
मदमाता सा, यौवन होग़ा
यौवन की उच्छृंखलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं ।''[६७]

जिसका जन्म है उसकी मृत्यु निश्चित है अतः जो भी कुछ बना है वह मिटने के लिए ही बना है । यह सृष्टि का शाश्वत नियम है । यौवन भी एक दिन चला जाएगा । इसलिए जो भी कुछ पाना है, नवसृजन करना है, क्रांति लानी है वह यौवन में हो सकता है । एकबार यदि युवानी चली गयी तो वापिस नहीं आयेगी क्योंकि यौवन क्षणभंगुर है । यौवन की क्षणभंगुरता संबंधी 'सुमन' जी के विचार इन पंक्तियों में देखिए -

''चाहा था तुम्हें कभी
आँखों के माध्यम से
मन अनुगामी था ।
कहते थे समझदार
यह यौवन का बुख़ार
वर्षा की बहिया है
आई है उतर जाएगी,
मेरू की उमंग
झरनों सी झर जाएगी ।''[६८]

यह युवानी क्षणभंगुर होती है । वसंतऋतु रूपी यौवन के बाद पतझर ऋतु रूपी वृद्धावस्था अवश्य आती है । यौवन का वैभव क्षणभंगुर होता है । इसी यौवन के बाद जरावस्था आ जाती है, इस कठोर सत्य को हमें स्वीकार करना ही पड़ता है । 'सुमन'श्जी के शब्द देखिए -

''क्या सचमुच सबके जीवन में,
यौवन का भी युग होता है ?
और जरा का जीर्ण पराभव, बड़ा कठोर सत्य है, उसको
नहीं कल्पना करना संभव, सब कहते हैं, सुमन, तुम्हारी
कुम्हला जाएँगी पंखुरियाँ, पीले पत्तों से शरीर में
रह जाएँगी प्रमुख झुर्रियाँ
क्या वसंत का अंत सदा से
जरा-जीर्ण पतझर होता है ?''[६९]

युवानी चार दिन की चाँदनी की तरह होती है । इसलिए उसे मनभर के गंभीरता से और विधायक रूप में जी लेना चाहिए । यौवन की क्षणभंगुरता का दर्शन समझकर युवानी में ही जीवन के उद्देश्य को पा लेना चाहिए, क्योंकि 'सुमन' जी कहते हैं कि

''चार दिन की हो भले ही,
आज तो मुझमें जवानी ।''[७०]

यौवन चेतना संबंधी विचार-पक्ष 'सुमन' जी की वैचारिक गहनता को व्यक्त करता है । युवावस्था एक चंचल अवस्था है, अगर युवानी के पथ को सही दिशा न दी जाय तो वह पथभ्रष्ट होकर विनाश की गर्ता में चला जाएगा इसलिए ही डॉ. ए. पी. जे. अब्दूल कलाम साहब युवाओं को मार्गदर्शित करने की सलाह देते हुए कहते है कि - ''आज के नौजवानों को जीवन-शैली को स्वपराजय की ओर ले जाने वाले रास्तों से बचना चाहिए ।[७१] आज के युवानों के पास स्पष्ट पथदर्शन नहीं

है । दृष्टि की अस्पष्टता और निर्देशन की कमी के कारण ही भारतीय युवान अखूट शक्ति का भंडार होने के बावजूद भटक रहा है, उनकी शक्तियों का सदुपयोग नहीं हो रहा है । इसलिए उसे सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है, ऐसा सच्चा मार्गदर्शन आज के युवाओं को मिले तो नवसृजन हो सकता है, सच्चा विकास हो सकता है, भारत विश्व की महान शक्ति बनकर उभर सकता है । डॉ. अब्दुल कलाम इसी संबंध में इसलिए ही कहते हैं कि ''भारतीय युवाओं को जिस सबसे बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है मेरा मानना है कि वह दृष्टि की स्पष्टता और निर्देशन की कमी है ।''[७२] 'सुमन' जी भी इसी विचार से सहमत हैं और वे भी युवाओं को सही मार्गदर्शन की आवश्यकता पर अधिक जोर देते हैं ।

७.२.५ वैयक्तिक चेतना

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी एक तेजस्वी और प्रभावशाली साहित्यकार हैं । उन्होंने अपनी कविताओं में जो भी कहा वह बेख़ौफ़ कहा, जो भी कहा वह सत्य कहा, जो भी कहा उसे यथार्थ की कसौटी पर कसकर कहा । 'सुमन' जी ने जो भी कहा यह अनुभूतिपरक सत्य कहा है । जीवनभर 'सुमन' जी ने अस्मितापूर्वक अपना दायित्व निभाया । 'सुमन' जी निर्भीक व्यक्तितत्त्व को प्रस्तुत करते हैं, उसे मौत से डर नहीं लगता वे क्षिप्रा नदी-से तरल और सरल जीवन जीने वाले व्यक्ति है ।वे जो कहते हैं उसके जीवन में वह होता ही है अर्थात् उसकी कथनी और करनी में समानता होती हैं । 'सुमन' जी की वैयक्तिक

चेतना प्रभावशाली है । उनकी वैयक्तिक चेतना का उदाहरण इन शब्दों में देखिए –

''मैं क्षिप्रा–सा ही तरल सरल बहता हूँ,
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूँ ।
मुझको न मौत भी भय दिखला सकती है,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूँ ।''[७३]

झुजारू व्यक्तित्व और दृढ़ मनोबल वाला व्यक्तित्व ही सच्चा व्यक्तित्व है । जीवन में 'सुमन' जी एक दृढ़ मनोबल वाले व्यक्ति हैं, उनके जीवन में उन्होंने संघर्षों को भी देखा है, किन्तु उन संघर्षों में वे गिरे भी परंतु गिर कर वे निराश नहीं हुए, फिर से अपनी जीवनी शक्ति, आंतरिक इच्छाशक्ति, श्रमशक्ति एवं दृढ़ मनोबल से द्रढ खड़े हुए । उनके जीवन में पतन की अनेक घडियाँ आयी किन्तु वे थक कर बैठ नहीं गए, उनका सामना किया और उनकी पतन की, मुसीबत की घडियाँ उनकी उन्नति की घडियाँ साबित हुई । उनके शब्द देखिए –

''थी राह बीहड़ गिर पड़ा
पर झाड़ कर फिर हूँ खड़ा
मेरा पतन ही आज उन्नति
का सबल संबल हुआ
क्या आज मैं असफल हुआ ।''[७४]

'सुमन' जी ने जीवन में बहुत कुछ भोगा है, सहन किया है, उनका जीवन संघर्षपूर्ण रहा है, वह संघर्ष फिर चाहे पारिवारिक हो,

शारीरिक हो, साहित्यिक हो या फिर सामाजिक हो, सभी में वे अटल खड़े रहे । 'सुमन' जी की वैयक्तिक भावना देखिए -

''सह चुके कितने प्रबल
तूफान मेरे जीर्ण बेड़े
कर रहे उपहास अपना ही
जलधि के ये थपेड़े
सहचुका इससे प्रबलतम
निठुर नियति प्रहार
कर सकूँगा अगम सागर पार ।''[७५]

'सुमन' जी के जीवन के कहानी सिन्धु के बल जैसी है । उनका जीवन हिमालय-सा अटल है । उनकी ज़िन्दगी पवन के जैसी प्रवाहमान है । 'सुमन' जी का हृदय विप्लवी और क्रान्तिकारी हृदय है । 'सुमन' जी की आत्माभिव्यक्ति की भावना से सभर इन पंक्तियों में उनके जीवन की झलक इन में मिल जाती है -

''यह कहानी सिन्धुबल की
यह कहानी हिम अटल की
यह कहानी है अनिल की
यह कहानी है अनल की
विप्लवी मेरे हृदय का मूल्य आज लगा सकोगी ?
आज मेरे गीत, ओ स्वरसाधिके ! तुम गा सकोगी ?''[७६]

एक कवि का काम अनुभूत सत्य को वाणी देना है, पीड़ितों की वेदना को वाणी देना है । साहित्यकार या कवि एक निश्चित उद्देश्य के साथ आता है, युग की माँग के अनुरूप उन्हें अपना कवि कर्म निभाना पड़ता है । युग का ऋण उन पर होता है । 'सुमन' जी भी अपने को युग का ऋणी समझते हैं, उनकी दृष्टि से उन्होंने युग का ऋण न चुकाया, युगवाणी को अभिव्यक्ति न दी तो उनका जन्म लेना ही व्यर्थ हो जाएगा । 'सुमन' जी इसलिए ही युग की अग्नि को अपने राग में, अपने गीतों में भर कर उनको वाणी देकर नूतनगीत गा रहे हैं, 'सुमन' जी के आत्माभिव्यक्तिपूर्ण ये शब्द देखिए –

''ध्यान तक विश्राम का पथ पर महान अनर्थ होगा
ऋण न युग का दे सका तो जन्म लेना व्यर्थ होगा ।
इसलिए ही आज युग की आग अपने राग में भर
गीत नूतन गा रहा हूँ ।''[७७]

'सुमन' जी में आत्मशक्ति की प्रबलता है, इसलिए ही वे कह रहे हैं कि, जीवन के घात-आघात सब सहते रहेंगे लेकिन उससे वे कभी भी विचलित नहीं होंगे । सुख-दुःख, उत्थान-पतन सभी में जो एकरस जीवन जीता रहे, सुख और दुःख दोनों में जो समानभाव से रहे वही सच्चा मनुष्य है मैं वैसे ही जीवन की हर घटनाओं में समानभाव से, निर्विचलित हो कर एकरस जी रहा हूँ । 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''गिरि गहन दुर्गम घाटियों के
घात सब सहता रहूँ
उत्थान और पतन सभी में
एक रस बहता रहूँ
टकराय हिमगिरि सामने
फिर भी न यह मतिमन्द हो
यह गति न मेरी बन्द हो ।''[७८]

लोगों के जीवन में उत्थान-पतन, सुख-दुःख, धूप-छाँव आते ही रहते हैं, इन सब का समुच्चय ही जीवन है । जीवन में कभी वसन्त होता है तो कभी पतझड परंतु उन सभी में जो अविचल रहे वही सच्चा मनुष्य है । 'सुमन' जी अपने-आप को एक नौसिखीया मानते हैं, वे गिरकर भी गिरे और उठकर उठे हैं, उठकर फिर गिरे हैं बनकर मिटे हैं और मिटकर फिर बने हैं, किन्तु उन्होंने कभी हार नहीं मानी, निज विकास को निराश होकर खोया नहीं क्योंकि विश्वास की शक्ति उनमें थी । 'सुमन' जी की आत्माभिव्यक्ति उनकी इन पंक्तियों में देखिए जिसमें आशावादी व्यक्तित्व झलकता है-

''मैं एक नौसिखीया निरा
गिर गिर उठा उठ उठ गिरा
बन बन मिटा, मिट मिट बना
पुर निज विकास न खो सका
मैं तो निराश न हो सका ।''[७९]

'सुमन' जी के व्यक्तितत्व में अस्मिता है । उनका व्यक्तितत्त्व एक दृढ़ व्यक्ति है । 'सुमन' जी ने किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानी है, जीवन को वे एक महासंग्राम की तरह देखते हैं और जीवनसंघर्ष का युद्ध आत्मबल, स्वत्व और कठोर परिश्रम से आत्मविश्वासपूर्ण तरीके से, दृढ़मन से आंतरिक शक्ति के बल पर लडते हैं, उनमें लाचारी और पंगुता नहीं है । इसलिए ही वे मिट जाएँगे पर हार नहीं मानेंगे और किसी के आगे हाथ नहीं फैलाएँगे । कभी दया की भीख नहीं माँगेंगे, वह चाहे फिर जीवन की कैसी भी परिस्थिति से क्यो न गुज़र रहे हो । 'सुमन' जी की अस्मितापूर्ण व्यक्तितत्त्व की झलक सी वैयक्तिक चेतना देखिए -

''यह हार एक विराम है
जीवन महासंग्राम है
तिल तिल मिटूँगा पर
दया की भीख मैं लूँगा नहीं
वरदान माँगूगा नहीं ।''[८०]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी का व्यक्तितत्व एक दीपघर-सा है । उनके व्यक्तितत्व की वैयक्तिक चेतना से कोई भी व्यक्ति प्रेरणा लेकर अपने जीवन को अस्मितापूर्ण बना सकता है । एक कवि और साहित्यकार की वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में अपने कृतित्व में आ ही जाती है । उनकी आत्माभिव्यक्ति बाद में पराभिव्यक्ति बन जाती है ।

७.२.६ दलित-चेतना

समाज और राजनीतिक क्षेत्र में उठी हुई हर हलन-चलन साहित्य की सभी विधाओं में प्रत्यक्षतः या परोक्षतः अवश्य अभिव्यक्त होती है । बदली हुई, परिस्थितियाँ हमारी भावसत्ता और विचारों में तनाव पैदा करती है और उनके अनुरूप हमारे चिंतन और लेखन की दिशा बदलती है । पिछले वर्षों में दलित-चेतना, दलित आंदोलन, दलित, साहित्य और मंडल तथा कमंडल के संघर्ष ने आलोचकों, पाठकों, साहित्यकारों और सामाजिक चिंतको का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया है । आप इन दलित चेतना से सहमत हो या असहमत, किंतु दोनों ही परिस्थितियों में इसने जनमानस को इतना अधिक प्रभावित किया है कि यह साहित्य की सभी विधाओं में अभिव्यक्त हुई है, साथ ही सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य ने अपना विशेष स्वरूप भी ग्रहण किया है । इतना ही नहीं, दलित-चेतना एक प्रतिबद्‌ध लेखन और सशक्त आंदोलन का साक्ष्य प्रस्तुत कर रही है । एक अछूत के हाथ में कलम आयी और उसने देश को संविधान देकर अंधेरी बस्ती तक ज्ञान का उजाला फैलाया । जो आजतक गूँगे थे, वे बोलने लगे । जो लूले-लँगड़े थे, वे चलने लगे जिनके हाथ में झाड़ था, उनके हाथ में खड्‌ग आया । अपने दर्द को हमने सृजनशील बनाया । भारतीय साहित्य के लिए जो अनुभव आजतक अछूते थे, उनको पहलीबार अछूत कह गए साहित्यकारों की कलम ने स्पर्श किया और साहित्य में आंबेडकर विचारों

की क्रांतिधारा बहने लगी । जहाँ इंसानियत का अकाल था, वहीं इंसानियत का झरना बहने लगा, जाति की जेल में हज़ारों साल जिस प्रतिभा और प्रतिभावानों को कैद करके रखा था, वहीं गाँव के बाहर की प्रतिभा और प्रज्ञा मूल्यों की रोनी लेकर आयी । अपनी साहित्यिक दृष्टि की अलग पहचान उसने बनायी ।

दलितों को सदियों तक शोषण का भोग बनना पड़ा है । सर्वप्रथम तो वे मनुष्य हैं इसका ख्याल ही जातिवादी व्यवस्था के कारण भूला दिया गया । गांधीजी, ज्योतिबा फूले जैसे महामानवों ने ऐसी अन्यायी व्यवस्था का विरोध किया । आंबेडकर ने दलित जागृति एवं विकास के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया । साहित्य में अनेक कवियों और लेखकों ने दलितों को स्थान देकर उनकी समस्याओं को उठाकर समाज के समक्ष रखा । शिवमंगल सिंह की कलम भी दलितों की पक्षधर रही है 'सुमन' जी ने अपनी कविता में दलितों की भावनाओं को व्यक्त किया है और अन्यायी, शोषणयुक्त मानसिकता एवं व्यवस्था का विरोध करके दलित-चेतना को अपनी कविता में स्थान दिया । सदियों से पीड़ित, व्यथित, दलित की दर्दभरी भावना 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में देखिए -

''मैं पद-लुंठित पद-मर्दित बन
आया हूँ जीवन के पथ पर
परवश अपनी सीमाओं में
मैं मूक व्यथाओं का घर हूँ ।
मैं पथ का कंकड़ पत्थर हूँ''[८१]

दलितों को मानवीय मूलभूत अधिकार भी नहीं थे । उन्हें मनुष्य ही नहीं समझा जाता था । दलितों में गरीबी, अज्ञानता, निरक्षरता, बेरोज़गारी और गुलामी की अनगिनत समस्याएँ थी । उनकी जर्जरित दशा पर समाज का ध्यान ही नहीं गया । ऐसे लोगों के ऊपर अत्याचारों की झडियाँ बरसती थी लेकिन समाज ने उन्हें अनदेखा किया । 'सुमन' जी का हृदय ऐसा अन्याय और शोषण देखकर दु:खी होता था, और क्रोधित भी होता था । ऐसे पद-दलितों का एक समूह, समाज का बहुजन वर्ग था, समाज की उनके प्रति उदासीनता 'सुमन' जी को खलती थी । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''पर मैंने कल पथ पर देखी
पद दलित मानवों की टोली
थी जिनकी आह करा हों में
मेरी परवशता की बोली
उनकी भी हाहाकारों पर
देता था कोई ध्यान नहीं
अपनें सूखे जर्जर तन में
लगते थे मेरे हम-जोली ।''[८२]

'सुमन' जी इन दलितों को जागृत होकर, शिक्षित होकर अन्याय और शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाकर उठ खड़े होने के लिए ललकारते हैं । प्रगतिवादी विचारधारा और प्रगतिवादी शासन में उन्हें दलितों की समस्या का उपाय नज़र आता है । सोवियत रूस ऐसी राजनीतिक शक्ति

थी जिसने मज़दूरों और किसानों के साथ-साथ विश्वभर के दलितों को सहारा दिया था । 'दलितों को उनके अधिकार दिलाने में प्रगतिवाद की भूमिका भी सराहनीय रही है । ऐसे क्रांति के आंदोलन में दलित विश्व का हर कोना सोवियत रूस के साथ मिलक क्रांति के लिए तैयार है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए-

''कोना-कोना दलित विश्व का
आज तुम्हारे साथ
विजय पताका लिए बढ़ेगा
दिए हाथ में हाथ ।''[८३]

साम्यवादी शासन प्रणाली में कोई भी अत्याचारी नहीं है और कोई दलित नहीं हैं । मोस्को सोवियतरूस की राजधानी है और वहीं से क्रांति का संचालन होता था । 'सुमन' जी रूस को दुनियाभर के दलितवर्ग का राजा कहते हैं और वही समग्र सृष्टि में नवसृजन कर रहा है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''पता नहीं दुनियाभर के
दलितवर्ग का राजा
कुछ है तब तो बजा रहा है
नई सृष्टि का बाजा ।''[८४]

मध्यप्रदेश के आदिवासी भील केवल चार उँगलियों से ही शर-संधान करते हैं । एकलव्य के कटे अंगूठे के स्वाभिमान संरक्षण की ऐसी प्राणवंत परम्परा स्वयं में ही अनन्य है । आदिवासी भी सदियों से

पद दलित रहे हैं । 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में दलित एवं आदिवासी चेतना की अस्मिता देखिए -

''कटे अंगूठों की बन्दनवारें बाँधे
सर-सन्धानों के जलसे मनाते तुम
बिके द्रौणाचार्यों के अभिजाती मूल्यों पर
दुर्धर महाभारत के थोथे गान गाते तुम
तब से आज तलक
स्वाभिमानी सर्वहारा
चार अंगुलियों से ही
साधता अचूक लक्ष्य
आहत अस्तितत्त्व का ।''[८५]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कविताओं का विचार-पक्ष दलितों की विचारधारा एवं दलितों का पक्षधर है । सर्वहारा का पक्ष लेकर 'सुमन' जी ने उनको जगाने का और उनकी अस्मिता का सम्मान किया है । 'सुमन' जी दलितों को मनुष्य समझते हैं और उनके अधिकारों के पक्षधर हैं । 'सुमन' जी की कविताओं में दलितचेतना दलित अस्मिता के रूप में प्रकट हुई है ।

७.२.७ ग्रामीण चेतना

गाँधी जी ने कहा था कि सच्चा भारत उसके गाँवों में बसता है । भारत का सच्चा स्वरूप पहचाना हो तो उसके गाँवों के दर्शन करने चाहिए । भारतदेश गाँवों का देश है । संपूर्ण भारत का पचास प्रतिशत

से अधिक हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र है । इस ग्रामीण क्षेत्र की संस्कृति एवं सभ्यता अलग और विशेष है । गाँवों के लोगों की सहज और सरल मानसिकता के कारण वे अन्य नागरिकों से कुछ अलग है । इस ग्रामीण संस्कृति के प्रति साहित्यकारों का ध्यान गया स्वतंत्रता के पश्चात । भारत के गाँव अपने आप में समृद्ध थे, उनका अलग और स्वतंत्र अस्तित्व था । ग्रामीण लोग सहज, सादगीपूर्ण जीवन जीने वाले सरल स्वभाव वाले एवं हृदय शुद्ध होते हैं । गाँवों का अर्थशास्त्र, संस्कृति, सभ्यता, समाज आदि अन्य नागरिकों एवं नगरीय सभ्यता से कुछ अलग होता हैं । भारत के गाँव समृद्ध एवं स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाले थे । परंतु अंग्रेजों एवं अंग्रेजी शासन प्रणाली की गलत नीतियों के कारण गाँवों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया । गाँवों का आर्थिक अवलंबन खेती एवं पशुपालन के साथ गृहउद्योग थे वे टूटने लगे, इस कारण गाँवों का प्रवाह नगर की और हुआ, उसमें भी शिक्षा, तकनीकी और विज्ञान की चका-चौंध ने ग्रामीणों को ओर प्रभावित किया । इसलिए गाँव टूटने लगे । इन सभी के कारण और ग्रामीण संस्कृति की विशेष पहचान के कारण साहित्यकारों का ध्यान उस ओर गया और साहित्य में विशेषकरके गद्य में ग्रामीण चेतना और आँचलिकता बोध की शुरूआत हुई । काव्यविधा में भी ग्रामीण चेतना अभिव्यक्त हुई है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कुछ कविताओं में ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति हुई है ।

'सुमन' जी की कुछ कविताओं में ग्रामीण चेतना के दर्शन भी होते हैं । भारत के गाँव की पहचान क्या हो सकती है ? भारत के सभी

गाँव एक-से दीखते हैं । सभी गाँवों में गलियारे, बैलगाडियाँ, झोंपडियाँ, फूस की खेतों की मेड़ों पर फसलों सी खिलरीवलाती लहँगों की लहरों पर झूमती चुनरियाँ, गाँवों की हरियाली, हरे खेत, धान कटाई का दृश्य, संध्या की लाली में नहाती-सी रँभाती गाय, बछड़ों को चाटती गाय, खेतों की और अपने पतियों और घरवालों के लिए खाना ले जाती हुई किसानों की पत्नियाँ, दूध, छाछ एवं मक्खन की नदियाँ, वहाँ का नयनरम्य प्रदुषण मुक्त प्राकृतिक वातावरण आदि सब कुछ भारत के सभी गाँवों में मिल जाता है । यही सब कुछ भारत के गाँवों की सच्ची पहचान है । 'सुमन' जी के शब्दों में भारत के गाँवों का वर्णन देखिए -

''ग्राम का पता क्या दूँ ?
भारत के सारे ग्राम एक से ही दिखतें हैं
गलियारा, बैलगाड़ी, झोंपडिया, फूस की
खेतों की मेड़ों पर फ़सलों - सी खिलखिलाती
लहँगों की लहरों पर झूमती चुनरियाँ
संध्या की लाली में नहाती-सी
रँभाती गाय, बछड़ो को चाटती ।
मा के ममत्व और
प्रीति-भीति परिणीता की स्मृति ही शेष है
चिड़ियों की चह-चह के साथ-साथ
किलक-किलक उठती हँसी
दुधमुँहे नटखट की ।''[८६]

'सुमन' जी को शहर में अपनी पढ़ाई पूर्ण करने के बाद अपने गाँव की याद आ जाती है, तब वे थोड़ा विश्राम करने हेतु अपने गाँव जाते हैं, तब वहाँ से खेत-खलिहान, टीले, ऊसर, अमराई और जीर्ण पनघट उनकी यादों में अमरता प्राप्त कर लेते हैं । यहाँ उन्हे जो मानसिक आनंद एवं शांति का अनुभव हुआ, उसकी स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में अमररूप में अंकित हो गई । 'सुमन' जी के शब्दों में ग्रामीण चेतना देखिए -

''ग्रीष्मावकाश के थे वे दिन
मैं गया हुआ था अपने घर
कालिज की विषम पढ़ाई से
पाने को कुछ विश्राम प्रहर
खलियान, खेत, टीले, ऊसर
अमराई और जीर्ण पनघट
मेरी स्मृति के हैं चिह्न अमर
वह जगत कुएँ की आजतलक
परिचित मुझसे रती-रती
परिचित अमराई का कण-कण
शाखा-शाखा पत्ती-पत्ती ।''[८७]

परिवर्तन संसार का नियम है । सभी कुछ में परिवर्तन की लहर आयी है, गाँवों में भी परिवर्तन आया है । गाँवों में भी आधुनिकता की लहर-सी आयी है परंतु उनकी ग्रामचेतना आज भी इस आधुनिकता

में भी बरकरार है, उसकी ग्रामीण मस्ती आज भी विद्यमान है । 'सुमन' जी गाँव में बसी अहीरों की बस्तियाँ युग बीत गए, जीवन बदल गया फिर भी उनकी मस्ती बरकरार है । वहाँ के घास-फूस के घर, उनकी नारियों के गोरे हाथों से मथते दहीं की वह ताज़गी, आज भी विद्यमान है । गोकुल को गाँवों का आदर्श कहा गया है । ऐसे गोकुल के संस्कार एवं सभ्यता तथा पवित्रता, गायों और भैसों का सुखद संग, उन सभी को देख, उनके आनंद, मस्ती, सुख एवं ऐश्वर्य को देख इर्ष्या होती है । 'सुमन' जी के शब्दों में ग्रामीण चेतना देखिए -

''मेरे घर के दाहिनी ओर
है बस्ती अहीरो की बस्ती
युग बीत गए, बदला जीवन
पर शेष अभी उनकी मस्ती
है घास-फूस के घर उनके
दरवाजे चौपाए बँधते
दिन चढ़े जहाँ गोरे हाथों
मथनी, मथती, कंडे पथते
उनमें गोकुल के संस्कार
गायों भैंसों का सुखद संग
ईर्ष्या होती है देख-देख
वे दूध दहीं से बने अंग ।''[८८]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कविता में व्यक्त ग्रामीण चेतना सचमुच ही नयनरम्य, मनोहारी और आनंदित कर देनेवाली है ।

'सुमन' जी का गाँवों का वर्णन सचमुच भारत के गाँवो की याद दिला देता है । ग्रामीण चेतना के रूप में उनका ग्राम दर्शन सच्चे रूपमें भारत के वैभवशाली, सुसंस्कृत, सुसभ्य, सादगीपूर्ण, सच्चे आनद एवं सुख वाले निर्मल और पवित्र ऐसे गाँवों का मनोहर वर्णन है । शिवमंगल सिंह 'समुन' मूलतः तो ग्रामीण संस्कृति के व्यक्ति हैं, वे अपनी ऐसी मुधर स्मृतियाँ कैसे भूल सकते हैं ? भारत के ऐसे निर्मल और पवित्र गाँव टूट कर बिखर रहे हैं, उन्हें बचाकर भारत की सच्ची संस्कृति को बचाया जा सकता है । 'सुमन' जी अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा भी संदेश देना चाहते हैं कि, गाँवों को बचाओ और भारत बचाओ ।

७.२.८ समसामयिक चेतना

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी का कवि हृदय समसामयिक समस्याओं के प्रति अत्यन्त सजग है । भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अनेक समस्याओं का सामान्य जनता के जीवन से सीधा सम्बन्ध था । इनमें से कुछ कारणों के मूल में अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति थी । हिन्दू-मुस्लिम दंगे इन समस्याओं में प्रमुख थे । 'मेरा देश जल रहा कोई नहीं बुझाने वाला' कविता हिन्दू-मुस्लिम दंगों की रक्तस्नात विभीषिका से व्यग्र होकर रचित है । कवि ने मानवता और समसामयिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रश्नों के प्रति अपनी सजगता का परिचय दिया है, इस समस्या पर समग्ररूप से विचार करके उसके भयंकर परिणामों की अभिव्यक्ति की है । कवि की दृष्टि में, दंगों का मूल कारण अंग्रेज़ों की गलत नीति ही है -

''पंच बना बैठा है घर में, फूट डालनेवाला,
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला ।''[८९]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बटवारे की समस्या भारत के लिए सिरदर्द बन गई थी । भारत और पाकिस्तान का बटवारा हुआ और हिन्दू-मुस्लिमों के बीच धार्मिक दंगे भड़क उठे । शोषक वर्ग द्वारा रचे षड्यंत्र में आम जनता दंगों की आग में जलने लगी थी । निर्दोष जनता का खून चूसने वाले इन दंगों ने हज़ारों लोगों का जीवन बरबाद कर दिया था । 'सुमन' जी की इन पंक्तियों द्वारा विषम समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण देखिए -

''ये छल-छंद शोषकों के हैं
कुत्सित ओछे, गन्दे
तेरा खून चूसने को ही
ये दंगों के फन्दे ।''[९०]

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत, चीन, बर्मा, जावा, वियतनाम आदि एशिया भूखण्ड के अनेक पददलित देशों में साम्राज्य वाद के विरूद्ध जन-आन्दोलन उठ खड़े हुए थे । 'सुमन' जी ने इन सारे देशों को याद कर साम्राज्यवादी तत्त्वों के विरूद्ध जनशक्ति को प्रोत्साहित किया है । कवि पूर्ण एशिया खण्ड में एक नई आग जलते देखते है, जिसमें पुरातनता जलकर भस्म हो रही है और मानवता नवीनता के अंचल में अँगड़ाई ले रही है । इस हिटलर, तोजो, मुसोलिनी जैसे सरमुखत्यार एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतीक रूपी अंग्रेजी सल्तनत

ने खूब खून चुसा और अत्याचार करके मानवता का गला दबोचा । इस आग को बुझाने के लिए जिन-जिन लोगों ने प्रयास किया वे स्वयं बुझ गये । कवि 'सुमन' जी के शब्दों में -

''हिटलर, तोजो, मुसोलिनी ने
अंजुलि भर भर रक्त उलीचा
पर न बुझी यह
पर न बुझी यह
स्वयं बुझे वे, जिन हाथोंने
मानवता का ह्दय चीर कर इसको सींचा ।''[११]

'सुमन' जी भारतवासीयों को उनकी दासता एवं पददलित अवस्था का बोध करा कर साम्राज्यवाद का अन्त करने के लिए उनमें क्रान्तिकारी भावों की सृष्टि करता है । नाविक-विद्रोह के प्रचण्ड क्रान्तिकारी ओजस्वी स्वरूप से प्रभावित होकर 'सुमन' जी ने 'आज देश की मिट्टी बोल उठी है' कविता की रचना की । देश की जनता जागृत हो चुकी है । वह अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिए तत्पर है । अंग्रेजों को कवि घृणित लुटेरे, शोषक कहकर उन्हें ललकारता हुआ कहता हैं कि तुम्हें, आज भारत जनता खुली चुनौती दे रही है, भारत का प्रत्येक भू-भाग और उसकी जनता तुम्हारे विरूद्ध जागृत होकर उठ खड़ी हुई है, कवि 'सुमन' जी के शब्दों में स्वतंत्रत आंदोलन की समसामयिक परिस्थितियाँ और जनशक्ति की चेतना देखिए -

''घृणित लुटेरे, शोषक
समझा पर धन-हरण बपौती
तिनका तिनका खड़ा दे रहा
तुझको खुली चुनौती ।''[९२]

अंग्रेजो के अत्याचार का दमन करने के लिए कवि भारतीय जनता को आह्वान करता है । आत्मरक्षण के लिए किये जाने वाले इस विद्रोह को कुछ लोग हिंसात्मक कहकर बदनाम करना चाहते थे । इसी प्रसंग में कवि हिंसा- अहिंसा के प्रश्न पर विचार करते हुए अधिकार प्राप्ति के लिए की गयी हिंसा को भी अहिंसा घोषित करते हैं । सन् १९५३ में पड़े कलकत्ते के अकाल के कारण हज़ारों भारतीय मृत्यु की गोद में सो गये थे । इस प्रचण्ड विभीषिका को देखकर कवि का हृदय द्रवित हो गया है और काव्य के माध्यम से फूट पड़ा है ।

'सुमन' जी की समसामयिक चेतना ही उन्हें एक ओर सोवियत रूस के साम्यवाद का समर्थन करने की प्रेरणा देती है तो दूसरी ओर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अग्नि में कूद पडने का आह्वान करती है । हिन्दी के प्राय: सभी प्रगतिवादी कवियों ने शोषित, नव जागृत मानवता के प्रतीक के रूप में सोवियत रूस को अवश्य याद किया है । 'सुमन' जी सोवियत रूस की क्रान्ति से प्रेरणा पाकर ही श्रमजीवी वर्ग को जागृत एवं संगठित होने का सन्देश देते हुए कहते हैं -

''दुनिया भर के मज़लूमों अब
आज एक हो जाओ ।''[९३]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी समय के प्रवाह में समय के साथ चलने वाले कवि हैं । 'सुमन' जी भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, बटवारे की समस्या, साम्यवादी आन्दोलन, अकाल, गांधी हत्या आदि अनेक समसामयिक परिवेश को अपनी कविता में स्थान देकर जनता को एक प्रकार से जागृत रखने का कार्य करते हैं । उनकी समसामयिक चेतना एक प्रकार से एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में हमारे समक्ष आती है । इस प्रकार 'सुमन' जी की समसामयिक चेतना प्रभावशाली हैं ।''

७.२.९ प्रेम भावना :

सृष्टि में प्रेमतत्व रहित अस्तित्व अशक्य है । प्रेम का बडा महत्त्व है, प्रेमरहित जीवन की कल्पना करना ही व्यर्थ है । प्रेमतत्त्व से चैतन्य, स्फूर्ति एवं विकासशीलता का संचार होता है । प्रेम के मुख्यत: दो रूप है – एक शरीरी प्रेम और दूसरा अशरीरी या आत्मिक प्रेम । प्रेम का उदात्त एवं श्रेष्ठ रूप अशरीर या आत्मिक प्रेम है, किन्तु उसके लिए शरीरी प्रेम भी आवश्यक हैं । प्रेम अनेक रूप में हो सकता है । जैसे राष्ट्रीय प्रेम, ईश्वर प्रेम, प्रकृति प्रेम, पति–पत्नि का प्रेम, प्रेमी पात्र से प्रेम, आत्मिक प्रेम, नि:स्वार्थ प्रेम, मातृप्रेम, भगिनी प्रेम, पितृप्रेम, भातृप्रेम, व्यष्टिगत प्रेम आदि । प्रेम अर्थात् प्रेमी पात्र के प्रति निस्वार्थ, पवित्र एवं संपूर्ण शुद्ध ऐसी आत्मबलिदान एवं स्वार्पण की आत्मिक एवं हृदयगत आंतरिक भावना । शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी भी हर कवि की तरह इस प्रेमतत्त्व का निरूपण अपनी कविताओं में करने से रहित नहीं रहे हैं । 'सुमन' जी ने सभी प्रेम के रूपों का निरूपण अपनी कविताओं में किया

है । 'सुमन' जी प्रेम का महत्व समझते हैं इसलिए वे प्रेम के महत्व को दर्शाते हुए लिखते हैं –

''आँख हिलती है तो सब आसमान हिलता है
प्यार खिलता है तो सारा जहा नखिलता है ।''[९४]

प्रेम के लिए कोई भी कुछ भी करने के लिए बाध्य हो जाता है, प्रेम ही ऐसा तत्व है जिससे जीवनीशक्ति प्राप्त होती है, इसलिए प्रेम का बड़ा महत्त्व है । प्रेम प्राप्त करने के लिए 'सुमन' जी विष का पान करने के लिए भी बाध्य हो जाते है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''ज़िन्दगी हर जगह बिखरी सकेल लो साथी
आज अरमानो से खुलकर के खेल लो साथी ।
बूँदे दो प्यार की मिल जाय तो भूले भटके
हजार बूँदे हलाहल की झेल लो साथी ।''[९५]

इस सृष्टि में जो कुछ भी है वह प्रेम पर ही निर्भर है, प्रेम भावना से जीवनी शक्ति अर्जित की जा सकती है । प्रेम मिटता नहीं प्रेम अमरत्व प्रदान करता है । प्रेम इस सृष्टि में एकमात्र अमरता प्राप्त किए हुए हैं, 'सुमन' जी के शब्द देखिए –

''जीवन अचिर त्यौहार है
जो कुछ अमर है प्यार है
बस बात इतनी, प्यार का –
प्रतिकार पाना है मना ।''[९६]

जीवन में चाहे कितने ही संघर्ष और मुसीबतें आए लेकिन जबतक प्रेमीपात्र का साथ है, प्रेम का सहारा है तब तक इन मुसीबतों से डर उन्हें पार कर सकते हैं । प्रेम का महत्त्व इसलिए ही है कि उसके सहारे अगम और अपार जीवन सागर पार किया जा सकता है । 'सुमन' जी के शब्दों में प्रेम का महत्त्व देखिए -

''शक्तिभर आपत्तियों के
सिंधु से मैं उलझता हूँ
सत्य मानों मैं न तब तक
कुछ किसी से समझता हूँ
हाथ में जब तक तुम्हारे प्यार की पतवार
कर सकूँगा अगम सागर पार ।''[९७]

इस प्रेम को खो देने से, प्रेमतत्त्व की रहितता में सब कुछ मिट जाता है । प्रेम की रहित अवस्था में ही प्रेम का महत्त्व समझमें आता है । इसी प्रेम के सहारे आपत्तियों का सामना किया जा सकता है, किन्तु वही प्रेम जब खो जाए तब बहुत ही बुरी दशा होती है, प्रेम के अभाव में दु:ख और पीड़ा का अनुभव होता है । 'सुमन' जी के शब्दों में प्रेम का महत्त्व देखिए -

''खो प्यार, पाया जो नहीं
पीकर पचाया जो नहीं
उर में समाया जो नहीं
वह ही हृदय का स्रोत

आँखो से सदा झरता रहा
कब भूल मैं करता रहा
अपने प्रणय की कामना
अपने हृदय की भावना
आपत्तियों का समाना
सुख-दुःख अपनी जिन्दगी
के गीत में भरता रहा
कब भूल मैं करता रहा ।"[९८]

जब प्रणयी का प्रथम-मिलन होता है तब नूतन मार्ग दिखाई पड़ता है, जगत का क्रम नूतन लगने लगता है, प्रकृति भी नूतनता के वस्त्र धारण कर लेती है, ऐसी अनुभूति होती है । सन्ध्या नूतन लगती है, बहारें नूतनता का अनुभव कराने लगती है, उपवन-बागे बगीचे सभी में नूतनता का संचार होने लगता है प्रेम की नूतनता का वर्णन उनके महत्त्व को प्रतिपादिन करता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए जिसमें वे प्रेम को ईश्वर का दिया हुआ अभिनव धन करार देते हैं -

"नूतनपथ, नूतन जग का क्रम, नूतन प्रणयी का प्रथम-मिलन
नूतन सन्ध्या, नूतन बहार, नूतन बयार, नूतन उपवन
जग के जीवन में नूतन है यह विरह-प्रेम का आलिंगन ।
हे देव, तुम्हारे अभिनव-धन पर आज हमारा अभिनन्दन ।"[९९]

प्रणय का व्यवहार केवल क्षणजीवी नहीं होता । प्रेम तो इस संसार और दूसरे संसार तक अमर गति से प्रवाहमान होता है । प्रेम की

अमरता के कारण ही जीवन प्रवाहमान रहता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''दो दिन में मिट जाने वाला यह प्रणयी का व्यवहार नहीं,
घुल-मिल जाने की अभिलाषा है अंत यहाँ अभिसार नहीं ।''[१००]

प्रणय में दो प्रेमी पात्र होते हैं । प्रेम ऐसा आंतरिक और हृदयगत तत्व है कि जो प्रेमी पात्रों को एकसूत्रता के भावनामय बन्धन में बांध देता है । प्रेम होने के पश्चात् प्रेमी पात्र एकात्मभाव में लीन होते दिखाई पड़ते है । प्रेम पात्रों के बीच एकात्मभाव प्रेम की एक विशेषता भी है । 'सुमन' जी के इन शब्दों के द्वारा प्रेमी-पात्रों के बीच एकात्मभाव को देखिए -

''आज सुनती हूँ सजनि, हृदयेश का अभिषेक होगा
आज सुनती हूँ हमारा हृदय उनसे एक होगा
आज सुनती हूँ बनेंगे सत्य वे नायक हमारे
हम बनेंगी गीत उनके और वे गायक हमारे
आज चिर-आराधना परिपूर्ण-सी पडती दिखाई,
आज अलि उनको बधाई ।''[१०१]

प्रेम के लिए आवश्यक गुण होने चाहिए, प्रेम प्राप्त करना मुश्किल है । प्रेम प्राप्ति के लिए आत्मसमर्पण, त्याग और बलिदान की भावना होना आवश्यक है । आत्मसमर्पण की भावना से ही प्रेम दृढ से दृढ़तर बनता है । मिटने में, स्वयं को स्वाहा कर देने में जो सुख प्राप्त

होता है वह अद्वितीय होता है । कभी हार में भी जीत होती है, प्रेम हारने में भी जीतने का अनुभव कराता है । प्रेमियों को आत्मसमर्पण रूपी हार अधिक भाती है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''वे कहते मैं आकर्षण हूँ
मैं कहती आत्म-समर्पण हूँ
वे क्या जानें मिटने में ही
मैं बनने का सुख पा जाती,
मुझको हार अधिक भाती ।''[१०२]

प्रेम के पथ पर चलते हुए जब प्रेमी अपने प्रियपात्र को पा लेता है तब उसके प्रेमपाश में सदैव बंध जाता है । उनके जीवन में उज्ज्वल प्रकाश छा जाता है और दोनों दो शरीर और एक आत्मा बन जाते हैं । प्रेमी प्रेममय हो जाते हैं और प्रिय में अपना संपूर्ण अस्तित्व मिला देते हैं । प्रेम मिलन का जो आनंद और चिरशांति होती है, वह स्वर्गिक सुख से भी अधिक आनंददायक होती है । कवि 'सुमन' जी प्रिय मिलन का आनंद व्यक्त करते हुए इन पंक्तियों में अपनी प्रेमाभिव्यक्ति इस प्रकार व्यक्त करते है -

''जब इस पथ पर चलने-चलते अपने प्रिय को पा जाऊँगा ।
चिर श्रान्त-क्लान्त सत्वर उसकी गोदी में मैं सो जाऊँगा
हिम-कण सा किरणों में मिलकर उज्जवल प्रकाश बन जाऊँगा
जग याद करेगा व्यथा कथा, मैं तो प्रिय में मिल जाऊँगा ॥''[१०३]

प्रेमी जीव की स्थिति विचित्र होती है । प्रेमी जीवन में विरह, दुःख, पीडा भी होते हैं, लेकिन उस पीड़ा में भी, उस दर्द में भी एक प्रकार का सुख और आनंद होता है । प्रेमी की सच्ची परीक्षा उसकी विरहजनित स्थिति में ही होती है । जब अपने प्रिय पात्र से विरह होता है तब बड़ी विकट स्थिति होती है । सही प्रेम की कसौटी विरहावस्था में ही होती है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''दुःख दाह सब सहता रहा
यह मान कर चलता रहा
मेरे हृदय, जब हैं गए स्मृति-भार मुझ पर छोड़कर
मेरी परीक्षा हो रही ।''[१०४]

प्रेमसंयोग और प्रेम-वियोग दोनों में ही दीवानापन होता है । प्रेम-मिलन भी प्रेमी को उन्मत्त, बना देता है और प्रेम-विरह भी उन्मत्त बना देता है । प्रेम की इस उन्मादावस्था का चित्रण 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में देखिए -

''प्रिय-मिलन बना देता उन्मन
जलते वियोग में ज्वालकण
इस चक्कर में ही पड़ अब तक
पाया सम्हाल अपने न होश
क्यों दूँ किस्मत को भला दोष ?''[१०५]

वियोगावस्था में प्रेमी मन की स्थिति व्याकुल हो जाती है । वियोग की ग्यारह अवस्थाओं से प्रेमी गुज़रता है । जब प्रियपात्र दूर हो

जाता है तब बड़ी ही विकट स्थिति उत्पन्न होती है । स्वयं का अस्तित्वभान नहीं रहता, आँखों में धुँधली सी छा जाती है, आँखों के समक्ष सदा ही प्रिय पात्र की परछाई दिखाई देती है । विरहावस्था की स्थिति का चित्रण 'सुमन' जी के शब्दों में देखिए -

''मुझको न रहा अस्तित्व - भान
आँखों में धुँधली-सी छाई
मेरी चल-सजल पुतलियों पर
पड़ती थी प्रिय की परछाई
मेरी ही आँखों के सम्मुख,
मेरे स्वप्नो का गेह ढ़हा
क्या आज जा रहे हो सचमुच ?''[१०६]

जीवन में प्रेम का महत्त्व अत्यधिक होने से एक सत्य वह भी उद्घाटित होता है कि जीवन प्यार के बिना शुष्क एवं 'नीरस बन जाता है और जिन्हें प्यार न मिला हो वह निहत्था और अकेला अपने आप का महसुस करता है जिसके कारण से निराशावादी भी बन जाता है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''सच है मैंने प्यार न पाया
निज कल्पित संसार न पाया
किन्तु अभागों की दुनिया में
नया नहीं हिय-मंथन मेरा ?
कौन सुनेगा क्रंदन मेरा ?''[१०७]

प्रणय में विरह भी एक तरह से सुखदायी बन जाता है, विरह में ही प्रिय पात्र का महत्त्व और प्रेम का महत्त्व समझ में आता है, इस लिए ही 'सुमन' जी प्रणय-विरह को भी स्वीकार करते हैं और प्रेमपीड़ा और दुःख भी प्रिय-पात्र के लिए स्वीकार करते हैं 'सुमन' जी की ये पंक्तियाँ देखिए -

''जिसने किए मधुमय अधर
जिससे हुई वाणी मुखर
जिसके मिलन का क्षण अमर
उसका विरह-उपहार भी
स्वीकार है, स्वीकार है ।
जिसके सहारे मैं चला
जिससे हुई विकसित कला
जिससे हृदय को सुख मिला
उसका दिया दुःखभार भी
स्वीकार है, स्वीकार है ।''[१०८]

प्रेम होने से प्रेमी वर्षों के बिच एक भावात्मक और अटूट संबंध स्थापित हो जाता है, जिसके कारण प्रियपात्र के बिच कैसा भी व्यवहार हो वह स्वीकार्य होता है । प्रेमी पात्रों के बिच रूठना और मनाना चलता रहता है, प्रियतमा मान करता है और प्रियतम उसे मनाता रहता है । यह प्रणय व्यापार का एक अंग है । प्रिय पात्र रूठा हुआ हो तो उसको मनाने का भी एक आनन्द होता है । रूठने मनाने की प्रणय क्रिडा 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में देखिए -

''सूनेपन का सोच मुझे क्या
वह तो सब दिन था ही
मुझसे बहुत प्रार्थी तुमको
मुझे न तुमसा राही
एकबार रूठो तो मैं भी
सीखूँ तनिक मनाना,
राही एकबार फिर आना ।''[१०९]

प्रेम की प्यास कभी बुझती नहीं, प्रेमियों के नयन-से नयन मिल जाते हैं, वे एकात्मभाव से भीगे हुए होते हैं, प्रेम का हठीलापन और मान भी एक प्रकार से सुखदायी होता है, मान के पश्चात् द्रगजल भी एक प्रकार से अमृतजल-सा प्रतीत होने लगता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए जिसमें वे प्रिय से मान करने के पश्चात् के परिणाम की बात करते हैं -

''युग-युग से प्यासे प्राणों ने अमर सुधा-रस पान किया था
नयनों ने नयनों से मिलकर अपना-पन पहचान लिया था
मना किया पर हाथ हठीली आँखों ने जब मान किया था
रोने के दिन दूर नहीं इतना मैंने जान लिया था ।''[११०]

प्यार और पीड़ा एक सिक्के के दो पहलू है, प्यार में दुःख, दर्द और पीड़ा भी अवश्य होते हैं । प्यार और पीड़ा का चिर-सम्बन्ध है । प्यार और पीड़ा के चिर-सम्बन्ध को 'सुमन' जी इस प्रकार बताते हैं -

''हम प्यार और पीड़ा का चिर-सम्बन्ध बतानेवाले हैं,
हम बड़े विकट मतवाले हैं ।''[१११]

प्रेम के कारण प्रेमियों के अहमभाव का नाश हो जाता है, वे एकदूसरे के प्रति इतने एकात्मभाव से बंधे होते हैं कि हंमेशा प्रियपात्र का साथ निभाते हैं, और प्रियपात्र के रास्ते ही चलते हैं । प्रेम में होशोहवास खो जाता है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''मैं प्रिय का पथ अपनाता हूँ
जो जी में आता गाता हूँ
इतना कह सकता हूँ,
मुझको तो अपनी ही होश नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं हैं ।''[११२]

प्रेम में विश्वास आवश्यक है । प्रेमीपात्र एक-दूसरे के प्रति पूर्णतया विश्वास की डोर से बंधे हुए होते हैं । इसी विश्वास को दृढ़ बनाने में वे कुछ भी सहन करने के लिए बाध्य हो उठते हैं । जीवनभर एक दूसरे को भूल नहीं पाते हैं और विश्वास से सिंचित प्रणयडोर में अटूट रूप से जुड़े रहते हैं, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''जब समय जैसा पड़े सहना
वहीं अभ्यास रक्खो
मैं न जीवनभर सकूँगा भूल
तुम विश्वास रक्खो ।''[११३]

प्रणय में निष्ठुर व्यवहार भी होता है और प्रियमिलन की चाह में जो यातना एवं दु:ख मिलता है उसको स्वीकार्य करके उसे उपहार की तरह मानकर उसे भी अपना लिया जाता है । प्रणय की चाह में दु:ख, पीड़ा, यातना और निष्ठुर व्यवहार भी प्रेमी उपहार की तरह स्वीकार करते हैं, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''इस प्रणय-सिंधु अथाह में
कुश - कंटको की राह में
प्रियतम-मिलन की चाह में
मुझको मिली जो यातना
उपहार है उपहार है ।
जिसने मुझे अपना कहा उसका निठुर व्यवहार भी स्वीकार है
स्वीकार है । [११४]

प्रेमी मन की स्थिति बड़ी ही विकट एवं विचित्र स्थिति होती है । प्रणयी व्यक्ति एक दूसरे से इतने निकट और एक दिल होते हैं कि एक दूसरे के बगैर रह ही नहीं पाते । वे जागृत अवस्था में भी सोते रहते हैं और सोते हुए भी जागृत होते हैं । पा कर भी खोने का और खो कर भी पाने का अनुभव करने लगते हैं और हँस-हँसकर रो देते हैं तो रोते हुए भी हँसते हैं अपनी असफलताओं से वे अपना परिणय कर लेते हैं दीवानगी की स्थिति ऐसी होती है, 'सुमन' जी के शब्दों में -

''हम जागृति में भी सोते हैं
हम पा-पाकर खो देते हैं
हम हँस-हँसकर रो देते हैं
हम अपनी असफलताओं से ही
कर लेते अपना परिणय
हम दीवानों का क्या परिचय ?''[११५]

प्रेमी व्यक्ति प्रेम की प्राप्ति के पश्चात उसे अपनी आँखों के समक्ष ही रखना चाहते हैं, प्रियपात्र को आँखों के समक्ष रखते हैं तब वे चंचल हो जाते हैं । जब वे अपनी प्रणय-मधुर स्मृतियों के पलों को संजोकर उसी में मस्त रहते हैं, उसकी मुस्कुराहट उनके एक-एक पल को यादगार और अमर बना देती है । इस पलभर में वे पुरा जीवन जी लेने का अनुभव कर लेते हैं । इसे ही प्यार कहा जा सकता हैं, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''तुमको आँखो के आगे पा
जब मैं हो उठता हूँ चंचल
जब बैठ सँजोने लगता हूँ
अपनी मधुर स्मृतियों के कुछ पल
झीने अंचल की ओट किए
तुम रह रह मुसका देती हो
क्या प्यार इसे ही मैं समझूँ ।''[११६]

प्रेम का एक दूसरा रूप है अशरीरी एवं आत्मिक प्रेम । इस जगत की अदृश्य शक्ति जो समग्र सृष्टि का संचालन करती है जिसे हम ईश्वर, परमात्मा, भगवान या प्रभु कहते हैं । कबीर, दादू, मीरा, जायसी आदि कवियों ने प्रेमलक्षणा भक्ति मार्ग के द्वारा परम चैतन्य एवं सृष्टि संचालक शक्ति को प्रियतमा या प्रियतम मानकर उनसे प्रेम किया था । जीवन में आने और जाने का क्रम शाश्वत है और इसीलिए इस सृष्टि में अपना और पराया कुछ भी नहीं है । 'सुमन' जी इसी विचार को भी मानते हैं इसलिए उसने अशरीरी एवं आत्मिक प्रेम भी किया है, उसका यह प्रेम हृदयगत हैं और प्रेमावस्था एवं प्रेम का स्वरूप उच्चतम और श्रेष्ठ है । यह प्रेम आध्यात्म, भक्ति, एवं दार्शनिकता तथा रहस्यावादी प्रेम है, 'सुमन' जी ने भी ऐसा प्रेम किया है । 'सुमन' जी कहते हैं कि इस सृष्टि में हंमेशा आवन-जावन रहती है इसलिए यहाँ कोई अपना और कोई पराया नहीं है । केवल अपना कोई है तो परमात्माशक्ति ही है । वही हमारा प्रिय है अतः उसी में मिल जाना ही जीवन का परम उद्देश्य होना चाहिए । कवि 'सुमन' जी का उच्चतम और श्रेष्ठप्रेम देखिए जिसमें उनके अशरीरी एवं आत्मिक प्रेम की उद्दात्तता दिखाई देती है -

''शाश्वत यह आना-जाना है
क्या अपना और विराना है
प्रिय में सबको मिल जाना है
इतने छोटे-से जीवन में,
इतना ही कर पाए निश्चय,
हम दीवानों का क्या परिचय ?''[११७]

'सुमन' जी की कवितओं में अशरीरी प्रेम से लेकर उत्तरोत्तर प्रगति दिखाई देती हैं । 'हिल्लोल' का शरीरी और स्थूल प्रेम आगे जाकर 'जीवन के गान' में अशरीरी एवं सूक्ष्म प्रेम में परिवर्तित हो जाता है । 'सुमन' जी स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर, व्यक्तिगत से समष्टिगत प्रेम की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं । 'सुमन' जी की कविताओं में प्रेम का उदात्तीकरण देखने मिलता है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी की कविता में प्रेम का सच्चा स्वरूप और प्रेम के सभी रूप विद्यमान है ।

७.२.१० प्रकृति चित्रण

मनुष्य इस जीवसृष्टि का ही एक अंग है अतः प्रकृति से उसका नाता अटूट है । मनुष्य और प्रकृति सदियों से एक रहे हैं । प्रकृति के बिना मनुष्य का अस्तित्त्व ही नहीं है । मनुष्य को प्रकृति ने अखुट वैभव दिया है । मनुष्य के लिए प्रकृति कभी जीवन यापन का साधन रही है तो कभी अपनी इच्छापूर्ति का माध्यम बनी है । प्रकृति में मनुष्य अपना प्रतिबिंब देखता है । इसलिए प्रकृति इस जीवसृष्टि और मनुष्य का ए क महत्त्वपूर्ण अंग है । मनुष्यजीवन में प्रकृति का अत्यधिक महत्त्व है इसलिए ही प्रकृति ने मनुष्य को अत्यधिक आकर्षित किया है । साहित्य में अब तक के लेखन का विषय अधिक से अधिक प्राकृति ही रहा है । हर साहित्यकार ने अपने साहित्य में प्रकृति को कहीं न कहीं स्थान दिया ही है, उसमें भी कवियों की तो वह सहचरी रही है । प्रकृति एवं प्रेयसी इन दोनों ने कवि को अत्यधिक प्रभावित एवं आकर्षित किया है । 'सुमन' जी

भी एक प्रकृतिप्रेमी कवि हैं, इसलिए 'सुमन' जी की कविताओं में भी प्रकृति चित्रण मिलता है । कवि 'सुमन' जी प्रकृति को पूर्ण रूप से जी लेने की आकांक्षा रखते हैं, वे संध्या की लाली को पी लेना चाहते हैं तो सूरज का सार प्यार जी भर के चख लेना चाहते हैं 'सुमन' जी के शब्दों में -

''संध्या की लाली मुझको पी लेने दो,
जीवन का यह क्षण जी भर पी लेने दो ।
यह सूरज का सार प्यार जी भर चक्खो,
आँखों के अधरों पर उँगली मत रक्खो ।''[११८]

शरदपूर्णिमा की रात और चाँदनी कवि 'सुमन' जी को प्रभावित करती है । शरदपूर्णिमा की बरसात शरमाती-सी आकर, आँखों में समा जाती है, इसकी सुंदरता अनमोल है, मन को हर लेनेवाली, शरदपूर्णिमा का प्राकृतिक एवं प्रभावकरूप 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में देखिए -

''बीती बेसुध बरसात शरद शरमाती-सी आई,
होठों में हुलसे कंज आँख में कोई इतराई ।
गोरे अंगों में कसी-फँसी धानी अँगिया निखरी,
आँचल में झूले काँस हँसी में शेफाली बिखरी ।
साँसों में खिले कपास-प्यास सागर की दहक उठी,
अंतर में उमड़ा ज्वार, ज्वार की कलँगी लहक उठी ।''[११९]

जब से मनुष्य प्रकृति से विमुख हुआ है तब से मनुष्य-जीवन का स्वाभाविक आनंद नष्ट हो गया है, मनुष्य आधुनिकता के व्यर्थ और

मृगजल रूपी आकर्षण में अपनी लय भूल गया है, मनुष्य इस यंत्रयुग में यंत्र बन गया है, जीवन को आनंदमय बनाने के लिए और पूर्णता से जीने के लिए आवश्यक हैं कि वह प्रकृति के पास जाए । अतः 'सुमन' जी संदेश देते हैं कि प्रकृति के पास जाओ । वे हिमालय के अंचल में जाने की सलाह देते हैं, मेंदानों मैं रहनेवाले मनुष्यों को पर्वतो में जाकर जीवन का आनंद लूँटने को कहते हैं । हिमालय की पर्वतशृंखला में जाकर शायद हमारा कल्मश मिट जाय और पशुपतिनाथ प्रसन्न होकर कोई अस्त्र प्रदान करें, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''चलो हिमालय के अंचल में झरनों के संग गाओ ।
गौरीशंकर के चरणों में अपना अहम लुटाओ,
कुछ दिन ऊँचाई भी परखो परसो पारस पत्थर,
मैदानों के वासी निरखो शिखरों का अभ्यन्तर ।
सेवा की धूनी में शायद कलुष-खोट जल जाए,
पशुपतिनाथ प्रसन्न पाशुपत अस्त्र तुम्हें मिल जाए ।''(१२०)

सदियों से हिमालय दृढ़ एवं अडिग बनकर खड़ा है, हिमालय इतिहासों का गवाह बनकर खड़ा है । उसके श्वेत, निर्मल, शुभ्र बर्फ पर आँख ठहरती है तो हटने का नाम ही नहीं लेती । उनका रूप अलौकिक है, वह मार्गदर्शक की भाँति सदियों से अपलक खड़ा है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए

''तुम्हारे श्वेत, निर्मल, शुभ्र
कर्पूरी कपोलों पर
फिसलती आँख की पुतली,
किसी की स्निग्ध सुधि की राशि सम
तुम जम गए कैसे ?
क्षितिज के छोर की उमड़ हँसी
कब से समेटी है ?
अलौकिक कौन–सा अपरूप है
जिसको छिपाने को बनाया मुग्ध अवगुंठन
कि जिसकी ओर ऋतु औ 'सत्य'
रह रह झिलमिलता है
सहस्रों पारदर्शी समस्तरों के पार
'तपसो अध्यंजायत' कौंध जाता है ।''[१२१]

ऋतुओं का अपना एक महत्व होता है । हर ऋतु अपना ऐश्वर्य और अपनी विशेषता ले आती है । वसंत को ऋतुओं की रानी कहा गया है । वसंत ऋतु को 'सुमन' जी बाँवरी ऋतु कहते हैं क्योंकि उसको जो देखता है वह बौरा ही जाता है । वसंत में वृक्ष नवपल्लवित होते हैं, चारों और मधुर गुँजारव करते हैं – कोयलिया की मधुर आवाज मन को आह्लादकता प्रदान करती है । 'सुमन' जी के शब्दों में वसंत ऋतु का ऐश्वर्य देखिए –

''बड़ी बाँवरी ॠतु आई है,
जो देखे बौराए,
तपे मृगसिरा तब अंतस का,
रस सीझे, मुधराए,
अल्हड़ चैत, कोयलिया बौरी
कौन किसे समजाए ?''[१२२]

वसंत के आने से नई-नई कोंपले फूटने लगती हैं, नवसृजन का लीला को प्रारंभ हो जाता है, डाली-डाली पर नये-नये पत्ते नवपल्लवित होकर नाचन लगे हैं, लताएँ पल्लवित हो जाती है, पुष्प पुलकित हो जाते हैं, चारों और हरियाली छा जाती है, कोयलिया कुहुकने लगती है, प्रकृति में नव यौवन का संचार हो जाता है । 'सुमन' जी के शब्दों में वसंत का अद्‌भूत एवं मनोहारी, जीवंत प्रकृति चित्रण देखिए -

''आया वसंत कोंयल फूटी
नव-सृजन-शक्ति-सी लाल लाल
डाली डाली पर किलक उठे
नव-जात मांसल शिशु-प्रवाल
पल्लवित लता, पुलकित मनोज
आशा हरितिमा गई फैल
बौरे रसाल पर मुग्ध
कुहुकने लगी कयोलिया गैल गैल ।''[१२३]

ऊषा और संध्या प्रकृति के अंग हैं, ऊषा की लालिमा चैतन्य, जागृति एवं उत्साह प्रदान करती है, इसलिए 'सुमन' जी ऊषा का महत्त्व बताते हुए उसे मधुरस बसाने वाली प्राकृतिक सुषमा की उपमा देते हुए इन पंक्तियों में कहते हैं कि -

"ऊषा उड़ेल जाती मधुरस
नव-पंखुरियों की प्याली में ।"[१२४]

ऊषा की लालिमा नव-जीवन का सन्देश लेकर आती है । जिस प्रकार प्रियतमा हमारे जीवन में मधुरस की प्याली भरकर हमें आनंदमय बना जाती है वैसे ही उषा अपनी लालीमा से प्रकृति को पल्लवित कर जाती है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

"जैसे नव-जीवन का संदेश
दे जाती ऊषा की लाली
वैसे ही तुमने भर दी थी
मधुरस से यौवन की प्याली
तुमको भूलूँ भी तो कैसे ?"[१२५]

इसी प्रकार ऊषा अगर जागृति का प्रतीक है तो संध्या शांति का प्रतीक है । जब संध्या ढलने लगती है तब सारी प्रकृति शांत होने लगती है । कमल पुष्प सकुचाने लगते हैं और सृष्टि का जीवगण भी शांति के आवरण में बंधने लगता है । समुद्र धीरे-धीरे शांत होने लगता है, ऐसा प्रकृति का शांतरूप जब सूरज ढलने लगता है तब देखने मिलता है । 'सुमन' जी के शब्दों में संध्या का शांत वर्णन देखिए -

''विहग आकुल नीड़ मुखरित रागमय लज्जित दिशाएँ
थके हारे श्रमिक सुस्थिर दिग्वधू लेती बलाएँ
ऊधर ज्योति विलीन होती, इधर दीपक जल रहा है,
सूरज ढल रहा है,
शांत होता जा रहा है विश्व कोलाहल अपरिमित,
उधर सकुचाता जलज इस ओर कुमुदिनि विहंस गर्वित
सिन्धु बाहु विशाल फैला, बार बार उछल रहा है,
सूरज ढल रहा है ।''[१२६]

प्रेम और प्रकृति का संबंध अभिन्न रहा है । प्रेम में कभी प्रकृति सहचरी भी बन जाती है तो कभी वियोगावस्था में यही प्रकृति दुश्मन बन जाती है । संयोगवास्था में प्रकृति का रूप उद्दीपन का होता है तो वियोगावस्था में ही प्रकृति दुःखदायी बन जाती है । प्रकृति पुरूष का मधुर मिलन स्पंदित कर देता है इसलिए प्रेमराग की लहरों में जीवन और मरण भी संसार भूल जाता है, कलियाँ खिल उठती है, पुष्प हँसने लगते हैं, पल्लवों से सुखमय एवं आनंददायी सुहाग का आकर्षण फूटता है । प्रकृति संयोगावस्था में प्रेमियों की सहायक एवं सहचरी बन जाती है । 'सुमन' जी के शब्द देखिए

''यह प्रकृति पुरूष का मधुर-मिलन स्पंदित कर देता कण-कण
इस प्रेम-राग की लहरी में जग भूल जीवन और मरण
खिल रही कली, हँस रहे सुमन, थपकी देती मन्थर बयार
पल्लव-पल्लव से फूट रहा, सुखमय सुहाग का आकर्षणा''[१२७]

प्रकृति का मानवीकरण करने से कोई भी कवि चुका नहीं है । प्रकृति में मानवीय भावों का, आरोपण करना ही मानवीकरण कहलाता है । 'सुमन' जी ने भी अपनी कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण किया है । मधुर सुप्रभात का वर्णन करने में वे मानवीयभावों को सहजता से उसमें आरोपित कर देते हैं । 'कैसा मधुर सुप्रभात था' कविता में कवि ने सुप्रभात का मानवीकरण किया है । कोई नारी अपनी सितारेदार साडी झिलमिलाती हो इस तरह उषा खिल रही है, ऊषा के कारण ही जगत में चैतन्य छा जाता है, 'सुमन' जी के शब्दों में प्रकृति का मानवीकरण ऊषा के वर्णन में देखिए -

''प्राची क्षितिज के द्वार पर
जब चार आँखे हो गई
देखा सितारेदार साड़ी
झिलमिलाती थी नई
जिससे झलक उठता
उषा का राग रंजित गात था
कैसा मधुर सुप्रभात था ।''[१२८]

वर्षा का महत्त्व सृष्टि के लिए अत्यधिक है । वर्षा के जल से ही सृष्टि का अस्तित्त्व है । अगर वर्षा न होती और बादल न बरसते तो कठोर परिश्रमी किसान हर्षाते नहीं और प्रकृति भी हर्षित न होती, कवि 'सुमन' जी के शब्दों में वर्षा का महत्त्व देखिए -

"यदि न बरसते –
तो फिर कैसे रक्त स्वेद करने वाले धरती के पुत्र
किसान हरषते ।"[१२९]

वर्षा के आगमन से नवपल्लवन होता है । प्रकृति में और सृष्टि में गुंजन होंने लगता है, मादक और मधुर प्रकृति संगीत धरतकी को आनंदित कर देता है । जब बादल बरसते हैं तो अंकुर विकसित होने लगते हैं, पपीहा पी-पी करने लगता है, वृक्ष नाचने लगते हैं, प्रकृति पुलकित हो जाती है, मोर नाचने लगता है, पक्षी किलकिलाहट करने लगते हैं, अणु-अणु हर्षित हो जाता है, तृण मुखरित बन जाते हैं, कली-कली कुसुमित और सुगंधित हो जाती है, भ्रमरों के गुंजन से प्रकृति गुंजित हो जाती है, कोकिल कूंजित हो जाती है, यह वर्षाऋतु सचमुच ही एक मधुऋतु है । कवि 'सुमन' जी के शब्दों में वर्षा का वैभव देखिए –

"गूँजे अवनी से अम्बर तक कटि-किंकिण पग-पायल के स्वन
खुन खुनुन खुनुन रून झुनुन – झुनुन ।
वह फूट पड़ा नभ का उद्‌गम रिमझिम-रिमझिम झमझम-झमझम
विकसे अंकुर, बिखरी सीपी प्रतिध्वनित पपीहे-की पी-पी
तरू-तरू हुलसित रह-रह पुलकित
चिर-प्यासी धरती के कन-कन सावन के दिन, सावन के दिन ।
लहराती लधु-लधु लोल लहर सरसर – सरसर मरमर-मरमर
अणु-अणु हर्षित, तृण-तृण मुखरित किसलय प्रमुदित
कलि-कलि कुसुमित भ्रमरों की गुन-गुन से गुंजित
कोकिल-कूंजित मेरा उपवन मधुऋतु के दिन, मधुऋतु के दिन ।"[१३०]

वर्षा-ऋतु के बादल जब बरसते हैं तो अमराई अकुलाहट छोड़ जागृत हो जाती है, अटारी मुखरित हो जाती है, शापित यक्ष चंचल हो उठते हैं मानों वातावरण में बादलों की गड़गड़ाहट से मृदंग बजने लगता है और फिर प्रकृति नवपल्लवन धारण करती है, 'सुमन' जी के शब्दों में वर्षाऋतु का वर्णन देखिए -

''अमराई अकुलाई, सिहरी नीम
हँस पड़े चल दल ।
मुखरित मूक अटारी
शापित यक्ष हो उठे चंचल ।
गमके मन्द्र मृदंग, बज उठी रिमझिम-रिमझिम पायल
आज रात-भर बरसे बादल ।''[१३१]

वर्षा के कारण चारों और जीवनामृत ऐसे जल का साम्राज्य छा जाता है जो जीवन के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य है । जल से ताल-तलैया भर जाती है और हिलोर लेने लगती है, तो घास की हरी चादर चारों दिशाओं में छा जाती है, मोर शोर करने लगते हैं, ऐसा मनोहर दृश्य आँखों को और हृदय को आनंदित करने वाला होता है । 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में वर्षाऋतु का वैभव देखिए -

''ताल-तलैया भरे चहुँ ओर
झकारे हिलोर में डोलै हिया,
दूब की चादर फैली दिगंत लौ
मोर को शोर मरोरै जिया

आ रही काजर आँजे निशा
पुतली में घिरी सावनी री,
आज की साँझ सलौनी बड़ी मन भावनी री ।''(१३२)

'सुमन' जी की कविताओं में प्रकृति-चित्रण का ऐश्वर्य प्रभावात्मक एवं भावनामय रूप में बिखरा पड़ा है । 'सुमन' जी ने सागर, रात्रि, सूरज, ऊषा, संध्या, पर्वत, नदी आदि सभी प्राकृतिक तत्वों को अपनी कविताओं में स्थान दिया है तो वर्षाऋतु, वसंत ऋतु, शरद ऋतु, पतझड़ की ऋतु आदि का भी मनोहारी चित्रण किया है । वे मनुष्य जीवन एवं सृष्टि के लिए प्रकृति को आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण मानते है, उन्होंने प्रकृति को सहचरी बनाकर प्रकृति का मानवीकरण सफलतापूर्वक किया है । 'सुमन' जी मूलतः हमें अपने अह्म, अभिमान और मन की ए वं हृदय की कलुषता छोडकर आधुनिकता की चकाचौंध भूलाकर सहज एवं मौलिक भाव से प्रकृति बीच जाकर प्राकृतिक बनकर उसका सच्चा आनंद लूटने का वे संदेश देते हैं ।

७.२.११ सौंदर्य-बोध

जीवन में सौंदर्य का अत्यधिक महत्त्व है, इस कारण से सौंदर्यशास्त्र का भी आविर्भाव हुआ । सौंदर्यशास्त्र हिन्दी में 'ऐस्थेटिक्स का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ है । 'ऐस्थेटिक्स' का शाब्दिक अर्थ है - ''ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन ।'' किन्तु बाद में 'ऐस्थेटिक्स' उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौंदर्य-भावना के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है ।''[१३३]

हिन्दी कविता में छायावाद में सौंदर्यबोध का सही आविर्भाव हुआ । द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता से दबी हुई कविता को सौन्दर्यानुभूति की पहचान छायावाद में मिली । 'सुमन' जी की कविताओं में सौंदर्यचेतना मुख्यरूप से तीन रूपों में मिलती है एक सामाजिक सौंदर्य जिसमें प्रगतिवादी पुर है, दूसरी दैहिक सौन्दर्य और तीसरी भावनात्मक सौन्दर्य । सामाजिक विषमताओं के मध्य भी कवि 'सुमन' जी सामाजिक सौन्दर्य का चित्रण करते हैं ऐसी प्रेरणा कवि को प्रगतिवादी काव्य दर्शन से मिली है । समाज के निम्नवर्ग का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में जो सौंदर्य-बोध सुलभ होता है वह कल्पना से मण्डित बनावटी चटकीले रंग रूपों में नहीं होता । कवि 'सुमन' जी का सामाजिक सौन्दर्य देखिए -

''देखो वे नंगे भिखमंगे आए हैं नूतन वेष लिए
अब तक की जर्जर जगति में नवयुग का नव-संदेश लिए
आओ, उट्ठो, देरी न करो उनका स्वागत करना होगा
सुख शांति-स्नेह समभावों से जग का अंचल भरना होगा ।''[१३४]

प्रगतिवाद में जीवन का कोई भी पक्ष सौंदर्य से अछूता नही रहा । भूखे मानव का चित्र आँकने में भी सौंदर्य-बोध काम करता है । जो यथार्थ पर आधारित है और कवि 'सुमन' जी की दृष्टि में यही सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम का सौंदर्य है कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''उससे भी भीषण जब मानव
व्याकुल भूख-भूख चिल्लाता
अपने ही बच्चे की रोटी छीन
उदर की ज्वाल बुझाता
बच्चा बेबस रोता रोता
भूखा तड़प तड़प मर जाता
हाय नहीं यह देखा जाता ।''[१३५]

सौंदर्यबोध हमेशा व्यापक सौंदर्यानुभूति होती है । सौंदर्य ऐसी सुखद अनुभूति है जो वस्तुओं, रंगों, रेखाओं आदि की विशेष सामंजस्यपूर्ण स्थिति में अनायास उत्पन्न होती है । नारी सौन्दर्य के प्रति छायावादी कवियों का अधिक लगाव था । सौंदर्य-चेतना की दृष्टि से छायावादी कवियों की तरह ही 'सुमन' जी जी भी स्थूल सौंदर्य और सूक्ष्म सौंदर्य के मध्य दोलायमान रहे हैं । उनकी रचनाओं में स्थूल, दैहिक, सौंदर्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं जैसे -

''मदभरी छलकती आँखों में छिप सका कभी यौवन चंचल ?
इतना सम्हालने पर भी तो गिर-गिर ही जाता था अंचला ।''[१३६]

'पर आँखें नहीं भरी', 'पापिन आँखें', 'अड़चन' आदि कविताओं में स्थूल दैहिक सौंदर्य को देखा जा सकता है । 'सुमन' जी की कविताओं में सूक्ष्म सौंदर्य भी यत्र-तत्र दिखाई देता है । परवर्ती रचनाओं में 'सुमन' जी की जीवन सौंदर्य बोध व्यापक हुआ है । नारी के सूक्ष्म सौंदर्य को 'पर आँखे नहीं भरी' और 'विन्ध्य-हिमालय' में मुख्य

स्थान मिला है । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि का सौंदर्य-बोध कितना सूक्ष्म और उच्चस्तरीय है, देखिए -

''नील नभ से स्निग्ध निर्मल केश गूँथे जा रहे होंगे सँवार-सँवार,
पिस रही मेहँदी, महवर रच रहा, तारिकावलि-चद्रिका की हो
रही होगी सहेज 'सँभार''[१३७]

नैसर्गिक या प्राकृतिक सौंदर्य का विकास भावनात्मक सौंदर्य के रूप में होता है । 'सुमन' जी की सौंदर्य-चेतना प्राकृतिक है । कवि की सौंदर्याभिमुखता की पूर्ति के द्वारा ही होती है । 'गौरय्या', 'तितलीह, 'चेरापूँजी' आदि कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य देखा जा सकता है । 'विन्ध्या का सोता', 'शरदपूर्णिमा', 'आसो आम बहुत बौराए', 'आ गया वसन्त' आदि कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य का विकसित रूप भावनात्मक सौंदर्य दिखाई देता है, कवि के शब्दों में

''कल जो आई थी रात बड़ी ही सूनी-सूनी थी,
कल जो सोची थी बात बड़ी ही ऊनी-ऊनी थी ।
कल साँसों का संसार बड़ा ही उजड़ा उजड़ा था ।''[१३८]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की कविताओं में सौंदर्य बोध बड़ी ही सहजता से और व्यापक रूप में देखने मिलता है । वे स्थूल एवं दैहिक सौंदर्यबोध से ऊपर उठकर सूक्ष्म और आत्मिक सौंदर्य-बोध की ओर जाते हुए विकसित रूप में दिखाई देते हैं, उसका उच्चत्तम रूप भावनात्मक एवं प्राकृतिक सौंदर्य-बोध में ही देखने लगता है वे एक सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाले कवि

होने के कारण सामाजिक यथार्थ वाले सौंदर्यबोध का यथार्थ चित्रण करने से चूकते नहीं । उनका सौंदर्य-बोध गहन भी है, गंभीर भी है साथ-साथ सहज भी है ऐसा हम कह सकते है ।

७.२.१२ हालावादी विचारपक्ष

व्यक्ति के जीवन में यौवनकाल बड़ा ही चंचल और मतवाला होता है । दिवानगी से मंडित यह काल उच्छृंखलित अवस्था का काल होता है । यौवन काल के उफान में कवि 'सुमन' जी पर हालावाद का प्रभाव पड़ा था । आधुनिक हिन्दी काव्य उमर खय्याम की रूबाईयों से अत्यधिक प्रभावित हुआ है । उमर खय्याम की रूबाईयाँ द्विवेदी युग में भी प्रचलित थी । लेकिन उसका मूलतत्त्व काव्य पर आच्छादित न हो सका, क्योंकि द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता एवं आदर्शवादिता के सम्मुख वह टिक न सका । धीरे-धीरे उमर खय्याम की रूबाइयों का अनुवाद होना प्रारम्भ हो गया । छायावादी कविताओं पर उमर खय्याम का प्रभाव दिखाई देता है । महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री होने के बावजूद भी खय्याम और फारसी के प्रभाव से पृथक न रह सकी । उन्होंने भी अपने प्रियतम को प्याला, हाला, साकी एवं मधुशाला के रूप में स्मरण किया है, उनके ही शब्दों में -

"तेरा अधर-विचुम्बित प्याला
तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी ।
देते हो मधुमय विषमय क्या ।"[१३९]

उमर ख़य्याम के हालावाद का प्रभाव छायावादी काल और प्रगतिवादी काल के बीच के अल्पकालिक समय में ही रहा था । 'बच्चन' उमर खय्याम के हालावाद से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं । उन्होंने इसलिए हालावाद के सम्बन्ध में लिखा है कि ''खय्याम की दुनिया की रंगीनी ने मुझे इतना मोह लिया कि अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी मुझे सबसे उपयुक्त प्रतीक वे ही जान पड़े, जिनकी ओर खय्याम ने संकेत किया था – हाला, प्याला, मधुशाला और मधुबाला ।''[१४०]

कवि 'सुमन' जी की हालावादी चेतना 'हिल्लोल' काव्य संग्रह में प्रकट होती है । 'आज तो मुझमें जवानी' और 'हम बड़े विकट मतवाले हैं' में कवि का यह स्वर अधिक मुखर है । हालावाद की व्युत्पत्ति का मूल कारण संसार के दारूण दु:ख एवं अतृप्त इच्छाएँ ही हैं । इस संसार में समस्त इच्छाओं की पूर्ति असम्भव है । कवि अपनी अतृप्त इच्छाओं की तृप्ति का मार्ग खोजने का प्रयत्न करता है । लेकिन उसे सर्वत्र निराशा का ही आलिंगन करना पड़ता है । विश्व के दारूण दु:खों से मुक्ति पाने के लिए वह मधुपान करना प्रारम्भ कर देता है जिससे उसके नशे में मदमस्त हो संसारिक व्याधियों, अभावों, समस्याओं, दु:खों एवं निराशा से कुछ क्षण के लिए ही सही स्वयं को मुक्त कर सके । यौवन के वेग में कवि की दबी और रूद्ध हुई अभिलाषाएँ तथा वासनाएँ निर्झर के स्रोत की भाँति फूट पड़ती है, कवि 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में हालावादी दर्शन देखिए –

'' आज दो लोचन किसी के दे रहे मुझको निमन्त्रण,
आज यौवन पर, हृदय पर है कठिन करना नियन्त्रण ।
आज सारा तर्क भूला, आज सारा ज्ञान पानी, आज तो मुझमें जवानी ।
आज तो इतनी पिए हूँ डगमगाते पाँव मेरे हर डगर पर, हर कदम पर
बिछ गए हैं, भाव मेरे एक मै हूँ, दूसरी तुम,
तीसरी आशा दीवानी, आज तो मुझमें जवानी ।''[१४१]

हालावादी कवियों के सुर में सुर मिलाते हुए कवि 'सुमन' जी कहते हैं, कि - 'हम बड़े विकट मतवाले हैं । हाला ही उनके जीवन में नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना एवं नवीन उल्लास का संचार करती है । वे किसी भी मूल्य पर संसार का पूर्ण बहिष्कार करने की कामना नहीं करते । साकी और प्याले के बल पर ही कवि आगे बढ़ना चाहता है । मौज-मस्ती भरे गीत गाते हुए वह दुनियादारी की समीक्षा करता है, 'सुमन' जी के शब्दों में

''हम मौज भरे गाने गाते दो दिन इठलाते, इतराते,
अपनी नन्हीं मधुशाला में इस पथ आते, उस पथ जाते
हम किसका - किसका साथ करें सब पी चल देनेवाले हैं,
हम बड़े विकट मतवाले हैं ।''[१४२]

हालावादी विचारधारा दुनिया के दारूण दुःखों को विस्मृत करने के लिए ही अस्तित्व में आयी थी । यह विचारधारा परिस्थिति जन्य थी या तो केवल समसामयिक परिवेश से ही प्रभावित थी जिसका

प्रभाव लगभग सभी कवियों पर पड़ा था । 'सुमन' जी पर भी हालावाद का प्रभाव पड़ा है किन्तु हालावादी स्वर केवल 'हिल्लोल' की कविताओं में ही दिखाई देता है, उनसे परवर्ती ऐसी 'जीवन के गान' में समाज सापेक्ष और हालावाद से विपरीत विचारधारा प्रगतिवाद के दर्शन होते हैं ।

७.२.१३ गांधीवादी विचार-पक्ष

भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति 'सुमन' जी की अटूट श्रद्धा थी गांधीजी से 'सुमन' जी अत्यधिक प्रभावित थे । गांधी जी ने जिस आर्थिक व्यवस्था का प्रदान किया उसका नाम है 'सर्वोदय' और कार्ल मार्क्स की दी हुई अर्थव्यवस्था का नाम है 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' या 'साम्यवाद' । गांधी और कार्ल मार्क्स में स्वराज्य और आर्थिक समानता के सिद्धान्तों के चलते काफी समानता है । अन्तर केवल सिद्धान्तो के व्यावहारीकरण में हैं । मार्क्स के सिद्धान्तों में व्यावहारीकरण के लिए हिंसा और क्रांति को स्थान मिला है, किन्तु गांधी जी के द्वारा प्रदत्त सिद्धान्तों के व्यवहारीकरण में सत्य एवं अहिंसा ही है, वहाँ हिंसा को कोई स्थान नहीं है । 'सुमन' जी एक ओर मार्क्स के साम्यवाद का समर्थन करते हैं तो दूसरी ओर गांधी जी की अहिंसा के प्रति भी श्रद्धा रखते दिखाई देते हैं । उनकी दृष्टि में, कर्त्तव्य-चेतना से जागृत होकर अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए यदि हिंसा का भी सहारा लेना पड़े तो वह अहिंसा ही है, कवि 'सुमन' जी के शब्दों में -

''कौन कह रहा हमको अहिंसक
आपत् धर्म हमारा,
भूखों नंगों को न सिखाओ
शांति शांति का नारा ।
कायर की-सी मौत जगत में
सबसे गर्हित हिंसा
जीने का अधिकार जगत में
सबसे बड़ी अहिंसा ।''[१४३]

गांधी जी ने सर्वोदय की भावना से ही प्रेरित होकर राम राज्य की कल्पना की थी । वे ऐसा संगठन चाहते थे जो समाज पर आधृत हो । उनकी कल्पना का आदर्श समाज तो राज्य विहीन प्रजातंत्र है, जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसियों के हितों में बाधा न डाले और अपना शासन स्वयं बनाए । गांधी जी के अहिंसात्मक समाज में सरकार रह सहती है, किन्तु इस शर्त के साथ कि इसके शासक अहिंसा में विश्वास करने वाले हो, जनता के सेवक हो और जनता से सहयोग लेते हुए समाज की हर समस्या का समाधान करें । गाँवों का देश होने के कारण 'रामराज्य' की स्थापना का प्रयत्न गाँव से ही शुरू होना चाहिए । गांधी जी की मृत्यु के बाद उनके सपनों का भारत नहीं बन सका, इस कारण कवि शर्मिन्दा है, वह प्रायश्चित भरे शब्दों में कहते हैं कि रामराज्य में हमारा असीम विश्वास है -

"बापू
हम बहुत शरमिंदा है
तुम्हारे सपनों का
भारत न बना पाए ।
तुमने कहा
प्रजातंत्र ऊपर से लादो मत
फूटने दो नई फसल
धरती की कोख से,
भारत के ग्रामों को
पहले उजागर करो
दिल्ली जगमगाने दो
उसकी ज्योत से ।"[१४४]

गांधी जी सत्य एवं अहिसा के कड़े समर्थक थे । जीवन और समाज के कोई भी क्षेत्र में सत्य और अहिंसा का पक्ष ही यथार्थ है । वैयक्तिक साधना से हटकर सामुहिक साधना पर गांधीजी की सत्य एवं अहिंसा की विचारधारा है । कवि 'सुमन' जी उनके इन सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए उसे समाज में स्थापित करवाने की प्रतिज्ञा करते है, उनके शब्दों में -

"तो बापू हम निर्द्वंद्व तुम्हारे आदर्शों की छाया में
यह दीपक सत्य-अहिंसा का पलभर न कभी बुझने देंगे
विश्वास-प्रेम की वेदी पर झण्डा न कभी झुकने देंगे,
जब तलक रक्त की एक बूँद भी शेष हमारी काया में ।"[१४५]

'सुमन' जी की कविता में गांधी जी के स्वराज्य, ग्रामोद्धार, सर्वोदय और सत्य-प्रेम एवं अहिंसा की विचारधारा का समर्थन एवं चित्रण मिलता है । 'सुमन' जी समाज को और भारत को गांधीवादी विचारधारा के आदर्श रूप में अपना कर गांधी के स्वप्नों की साकारित करना चाहते हैं ।

७.२.१४ मानवतावादी विचार-पक्ष

जनहितकारी स्वरूप ही मानवतावाद हैं, जो चिन्तन विशिष्ट दर्शन नहीं हैं । वह सामान्य दार्शनिक मन:स्थिति का द्योतक है । निश्चय ही मानवतावाद आदर्शवादी चिन्तन पद्धति है लेकिन उसका स्वरूप और प्रकार अनुभव गम्य तथा स्वच्छन्द दर्शन होने के कारण न रूढ़ है न जड़ । उसमें जीवन का स्पंदन है और व्यष्टि-समष्टि का एकात्मकभाव । मैथिलीशरण गुप्त और 'निराला' दोनों ने ईश्वरत्व में नरत्त्व का आरोप कर विश्वमानवता की कल्पना की थी । इसी परम्परा में शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी का नाम भी लिया जा सकता है । निम्न मज़दूर वर्गो 'निराला' की तरह ही 'सुमन' जी के भी काव्य को विषय है । मैथिलीशरण गुप्त की तरह 'सुमन' जी भी सामान्य मनुष्य को ही महत्व देते हैं ।

प्रगतिवादी काव्य की विचारधारा पुनर्जन्म, अवतारवाद, भाग्य, ईश्वरवाद के प्रति अनास्था प्रकट करनेवाली विचारधारा है । प्रगतिवाद में अवतारवाद को स्थान नहीं मिला । राम और कृष्ण अब ईश्वर के रूप में मानव के आदर्श नहीं रहे । यदि कहीं उनका चित्रण भी हुआ तो निम्नवर्ग के प्रतिनिधि के रूप में । 'निराला' के आदर्श 'राम की शक्तिपूजा' के राम है, जो सामान्य व्यक्ति की तरह दु:ख-सुख भोगते हैं । उनके

साथ निम्न मज़दूर वर्ग के समूह की प्रतीक वानरी सेना है, जो शोषित है । रावण शोषक वर्ग का प्रतीक है । 'सुमन' जी ने राम-रावण की कथा को इसी रूप में हमारे सम्मुख रखा है । शोषक वर्ग के प्रतीक रावण के मरते ही दलितों की प्रतीक राम-सेना में खुशी की लहर दौड़ जाती है -

''बहुत दिन बाद दलितों की हँसी की आज पारी थी
कि फिर से मुक्त था मानव कि फिर से मुक्तनारी थी
बँधी मुट्ठी दिखा जन-टोलियाँ जय-गान गाती थी
कि नव-निर्माण के मंगल में भी जंगल मनाती थी ।''[१४६]

पद दलित मनुष्यों के प्रति 'सुमन' जी की संवेदनशीलता उनके मानवतावादी विचार-पक्ष का एक अंग है । पद-दलितों की पीड़ा को, उनके दु:खों को, उनकी परवशता को, उनके हाहाकारों को कोई भी देखता नहीं था, उनके प्रति समाज का निष्ठुर व्यवहार था उनको देख 'सुमन' जी दु:खी और खिन्न थे, उन लोगों के प्रति भात्रुभाव रखने लगते थे, वे 'सुमन' जी की हम-जोली है । ऐसी भावना से जुड़े हुए थे । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''पर मैंने कल पथ पर देखी पद-दलित मानवों की टोली
थी जिनकी आह कराहों में मेरी परवशता की बोली
उनकी भी हाहाकारों पर देता था कोई ध्यान नहीं
अपने सूखे जर्जर तन में लगते थे मेरे हम-जोली ।''[१४७]

'सुमन' जी भूखे, नंगे, प्यासे, पद दलित, शोषित आम मनुष्य के प्रति संवेदनशील है । मानव के प्रति उनकी भावना और संवेदनशीलता में उनके मानवतावादी चिन्तन के दर्शन होते हैं, वे सर्वप्रथम मनुष्य को ही महत्त्व देना चाहते हैं, जब मनुष्यों की दूर्दशा देखते हैं तो उनका मानवतावादी ह्दय उसे सहन नहीं कर पाता और वे कह उठते है -

''दाने दाने को तरस गई अगणित आँखें दो बूँद दूध के लिए ललक
हिचकी लेकर शिशु हुए मौन, माताओं की छाती विदीर्ण,
अवरूद्ध कंठ, रह गई कलरव ।
वे-बरसे बिखर गए कितनी साधों के धन
कृमि-कीट सदृश फुट-पाथों पर
मनु की प्यारी संतान मिट गई बिलख बिलख ।''[१४८]

'सुमन' जी दीन-दुखियों की आवाज़ सुनते हैं, दीन-दुखियों के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं और उनके लिए तथा मानवता के लिए मधुस्मृतियों का, अपने सुख का या अपने सर्वस्व का त्याग भी कर सकते हैं, 'सुमन' जी के शब्दों में मानवता का सम्मान देखिए -

''जब कभी सुनोगी, दीनो-दुखियों का मैनें सम्मान किया
मधुस्मृतियों को मानवता की बलिवेदी पर बलिदान किया
सन्तोष न क्या, तुमको होगा ?''[१४९]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी एक प्रगतिवादी कवि होने के कारण मानवतावादी एवं संवेदनशील होंगे ही । 'सुमन' जी का प्रगतिवादी

कवि हृदय कभी भी शोषण को और मनुष्य एवं मानवता के अवमूल्यन को सहन नहीं कर सकेगा । 'सुमन' जी का मानवतावादी विचार-पक्ष न केवल व्यक्ति तक सीमित है, बल्कि समष्टि तक उनका विस्तार है, वे विश्वमानवता की ओर प्रगति करने वाले विश्वमानवतावादी कवि हैं ।

७.२.१५ राजनैतिक विचार-पक्ष

समाज की सुख, शांति और सुव्यवस्था के लिए आवश्यक हैं कि समाज में भय, भूख और भ्रष्टाचार मुक्त वातावरण हो और ऐसी सुव्यवस्था स्थापित हो जिससे समाज में समानता स्थापित हो; यह कार्य राजनीति का है । देश की राजनीति निष्पक्ष, भय रहित होनी चाहिए । भ्रष्टाचार मुक्त शासन प्रणाली ही समाज में सुख-शांति स्थापित कर सकती है इसके लिए आवश्यक है देश में जनतंत्र सुदृढ़ हो उसके लिए आवश्यक हैं कि देश की राजनीति सर्वजनहितकारी और सर्वजन सुलभ हो । सर्वजनहिताय राजनीति देश को विकसित कर सकती है । देश के नेतागण आम आदमी के सेवक हो न कि शासक । जनतांत्रिक प्रणाली में शासन की बजाय सेवा का ही आग्रह रखा जाता है । सत्ताधारी स्वार्थ रहित हो, यह देश की स्वस्थ राजनीति के लिए आवश्यक है । जब सत्ताधारी स्वार्थ रहित न होकर शोषक हो तो कैसा भयंकर परिणाम आता है, वह 'सुमन' जी की इन पंक्तियों में देखिए -

''इस ओर असंख्य अभावों की
टोली थी दल बल साज रही
उस ओर स्वार्थ सत्ताधारी

सबलों पर भीषण गाज ढही
पर तुम न अपने अभिसारों में
गिनते थे तारों की पलकें
चुल्लुभर पानी में मरते
थी लोकलाज भी शेष नहीं ।"[१५०]

वर्तमान समय में राजनीति का खस्ताहाल है । राजनैतिक पार्टियाँ और नेता केवल स्वार्थ लिप्सित हैं । इस कारण से देश की जनता दीन, हीन, लाचार बन कर दुःखी हैं । यदि जनता की अपनी और सच्ची सरकार होती तो ऐसा बुरा हाल न होता । सरकार आम आदमी की पीड़ा को समझने वाली, मज़दूरों के हितों का रक्षण करने वाली, मज़लूमों की पक्षधर होनी चाहिए । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

"हन्त, हमारे ही भाई थे दीन, हीन, लाचार
यों सड़कों पर सड़ते होती यदि अपनी सरकार
हाँ अपनी सरकार देश की जनता की सरकार
मज़दूरों की मज़लूमों की भूखों की सरकार ।"[१५१]

धार्मिक एवं सांप्रदायिक झगड़े करवाकर नेतागण, अपनी सत्ता की रोटियाँ सेंकते हैं यह गलत है । इसी भ्रष्ट राजनीति का परिणाम स्वतंत्रता पूर्व बँटवारें की भीषण समस्या में आया था । देश में लोग सांप्रदायिक आग में जुलस रहे थे और स्वार्थी नेता इस आग में घी डालने का काम कर रहे थे । घर में ही फूट डालने वाले नेता ही पंच बनकर बैठे थे यह देश की राजनीति की करूणता थी, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''दूर बैठकर ताप रहा है, आग लगाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला ।
भाई की गर्दन पर भाई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है पुरखों के घर का बँटवारा ।

पंच बना बैठा है घर में, फूट डालने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला ।''[१५२]

इस प्रकार 'सुमन' जी देश की राजनीति आम आदमी की पक्षघर हो, धर्मनिरपेक्ष हो, भ्रष्टाचार मुक्त हो, ऐसा मानते हैं । देश की राजनीति में पवित्रता एवं सेवा की भावना आनी चाहिए तभी ही देश विकास एवं सच्ची प्रगति करेगा ।

७.२.१६ साहित्यिक विचार-पक्ष

साहित्य समाज के हित के लिए होता है । जो समाज का हित करे ऐसा लेखन हो उसे साहित्य कहा जा सकता है । साहित्य में 'कला, कला के लिए ही है' ऐसा सिद्धांत अपनाकर साहित्य के सच्चे उद्देश्य को भूलाया गया । कला केवल कोरे मानसिक आनंद के लिए नहीं हो सकती । कला का कोई निश्चित उद्देश्य होता है । प्रगतिवादी विचारों से यह सिद्धांत बदल गया और उसी साहित्य को सर्वश्रेष्ठ माना गया जो यथार्थ का चित्रण करके पद दलितों की वाणी के मुखर बनाए । इससे 'कला जीवन के लिए' का सिद्धांत अति लोकप्रिय हुआ । कला केवल आनंद के लिए कैसे हो सकती है । उसका संबंध तो जीवन से होना ही

चाहिए । कवि 'सुमन' जी विभीषिका में 'कला कला के लिए' ही हैं ऐसी माला जपने वालों को प्रताड़ित करते हुए लिखते है कि -

"इस विभीषिका पर संज्ञागत जपता कला कला' की माला
तो धि् धिक् मानव-तन मेरा निष्फल दग्ध हृदय की ज्वाला ।"[१५३]

जिसका इस शोषणयुक्त व्यवस्था वाले समाज में कोई नहीं होता ऐसे इस शोषणयुक्त व्यवस्था वाले समाज में कोई नहीं होता ऐसे अनाथों एवं पददलितों की वाणी बनकर उसे अपनाकर उसे अभिव्यक्ति दे वही सच्चा साहित्यिक उद्देश्य है, कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

"जिनका कोई नहीं, उन्हें कवि की वाणी बढ़कर अपनाए
एक आन थी, एक लाज थी आग तुम्हारी व्यर्थ न जाए ।"[१५४]

कवि कविता रचता है तो वह उनके हृदय की वाणी की अभिव्यक्ति होती है, उनके हृदयगत भावों का प्रस्तुतीकरण ही होता है । कवि-हृदय में व्याप्त पीड़ा एवं दर्द की अभिव्यक्ति होती है, कविता का इतिहास कैसा ? यह तो पीड़ा का इतिहास बताने वाली होती है । कवि 'सुमन' जी के शब्द -

"जब वीणा के स्वर मंद हुए तब रास-रंग सब बंद हुए
जब हमने रोना सीख लिया जग बोला ये तो छंद हुए
कविता कैसी ? हम पीड़ा का इतिहास बताने वाले है,
हम बड़ विकट मतवाले हैं ।"[१५५]

कवि हृदय मे निहित जो व्यथा है, जो पीड़ा है कविता उसकी ही एक कथा है, कवि छन्दों में रो-गाकर क्षणभर सुख पा लेते है, अपने सूनेपन में वे कविता की अभिव्यक्ति से ही अपना मन बहलाते जाते हैं । कवि 'सुमन' जी के शब्दों में -

''मेरे उर में जो निहित व्याथा
कविता तो उसकी एक कथा
छन्दों में रो-गाकर ही मैं,
क्षण-भर को कुछ सुख पा जाता
मैं सूने में मन बहलाता ।''[१५६]

कवि जो भी कुछ लिखता है उसमें कल्पना होती है परंतु वह कल्पना कोरी कल्पना न होकर कवि जीवन का अनुभूत सत्य होती है । कवि को कहाँ से काव्य लेखन की प्रेरणा मिल जाए यह कहना कठिन है । कवि की जिसके प्रति हृदयगत भावनाएँ हो वही से उन्हें काव्य लेखन की प्रेरणा मिल जाती है, 'सुमन' जी को काव्य लेखन की प्रेरणा कैसे मिली इसका बयान वे इन पंक्तियों में करते है -

''याद नहीं कब मिली प्रेरणा कब अनबूझ पहेली बूझी,
यह भी याद नहीं कब सहसा मुझको कवि बनने की सूझी,
इतना याद कि दो नयनों को देख हो उठा था मन उन्मन अनायास ही
एक दिवस सूने में हृदय उठा गुन-गुन ।''[१५७]

आदि कवि वाल्मिकी ने शिकारी द्वारा क्रौंच पक्षी के जोड़े की हत्या देख उनका हृदय व्यथित हो गया उसमें से भावनाओं के रूप में काव्यपंक्तियाँ निकली, और 'रामायण' की रचना हुई । ऐसे ही मनुष्यों की, पददलितों की, व्यथा-पीड़ा और दर्द को देखकर कवि की वाणी भावना बनकर काव्यपंक्तियों के रूप में उमड़ पडती है । मनुष्यों के जर्जर कंकाल देखकर कौन से कवि के मुख से काव्य निस्रुत नहीं होगा ? कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''सोचता हूँ आदि कवि क्या दे गए हैं हमें थानी
क्रोंचिनी की वेदना से फट गई थी हाय छाती
जब कि पक्षी की व्यथा से आदि कवि का व्यथित अंतर
प्रेरणा कैसे न दे कवि को मनुज-कंकाल जर्जर ।'[१५८]

जो कवि केवल कल्पना लोक में ही विचरण करते हैं बातें ऊँची-ऊँची करते हैं और केवल स्वार्थलिप्सित हो जाते हैं ऐसे कवि सचमुच ही अपने आपको धोखा तो देते ही हैं, लेकिन साथ साथ संसार और साहित्य को भी धोखा देते हैं, उनका संयम अधुरा है, उनका काव्यत्त्व भी अधूरा है, कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''कल्पनालोक में उड़ता है, बातें भी ऊँची करता है
नाहक मत धोखा दे जग को अन्तर में लेकर स्वार्थ विषम
कवि, अभी अधूरा ही संयम !''[१५९]

'सुमन' जी कवियों को नैराश्य छोड़कर अपने सच्चे कवि कर्म में रत हो जाने का संदेश देते हैं, वे निज वैराग्य को बदलकर सच्चे काव्य भावो की अभिव्यक्ति का संदेश इन शब्दों में देते हैं -

''मत विहाग मुझे सुनाओ, आज भैरव राग गाओ
कर रहा है कवि बदल दो आज निज नैराश्य भाषा
आज कवि कैसी निराशा ।''[१६०]

विश्व में निहित कलुषता और संकट को बचाने का कार्य एक कवि का ही होता है, 'सुमन' जी कवि को संसार को संकटों से बचाकर संसार की कलुषता का संकटरूपी हला-हल पी लेने का संदेश देते हुए कहते है -

''विश्व का संकट बचाओ विश्व को अमृत पिलाओ
भस्म कर देगी नहीं तो आज भीषण ज्वाल जल-जल
आज कवि पीलो हला-हल ।''[१६१]

यदि संसार की कलुषता का संकट झेल गए और संसार की कलुषतारूपी हला-हल पी गए तो उस कवि के गीत संसार गाएगा और वह कवि अमर बन जाएगा । वह नीलकंठ कहलायेगा और मनुष्य उनके गीत गाएँगे, कवि 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''यदि हलाहल पी सकोगे नीलकंठ तुम्हीं बनोगे
और मानव गा सकेगा फिर तुम्हारे गीत पल-पल
आज कवि पीलो हलाहल ।''[१६२]

कवि को यथार्थ का चित्रण ही करना चाहिए । जो सांसारिक सत्य है, उसकी अभिव्यक्ति ही उन्हें करनी चाहिए । गरीबों के रक्त से धन सम्पत्ति अर्जित करनेवालों का पर्दाफाश उन्हें करना है, कवि को ऐसी कड़वी किन्तु सत्य बात कहने में हिचकना नहीं चाहिए । गरीबों के जीवन में अँधेरा क्यों ? वहाँ कभी उजाला क्यों नहीं होता, उसकी तह तक जालर जिम्मेदारों का पर्दाफाश करना ही कवि कर्म है, कवि 'सुमन' जी के शब्दों में

''देख महलों की ऊँचाई रक्त से किसने रचाई
विश्व तुझसे चाहता है जानना इसकी सच्चाई
स्वर्ण सौधों का ऊँजेरा दीन कुटियां का अन्धेरा
है जहाँ निशि व्याज कबसे पर नहीं होता सवेरा
ज्योति बन तू जल यहाँ कवि ।''[१६३]

कवि 'सुमन' जी ने हिन्दी साहित्य जगत और अन्य साहित्यकारों के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट कर, उन्हें याद करके उनको उचित सम्मान दिया है । राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की स्वर्णजयन्ती के अवसर पर 'कवि सुमन' गुप्त जी के प्रति इस प्रकार सम्मान की भावना प्रकट करते हैं -

''ओ कवि, ओ गायक, ओ साधक, ओ स्वर-सत्ताधारी,
ओ सरस्वती के मंदिर के अविचल, अचल, पुजारी,
आज तुम्हारे स्नेह-कणों से आर्द्रित हो प्लावित हो,
हरी-भरी, फल-फूल रही है काव्यकला-फुलवारी ।''[१६४]

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर को आर्य-संस्कृति के प्रतीक बताकर उसको युग के संचित ज्ञानकोश के रूप में 'सुमन' जी सम्मान देते हैं, 'सुमन' जी के शब्दों में कवि गुरू के प्रति सम्मान देखिए -

''आर्य-संस्कृति के प्रतीक तुम युग के संचित ज्ञान
भागीरथ की अमर तपस्या गौतम के निर्वाण
वीणा-वादिनि की स्वर-लहरी वाल्मीकि के छन्द
उदित अमानिशि में भारत की तुम राका के चन्द ।''[१६५]

०८ अक्टूबर सन् १९४५ ई. के दिन प्रेमचन्द जी की जन्म जयन्ती है । प्रेमचन्द ऐसे कथाकार है कि जिन्होंने युग के विषम बोल को अभिव्यक्ति दी, उनको कथा साहित्य से नवक्रान्ति का संचार जगत में हुआ था, ऐसे प्रगतिवादी कथाकार प्रेमचन्दजी के प्रति 'सुमन' जी के ये शब्द देखिए -

''गौरव-गिरा-ज्ञान तुम देश अभिमान
चिर-मूक के गान, जन-जन हृदय-हार
मेरे कथाकार, मेरे कथाकार ।
युग के विषम बोल तुमने दिए खोल
अग-जग उठा डोल, नव-क्रान्ति का संचार
मेरे कथाकार, मेरे कथाकार ।''[१६६]

युगान्तकारी कवि निराला की वाणी शोषितो के प्रति सहृदयी एवं शोषकों के प्रति अंगारे बरसाने वाली वाणी है, उन्होंने युग-युग के

कल्मष को अपने प्रगतिवादी काव्यों से धोने का महान कार्य किया था । निराला के प्रति कवि 'सुमन' जी की सम्मानपूर्ण भावना इन पंक्तियों में देखिए -

''हे चिर-विदग्ध ! शैशव से ही, कुछ मूक चिताओं के सिंगार
लेकर, तुम दहके बन अंगार निर्धूम प्रज्जवलित वह्नि वेष
अपनी ही सीमा में अशेष करने को आतुर नामशेष
युग-युग के कल्मष अनाचार । तुम प्रखरचण्ड मार्तण्ड
तुम्हारे उस्र उस्र में नई दृष्टि ताण्डव का मुक्तोन्माद प्रथम
फिर उथल-पुथल फिर प्रलय वृष्टि हो नष्ट-भ्रष्ट जग जीर्ण-शीर्ण
फिर नई भूमि, फिर नई सृष्टि
तुम नव द्रष्टा, विस्फारित नयनों के आगे
आश्वस्त अभयजीवन-प्रसार ।''[१६७]

ऐसे महाप्राण निराला के महाप्रयाण पर साहित्यजगत पर वज्रपात हुआ और साहित्य संसार सुना हो गया । जब वे जीवित थे तो उन्हें सुनने को जी करता था, वे चले गए तो उन्हें सदा ही गुन-गुनाने का जी करता है । उनका रचनासंसार ही ऐसा क्रांतिकारी था कि उन्हें कोई भूला नहीं सकेगा । 'सुमन' जी के शब्दों में महाप्राण निराला को श्रद्धांजलि देखिए -

''तुम जीवित थे तो सुनने को जी करता था
तुम चले गये तो गुनने को जी करता है
तुम सिमटे थे तो सहमी-सहमी साँसे थी
तुम बिखर गये तो चुनने को जी करता है ।''[१६८]

राष्ट्रीय कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' भारतीय संस्कृति के सच्चे गायक ऐसे राष्ट्रवादी कवि थे । उनके साहित्य ने भारत के गौरव को और गौरवपूर्ण इतिहास को पूनर्जीवित किया था । वह हिन्दी भाषा के सितारे थे, उनके आकस्मिक निधन पर 'सुमन' जी की कलम से इस प्रकार के शब्द उनके सम्मान में निकल पड़े -

"अग्रज, अचानक ही अस्तभंग द्वाभा में पूंजीभूत पौरूष ज्वाल
उफन उठी रक्ताभ भाल तमिल भारती का अनुरंजित हो गया
हिंदी की बिंदी से ।

त्रासदी के तेवर में मनमोहिनी उरवशी के
खोज में विरम गया युग का पुरूखा ।"[१६९]

सुमित्रानन्द पन्त के जयंति उत्सव पर 'सुमन' जी ने उनके सम्मान में इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी थी, वे पंत को तपस्वी के रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -

"सारा जीवन वनवास, मौन, तप-साधन उर्मिला सिसकती
कहाँ सुमित्रानन्दन"[१७०]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य जगत के सितारे थे, आलोचना के क्षेत्र के क्रांतिकारी लेखक थे । उनके महाप्रयाण पर 'सुमन' जी हिन्दी साहित्य जगत पर वज्रपात हुआ है, ऐसी भावना इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं -

''इस नश्वर जग में देव ! तुम्हारी चिंतामणि की ज्योति अमर ।
है अमर अनामय संवेदन चर-अचर समन्वित प्रीति अमर ॥
क्षणभंगुर मर्त्यलोक में तुम अमरत्व रूप थे जन्मजात ।
साहित्यजगत पर वज्रपात ॥''[१७१]

कवि कुल-गुरू कालिदास की कीर्ति दिग-दिगन्त में व्याप्त है, उनकी जयंति पर 'सुमन' जी ने उनके सम्मान में भी कविता की रचना की थी । वे कवियों के कुल गुरू के पद पर अमर हैं, उनके सम्मान में 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''कविकुल-गुरू की कीर्ति कौमुदी भुवन-भुवन छाए ।
जो कविकुल-गुरू के स्नेहकलश में छलका
रति की तड़पन, अज के विलाप में झलका ।''[१७२]

'सुमन' जी ने इस तरह साहित्यकारों के प्रति सम्मान प्रकट करके, उनकी विशेषताओं को अभिव्यक्त तो किया ही है लेकिन साथ-साथ साहित्यजगत का भी सम्मान किया है । उनके साहित्यिक विचार-पा के विचार बिंदु निश्चय ही साहित्य जगत के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेंगें ।

७.२.१७ धार्मिक विचार-पक्ष

शास्त्रों में कहा गया है कि ''धारयति इति धर्मः'' । जीवन जीना सिखाए वही धर्म, जीवन को धारण करें वही धर्म है । धर्म मनुष्य जीवन में चेतना का संचार जगाता है, अस्मिता एवं आत्मगौरव जगाता

है । 'सुमन' जी प्रगतिवादी कवि हैं, फिर भी सच्चे धर्म के प्रति वे आस्था अवश्य रखते हैं । इसलिए वे सत्-चित्-ब्रह्मानन्द में श्रद्धा रखते है; वे कह उठते है कि ''मेरे लिए तो बस यही सत-चित-ब्रह्मानन्द हो, यह गति न मेरी बन्द हो ।''[१७३] यदि शिवत्त्व नहीं होता तो सृष्टि गंगा के प्रचण्ड वेग से बह जाती । सुर, नर और सृष्टि के जीव जिसे देख सिहर गए थे ऐसी गंगा की धारा थी लेकिन उन्हें शिव की जय का ही सहारा मिला था, कवि 'सुमन' जी के शब्दों में धार्मिक भावना -

''सृष्टि बहा देती यदि शंभु जटाओं का मिलता न सहारा
सुर, नर, जिसे देख सिहरे थे यहाँ वही गंगा की धारा ।''[१७४]

ऐसी धार्मिक भावना एवं भक्ति में कई लोग प्रभावित होकर उसमें लय हो के जीवन सफल कर गए । राधा भी उसमें से एक थी, मनमोहन के प्रति वह पूर्ण समर्पित होकर कृष्ण की आरती उतारती थी । 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''कभी प्रकाशित किए, गेह, पथ कभी जलाई दिव्य आरती,
निज मनमोहन की छवि, जिसकी आभा में राधा उतारती ।''[१७५]

प्रगतिवादी होने के कारण 'सुमन' जी धर्म को नवीनता और परिवर्तन का वाहक मानते हैं । इसके लिए वे राम के द्वारा पुरातन धनुष के भंग का उदाहरण देते हैं, वे पुरातनता को नाश करके नवीन परिवर्तनकारीता की भावना को ही सच्चा धर्म मानते हैं, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''धनुष को राम ने तोड़ा घने घनश्याम ने तोड़ा
नया निर्माण करना था पुराना तो पुराना था ।''[१७६]

धर्म, शोषकों, अत्याचारियों का नाश हो ऐसी आकांक्षा रखता है । रावण अत्याचारी, पूँजीवादीयों का प्रतीक था, उनकी लंका पूँजीवादी की प्रतीक थी जिन्हें रामने मारा और हनुमान ने उसकी लंका को जला दिया था । 'सुमन' जी के शब्दो में प्रगतिवादी धार्मिकता देखिए -

''चली क्या राम की सेना कि धरती डोल उठती थी अखंडित शक्ति का भण्डार अपना खोल उठती थी, धरा की लाडली की जब अभय आशीष पायी थी किसी हनुमान ने तब स्वर्ण की लंका जलायी थी ।''[१७७]

केवल पत्थर पूजने से सच्चा धार्मिक नहीं बना जा सकता । सच्चे आत्मसमर्पण की हृदय में पवित्र भावना ही सच्ची धार्मिक भावना है । दुनिया व्यर्थ में मूर्तियों से वरदान माँगती है । जो कुछ भी दे नहीं सकती केवल पूजन ले सकती है । ऐसी अतृप्ति देनेवाली धार्मिक भावना व्यर्थ है, 'सुमन' जी के शब्दों ने -

''कुछ और समझ बैठे तुम मेरे स्वर से, वरदान माँगती है दुनिया पत्थर से । जो दे न सके कुछ किन्तु ले सके पूजन, जिससे अतृप्ति का रहे सुरक्षित चिर धन ।''[१७८]

भगवान बुद्ध ऐसी महान चेतना थे कि जिन्होंने धार्मिकक्षेत्र में नवविचार और क्रांति का संचार किया था । उनका पवित्र स्थल गया है,

शीतल बौद्धि वृक्ष भी वहाँ ही है, उनको देखकर 'सुमन' जी जैसे पवित्र गंगा स्नान कर आए हो ऐसी उन्हें अनुभूति होती है, 'सुमन' जी के शब्द देखिए -

''आज बौद्ध गया देखा शीतल बौधि वृक्ष भी
विरल हो गया है जो घना रहा होगा कभी
पावन हो गया है मन तन जैसे गंगा स्नान कर आया हो ।''[१७९]

इस प्रकार 'सुमन' जी की धार्मिक भावना प्रगतिवादी और जीवन उद्धारक ऐसी आस्थावान धार्मिक भावना है । एक प्रगतिवादी होने के पश्चात भी सच्ची धार्मिकता को वे नकारते नहीं हैं । 'सुमन' जी की धार्मिक भावना क्रांति की वाहक, नवीनता सभर और जीवन विकसित करनेवाली भावना है और उस को वे सच्चाधर्म मानते हैं ।

७.२.१८ दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-पक्ष

कवि जीवन, मृत्यु और परम-चेतना के निकट आता है तब उनके स्वयं अनुभूति के विचार दर्शन का रूप धारण कर लेते हैं । कवि 'सुमन' जीवन का एक मात्र सत्य मृत्यु को ही मानते हैं, वे इस शरीर को नश्वर समझते हैं और शरीर में बसी आत्मा को ही अमर मानते हैं । एक जीवन यात्री के लिए बस इतना ही काफ़ी है कि कि वह जीवन यात्रा करते-करते मृत्यु को प्राप्त कर परम चैतन्य में मिल जाय वही अमरता है । यही एक मात्र सत्य हमारे जीवन का है, कवि सुमन के शब्दों में दार्शनिकता देखिए -

''एक राही के लिए पर्याप्त इतना ही,
राह चलते मृत्यु पा जाना अमरता है ।
चूर तन-मन पा गया यह सत्य जीवन का,
जर्जरित जितना, निकट मधुमास उतना ही ।''[१८०]

रहस्य का अर्थ है - छिपी हुई बात, अतः रहस्यवाद का अर्थ हुआ, वह वाद जिसका मूलाधार छिपा हुआ है, अज्ञात है विश्व का सबसे बड़ा रहस्य वह परमतत्त्व या परमेश्वर है, जिसने इस विश्व का निर्माण किया, जो परमेश्वर है । अनेक दार्शनिकों ने सतों, महन्तों ने उसे पा लेने, के प्रयत्न किये, उनमें से उस परम सत्य की प्राप्ति भी उन्हें हुई । 'सुमन' जी के काव्य में रहस्य वादी विचार-पक्ष के भी दर्शन होते हैं । परम सत्ता का भास्वर रूप उनके काव्य में दिखाई पड़ता है । 'सुमन' जी प्रातः काल में सूर्य की पहली किरण का यशोगान करते हैं, प्रथम किरण से ही जल, थल ओर नभ में एक अजीब सा परिवर्तन हो जाता है । विहग भोर को गले लगाकर मधुर आवाज़ में गाना गाने लगता है, मानव-समूह क्रियाशील हो जाता है, वह उस परम तत्त्व को पावन, पुनीत और अपना बताते हुए कहते है -

''जब जब ऊषा के वातावन से तुम देखा करते उझक झाँक
जग तृण-तरू पर मृदु-कुसुमों पर लेता सुन्दर छवि आँक-आँक
भू पर विलसित हो जाता है कल्पित स्वप्नों का स्वर्ण-नाक
अनजाने में हो जाते हैं मेरे कुछ क्षण सुख से व्यतीत, मेरे
पावन मेरे पुनीत ।''[१८१]

'सुमन' जी परम पिता से कहते हैं हे प्रभो मैं तुम्हारे उद्यान का एक खग हूँ । इस खग पर यदि दैविक, दैहिक और भौतिक तापों का प्रकोप होता है, तो कृपया मेरी रक्षा करना । मैं संसार की पीड़ा को पीते हुए, असह्य सीमा तक पहुँच जाऊँ तो आकर मुझे ऊबार लेना । 'सुमन' जी का ईश्वर के प्रति आत्मविवेदन देखे -

''जग-पीड़ा अन्तर्निहित किए बन दुःखी हृदय की हूक उठूँ
तेरे उपवन का पंछी मैं जब-मधुवन में कूक उठूँ
तब मेरी कूक-हूक में तुम अपना संगीत मिला देना,
इतना तो नेह निभा देना ।''[१८२]

अनन्त, असीम सत्ता को कवि 'सुमन' जी बार-बार देखते हैं, परन्तु फिर भी सन्तोष नहीं होता । इस असन्तोष के भावों में हमें प्रियतमा के प्रति उद्‌बोधन दिखता है, किन्तु इसमें यथार्थरूप में अध्यात्मिक दृष्टिकोण ही है । इन पंक्तियों में परमसत्ता की प्राकृतिक सुन्दरता की ओर संकेत किया गया है । परमात्मा की परम प्रकृति का सौन्दर्य, 'सुमन' जी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

''शब्द, रूप, रस, गन्ध तुम्हारी-कण-कण में बिखरी, मिलन साँझ की लाज सुनहरी ऊषा बननि खरी हाय, गूँथने के ही क्रम में कलिका खिली, झरी, भर-भर हारी, किन्तु रह गई रीति ही गगरी । कितनी बार तुम्हें देखा पर आखें नहीं भरी ।''[१८३]

ईश्वर के प्रति अनन्य अनुराग को भक्ति कहा गया है । यही भक्ति भावना 'सुमन' जी के काव्य में अभिव्यक्ति हुई है । किन्तु

'सुमन' जी की भक्ति का झुकाव 'स्वान्त: सुखाय' न होकर 'परहिताय' अधिक है । वे इस भक्ति का स्वरूप विश्व-कल्याण की भावना में ही देखते हैं । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'सुमन' जी का दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-पक्ष गहन से गहनतम है ।

७.३ 'सुमन' जी काव्य के विचार-पक्ष की प्रासंगिकता

कवि या लेखक जो भी सृजन करता है वह उसकी आत्माभिव्यक्ति अवश्य होती है, लेकिन बाद में उसकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति, अन्यो की भी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में परिवर्तित हो जाती है । श्रेष्ठ और उच्च कवि वही है जो दीर्घकाल तक प्रासंगिक रहे, उनके कहे गए वचन, उनकी वाणी और उनके विचार अनन्तकाल तक किसी भी समय में या कालखण्ड में प्रासंगिक बनकर समाज का एवं मनुष्य का मार्गदर्शन करते है । 'सुमन' जी ऐसे ही कवि हैं जिनकी कविताएँ जिस समय लिखी गई एवं प्रस्तुत हुई उस समय के लिए तो प्रासंगिक थी ही किन्तु आज भी वह प्रासंगिक है ।

कवि 'सुमन' जी ने अपनी कविताओं में जीवन-दर्शन व्यक्त किया है । मनुष्य जीवन का जीवन मार्ग और उनका जीवन-स्वरूप जानना हर काल में आवश्यक होता है, क्योंकि जीवन-मार्ग की तह तक जाना और जीवन के स्वरूप को जानना एवं समझना अति कठिन है । यह इस लिए कि जीवन मार्ग और जीवन का स्वरूप नित्य नवीन और परिवर्तित होता जाता है । अत: 'सुमन' जी का जीवन दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय था, मनुष्य अनन्तकाल तक उसके जीवन दर्शन के विचार-पक्ष से मार्गदर्शन लेता रहेगा ।

संस्कृति हर समाज के लिए आवश्यक है, संस्कृति का गौरव करना हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि वही हमें बनाती है, 'सुमन' जी की सांस्कृतिक चेतना के विचार बिन्दु से संस्कृति का संवर्धन एवं उसकी रक्षा होगी । जब आज के कराल काल में भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति के काले बादल मंडरा रहे हैं तब 'सुमन' जी की सांस्कृतिक चेतना उसको बचाने में संपूर्ण समर्थ है अतः उनकी सांस्कृतिक चेतना आज भी प्रासंगिक है ऐसा कहा जा सकता है ।

समाज में नारियों का सम्मान होना चाहिए क्योंकि वह भी मनुष्य है, उनकी भी चेतना है । आज भी नारियों को सम्मान नहीं मिल पाया है अतः समाज 'सुमन' जी की नारी चेतना संबंधी विचारधारा से मार्गदर्शन प्राप्त करके नारियों को सम्मान देगा अतः 'सुमन' जी की नारी-चेतना के विचार भी आज प्रासंगिक बन जाते हैं ।

युवान देश का अमूल्य धन होते है, देश की शक्ति होता है । यह युवा-धन मार्ग से भटक न जाय यह जरूरी है । आज का युवा-धन मार्ग से चलित होता जा रहा है अतः 'सुमन' जी के काव्य की यौवन चेतना आज भी प्रासंगिक है, उस समय से अधिक युवाओं को उनके संदेश एवं मार्गदर्शन की आज अधिक आवश्यकता है । वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति किसी भी काल में किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक है । अतः वैयक्तिक भावनाएँ महत्वपूर्ण है । 'सुमन' जी की वैयक्तिक चेतना के विचार बिन्दु इस दृष्टि से आज प्रासंगिक कहे जा सकते हैं ।

दलितों को आज भी उचित स्थान नहीं मिला हैं अतः 'सुमन' जी की दलित चेतना उन दलितों को उनका स्थान एवं मान दिलाने के लिए आवश्यक है, आज भी उसकी आवश्यकता है, जब तक समानता स्थापित नहीं हो जाती तब तक 'सुमन' जी की दलित चेतना के विचार प्रासंगिक रहेंगे । भारत गाँवों का देश है, आज गाँवों की दशा बद से बदतर होती जा रही है, गाँव दूर रहे हैं, ग्रामीण भावनाओं का लोप हो रहा है अतः आज गाँवों को बचाने के हेतु 'सुमन' जी की ग्रामीण चेतना के विचार आवश्यक हैं । समसामयिक चेतना 'सुमन' जी के काव्य की एक विशेषता है, वह आज भी प्रासंगिक है क्योंकि आज की भारत की स्थिति को देखकर उसकी अधिक आवश्यकता है । प्रेमभावना मनुष्य जीवन के लिए सदा ही आवश्यक रहेगी, आज के नफरत के युग में 'सुमन' जी कविता की प्रेमभावना की अधिक आवश्यकता है । हम वैज्ञानिकता और तकनीकी की अंधी दौड़ में पर्यावरण, प्रकृति को भूल गए हैं, ग्लोबल वार्मिंग के खतरे की आशंका है, उसका एक ही उपाय है कि हम प्राकृतिक बनें, प्रकृति को प्रेम करें, प्रकृति के निकट जाए । सृष्टि को बचाने के लिए प्रकृति आवश्यक है, आज उसके ऊकपर खतरा है अतः 'सुमन' जी की कविता में व्यक्त प्राकृतिक चेतना के विचार आज अधिक आवश्यक है, उसकी आज अधिक प्रासंगिकता महसूस हो रही है ।

जीवन के लिए सौंदर्य आवश्यक है, आज यंत्र युग में सौंदर्यभावना को ही हम भूलते जा रहे हैं, अतः हम सौंदर्यानुरागी बनें इसलिए आवश्यक हैं कि 'सुमन' जी की प्राकृतिक चेतना के विचारों को और सौंदर्य बोध का अनुराग करें, अतः 'सुमन' जी के काव्य का सौंदर्य बोध आज अभी प्रासंगिक है ।

'हालावादी' विचार युग का प्रभाव था, लेकिन उनमें व्यक्त मस्ती और सहजता की मौलिक भावना जीवन को चेतनावान रखने के लिए आज अधिक आवश्यक है । भारत की वर्तमान दुर्दशा को देखकर हृदय कपित हो उठा है, चारों ओर हिंसा, भ्रष्टाचार, शोषण, दमन, असत्य आदि का वातावरण छा गया है । ऐसे वातावरण में गांधी जी की याद आना स्वाभाविक है, आज की दहकती परिस्थितियों में से गांधी विचार भारत को बचा सकते हैं । अतः गांधी वादी विचार-पक्ष आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना स्वतंत्रता के काल में था । 'सुमन' जी की गांधी वादी विचार-पक्ष प्रधान कविताओं में व्यक्त विचारों से हम भारत की वर्तमान सुलगती समस्याओं का उपाय ढूँढकर उसे हल कर सकते हैं । विश्व दारूण दुःखों में डूबा हुआ है, आतंकवाद और हिंसा का वातावरण है, मनुष्य को मनुष्य नहीं समझा जा रहा, युद्ध की विभीषिका से मनुष्य त्रस्त है । अतः इसके लिए आवश्यक है, मानवता की ज्योत को जलाना । 'सुमन' जी के काव्यों में व्यक्त मानवतावादी विचार-पक्ष की आज अधिक आवश्यकता है, उनसे हम मानवता की ज्योत को जला सकेंगे ।

राजनीति की आज की खस्ताहाल स्थिति को देखते हुए 'सुमन' जी का राजनीतिक विचार-पक्ष आज अधिक आवश्यक है, जिससे कि राजनीति में सुधार एवं परिवर्तन हो । साहित्यकारों को और हिन्दी साहित्य को मार्गदर्शन के लिए आज 'सुमन' जी काव्य के साहित्यिक विचार-पक्ष की अधिक आवश्यकता है । मनुष्य सांप्रदायिक विद्वेषी बन गया है और सच्चे धर्म को भूल गया है, मनुष्य सही अर्थ में धार्मिक बने इसके लिए 'सुमन' जी काव्य के धार्मिक विचार-पक्ष की प्रासंगिकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता । दर्शन और रहस्यवादी

विचार नित-नवीन विचारों को प्रदान करते रहते हैं, हमें परम सत्ता के निकट ले जाते हैं । अतः सुमन का दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-पक्ष भी आज अति आवश्यक है ।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आज की दहकती परिस्थितियों को देखते हुए उसके उपाय एवं मार्गदर्शन के लिए 'सुमन' जी काव्य के विचारों की आज अधिक आवश्यकता है । निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी काव्य का विचार-पक्ष आज भी प्रासंगिक है ।

७.४ निष्कर्ष

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी एक विचारवादी एवं सहृदयी कवि हैं । उन्होंने समाज में जो भी रिक्तता देखी, समाज में जो भी आवश्यकता देगी उसकी पूर्ति हेतु अपनी काव्याभिव्यक्ति के माध्यम से उसे पूर्ण करने का प्रयत्न किया है । आज की दहकती सामाजिक परिस्थितियों को देखकर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुमन' जी की कविताएँ और उसमें व्यक्त विचार-पक्ष के विचार रत्न इस धूमिल सामाजिक समुद्र के बीच दिशा दर्शन के लिए दीपघर के सदृश ही प्रकाश फैलाने वाले हैं । 'सुमन' जी ने जो भी लिखा जो भी अनुसंधान किया जो भी विचार व्यक्त किए हैं बेबाक, बेखटके और सहजता से तथा मौलिक ढंग से अपने कवि कर्म के कर्तव्य को नज़र के समक्ष रखकर व्यक्त किए । इस संबंध में 'सुमन समग्र-०३' की भूमिका में प्रभाकर श्रोत्रिय जी 'सुमन' जी के संबंध में इस प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं - ''शोधकाल में भी कवि-रूप में वे लोकप्रिय थे, अलमस्त माधुर्य और ओज से अपने चारों ओर गर्माहट, आवेग

और उत्तेजना की सृष्टि करनें में समर्थ थे, फिर भी शोधकार्य उन्होंने पूरी निष्ठा और गंभीरता से किया था, परंतु लगता है आगे चलकर उन्होंने अपने व्यक्तित्व में कवि को ही केन्द्र से परिधि तक व्याप्ति दे दी ।''[१८४]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'सुमन' जी ऐसे कवि थे जो अपना कवि कर्म निभाने के लिए निर्भयतापूर्वक विचार व्यक्त करते थे । वे एक मौलिक सहज और समय के प्रवाह में ढलने वाले, परिवर्तनकारी एवं क्रांतिकारी विचारो से युक्त लेखनकार्य करनेवाले कवि थे । प्रसिद्धनारायण चौबे का मत इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है - ''अपने पचपन वर्षों के लम्बे लेखनकाल में 'सुमन' जी समय के साथ-साथ बदलते गये किन्तु उनकी मौलिकता कहीं भी खण्डित नहीं हुई ।''[१८५]'सुमन' जीके काव्य का वैचारिक वैभव गहन है, विविधतापूर्ण है, नवीनता सभर है, परिवर्तनकारी एवं क्रांतिकारी है । आज के परिवेश के लिए उनके काव्यों में व्यक्त विचार-पक्ष की अत्यधिक आवश्यकता है, अतः उनकी कविता में व्यक्त विचार-पक्ष आज भी प्रासंगिक है और वह अनंतकाल तक मानव समाज के लिए मार्गदर्शन का कार्य करता रहेगा ।

संदर्भ सूचि

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
०१.	'सुमन समग्र'(०४) 'महादेवी की काव्यसाधना	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२६१
०२.	'सुमन समग्र'(०१) 'पर आँखें नहीं भरी'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३२०
०३.	'सुमन समग्र'(०१) 'पर आँखें नहीं भरी'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३२१
०४.	'कबीर दर्शन' संपादक :	- सं. डॉ. दीनदयाल गुप्त	२३२-२३३
०५.	'सुमन समग्र'(०२) 'मिट्टी की बारात'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१३४
०६.	'सुमन समग्र'(०२) 'मिट्टी की बारात'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१३५
०७.	'सुमन समग्र'(०२) 'मिट्टी की बारात'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१३५
०८.	'अग्नि की उड़ान'	- डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम -	१७
०९.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२०-२१
१०.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१
११.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५
१२.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२४
१३.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२८
१४.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४६
१५.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	७२
१६.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९२
१७.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९७
१८.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९८-९९
१९.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११३
२०.	'सुमन समग्र' (०१) 'प्रलय सृजन',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१७५
२१.	'सुमन समग्र' (०२) 'विन्ध्य हिमालय'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५०
२२.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११७
२३.	'सुमन समग्र' (०१) 'प्रलय सृजन',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१४३
२४.	'सुमन समग्र' (०१) 'प्रलय सृजन',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१४५

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
२५.	'सुमन समग्र' (०१) 'प्रलय सृजन',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१५६
२६.	'सुमन समग्र' (०१) 'प्रलय सृजन',	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१८३
२७.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़ता ही गया	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२१७
२८.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़ता ही गया	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२२७
२९.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़ता ही गया	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२७२
३०.	'सुमन समग्र' (०२) 'विन्ध्य हिमालय'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५८
३१.	'सुमन समग्र' (०२) 'विन्ध्य हिमालय'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५५
३२.	'सुमन समग्र' (०२) 'पर आँखे नहीं भरी'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३४४
३३.	'सुमन समग्र' (०२) 'पर आँखे नहीं भरी'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३४५
३४.	'सुमन समग्र' (०२) 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें '	-शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३४०-३४१
३५.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२७
३६.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३२
३७.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३९
३८.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	७३
३९.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०८
४०.	'सुमन समग्र' (०२) 'मिट्टी की बारात'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१३७
४१.	'संस्कृति' (त्रैमासिक पत्रिका)	(शांतिनिकेतन की सांस्कृतिक देन' - रामचन्द्र राय) - संपा. डॉ. ज्ञानवती दरबार	१६
४२.	'सुमन समग्र' (०२) 'विन्ध्य हिमालय'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३३
४३.	'सुमन समग्र' (०२) 'विन्ध्य हिमालय'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३३
४४.	'सुमन समग्र' (०२) 'विन्ध्य हिमालय'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८९-९०
४५.	'सुमन समग्र' (०१) 'प्रलय-सृजन'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१८४-१८५
४६.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़त ही गया'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२९८-२९९
४७.	'सुमन समग्र' (०२) 'मिट्टी की बारात'	- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१२९

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
४८.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२७२
४९.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४१
५०.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४२
५१.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०१
५२.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०२
५३.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०३
५४.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०४
५५.	'सुमन समग्र' (०२)	'मिट्टी की बारात'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१३६
५६.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९९
५७.	'सुमन समग्र' (०२)	'मिट्टी की बारात'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१४४
५८.	'सुमन समग्र' (०२)	'वाणी व्यथा ' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५३
५९.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१४९-१५०
६०.	'सुमन समग्र' (०२)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३५
६१.	'सुमन समग्र' (०२)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१९
६२.	'सुमन समग्र' (०२)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२०
६३.	'सुमन समग्र' (०२)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५६
६४.	'सुमन समग्र' (०२)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११६
६५.	'सुमन समग्र' (०२)	'विश्वास बढता ही गया' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२७३
६६.	'सुमन समग्र' (०२)	'पर आँखे नहीं भरी' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३११-३१२
६७.	'सुमन समग्र' (०२)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९७
६८.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८७
६९.	'सुमन समग्र' (०२)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	६९
७०.	'सुमन समग्र' (०२)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३५
७१.	'अग्नि की उड़ान''	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम	१८८
७२.	'अग्नि की उड़ान''	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम	१८२

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
७३.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३२
७४.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८८
७५.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११६
७६.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय-सजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१४७
७७.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया' शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२१८
७८.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९२-९३
७९.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८९
८०.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८८-८९
८१.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१५९
८२.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय-सजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१६०
८३.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय-सजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१९४
८४.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय-सजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२०१
८५.	'सुमन समग्र' (०२)	'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२८१-२८२
८६.	'सुमन समग्र' (०२)	'मिट्टी की बारात'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२८१-२८२
८७.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१६३/१६४
८८.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१६४
८९.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५४
९०.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५६
९१.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२३४
९२.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२४६
९३.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१९८
९४.	'सुमन समग्र' (०१)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५६
९५.	'सुमन समग्र' (०१)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५६

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
९६.	'सुमन समग्र' (०१)	'पर आँखे नहीं भरी'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३४१
९७.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११५
९८.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९१
९९.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५४
१००.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४०
१०१.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५१
१०२.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५२
१०३.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४०
१०४.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११४
१०५.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११३
१०६.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११२
१०७.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	७५
१०८.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५
१०९.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३०
११०.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५४
१११.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	६४
११२.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४५
११३.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४४
११४.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२४-२५
११५.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२०
११६.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८७
११७.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२१
११८.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५२
११९.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३६
१२०.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८१

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१२१.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८९
१२२.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४५
१२३.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढता ही गया'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१७३
१२४.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३९
१२५.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४४
१२६.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय-सृजन' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१७४
१२७.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	५३
१२८.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	८४
१२९.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय-सृजन' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१७९
१३०.	'सुमन समग्र' (०१)	'पर आँखें नहीं भरी' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३०८-३०९
१३१.	'सुमन समग्र' (०१)	'पर आँखें नहीं भरी' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१५
१३२.	'सुमन समग्र' (०१)	'पर आँखें नहीं भरी' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१५-३१६
१३३.	'इन्सायक्लोपीडीयाब्रिटानिका'	''सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व''- कुमार विमल-राजकमल प्रकाशन ।	४३, २१६
१३४.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	७७
१३५.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवनके गान' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१२९
१३६.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३७
१३७.	'सुमन समग्र' (०१)	'पर आँखें नहीं भरी' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१७
१३८.	'सुमन समग्र' (०२)	'विन्ध्य हिमालय'- शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३७-३८
१३९.	'नीरजा'	महादेवी वर्मा	२५
१४०.	'निशा निमन्त्रण'	हरिवंशराय बच्चन	०७
१४१.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३६
१४२.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	६५
१४३.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया' - शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२४८

क्रमांक	संदर्भग्रंथ		लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१४४.	'सुमन समग्र' (०२)	'वाणी की व्यथा'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२३०–२३२
१४५.	'सुमन समग्र' (०१)	'पर आँखे नही भरी'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३६५
१४६.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२९५
१४७.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१६०
१४८.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२६७
१४९.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१७०
१५०.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१५२
१५१.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२२०
१५२.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५३–२५४
१५३.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२८१–२८२
१५४.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२८३
१५५.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	६४
१५६.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२२
१५७.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२७६
१५८.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२१८
१५९.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०७
१६०.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११८
१६१.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११८
१६२.	'सुमन समग्र' (०१)	'जीवन के गान'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११९
१६३.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२४२
१६४.	'सुमन समग्र' (०१)	'हिल्लोल'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	७४
१६५.	'सुमन समग्र' (०१)	'प्रलय सृजन'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१८४
१६६.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५७
१६७.	'सुमन समग्र' (०१)	'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२५९–२६०
१६८.	'सुमन समग्र' (०२)	'मिट्टी की बारात'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१३९–१४०

क्रमांक	संदर्भग्रंथ	लेखक / संपादक / प्रकाशन	पृष्ठ क्रमांक
१६९.	'सुमन समग्र' (०२) 'वाणी की व्यथा'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२६९–२७०
१७०.	'सुमन समग्र' (०२) 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३३९
१७१.	'सुमन समग्र' (०२) 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३३९
१७२.	'सुमन समग्र' (०२) 'कटे अंगूठों की बन्दनवारें'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१७
१७३.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९३
१७४.	'सुमन समग्र' (०१) 'जीवन के गान'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१०९
१७५.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२७९
१७६.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२८९
१७७.	'सुमन समग्र' (०१) 'विश्वास बढ़ता ही गया'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२९४
१७८.	'सुमन समग्र' (०१) 'पर आँखें नहीं भरी'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३३१–३३२
१७९.	'सुमन समग्र' (०१) 'विन्ध्य हिमालय'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	९७
१८०.	'सुमन समग्र' (०१) 'पर आँखें नहीं भरी'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३३३
१८१.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२४
१८२.	'सुमन समग्र' (०१) 'हिल्लोल'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	२६
१८३.	'सुमन समग्र' (०१) 'पर आँखें नहीं भरी'	– शिवमंगलसिंह 'सुमन'	३१४
१८४.	'सुमनसमग्र'(०३) 'भूमिका प्रभाकर श्रोत्रिय'	– वाणी प्रकाशन –नई दिल्ली	०५
१८५.	लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	– प्रसिद्धनारायण चौबे-	२७१

उपसंहार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में ही वह जन्म लेकर पनपता है, बनता है, बिगड़ता भी है और उसका अंत भी समाज में ही होता है । मनुष्य का सामाजिक विकास आवश्यक है । सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के रूप में रहकर ही वह सामाजिक प्राणी बनता है । आदिमानव के पास कोई जीवन पद्धति नहीं थी, और न थी कोई आचार प्रणाली । उसके पास किसी प्रकार की जीवन प्रणाली भी नहीं थी । उसका कारण है, वह न तो बौद्धिक रूप से विकसित था और न वैचारिक रूप से । धीरे-धीरे विकसित होकर वह आज की विकसित स्थिति तक पहुँचा । आज की स्थिति तक पहुँचा है । आज की स्थिति तक पहुँचने के लिए उसने कई उतार-चढ़ाव और संघर्ष किए हैं । इन सब के अनुभवजन्य ज्ञान के द्वारा ही उसका विकास हुआ । इस अनुभवजन्य ज्ञान एवं उसके विकास के मूल में उसकी विचारशक्ति का बड़ा योगदान रहा ।

विचार शक्ति के बिना मनुष्य विकास नहीं कर सकता । मनुष्य विकास नहीं करेगा मतलब कि समाज विकास नहीं करेगा और समाज के विकसित न होने का परिणाम सांस्कृतिक एवं साभ्यतिक विकास न होना । मनुष्य के ऐसे विकास न होने के कारण पशुतुल्य स्थिति तक वह आ पहुँचता है । इसलिए यह निर्विवाद है कि मनुष्य के विकास के मूल में उसकी विचारशक्ति विद्यमान है ।

विचार बड़ी ही अमूल्य शक्ति है। विचार के अभाव में तर्कशक्ति पनपती ही नहीं है और तर्कशक्ति के अभाव में समझशक्ति का विकास नहीं होगा और वह श्रेष्ठतम स्थिति तक नहीं पहुचेगा । अत:विचार एक ऐसा मानसिक व्यापार है, एक ऐसी मानसिक शक्ति एवं प्रक्रिया है जो मनुष्य की

तर्कशक्ति को जागृत कर उसकी समझ शक्ति को विकसित करता है । मनुष्य अपनी समझशक्ति के द्वारा अनुभूत ज्ञान के माध्यम से अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं समाज का विकास कर खुद आंतरिक एवं बाह्य रूप में श्रेष्ठ एवं आदर्श नागरिक बन सकता है ।

विचार विधायक भी होते हैं और निषेधक भी । विधायक विचार सफलता दिलाते हैं और निषेधक विचार निष्फलता; इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य एवं समाज को विधायक ऊच्चत्तम और श्रेष्ठ विचार देने चाहिए । साहित्य समाज का ऐसा अंग है जिसके द्वारा मानव समाज को श्रेष्ठ एवं ऊँच विचार प्राप्त होते हैं अतः साहित्य में साहित्यकार के द्वारा साहित्य कृति के माध्यम से निहित विचारों का प्रस्फुटन होता है ।

साहित्य विचारवहन का, विचारामृत का एक सबल माध्यम बना है । आज तक हिन्दी के कई कवियों और लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से मानव समाज की उत्तम साहित्यिक विचाररत्न प्रदान किए है । ऐसे साहित्यकारों में शिवमंगल सिंह 'सुमन' का नाम शिर्षस्थ स्थान पर आता है । 'सुमन' जी ए क विचार शील कवि हैं । उन्होंने अपने अनुभूत ज्ञान से निष्पन्न विचारों को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करके समाज को श्रेष्ठत्तम सुव्यवस्थित एव ऊँच्चतम बनानेवाले विचार प्रदान किए हैं । इस शोध-प्रबंध में 'सुमन' जी के काव्य के विचार-पक्ष का अध्ययन करके उसमें से उत्तम साहित्य रत्नों के रूप में वैचारिक तथ्य रखे गए हैं ।

'सुमन' जी हिन्दी साहित्य जगत के विशिष्ट एवं प्रभावशाली कवियों में से एक है । उनका काव्य एक क्रांतिकारी काव्य है । वे व्यक्तिगत एवं

साहित्यिक दोनों दृष्टियों से सफल एवं प्रभावशाली रहे हैं । उनका साहित्यिक व्यक्तित्त्व किसी को भी आकर्षित करनें में सक्षम है ।

'सुमन' जी के समकालीन परिवेश ने उनके व्यक्तित्त्व को और साहित्य को प्रभावित किया है । देश की परिस्थितियों ने उन्हें प्रभावित किया है । उनकी कविताओं में समकालीन परिवेश की झलक मिल जाती है ।

'सुमन'जी एक समाजवादी कवि होने के कारण उनके काव्य विषय का एक भाग समाज दर्शन रहा है । 'सुमन'जी की समग्र कविताओं में से आधी कविताएँ सामाजिक विचार-पक्ष को प्रस्तुत करनेवाली कविताएँ हैं । वे समाज के स्वरूप के संबंध में विचार व्यक्त करके समाज की आवश्यकता को बताकर समाज का महत्त्व स्थापित करते हैं । समाज को तोड़नेवाले अंगों के प्रति वे सावधान भी करते हैं तो सामाजिक वैमनस्य को स्थापित करने के लिए आवश्यक सुझाव देकर योग्य एवं यथार्थ मार्गदर्शन भी करते हैं । समाज का यथार्थ चित्रण करके समाज को उनकी स्वयं की तस्वीर दिखाकर उनमें से कुछ सीखने का भी संदेश देते हैं । मनुष्य समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है, परंतु मानव-मानव के बिच भेदभाव को देखकर वे द्रवित हो जाते हैं । अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने मनुष्य की मनुष्यता को स्थापित कर यह प्रतिपादित किया है कि मनुष्य सृष्टिकर्ता की श्रेष्ठत्तम कृति है उसे धनी-गरीब, ऊँच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित, जाति-पाँति आदि के माध्यम से बाँटकर और नीचा दिखाकर उसका अवमूल्यन मत करो । मनुष्य को केवल मनुष्य की दृष्टि से ही देखना चाहिए । गरीब और शोषित वर्गों को अपना उचित स्थान एवं मान मिलना चाहिए । मज़दूर, किसान और मध्यवर्गीय आम आदमी को समाज में बेहतर स्थिति में लानें के लिए 'सुमन' जी अपनी कविताओं में दृढ़तापूर्वक

विचार व्यक्त करते हैं । वे समाज में समानता स्थापित हो, समाज भेदभाव रहित बने, धार्मिक विद्वेष खत्म हो, नारीयों को उचित स्थान मिले ऐसी भावना अपनी कविताओं में व्यक्त करते हुए सामाजिक समरसता का संदेश देते हैं । 'सुमन' जी ने अपनी कविताओं में व्यक्त सामाजिक विचार पक्ष के माध्यम से समाज को सुव्यवस्थित, सुखी, भेद-भाव रहित समरसतापूर्ण और सुंदर बनाने का प्रयत्न किया है ऐसा हम कह सकते हैं ।

मानव समाज की सभ्यता की विकासयात्रा के चलते आज तक वह उत्तरोत्तर प्रगति करता आया है । जंगली अवस्था से लेकर आज भी आदर्श मानव की विभावना तक उसका विस्तार हुआ है । पहले वह कबीलों के प्रति ही समर्पित था किन्तु बाद में प्रगति करता हुआ देश या राष्ट्र की सीमा तक उसका विकास हुआ । राष्ट्र किसी भी मनुष्य के लिए आवश्यक है । राष्ट्र की निश्चित सीमा में व्यक्ति सुरक्षित रहकर सुखपूर्ण एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन जी सकता है । इसलिए राष्ट्र का महत्त्व अत्यधिक है । व्यक्ति को अपने राष्ट्र के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण एवं बलिदान की भावना होती है । कोई भी व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति आत्म समर्पित होने के लिए लालाइत रहता है । 'रामायण' में इसलिए तो राम लक्ष्मण से कह उठते हैं कि ''अपि नमे रोचते लंका, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी ।'' किसी भी व्यक्ति को अपनी जननी और जन्मभूमि की बाहों में या उसके आँचल में स्वर्गिक सुख की प्राप्ति का अनुभव होता है । कवि 'सुमन' जी एक राष्ट्रवादी व्यक्ति एवं कवि हैं, राष्ट्रवाद उसके स्वासोच्छवास में है । 'सुमन' की कविताओं में राष्ट्रवादी विचार-पक्ष की अभिव्यक्ति अत-तत्र मिल जाती है । उनका अपने भारत, भारतभूमि, भारत के लोग, भारत के भव्य एवं गौरवपूर्ण इतिहास, भारत की सांस्कृतिक विरासत,

भारत की विचारधारा और राष्ट्रनायको के प्रति असीम श्रद्धा है । कवि 'सुमन' ने राष्ट्र के विकास के हेतु राष्ट्र के हर व्यक्ति द्वारा अपने देश के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना को आवश्यक माना है । बिना आत्म समर्पण की भावना के कोई भी देश विकास नहीं कर सकता । 'सुमन' जी ने अपनी कविताओं में स्वतंत्रता आंदोलन और आज़ादी की राष्ट्रभक्ति की चेतना को भी अभिव्यक्ति दी है । ''मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला'' कविता में 'सुमन' जी का हृदय भारत की वैमनस्य पूर्ण, अव्यवस्थित एवं आराजकतापूर्ण स्थिति को देखकर द्रवित हो जाता है, भारत की ऐसी दशा देखकर वे रो पड़ते हैं । उनकी कविताओं में सश्यश्यामला भारतभूमि की महानता के स्वर सुनाई पड़ते हैं । 'सुमन'जी ने राष्ट्रनायकों गांधी जी, नेहरू और लालबहादुर शास्त्री जी के प्रति भक्तिभावना प्रदर्शित की है । उन्होंने भारत की प्रगति के लिए उत्कृष्ट एवं ऊच्चतम राष्ट्रभक्ति की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है । साथ ही 'सुमन' जी ने राष्ट्रद्रोही तत्वों से सावधान रहकर उनका पर्दाफाश करने की सलाह भी दी है ।उन्होंने भारत सुखी, सम्पन्न, भयमुक्त बनें ऐसी भावना अपनी राष्ट्रवादी कविताओं में व्यक्त की है । 'सुमन' जी की राष्ट्रवादी विचार-पक्ष सम्पन्न कविताएँ आज की आतंकवाद, भ्रष्टाचार नक्सलवाद, अराजकता, सांप्रदायिक तनाव, भाषावाद, प्रान्तवाद, गरीबी, राजनैतिक कलुषितता जैसी समस्याओं के चलते आवश्यक हैं । इसलिए आज उसके विचारों की प्रांसगिकता अधिक दिखाई दे रही है ।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक प्रगतिवादी कवि हैं । प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ उनकी कविताओं में दिखाई देती है । उनके 'प्रलय-सृजन', 'जीवन के गान' आदि काव्य संग्रह प्रगतिवादी काव्यों से भरे पडे हैं । 'सुमन' जी की प्रगति

वादी कविताओं में मार्क्सवादी विचारधारा, शोषितों, दलितों, पीड़ितों, मध्यवर्ग, मजदूरों आदि के प्रति संवेदनशीलता और सहृदयता प्रकट हुई है तो शोषकवर्ग, पूँजीपति, उद्योगपति, धनसम्पन्न वर्ग, शिक्षित वर्ग, साम्राज्यवादी ताकतों, सत्ता और शक्ति सम्पन्न वर्ग और उनकी जर्जरित एवं अव्यवस्थित भेदभावयुक्त व्यवस्थातंत्र के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है । आज की पूँजीवादी व्यवस्था शोषणयुक्त है अतः उसको बदलकर समानता, सहअस्तित्व एवं भेदभावमुक्त एवं शोषणमुक्त ऐसी साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए ऐसा उसका मत है । उन्होंने साम्यवादी शासन प्रणाली का समर्थन किया है, क्योंकि वही एक मात्र ऐसी व्यवस्था है जो शोषितों के हितों की रक्षा करके उनका स्थान एवं उनके अधिकार उन्हें दिला सकती है । आज पूँजीवाद और यंत्रवाद का ऐसा बोलबाला है कि आधुनिकता और 'प्रैक्टलिज़्म' या प्राफेश्नलिज़्म की आड़ में आम जनता का शोषण हो रहा है । अब पूँजीवाद एक वैश्विक रूप धारण करके वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक अंग बन गया है । मज़दूर एवं कर्मचारी वर्ग का शोषण हो रहा है तो धन सम्पन्न वर्ग एवं सत्ता प्राप्त राजनीतिक वर्ग दोनों समाज को लूट रहे हैं, किसानों को गलत आर्थिक नीतियों के कारण आत्महत्या करनी पड़ रही है, किसान टूट रहा है । बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अपना आर्थिक साम्राज्यवाद फैलाकर सामाजिक व्यवस्था को और आम आदमी को आर्थिक गुलामी के गर्त में धकेल रही है । जमींदारी प्रथा अब नए और आधुनिक रूप धारण करके समाज को लूँट रही है । गरीब वर्ग अधिक गरीब और धनिक वर्ग अधिक धनी होता जा रहा है । इसलिए सामाजिक वर्ग-भेद बढ़ गए हैं । समाज में असमानता की खाई अधिक गहरी हो गई है । ऐसे वातावरण में 'सुमन' जी की प्रगतिवादी कविताओं में व्यक्त प्रगतिवादी

विचार-पक्ष की आवश्यकता बढ़ गई है । अतः 'सुमन' जी के काव्य का प्रगतिवादी विचार-पक्ष जितना उस समय प्रासंगिक था उतना ही आज भी प्रासंगिक है, बल्कि ऐसा भी कह सकते हैं कि भूतकाल की तूलना में आज इसकी आवश्यकता अधिक है ।

'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त जीवन-दर्शन आज की संत्रास की जिंदगी मे मनुष्य के लिए दीपघर का कार्य कर सकता है तो उनकी सांस्कृतिक चेतना के विचार संस्कृति के ह्रास एवं अवमूल्यन को रोकने के लिए आवश्यक हैं । समाज में नारियों के उचित स्थान के लिए और भेदभावमुक्त समाज के लिए उनके नारी चेतना के विचार सहायक सिद्ध हो सकते हैं । आज का युवावर्ग पदभ्रष्ट एवं पथभ्रष्ट हो कर अपना अमूल्य जीवन-काल व्यर्थ में व्यय कर रहा है, उनको सही दिशादर्शन एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता है । अतःयुवानों के पथप्रदर्शन के लिए 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त यौवन चेतना युक्त विचार अति आवश्यक सिद्ध हो सकते हैं । 'सुमन' जी की वैयक्तिक चेतना समष्टिगत चेतना है । अतः उनकी वैयक्तिक चेतना के विचारों की आवश्यकता को भी नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता । दलितों को उनका अधिकार एवं स्थान दिलाने के लिए 'सुमन' जी की दलित चेतना युक्त विचारधारा सहायक सिद्ध हो सकती है । भारत के गाँवों को बचाने के लिए और पुनः स्थापित करने के लिए गाँवों के प्रति प्रेम जागृत करना होगा और गाँवों के महत्त्व को स्थापित करना होगा । अतः इस कार्य के लिए 'सुमन' जी के काव्य की ग्रामिण-चेतना सहायक सिद्ध हो सकती है । समसामयिक चेतना से सम्बन्धित विचार समय और काल के यथार्थ निरूपण के लिए आवश्यक है । इस संदर्भ में समाज में से हिंसा और असत्य का वातावरण दूर कर प्रेमभावना पूर्ण परिवेश के निर्माण हेतु 'सुमन' जी

की प्रेमभावना सहायक सिद्ध हो सकती है । आज की सृष्टि और पर्यावरण दोनों प्रदुषण से कलुषित हो गए हैं अतः ग्लॉबल वॉर्मिंग की समस्या बढ़ गई है । इसका कारण है मनुष्य की प्रकृति से विमुखता । मनुष्य प्राकृतिक बनें और प्रकृति के पास फिर से जाए उसके लिए 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त प्रकृति चित्रण सहायक सिद्ध हो सकता है । जीवन-सुंदरता को जानने के हेतु 'सुमन' जी द्वारा व्यक्त सौंदर्यबोध आवश्यक है तो जीवन की मस्ती, मौलिकता, सहजता और उत्साह हेतु हालावाद की कविताओं वाले विचार मददगार साबित हो सकते हैं । भारत को उसका सही स्थान दिलाने के लिए गांधी विचारधारा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है अतः 'सुमन' जी की गांधी विचार धारा महत्त्वपूर्ण है । अतः 'सुमन' जी का गांधीवादी विचार-पक्ष' आज भी प्रासंगिक है । विश्व में से युद्ध की विभीषिका का डर दूर करने के लिए, युद्ध से बचने के लिए, अहिंसा की स्थापना के लिए मानवता की आवश्यकता है । इसलिए आज हमें 'सुमन' जी के मानवतावादी विचारों की आवश्यकता है । राजनैतिक कलुषितता मिटाकर स्वस्थ राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना हेतु 'सुमन' जी के राजनैतिक विचार पक्ष की आवश्यकता है तो साहित्य में नाविन्य लाने के लिए 'सुमन' जी का साहित्यिक विचार-पक्ष सहायक सिद्ध हो सकता है । मनुष्य और समाज सच्चा धार्मिक बने इसके लिए 'सुमन' जी काव्य में व्यक्त धार्मिक विचार-पक्ष की आवश्यकता है तो मनुष्य जीवन के सही उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-पक्ष की आवश्यकता है । इस प्रकार 'सुमन' जी की कविता में व्यक्त विचार-पक्ष के विविध आयामों का अपना विशेष महत्त्व है । अतः उनके महत्त्व का आकलन आज भी महती आवश्यकता भी है, जिसे शोधार्थी ने इस शोध-प्रबंध के द्वारा पूर्ण करने का विनम्र प्रयास किया है ।

मैंने 'सुमन' जी की कविता में व्यक्त विचार–पक्ष को यथातथ्य अनुसंधान परक दृष्टि से अध्ययन कर प्रस्तुत किया है । 'सुमन' जी की कविताओं में व्यक्त विचार–पक्ष विविधतापूर्ण, नाविन्यसभर, परिवर्तनकारी, उन्नायक, विधायक एवं क्रांतिकारी है । उसमें गंभीरता भी है और गहनता भी । 'सुमन' जी के काव्य में व्यक्त विचार–पक्ष के उत्तम विचाररत्न समाज के लिए मार्गदर्शक एवं पथदर्शक बनकर दीपघर के सदृश कार्य करेंगे, ऐसा शोधार्थी का विश्वास है । समाज में सुख, शांति, समृद्धि और चैतन्य स्थापित कर स्वस्थ समाज की स्थापना में सहायक सिद्ध होंगे यह निर्विवाद है । निष्कर्षतः इतना ही कहना चाहूँगा कि अगर ऐसा होगा तो इस अनुसंधान कार्य का उद्देश्य पूर्ण होगा और मेरा प्रयत्न सार्थक होगा ।

॥ ''इति शुभम्'' ॥

– अस्तु –

परिशिष्ट

ग्रंथानुक्रमणिका

(१) आधारग्रंथ

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/प्रकाशन	प्रकाशन वर्ष
१.	'कटे अंगूठों' की बन्दनवारें	शिवमंगल सिंह 'सुमन', राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली ।	सन् १९८० ई.
२.	'जीवन के गान'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट-दिल्ली ।	सन् १९८१ ई.
३.	'पर आँखे नहीं भरी'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट-दिल्ली ।	सन् १९६७ ई.
४.	'प्रलय-सृजन'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट-दिल्ली ।	सन् १९६९ ई.
५.	'मिट्टी की बारात'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ।	सन् १९७५ ई.
६.	'वाणी की व्यथा'	शिवमंगल सिंह 'सुमन' 'राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ।	सन् १९८० ई.
७.	'विन्ध्य-हिमालय'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीर गेट-दिल्ली	सन् १९६६ ई.
८.	'विश्वास बढ़ता ही गया'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली ।	सन् १९६७ ई.

९.	'सुमन-समग्र' (खण्ड एक से चार)	सं. प्रसिद्धनारायण चौबे जी, वाणी प्रकाशन, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली।	प्र.सं. सन् १९९५ ई. एवं द्वि.सं. सन् १९९७ ई.
१०.	'हिल्लोल'	शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट-दिल्ली।	सन् १९७२ ई.

(२) सहायक संदर्भ ग्रंथ

★ हिन्दी ग्रंथ

१.	'अग्नि की उड़ान'	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।	सन् २०१० ई.
२.	'आधुनिक भारत का इतिहास	सं. डॉ. दीनानाथ वर्मा, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।	प्र.सं. सन् २००६ ई.
३.	'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'	डॉ. कैलाश खन्ना अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-०२	प्र.सं. सन् २००४ ई.
४.	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'	बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।	संशो. सं. सन् १९९९ ई. एवं संशो. सं. सन् २००३ ई.
५.	'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	सं. आनंदप्रकाश दीक्षित, राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली।	सन् १९७५ ई.
६.	'आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान'	डॉ. उर्वशी सूरती	--
७.	'आधुनिक हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि	प्रकाशचन्द्र गुप्त	--
८.	'आस्था और सौंदर्य'	डॉ. रामविलास शर्मा	--
९.	'इतिहास और आलोचना'	डॉ. रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।	सन् १९६८ ई.
१०.	'इतिहास और आलोचना'	नामवर सिंह, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद।	सन् १९७७ ई.
११.	'कबीर'	सं. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।	तेरहवीं आवृत्ति सन् २००६ ई.
१२.	'कबीर दर्शन'	प्र.सं. दीनदयाल गुप्त, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।	सन् १९६२ ई.

१३.	'कल्पवृक्ष'	संपादक – शशि शेखर	--
१४.	'कविन्द्र रवीन्द्रनाथ टेगोर'	रा.प्र. कानिटकर	--
१५.	'कवि श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन'	सं. महेन्द्र भटनागर, सं. भगवतशरण उपाध्याय, सेतू प्रकाशन, झाँसी ।	--
१६.	'काव्य के रूप'	बाबू गुलाब राय, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली–०६	सन् १९७५ ई.
१७.	'काव्य मंजूषा'	सं. कन्हैंयालाल वर्मा, ज्ञानभारती प्रकाशन, नगीनदास बिल्डींग, ३४१, सरदार वल्लभभाई पटेल मार्ग, मुंबइ–०४	प्र.सं. सन् १९७० ई.
१८.	'काव्यशास्त्र'	भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।	पंचम संस्करण सन् १९७२ ई.
१९.	'काव्य सरिता'	संकलन : ललित एम. ए. लोकभारती प्रकाशन १५–ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद ।	सन् १९७२ ई.
२०.	'चिन्तामणि'	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली–०२	सन् २००७ ई.
२१.	'चिन्तामणि'	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, काशी ।	द्वि.सं. संवत् २००६ वि.
२२.	'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य: बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप'	डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर ।	प्र.सं. सन् १९९० ई.
२३.	'छायावादोत्तर हिन्दी कविता'	रमाकान्त शर्मा, साहित्य सदन, देहरादून ।	प्र.सं. सन् १९७० ई.
२४.	'टूटती श्रृंखलाएँ'	महेन्द्र भटनागर, प्रबुद्ध भारती प्रकाशन (प्रा.), ग्वालियर ।	द्वितीय संस्करण
२५.	''डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन''	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र, साहित्य रत्नाकर, १०४ ए/११८ रामबाग, कानपुर–१२	प्र.सं. सन् १९९० ई.

२६.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व'	डॉ. सुरेपनि शेषारत्नम्	--
२७.	'डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली' भाग-०४	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नईदिल्ली ।	--
२८.	'डॉ. 'सुमन' : व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व'	प्रधान संपादक हरिश प्रधान, 'सुमन' शिक्षण समिति, उज्जैन ।	प्रथमावृति सन् १९६९ ई.
२९.	'तमस' : एक अध्ययन'	प्रा. अर्चना जैन, पार्श्व पब्लिकेशन, निशापोल, झवेरी वाड़, रीलीफ़ रोड, अहमदाबाद-०१	प्रथमावृति सन् २००४ ई.
३०.	'तमस'	भीष्म साहनी, राजकमल पेपर बैक्स, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-०२	चौबीसवीं आवृति सन् २००७ ई.
३१.	'नया हिन्दी काव्य'	डॉ. शिवकुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।	अक्टूबर सन् १९६२ ई.
३२.	'नारी मुक्ति'	लेनिन - प्रगति प्रकाशन, आगरा	--
३३.	'निशा निमंत्रण'	हरिवंशराय बच्चन, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली ।	सन् १९६७ ई.
३४.	'निरजा'	महादेवी वर्मा	संस्करण १९३६ ई.
३५.	'प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य'	रेखा अवस्थी, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड-नई दिल्ली, मुंबई, कलकता, मद्रास, ग्रंथभारती, दिल्ली ।	प्रथमावृति सन् १९७८ ई.
३६.	'प्रगतिशील' साहित्य की समस्याएँ'	डॉ. रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।	द्वितीय संस्करण सन् १९५७ ई
३७.	'प्रकृति पुरूष कालिदास'	'शिवमंगल सिंह' 'सुमन', कैलाश पुस्तक सदन, पाटनकर बाजार, ग्वालियर-०१	प्र.सं. सन् १९७२ ई.
३८.	'पद्यपारिजात'	प्रा. जयेन्द्र त्रिवेदी, यु.बी. बंगलो रोड, जवाहरनगर दिल्ली-०७	--

३९.	'फूल नहीं रंग बोलते हैं'	केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, ईलाहाबाद ।	प्रथम संस्करण सन् १९६५ ई.
४०.	'भारत की मौलिक एकता'	वासुदेव शरण अग्रवाल	--
४१.	'भारतीय सामाजिक व्यवस्था'	वीरेन्द्र प्रकाश दीक्षित, पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।	प्रथम संस्करण सन् २००१ ई.
४२.	'महादेवी की काव्य साधना'	'शिवमंगल सिंह' 'सुमन', विद्यामंदिर प्रकाशन, मुरार (म.भारत) ।	प्रथम संस्करण संवत् २००४ वि.
४३.	'मिट्टी की ओर'	श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'	--
४४.	'रामचरित मानस'	तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर ।	संस्करण-१३१, सन् २००१ ई.
४५.	'राजनीति विज्ञान के सिद्धांत- 'द्वितीय खण्ड'	पुखराज जैन	--
४६.	'राजनीति विज्ञान के मूलतत्त्व'	जी.डी. तिवारी	--
४७.	'राष्ट्रीयता की अवधारणा और पं. श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य'	डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य	--
४८.	'राष्ट्रीयता'	श्री गुलाबराय	प्रथम संस्करण सन् १९६१ ई.
४९.	'राष्ट्रीयता'	विनोबा भावे	प्रथम संस्करण सन् १९६१ ई.
५०.	'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध'	आचार्य नंददुलारे वाजपेयी	--
५१.	'लोकचेतना के राष्ट्रीय कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन'	प्रसिद्ध नारायण चौबे, नवोदय सेल्स, ३५ डी.डी.ए. फलैट, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-०२	प्रथम संस्करण सन् १९९४ ई.
५२.	'विचार और निष्कर्ष'	वासुदेव, युरेशिया पब्लिशिंग हाऊस, (प्रा.लि.) रामनगर, नईदिल्ली-५५	सन् १९५६ ई.
५३.	'विचार का अनंत'	पुरूषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।	प्रथम संस्करण सन् २००० ई.
५४.	'विचार-विमर्श'	चन्द्रबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।	तृ.सं. सन् २००४ ई.

५५.	'विचार और विवेचन'	डॉ. नगेन्द्र	सन् १९४७ ई.
५६.	'समाजशास्त्र की मूल अवधारणा'	डॉ. ओ.पी. वर्मा, विकास प्रकाशन, कानपुर ।	सन् २००४ ई.
५७.	'समाज परिवर्तन की दिशाएँ'	डॉ. जनार्दन वाघमरे, विकास प्रकाशन, कानपुर ।	प्रथम संस्करण सन् १९९९ ई.
५८.	'समाजशास्त्र के मूल तत्त्व'	देवेन्द्र सिंह तौमर, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-०२	प्रथम संस्करण सन् २००७ ई.
५९.	'संकलित रचनाएँ'	मार्क्स - ऐंगेल्स भाग-०१ प्रगति प्रकाशन, । आगरा	--
६०.	'समीक्षा-सिद्धांत'	कृष्णदेव शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।	सन् १९७८ ई.
६१.	'समर्पण और साधना'	भवानीप्रसाद मिश्र, यशपाल जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली ।	सन् २००७ ई.
६२.	'साहित्य की रचना प्रक्रिया'	नरेश चन्द्रकर, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद ।	प्रथम संस्करण सन् १९९५ ई.
६३.	'साहित्य के मानदण्ड'	जुगलकिशोर पटैरिया	--
६४.	'साहित्य सिद्धान्त और अवधारणाएँ'	डॉ.अरूणप्रकाश मिश्र, ५११, प्रतिमा प्रकाशन, के. एल. क्रीडांगण, इलाहाबाद ।	प्रथम संस्करण सन् १९९४ ई.
६५.	'साहित्य का उद्देश्य'	प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, ईलाहाबाद ।	सं. जनवरी सन् १९६७ ई.
६६.	'साहित्य शोध समीक्षा'	डॉ. विनयमोहन शर्मा	--
६७.	'साहित्य देवता'	माखनलाल चतुर्वेदी	--
६८.	'साहित्य और समाज'	सं. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली ।	प्रथम संस्करण सन् १९७७ ई.
६९.	'साहित्य शास्त्र'	डॉ. नवनीत गौस्वामी, डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद ।	द्वि. सं. सन् १९९४ ई.
७०.	'साहित्य विवेचन'	डॉ. क्षेमचन्द्र सुमन, योगेन्द्रकुमार मल्लिक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।	सन् १९९० ई.

७१.	'साहित्यालोचन'	डॉ. श्यामसुन्दर दास, इन्डियन प्रेस–प्रयाग ।	सन् १९९३ ई.
७२.	'साहित्यिक निबंध'	राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर–आगरा ।	सन् १९५४ ई.
७३.	'साहित्यिक निबंध'	डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।	सं. १५ सन् १९९९ ई.
७४.	'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य'	डॉ. शेरगंज गर्ग, साहित्य भारती–दिल्ली ।	सन् १९९३ ई.
७५.	'साहित्य और आधुनिक युगबोध'	डॉ. देवेन्द्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् १९६७ ई.
७६.	''सुमन' : मनुष्य और स्रष्टा''	डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, कैलाश पुस्तक सदन, पाटनकर बाजार, ग्वालियर ।	सन् १९८१ ई.
७७.	'सौंदर्यशास्त्र के तत्व'	कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।	द्वितीय संस्करण सन् १९८१ ई.
७८.	'हमारी राष्ट्रीयता'	श्री मा.स. गोलवलकर जी	--
७९.	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'	सं.डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएड़ा ।	सन् २००० ई.
८०.	'हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल'	डॉ. श्रीनिवास शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् १९९२ ई
८१.	'हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ'	डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली ।	सं. १३ सन् १९९२ ई.
८२.	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'	डॉ. श्यामचन्द्र कपूर	प्रथम संस्करण सन् १९९१ ई.
८३.	'हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ'	डॉ. नामदेव उतकर, चन्द्रलोक प्रकाशन, १२८/१०६ जी ब्लॉक, किदवईनगर, कानपुर ।	प्रथम संस्करण सन् २००२ ई.
८४.	'हिन्दी के प्रगतिशील और समकालीन कवि'	डॉ. रणजीत, साहित्य रत्नालय, कानपुर ।	सन् २००१ ई.
८५.	'हिन्दी कविता में युगान्तर'	डॉ. सुधीन्द्र	द्वितीय संस्करण सन् १९५७ ई

८६.	'हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना'	विद्यानाथ गुप्त	--
८७.	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'	डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा, विद्याप्रकाशन, कानपुर-२२	प्रथम संस्करण
८८.	हिन्दी साहित्य का इतिहास'	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।	संस्करण संवत् २०१५ वि.
८९.	'हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य'	सच्चिदानन्द हिरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'	--
९०.	'हिन्दी कविता में मार्क्सवादी चेतना'	डॉ. जनेश्वर वर्मा, आराधना प्रेस, ब्रह्मनगर कानपुर-१२	प्रथम संस्करण सन् १९७४ ई.
९१.	'हिन्दी की मार्क्सवादी कविता'	डॉ. सम्पत ठाकुर, प्रगति प्रकाशन, आगरा ।	प्रथम संस्करण सन् १९७८ ई.
९२.	'हिन्दी की प्रगतिशील कविता'	डॉ. रणजीत, हिन्दी साहित्य संसार, प्रगतिशील प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् १९७१ ई.
९३.	'हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना'	विद्यानाथ गुप्त, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली ।	सन् १९६६ ई.
९४.	'हिन्दी साहित्य में गांधी चेतना'	डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा, साहित्य रत्नालय, कानपुर ।	सन् १९८१ ई.
९५.	'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष'	शिवदान सिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् १९५४ ई.
९६.	'हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद'	विजयशंकर मल्ल, सरस्वती मन्दिर, बनारस ।	सन् १९५० ई.
९७.	'हिन्दी काव्य में मानव तथा प्रकृति'	डॉ. लालताप्रसाद सक्सेना, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ ।	प्रथम संस्करण सन् १९६२ ई.
९८.	'हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण'	किरणकुमारी गुप्ता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।	संवत २००६ वि.
९९.	'हिन्दी काव्य में प्रेम भावना'	श्री रामेश्वर खण्डेलवाल	--
१००.	'हिन्दी की प्रतिनिधि-श्रेष्ठ कविताएँ'	सं. बच्चन जी, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली ।	प्रथम संस्करण सन् १९७८ ई.

★ संस्कृत ग्रंथ

१.	'अथर्ववेद'	स्वामि सदानंद सरस्वति, जगद्‌गुरु शंकराचार्य मेमोरियल ट्रस्ट, शारदापीठम् प्रकाशनम्, द्वारिका-गुजरात ।	--
२.	'ऋग्वेद'	स्वामि सदानंद सरस्वति, जगद्‌गुरु शंकराचार्य मेमोरियल ट्रस्ट, शारदापीठम् प्रकाशनम्, द्वारिका-गुजरात ।	--
३.	'महाभारत'	गीता प्रेस, गोरखपुर ।	--
४.	'मनुस्मृति'	गीता प्रेस, गौरखपुर ।	--
५.	'यजुर्वेद'	स्वामि सदानंद सरस्वति, जगद्‌गुरु शंकराचार्य मेमोरियल ट्रस्ट, शारदापीठम् प्रकाशनम्, द्वारिका-गुजरात	--
६.	'संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना'	हरिनारायण दीक्षित, देववाणी परिषद, नई दिल्ली ।	सन् १९८३ ई.
७.	'साहित्य दर्पण'	विश्वनाथ, चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी ।	संवत् २०४६ वि.
८.	'श्रीसूक्तम्'	पांडुरंग शास्त्री आठवले, निर्मल निकेतन, विमल ज्योति प्रकाशन, मुंबई	द्वितीय संस्करण सन् १९७५ ई.
९.	श्रीमद् भगवद्‌गीता'	'सस्तु' साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद ।	सं. २०, सन् १९९२ ई.

★ अंग्रेजी-ग्रंथ

१.	'आर्ट एण्ड लिटरेचर'	मार्क्स एवं एंगेल्स, प्रगति प्रकाशन, आगरा ।	प्रथम संस्करण
२.	'आर्ट एण्ड सोसायटी'	अदोल्फ संकेज वाज़केज़	प्रथम संस्करण
३.	'इम्प्रेशन ऑफ साउथ आफ्रिका'	ब्राइस	--
४.	'थियरी ऑफ दि मार्डन स्टेट'	ब्लुंटश्ली	तृतीय संस्करण
५.	'जे. मार्क्सिज़्म एण्ड क्वेश्चन ऑफ नेश्नालिटिज'	स्टालिन	द्वितीय संस्करण
६.	'दि प्रोस्पेक्ट्स ऑफ डेमोक्रेसी एण्ड द अदर एस्सेज'	जिर्मन आल्फ्रेड़	--

७.	'पोलिटिकल साइंस एण्ड कॉन्स्टिट्युशनल लॉ'	प्रा. बर्ग्रेस	वोल्युम-०१
८.	'पोलिटिकल आइडियल्स'	सी.डी. बर्न्स	--
९.	' फ्राम एम्पायर टू नेशन'	रूपर्ट एमर्सन	--
१०.	'युरोपियन आइडियलोजिस'	थर्स्टन वी. कालिजरी	--
११.	"The Encyclopedia of Philosophy"	H. J. Eysenck, The Macmillion Company, America.	Vol. 01, First published, 1972

(३) प्रकाशित, अप्रकाशित एवं पंजीकृत शोध-प्रबंध

१.	'शिवमंगल सिंह' 'सुमन' : व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व' शीला जैन; पंजाब विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक (हरियाणा), सन् १९६८-६९ ई.
२.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में संस्कृति का स्वरूप', रामकृष्ण मिश्र, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, (म.प्र.) सन्. १९७० ई. ।
३.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की काव्यधारा - एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण', नारायण नम्पुतिरी पी.एम.; कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन (केरल) सन्. १९७२ ई. ।
४.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व', श्रीमति रवीन्द्र कौर; गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात), सन. १९९० ई. ।
५.	'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व' (प्रगतिवाद के विशेष संदर्भ में), श्री एन. एल. उपाध्याय; सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, (गुजरात) में पंजीकृत ।
६.	'श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' के सर्जनात्मक कृतित्त्व का समीक्षात्मक अध्ययन' (शैलीविज्ञान के सदर्भ में), श्री नटवरलाल मगनलाल उपाध्याय, सरदार पटेल, विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) में पंजीकृत ।

(४) पत्र-पत्रिकाएँ

१.	'कथ्य रूप' (परिसंवाद), अंक : १२ जून, सन् १९९३ ई.
२.	'कादम्बिनी', मई सन् १९७८ ई.
३.	'The Times of India', (Ahmedabad Edi.) Friday, July 17, 2009
४.	'धर्मयुग', अंक : २६ जनवरी से ०१ फरवरी सन् १९७६ ई.
५.	'धर्मयुग' अंक : ०१ से १५ मार्च सन् १९९२ ई.
६.	'युगचेतक' (प्रसाद विशेषांक), जूलाई-१९७० ई.
७.	'राजस्थान पत्रिका', २७ नवम्बर-२००२ ई.
८.	'राष्ट्रीयता' अंक : प्रथम संस्करण सन् १९६१ ई.
९.	'रूपाभ' (संपादकीय), अंक-०१, जुलाई सन् १९३८ ई.
१०.	'विशाल भारत', मार्च सन् १९५७ ई.
११.	'सरस्वती' मई, सन् १९६२ ई (सं. नारायण चतुर्वेदी) ।
१२.	'संस्कृति' (त्रैमासिक), डॉ. ज्ञानवती दरबार ।
१३.	'सारिका' (पाक्षिक) सं. अवधनारायण मुद्गल ०१ से १५ अक्टूबर, सन् १९८६ ई. ।
१४.	'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' १८ अगस्त, सन् १९६३ ई.
१५.	'सारिका' (पत्र विशेषांक) वर्ष-२२, अंक-३०६, ०१ से १५ अप्रैल, सन् १९८२ ई.
१६.	'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' १५ से २१ मार्च, सन् १९८१ ई.
१७.	'हंस', नवम्बर, सन् १९४३ ई.
१८.	'हिन्दुस्तान', रविवार, ०४ अक्टूबर, सन् १९६१ ई.
१९.	'हिन्दुस्तान टाइम्स' २७ नवम्बर, सन् २००२ ई.

(५) शब्द कोश - साहित्य कोश

१.	'ऑक्सफर्ड इंग्लिश डिक्शनरी', ऑक्सफर्ड प्रेस ।
२.	'आदर्श हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, भार्गव बुक डिपो, वाराणसी, सन् १९८९ ई.
३.	'आदर्श हिन्दी शब्द कोश', डॉ. गोविंद चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९८६ ई.
४.	'इन्साइक्लोपीडिया', ब्रिटानिका प्र. २१६, सं. सन् १९१० ई.
५.	'बृहद् हिन्दी कोश', कालीदास प्रसाद, ज्ञानमंडल लि. बनारस, संवत् २०२३ वि.
६.	'मानक हिन्दी कोश', सं. आ. रामचन्द्र वर्मा (भाग ०१ से ०५)
७.	'संस्कृत - इंग्लिश - डिक्शनरी', एस. मोनियर विलियम्स ।
८.	'संस्कृत - इंग्लिश - डिक्शनरी', वामन शिवराम आप्टे, मोतिलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९८४ ई.
९.	'संस्कृत - हिन्दी कोश' वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९८४ ई.
१०.	'हिन्दी साहित्य कोश' भाग-०२, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, (ज्ञानमंडल प्रा. लि., वाराणसी)

(६) वेबसाईट

१.	www.yahoo.com.
२.	www.googel.com.